CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेघदूतम्

डॉ० संसारचन्द
पं० मोहनदेव पन्त

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास कलकत्ता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाकविश्रीकालिदासविरचितम्

मेघदूतम्

सम्पादक

डॉ० संसारचन्द्र, एम०ए० (संस्कृत और हिन्दी)

पी-एच० डी०, डी० लिट्०

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जम्मू यूनिवर्सिटी

तथा

पं० मोहनदेवपन्त शास्त्री, बी०ए०

सेवानिवृत्त प्रिन्सिपल

दीवान कृष्णकिशोर सनातनधर्म संस्कृत कालेज,

अम्बाला छावनी

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya
533

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास कलकत्ता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम संस्करण : वाराणसी, १९५२
अष्टम संशोधित संस्करण : दिल्ली, १९७९
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९८३, १९९६

© मोतीलाल बनारसीदास

बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७
१२० रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४
१६ सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलौर ५६० ००१
८ केमेक स्ट्रीट, कलकत्ता ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

मूल्य : रु० ७४

Sri Sankarach
533

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड,
दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रस्तावना

प्रथम संस्करण

साहित्यकलाक्षेत्र में कालिदास भारत के प्रतिनिधि कवि हैं। संस्कृत का कोई भी पाठ्यक्रम बिना इनकी रचनाओं के सफल नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि भारत के सभी विश्वविद्यालयों ने इनकी रचनाओं को अपने-अपने पाठ्यक्रम में पूरा-पूरा प्रातिनिध्य दे रखा है। अंग्रेजों के शासनकाल में शिक्षामाध्यम अंग्रेजी होने से कालिदास के रघुवंश, शाकुन्तल, मेघदूत आदि रचनायें अंग्रेजी में ही आलोचित और अनूदित हुआ करती थीं किन्तु स्वतंत्रता मिलते ही अंग्रेजी का स्थान हिन्दी लेने लगी है। अब प्रायः सभी विश्वविद्यालयों ने संस्कृत का माध्यम हिन्दी मान लिया है, किन्तु खेद है कि छात्रों के लिए अंग्रेजी ढंग पर समालोचनात्मक दृष्टि से सम्पादित हिन्दी संस्करण अभी तक प्राप्य नहीं हो सके। इस अभाव को पूरा करने के लिए हम कालिदास के मेघदूत का नूतन संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। मेघदूत जैसी भव्य कृति के लिए जैसे सुसंपादन की आवश्यकता है, उसमें यथासंभव कमी नहीं आने दी। कोई भी सम्बन्धित विषय, जो पाठकों के लिए उपादेय समझा गया है, इस संस्करण में अछूता नहीं रहा। एक विस्तृत भूमिका में कालिदास के जीवनकाल, स्थान, रचना आदि सभी विषयों पर, क्या देशी और क्या विदेशी—सभी विद्वानों के विचार बतलाकर साथ ही उनका विवेचन भी कर दिया है और कालिदास के सम्बन्ध में किये गये आधुनिकतम अनुसन्धानों से पाठकों को अवगत करा दिया है। इसके अतिरिक्त काव्य, महाकाव्य और खण्डकाव्य का भी स्वरूप स्पष्ट करके मेघदूत पर एक स्वतन्त्र निबन्ध भी जोड़ दिया है। पद्यों की व्याख्या करते हुए प्रत्येक का अन्वय, पदार्थ, हिन्दी अनुवाद और व्याकरण देते हुए अन्त में 'विशेष' स्तम्भ में भूगोल, पाठभेद, व्याख्या-भेद आदि सभी अपेक्षित बातों की आलोचना भी कर दी है। अनुवाद—जैसा कि नियम है—हमने यथा-सम्भव शाब्दिक ही रखना उचित समझा। पादटिप्पणी में पाठभेदों का भी निर्देश कर दिया है। आशा है प्रस्तुत संस्करण, क्या छात्र, क्या विद्वान् और क्या साधारण पाठक सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संभव है ग्रन्थ में छपाई की कुछ त्रुटियां रह गई हों। कारण कि प्रूफ पढ़ने का अवसर हमें प्राप्त नहीं हो सका, इसलिए विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि छपाई के इस दोष को क्षम्य समझते हुए स्वयं भूल-सुधार करके अनुगृहीत करें।

प्रस्तुत संस्करण

हमें प्रसन्नता है कि पाठक हमारे 'मेघदूत' को अपनाकर अपनी गुण-संग्राहिता का परिचय दे रहे है। हम उनका आभार मानते हैं। अब उनके हाथ में यह अष्टम संस्करण है। इसमें हमने ग्रन्थ का अच्छी तरह पुनरवलोकन एवं संशोधन किया है और नवीन अनुसन्धान के अनुसार ज्ञात कुछ नयी बातें जोड़ दी हैं जिससे ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ गई है—ऐसा हमारा विश्वास है।

मोहनदेव पंत, संसारचन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिका

संस्कृत से परिचित कौन व्यक्ति कालिदास को नहीं जानता । यह संस्कृत-साहित्य के सर्व-मूर्धन्य कवि और सुनिपुण नाटककार हैं। इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, अद्भुत कल्पना-शक्ति और उत्कृष्ट नाटक-निर्माण-कौशल पर मुग्ध हो कर ही भारतीय जनता ने इन्हें 'कविकुल-गुरु', 'कवि शिरोमणि', 'वाग्देवतावतार' आदि उपाधियों से विभूषित किया है । प्राचीनकाल से ही हमारे हृदय में इनके प्रति जो अपार प्रशंसा एवं आदर का भाव है, वह तो प्रत्यक्ष है ही, किन्तु अब तो इनकी कीर्ति दैशिक सीमा को लांघ कर विश्व के दूसरे छोर तक पहुँच गई है। विदेशवासी भी इनके अद्भुत् काव्यामृत का मौलिक अथवा अनूदित रूप में आस्वादन करके आनन्द-विभोर होकर इन्हें विश्वकवि मानने के लिए बाध्य हो गए हैं।

जीवन—खेद का विषय है कि हमें अपने महाकवि के जीवन के सम्बन्ध में आज तक भी प्रामाणिक वृत्तान्त प्राप्त नहीं हुआ है । ये कब और कहां उत्पन्न हुए ? इनके माता-पिता कौन थे ? ये कब स्वर्ग सिधारे ? इन प्रश्नों का सन्तोष-प्रद उत्तर देने में हम सर्वथा असमर्थ हैं । कालिदास स्वयं इतने निरभिमानी रहे कि इन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में अपनी रचनाओं में कुछ भी नहीं कहा । इसलिए इनके जीवन के संबंध में जो कुछ थोड़ा-बहुत ज्ञान हमें जनश्रुतियों, बाह्य साक्ष्यों एवं दूर के स्रोतों से प्राप्त हुआ है, उसी पर हमें संतुष्ट रहना पड़ता है । वास्तव में कालिदास का जीवनवृत्त अन्धकार से ढका हुआ है और इस सम्बन्ध में हम जो कुछ कहते अथवा सुनते आये हैं, उसकी भित्ति अनुमान ही है ।

एक जन-श्रुति के आधार पर कालिदास पहले महामूर्ख थे। किसी तरह इनका विवाह एक राजकन्या विद्योत्तमा के साथ हो गया था। मूर्खता का भेद खुलने पर उसने इन्हें तिरस्कार-पूर्वक घर से निकाल दिया। इन्होंने काली देवी की उपासना की और उसके वरदान से ये महाविद्वान् हो गये। कहते हैं कि इसी कारण ही इनका नाम कालिदास पड़ा। दूसरी जनश्रुति के अनुसार जो इनके निधन से सम्बन्धित है, जब ये लंका-भूपति कुमारदास के अतिथि थे, तो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनकी मृत्यु वहीं पर एक लालची वेश्या के हाथ से हुई परन्तु इन दन्तकथाओं में बहुत कम विश्वास किया जा सकता है।

एक अन्य जनश्रुति कालिदास को महाराज विक्रमादित्य[१] की सभा के नवरत्नों में गिनती है और यह बहुत कुछ अंश में विश्वसनीय हो सकती है, क्योंकि कालिदास ने भी अपनी कृतियों में कई जगह विक्रम शब्द का साभिप्राय प्रयोग करके प्रशंसा के रूप में अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य की ओर संकेत किया है। इसके अतिरिक्त स्वयं कालिदास के ग्रन्थ ही इस बात पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं कि उनका जीवन अवश्य ही किसी राजसभा में व्यतीत हुआ है। ये बड़े सम्पन्न घर के थे। लक्ष्मीदेवी नित्यप्रति उन पर मुस्कराती रहती थी। दरिद्रता के कुटिल कटाक्ष का इन्होंने अपने जीवन में कभी अनुभव नहीं किया था। ऐसी सम्पन्नता राजाश्रय के बिना हो नहीं सकती। इसलिए यह निश्चित है कि ये अवश्य ही विक्रमादित्य के राजकवि थे।

कालिदास जाति के ब्राह्मण थे। शिव के उपासक होते हुए भी ये साम्प्रदायिक संकीर्णता से बहुत ऊपर थे। ये वर्णाश्रमधर्म के पक्षपाती थे। इन्हें वेद-वेदाङ्गों, उपनिषदों, षड्-दर्शनों, स्मृति-पुराणों का पूर्ण ज्ञान था, साथ ही आयुर्वेद, ज्योतिष, कामशास्त्र, नृत्य, संगीत, मृगया और चित्रकला से भी पर्याप्त परिचय था। इन्होंने देश के प्रायः सभी भागों का विशेषतः उत्तर भारत का भ्रमण कर रखा था। उत्तर में होनेवाला काश्मीर का केशर-पुष्प, हिमालय के देवदारु-वृक्ष और हिम-धवलित चोटियां, कलिंग देश के नारिकेल-वृक्ष, ताम्रपर्णी की मोतियों की सीपियां, समुद्र तथा इसी तरह के अन्य कई स्थान एवं पदार्थ इनकी सूक्ष्म-दर्शी लेखनी द्वारा बड़े भव्य रूप में चित्रित किए गए हैं। इन सब का इन्होंने ऐसा सजीव और स्वाभाविक वर्णन किया है जो प्रत्यक्ष दर्शन के बिना होना बहुत कठिन प्रतीत होता है। यदि इनकी सिंहल-द्वीप-वाली दन्त-कथा की सच्चाई में विश्वास किया जाय, तो इनका सिंहलद्वीप जाना भी सिद्ध हो जाता है। इस तरह कालिदास विस्तृत भ्रमण किए हुए, उदार एवं सुपरिष्कृत विचारों वाले निरभिमानी, रसिक तथा आमोदप्रिय व्यक्ति थे।

१—धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रचनायें—वैसे तो कालिदास के नाम से रचित ग्रन्थों की प्रचलित संख्या दो दर्जन से भी अधिक बतलाई जाती है, किन्तु प्रायः सर्वसम्मति से सात ही ग्रन्थ कालिदास-रचित माने गए हैं, इनमें दो महाकाव्य—कुमारसम्भव और रघुवंश; दो खण्ड काव्य—ऋतु-संहार और मेघदूत, तीन नाटक, (१) मालविकाग्निमित्र (२) विक्रमोर्वशीय, (३) अभिज्ञान-शाकुन्तल हैं। इन उपर्युक्त रचनाओं में हमें भाषा तथा शैली की समानता के साथ-साथ सूक्ष्म-पर्यवेक्षण और विचार-धारा की समानता भी मिलती है। वास्तव में इनमें कवि की प्रतिभा और कला का क्रमिक विकास एवं परिपाक स्पष्ट दिखाई देता है। कोई बाह्य साक्ष्य न होने पर भी तुलनात्मक अध्ययन से इन रचनाओं का निर्माण-क्रम इस प्रकार रखा जा सकता है :—(काव्यों में) ऋतुसंहार, कुमारसम्भव, मेघदूत और रघुवंश; (नाटकों में) मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी और शाकुन्तल।

ऋतुसंहार—६ सर्गों में १४४ पद्यों का गीति-काव्य है, जिसमें ग्रीष्म से प्रारम्भ करके क्रमशः षड्-ऋतुओं का अनूठा वर्णन है। सारी रचना में युवक-युवतियों का प्रणय प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य से भव्य समन्वय और सहानुभूति पाकर किलोलें करता दृष्टि-गोचर होता है। कतिपय विद्वान् भाषा, भाव तथा शृंगार के नैतिक दृष्टिकोण के अपरिष्कृत होने के कारण इस रचना को कालिदासकृत नहीं मानते, किन्तु अनुसन्धानों से यह सिद्ध हो गया है कि यह कवि का काव्य-निर्माण की ओर सर्व-प्रथम प्रयास है। इसी कारण इसकी भाषा और भाव परिष्कृत नहीं हैं और उच्च नैतिक स्तर का अभाव भी पद-पद पर अखरता है। कीथ और मैक्डानल आदि पाश्चात्य समालोचकों के अनुसार ऋतुसंहार में दिखलाई देने वाला सूक्ष्म-प्रकृति-वीक्षण, प्रकृति के प्रति गहरी सहानुभूति एवं प्रसाद-गुण की रमणीयता आदि विशेषताएँ इस ग्रन्थ पर कालिदास की कला की अमिट छाप लगाए हुए हैं।

कुमारसम्भव—यह कवि का प्रथम महाकाव्य है जिसमें १७ सर्ग हैं और महादेव-पार्वती का विवाह, कुमार (कार्त्तिकेय) का जन्म तथा उसके हाथों तारकासुर का वध वर्णित है। सारा ग्रन्थ भारतीय गृहस्थ जीवन का एक अनुपम चित्र है। भाषा की दृष्टि से कुछ समालोचकों का कथन है कि इसके आठ सर्ग ही कालिदास-रचित हैं, इसमें महाकाव्य का लक्षण संगत करने तथा काव्य के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथानक को पूर्ण करने के लिए ही किसी ने पीछे से ९ सर्ग और जोड़ दिए हैं, इसीलिए मल्लिनाथ की टीका केवल ८ सर्ग तक ही मिलती है।

मेघदूत—यह खण्ड-काव्य है। इसके सम्बन्ध में विस्तार से हम आगे विचार करेंगे।

रघुवंश—यह कवि का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसके १९ सर्ग हैं और दिलीप से लेकर सभी रघुवंशी राजाओं यथा—रघु, अज, दशरथ, राम तथा राम के वंशजों का वर्णन है। सारा ग्रन्थ कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा, परिपक्व कला एवं भारतीय संस्कृति और राजनीति का भव्य निदर्शन है।

मालविकाग्निमित्र—यह कालिदास का सर्वप्रथम नाटक है, इसमें ५ अंक हैं और राजा अग्निमित्र तथा मालविका की प्रेम-कथा वर्णित है।

विक्रमोर्वशीय—यह ५ अंकों का दूसरा नाटक है जिसमें पुरूरवा तथा अप्सरा उर्वशी के प्रणय का वर्णन है।

अभिज्ञानशाकुन्तल—यह कालिदास का—कालिदास का ही क्यों, समग्र संस्कृत-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें सात अंक हैं तथा राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय-कथा वर्णित है। कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में "शकुन्तला के आरम्भ के सौन्दर्य ने मंगलमय परिणति से सफलता प्राप्त कर मर्त्य को अमृत के साथ सम्मिलित करा दिया है।" सुविख्यात जर्मन कवि गेटे (Goethe) ने भी इस नाटक का अनुवाद पढ़कर आनन्द-मुग्ध हो कर अपनी रचना 'फाउस्ट' में जो उद्गार प्रकट किए हैं, उनका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में सर विलियम जोन्स ने इस प्रकार किया है—

'Wouldst thou the young year's blossoms and the fruits of its decline

And all by which the soul is charmed, enraptured, feasted, fed ?

Wouldst thou the earth and heaven itself in one sole name combine ?

I name thee, O Shakuntala, and all at once is said.'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसका म० म० वासुदेव विष्णुकृत रूपान्तर यह है :—

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम् ।।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त श्रुतबोध, शृंगार-तिलक, शृंगाररसाष्टक, सेतुकाव्य कर्पूरमञ्जरी, पुष्पबाणविलास, लक्ष्मीस्तव, चर्चास्तव, अम्बास्तव, नवरत्नमाला, रत्नकोश, नलोदय, श्यामलादण्डक, प्रश्नोत्तर-माला, ज्योतिर्विदाभरण आदि जो अन्य ग्रन्थ कालिदास-रचित बतलाए जाते हैं, वे कालिदास नाम धारी किन्हीं अन्य कवियों की रचनायें हो सकती हैं जिस कालिदास से हमारा सम्बन्ध है, उसकी नहीं, क्योंकि ९०० ई० के आसपास के कवि राजशेखर के कथन के अनुसार तब तक तीन कालिदास हो चुके थे :—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।।

जन्मकाल—कालिदास के जन्मकाल का निर्णय संस्कृत साहित्य के इतिहास में विवाद-ग्रस्त है और इस पर आलोचक-गण अभी तक एक-मत नहीं हो सके हैं। काल की अवर सीमा का प्रमाण तो हमारे पास ६२० में वर्तमान बाण कवि है, जिसने अपने हर्षचरित में कालिदास को प्रशंसा की है और साथ ही ऐहोल (Aihole) का शिला-लेख (६३४ ई०) भी प्राप्त हुआ है, जिसमें कालिदास का नामोल्लेख है। इस आधार पर कालिदास का सातवीं शताब्दी (ई०) या, उससे पीछे होना तो असम्भव है। काल की पूर्ववर्ती सीमा प्रथम शताब्दी (ई० पू०) ठहरती है, क्योंकि कालिदासकृत मालविकाग्निमित्र में वर्णित शुंगवंश-प्रवर्तक अग्निमित्र का काल प्रथम शताब्दी (ई० पू०) है और साथ ही कवि का आश्रयदाता विक्रमादित्य प्रथम शताब्दी (ई० पू०) का है, जिसने ५७ (ई० पू०) अपना विक्रम-संवत् चलाया था। इन दोनों पूर्वापर-सीमाओं के बीच सन्देह-दोला में लटकता हुआ कवि का स्थितिकाल भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा अपने-अपने विचारानुसार भिन्न-भिन्न ही नियत किया जाता है। काल के विषय पर प्रचलित निम्नलिखित तीन वाद हैं—

(१) छठी शताब्दीवाला कहरूर-वाद (the Korur theory) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(२) पाँचवी शताब्दीवाला गुप्तकालीन वाद अथवा संस्कृत का पुनरुज्जीवनवाद (the theory of Renaissance)।

(३) प्रथम शताब्दी (ई० पू०) वाला वाद।

छठी शताब्दीवाला वाद—फर्गुसन महोदय का विचार है कि कहरूर युद्ध भारतीय इतिहास में एक नया युगान्तर उपस्थित करता है, जिसमें उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य ने म्लेच्छों को पराजित करके, विजय के उपलक्ष्य में स्मारक स्वरूप विक्रम संवत् चलाया और उसे प्राचीनता देने के लिए ६०० वर्ष पूर्व अर्थात् ५७ ई० पूर्व माना। इस मत की पुष्टि में कवि की रचनाओं में आये हुए यवन, शक, हूण, पह्लव आदि जातियों का नामोल्लेख किया जाता है। हूणों ने ५०० ई० में भारत पर आक्रमण आरम्भ किया था, इस कारण कालिदास का स्थिति-काल उसके पश्चात् सिद्ध होता है और वह छठी शताब्दी ई० है। भारतीयों में के० वी० पाठक भी अभी तक इसी छठी शताब्दी वाले मत के समर्थक हैं।

कुछ समय तक तो यह मत प्रचलित रहा, क्योंकि तब तक प्राचीन अनुसंधान के आधार पर कोई भी ऐसा शिला-लेख नहीं प्राप्त हुआ था, जो विक्रम संवत् ६०० से पूर्व का हो, किन्तु वर्तमान ही में मन्दसोर का शिलालेख मिला है, जिसमें विक्रम-संवत् ४७३ उल्लिखित है। इसमें वत्सभट्टि-रचित कुछ ऐसे भी पद्य[१] हैं जो कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत के पद्यों का बलात् स्मरण करा देते हैं। इसके अतिरिक्त फर्गुसन वाले मत में 'विक्रमसंवत्' ६०० पूर्व ही क्यों माना गया? इस प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं है। रघुवंश में आये हुए हूण आदि जातियों को राजा रघु ने अपनी दिग्विजय में देश की सीमा से बाहर परास्त किया था, न कि उन्होंने भारत पर आक्रमण किया था। प्रो० आप्टे महोदय के अनुसंधानों ने यह बात सिद्ध कर दी है कि प्राचीन भारतीय सीमा से बाहर बैक्टरिया से परे तीसरी शताब्दी ई० पू० से दूसरी शताब्दी ई० तक हूणों ने अपना साम्राज्य स्थापित कर रखा था। इन युक्तियों के आगे फर्गुसन का-छठी शताब्दी वाला वाद एकदम धराशायी हो जाता है।

१—चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र॥

वत्सभ०, मेघ० ६६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गुप्तकालीन वाद—पाश्चात्त्य विद्वानों में अधिकतर का विचार है कि गुप्तवंशी राजाओं का शासन-काल भारत के इतिहास में सुवर्ण-युग है। सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों को भारत से बाहर निकालकर 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी और अपने से पूर्व प्रचलित मालव-संवत् को विक्रम-संवत् के नाम से चलाया था। 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में विक्रमोर्वशीय और चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में कुमार-सम्भव की रचना कालिदास-द्वारा की गई प्रतीत होती है। रघुवंश में वर्णित रघु के दिग्विजय में और प्रयाग की हरिषेण कृत प्रशस्ति में वर्णित समुद्रगुप्त [चन्द्रगुप्त II के पिता ३३६-३७५ ई०] के दिग्विजय में बड़ी समानता मिलती है। मालविकाग्निमित्र में वर्णित अश्वमेध समुद्रगुप्त-कृत अश्वमेध को ही लक्ष्य करता है। गुप्तकालीन लोगों का सम्पन्न तथा आनन्द-प्रमोदमय जीवन मेघ० [३०] के उज्जयिनी-वर्णन में तथा ऋतु० में भलीभाँति प्रतिबिम्बित हुआ मिलता है। विक्रम शब्द की तरह कवि का गुप् धातु तथा उससे बने गुप्त-आदि शब्दों का पुनः पुनः प्रयोग साभिप्राय है और इसमें अपने आश्रय-दाता गुप्तवंशीय सम्राटों की ओर व्यञ्जना है।

इसके अतिरिक्त प्रो० मैक्डॉनल का संस्कृत पुनरुज्जीवन वाद भी कालिदास का गुप्तकालीन होना सिद्ध करता है। मैक्डॉनल के अनुसार वेदों के काल से लेकर प्रथम शताब्दी ई० तक संस्कृत का उन्नति-काल है। तत्पश्चात् मध्यान्तर काल है, जिसमें विदेशियों के सतत आक्रमण होते रहने के कारण साहित्य-कला प्रसुप्त रही। छठी शताब्दी में विक्रमादित्य के शासन के साथ संस्कृत का पुनर्जागरण हुआ और कालिदास इसी नये युग के प्रतिनिधि-रूप आदि कलाकार हैं।

इस वाद की पुष्टि में यह भी कहा जाता है कि बौद्धकवि अश्वघोष [७८ ई०] के और कालिदास के काव्यों में कहीं-कहीं बहुत साम्य है। बुद्धचरित [सर्ग ३, १३–१९] में सिद्धार्थ का बाजार में पहली बार जुलूस और रघुवंश [सर्ग ७, ५–१२] में आज का जुलूस एक-जैसे हैं; बुद्धच० (सर्ग १३, ६) में मार का सिद्धार्थ पर आक्रमण और कुमार० [सर्ग ३, ६] में काम का

१—विबभौ करलग्नवेणुरन्या स्तनविस्रस्तसितांशुका शयाना।
ऋजुषट्-पदपङ्क्तिजुष्टपादा जलफेनप्रहसत्तटा नदीव॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिव पर आक्रमण एक-से ही हैं। बुद्धचरित में 'स्तन-तट से गिरे हुए वसनवाली किसी प्रसुप्त स्त्री की फेन से हँसती हुई तटों वाली नदी से उपमा तथा मेघदूत (६५) में दी हुई उपमा में समानता है। इसी तरह सौन्दरनन्द में 'सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः' (४, ४२) और कुमारसम्भव में 'मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ'(५, ८५) आदि उपमाओं में भी बड़ा साम्य है। बहुत से अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि कालिदास की कला स्व-पूर्ववर्ती अश्वघोष से प्रभावित है।

उपर्युक्त वाद में सन्देह के कई स्थान हैं और इसके विरुद्ध कुछ ऐसे प्रश्न भी उपस्थित होते हैं, जिनका हमें सन्तोष-प्रद उत्तर मिलना चाहिए। सर्व-प्रथम, चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपना ही नया संवत् न चलाकर अपने से पूर्व प्रचलित मालव संवत् को अपने नाम से क्यों चलाया ? चन्द्रगुप्त के पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपना जो गुप्त-संवत् चला रखा था, उसे ही क्यों न प्रचलित रहने दिया ? इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा प्रचलित कहे जाने वाले विक्रम-संवत् का उसके अनन्तर की शताब्दियों में उल्लेख क्यों नहीं आया ? चन्द्रगुप्त द्वितीय के पौत्र स्कन्दगुप्त के गिरनार-वाले शिलालेख में विक्रम-संवत् का उल्लेख न आकर गुप्तसंवत् का ही उल्लेख आया है। इसलिए चन्द्रगुप्त द्वितीय की विक्रम-संवत् चलाने की बात ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ी अधूरी प्रतीत होती है। साथ ही एक और बात भी ध्यान देने योग्य है कि गुप्तवंशीय सम्राटों में से किसी का भी **नाम** विक्रमादित्य नहीं था—चन्द्रगुप्त द्वितीय की **उपाधि** मात्र थी। उपाधि लेने के लिए कोई पूर्ववर्ती विक्रमादित्य-नामक महान् सम्राट् अपेक्षित है जो कि परवर्ती राजाओं का अनुकरणीय बने; अतः 'विक्रमादित्य' उपाधि-धारी चन्द्रगुप्त से बहुत पूर्व विक्रमादित्य नाम का कोई महान् सम्राट् हुआ होगा और वही कालिदास का असली आश्रयदाता हो—यह क्यों न माना जाय। 'कुमार' 'गुप्त'—आदि शब्द व्यंग्य अर्थ में न प्रयुक्त होकर अपने ही मुख्य अर्थ में भी तो प्रयुक्त हुए माने जा सकते हैं। इसी तरह रघुवंश के दिग्विजय का सम्बन्ध समुद्रगुप्त के अश्वमेध से न जोड़कर किसी अन्य सम्राट् के अश्वमेध से भी तो जोड़ा जा सकता है। पुराणग्रन्थों में अनेकों दिग्विजयों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का वर्णन आता है। मैक्डॉनल के पुनरुज्जीवन काल से पूर्व का मध्यान्तर-काल साहित्यिक रचनाओं से बिलकुल शून्य नहीं रहा है जैसा कि डा० पीटरसन और डा० बुहलर ने भी माना है। यदि कालिदास को नव-जागरणयुग का प्रथम कवि मान भी लिया जाय, तो इन्हें मैक्डॉनल द्वारा निर्दिष्ट काल से बहुत पहिले प्रथम शताब्दी (ई० पू०) में मानना पड़ेगा, क्योंकि वही नव-निर्माण-युग था। बाद के अनुसन्धानों ने तो अब मैक्डॉनल का पाँचवीं शताब्दीवाला पुनरुज्जीवन-वाद सर्वथा भ्रान्त सिद्ध कर दिया है। अब रही अश्वघोष के साथ साम्यवाली बात। यह तो सिद्ध ही है कि अश्वघोष एक बौद्ध दार्शनिक था और बौद्धसिद्धांतों को जन-साधारण में प्रचार करना चाहता था जैसा कि उसने स्वयं स्वीकार भी किया है; इसीलिए उसने काव्य-कला का आश्रय लिया था। हम देखते हैं कि प्रारम्भिक बौद्ध-साहित्य पाली-प्राकृत में लिखा हुआ मिलता है। अश्वघोष का प्राकृत के स्थान में संस्कृत को अपनाने का कारण यही हो सकता है कि उस समय तक संस्कृत का उत्थान हो चुका था और वह एक लोक-प्रिय भाषा बन गई थी, अतएव क्यों न कालिदास को ही अश्वघोष का पूर्ववर्ती मान लिया जाय, जिनके काव्य से अश्वघोष ने प्रेरणा ली है? कालिदास–जैसे विशाल प्रतिभावाले विश्व-वन्द्य कलाकार की अपेक्षा काव्यक्षेत्र में अवतीर्ण एक बौद्ध दार्शनिक का ही कालिदास से प्रेरणा लेना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, अश्वघोष का सम्बन्ध उस समय से है कि जब कि संस्कृत भाषा में कृत्रिमता आने लगी थी और शैली कालिदास की जैसी स्वाभाविक न रह कर कुछ जटिल और प्रयास-साध्य बन रही थी। प्रो० झाला महोदय ने अश्वघोष के निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा यह बात सिद्ध कर दी है:—

"शमेऽभिरेमे विरराम पापाद् भेजे दमं संविबभाज साधून्"
(बुद्धच० २, २३)

"नाध्यैष्ट दुःखाय परस्य विद्यां ज्ञानं शिवं यत्तु तदध्यगीष्ट"
(बुद्धच० २, ३५)

"यत्र स्म मीयते ब्रह्म कैश्चित् कैश्चिन्न मीयते।
काले निमीयते सीमा न चाकाले प्रमीयते" (सौन्दर० १, १५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इन श्लोकों में भट्टि-जैसे परवर्ती श्रेण्य ग्रंथकारों की गन्ध आ रही है।

इन तर्कों के आधार पर छठी शताब्दी वाले कहरूर वाद की तरह पाँचवीं शताब्दीवाला गुप्तकालीन वाद भी धराशायी हो जाता है।

प्रथमशताब्दी (ई० पू०) वाला वाद—भारतीय विद्वान् प्रायः सभी प्रथम शताब्दी (ई० पू०) वाले वाद के समर्थक हैं। कवि के विक्रमादित्य से सम्बन्ध का तो कोई प्रत्याख्यान कर ही नहीं सकता, क्योंकि वह अन्तरङ्ग साक्ष्य से भलीभाँति सिद्ध ही है, किन्तु वे विक्रमादित्य आदिविक्रमादित्य ही थे, जो मालव देश के परमार-वंशीय राजा थे और जिनकी राजधानी उज्जयिनी थी। प्रथम शताब्दी ई० में वर्तमान गुणाढचकृत 'बृहत्-कथा' के रूपान्तर 'कथा-सरित्सागर' में वर्णित विक्रमादित्य वे ही प्रतीत होते हैं। सर्वप्रथम आक्रमण में शकों को उन्होंने ही परास्त किया था और विजय के उपलक्ष्य में ५७ ई० पू० अपने नाम का विक्रम संवत् चलाया था। उन्होंने ही म्लेच्छों का ध्वंस करके बौद्ध और जैन धर्मों को हटाकर वर्णाश्रम-धर्म का जीर्णोद्धार किया था। वे शिव के उपासक थे; उज्जैन में महाकाल शिव का मन्दिर उन्होंने ही बनवाया था। यही कारण है कि कालिदास की रचनाओं में शिव का तथा शिव की उपासना का अधिक उल्लेख है। इसके विपरीत गुप्तवंशीय सम्राट् वैष्णव थे और उनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी, न कि उज्जयिनी, अतः उज्जयिनी के महेन्द्रादित्य के पुत्र परमार-वंशीय विक्रमादित्य ही आदिविक्रमादित्य थे—यह आधुनिकतम ऐतिहासिक अनुसन्धानों द्वारा सिद्ध हो गया है। कालिदास उन्हीं आदिविक्रमादित्य के आश्रय में रहे थे। विक्रमोर्वशीय नाटक में 'इन्द्र' के स्थान में सर्वत्र 'महेन्द्र' शब्द देकर कवि ने अपने आश्रयदाता के पिता महेन्द्रादित्य के नाम को भी अमर बनाना चाहा। उज्जयिनी की जनता के समक्ष जब यह नाटक खेला गया होगा, तो जनता को 'विक्रम' और 'महेन्द्र' शब्दों का पुत्र और पिता की ओर संकेत समझने में कोई कठिनता नहीं

१—"दिष्टया महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्"

"प्रथमं पुत्रदर्शनेन विस्मृतास्मि। इदानीं महेन्द्रसंकीर्तनेन स्मारितः समयो मम हृदयमायासयति"

"रम्भे, उपनीयतां स्वयं महेन्द्रेण संभृतः कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेकः"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुई होगी और यह नाटक सम्भवतः महेन्द्रादित्य के राज्यकार्य से अवकाश-ग्रहण और विक्रमादित्य के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर खेला गया होगा। कालिदास का अपने रघुवंश में सूर्यवंशी राजाओं को कथा-नायक बनाने का कारण भी यही हो सकता है कि महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य उस राज-वंश से सम्बन्ध रखते हैं, जो आदित्य (सूर्य) से चला हुआ था। रघुवंश में दिलीप और उसके पुत्र रघु का वर्णन तथा कथा-सरित्सागर में आये हुए महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य का वर्णन परस्पर बहुत मिलते-जुलते हैं। इससे कालिदास उन्हीं आदि-विक्रमादित्य के सम-सामयिक प्रतीत होते हैं। मेघदूत में आया हुआ वत्सराज उदयन का संकेत तथा मालविकाग्निमित्र का अन्तरङ्ग साक्ष्य भी कवि को प्रथम-शताब्दी (ई० पू०) की ही ओर खींचते हैं। इसके अतिरिक्त प्रो० आप्टे महोदय शकुन्तला-नाटक से दो अन्तरङ्ग प्रमाण उद्धृत करते हैं; एक तो शकु० VI[1] में निस्सन्तान श्रेष्ठी धनदत्त की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति का उसकी विधवा को न मिलकर राज्य-अधिकार में चला जाना-जिससे यह सिद्ध होता है कि कवि के समय में विधवा का पति की सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होता था और ऐसा समय ई० पू० ही मिलता है जब कि मनु, आपस्तम्ब और वसिष्ठ स्मृतिकारों की ही तूती बोलती थी, और बृहस्पति, शङ्ख, लिखित तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियाँ नहीं लिखी गई थीं। दूसरा प्रमाण है शकु०[2] (vi) में अँगूठी चुराने के अपराध में वध-दण्ड, जो रत्न चुराये जाने पर विक्रमो०[3], (V १) में भी आता है यद्यपि चोर वहाँ पक्षी था। चोरी के लिये कठोर प्राण-दण्ड का विधान मनु और आपस्तम्ब का किया हुआ है, जो उत्तरोत्तर हल्का किया जाता हुआ बाद को बृहस्पति-स्मृति में अर्थ-दण्ड के साथ विकल्प-रूप में (optional) रह गया। इन दो घटनाओं से सिद्ध होता है कि कालिदास अवश्य बृहस्पति के पूर्वतन-

---

१—समुद्र-व्यवहारी ···· धनमित्रो नाम······विपन्नः अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसञ्चयः।

२—"जानुक, प्रस्फुरतो मम हस्तौ अस्य वधार्थं सुमनसः पिनद्धुम्।" "नार्हसि भावोऽकारणमारणं भावयितुम्।"

३—"आत्मनो वधमाहर्त्ता—" आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काल से सम्बन्ध रखते हैं और बृहस्पति को सर्वसम्मति से प्रथम शताब्दी (ई०) का माना गया है। चन्द्रगुप्त, 'विक्रमादित्य' के काल के चीनी यात्री फाहियान ने अपनी डायरी में चन्द्रगुप्त II के राज्यकानून-सम्बन्धी स्थिति के विषय में लिखा है कि "चन्द्रगुप्त के राज्य में कहीं भी प्राणदण्ड का नियम नहीं है। अपराधियों को अधिकतर जुर्माना ही होता है।" इसके अतिरिक्त कालिदास की भाषा और शैली भी मध्ययुगीय दण्डी, बाण, भवभूति आदि की तरह कृत्रिम, समास-बहुल और प्रयास-साध्य नहीं है और यह एक ऐसी बात है, जो कालिदास का काल उनसे ६ अथवा ७ शताब्दी पहले रखती है। कालिदास के कुछ अप्रसिद्ध प्रयोग भी, जो पाणिनि-नियमों को तोड़कर किये गये हैं, उस ही काल की ओर संकेत करते हैं। इन सब प्रमाणों और उपपत्तियों से यही सिद्ध होता है कि कालिदास का स्थितिकाल प्रथम शताब्दी (ई० पू०) है। पाश्चात्य विद्वानों में डा० पीटरसन भी इस ही मत के समर्थक हैं।

जन्मस्थल—जन्मकाल की तरह कालिदास के जन्म-स्थान पर भी मत–भेद पाया जाता है। भारत की भिन्न–भिन्न भूमियाँ अपने-अपने को इस 'बच्चे' की 'जननी' बनने का दावा करती हैं। कश्मीरी लोगों का कहना है कि कालिदास कश्मीर भूमि के थे, क्योंकि इनकी रचनाओं में हिमालय, उसमें होने वाले पदार्थ तथा केसर-पुष्प का वर्णन आता है। 'प्रत्यभिज्ञान' का पुनः पुनः प्रयोग करके कालिदास ने कश्मीर के प्रत्यभिज्ञान-शैवसम्प्रदाय की ओर ही संकेत किया है। बंगाल के विद्वान् कालिदास को काली माता की उपासनावाली दन्त-कथा का आश्रय लेकर कवि को बंगदेशीय कहते हैं, क्योंकि काली की उपासना का अधिकतर प्रचार बंग-देश में ही है। इसी तरह विदर्भ (बरार), मालव और यहाँ तक कि सिंहल की भूमि भी कवि की जन्म-दात्रियाँ बनने का दावा करती हैं, किन्तु 'बच्चा' अपने मुख से कुछ भी नहीं कहता कि अमुक उसकी जननी है; वह तो मुस्करा देता है केवल उस माँ की ओर जिसने उसे पाला-पोसा है और वह माँ उसकी उज्जयिनी है। उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य की राज-सभा में इनका जीवन व्यतीत हुआ-इस तथ्य के साथ-साथ इनके हृदय में अवन्ती देश (मालवा का भाग-विशेष) के प्रति, जिसकी राजधानी उज्जयिनी है, विशेष पक्षपात दृष्टगोचर होता है और उज्जयिनी के वर्णन में—विशेषतः मेघदूत में इन्होंने उसके प्रति जो पुत्र का सा अनुराग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिखलाया है, उससे हम इसी निष्कर्ष में पहुँचे हैं कि कालिदास उज्जयिनी में रहते थे।

कला—कालिदास की कृतियाँ जगत् के साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखती हैं। इनके सारे ग्रंथ—क्या तो महाकाव्य, क्या गीति-काव्य और क्या नाटक—कला की आलोचनात्मक किसी भी कसौटी पर कसे जाने पर सोने की तरह ऐसे खरे और उत्कृष्ट निकलते हैं कि क्या कहें। भाव, कल्पना, आदर्श और भाषा—इन आधार-स्तम्भों पर खड़ा हुआ साहित्यकला का जो विशाल भव्य भवन इनकी रचनाओं में मिलता है, उसके किसी भी प्रकोष्ठ में या प्रकोष्ठकोण में चले जाइए—सभी जगह एक-सी अनुपम रचना-चातुरी, एक-सी अतुल सौन्दर्यच्छटा अंकित मिलेगी, जो दर्शक-गण को आनन्द-मुग्ध कर देती है। इनकी रचनाओं का भाव–तत्त्व, जिसे साहित्यिक परिभाषा में रस अथवा काव्यात्मा कहते हैं, कल्पना की विविध उड़ाने तथा उदात्त आदर्शों से सुन्दर समन्वय पाकर अपना ऐसा अच्छा परिपाक दिखाता है जिससे इनकी कला सर्वश्रेष्ठ बन जाती है। साहित्यिक दृष्टि से सर्व-श्रेष्ठ होने के साथ-साथ वे रचनायें पाठकों के आगे अपने में प्रतिबिम्बित तत्कालीन समूचे भारत को भी खड़ा कर देती हैं। महाकवि शेक्सपियर के शब्दों में 'कवि-चक्षु अपने भावावेश के क्षण में आकाश से पृथिवी तक और पृथिवी से आकाश तक घूमती है और ज्यों ही 'कल्पना' अज्ञात वस्तुएँ गढ़ने लगती है 'कवि लेखनी' उन्हें साकार रूप में परिणत कर स्थानीय वसति और नाम दे देती है। कालिदास का अन्तर्वर्ती कवि भी भारतीय जीवन के अन्तस्तल में बैठ कर अतीत के गर्भ में से कुछ टेढ़ी-मेढ़ी धुंधली-सी रेखाओं को निकालता है और फिर उनमें कला की कूची से विविध रंग भर कर ऐसे उत्कृष्ट और सजीव चित्र हमारे सामने खड़ा करता है जिनमें समूची भारतीयता मुखरित हो जाती है। इनके रघुवंश के चरित-नायकों में से दिलीप की पुत्र-प्राप्ति में विवाह की परिनिष्ठा, गो-सेवा एवं गो-सेवार्थ प्राणार्पण तक की भावना, रघु की इन्द्र से भी लोहा लेने की विक्रांत भावना, दिग्विजय एवं अन्ततोगत्वा सर्वस्व-दक्षिण याग में सर्वस्व-दान; इसी तरह अज, दशरथ, राम आदि के उदात्त जीवन-चित्र, तथा कुमारसम्भव अथवा शाकुन्तलादि नाटकों में—क्या तो नायक, क्या नायिका और क्या अन्य पात्र—सभी आर्य-संस्कृति के उन उच्च आदर्शों के निदर्शन हैं जो संसार में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्यत्र कहीं ढूंढे भी प्राप्त नहीं हो सकते। वास्तव में कालिदास भारत के सच्चे प्रतिनिधि कवि हैं।

प्रकृति-प्रेम—कला में सौन्दर्याधान करने के लिए एक सफल चित्रकार की तरह कवि प्रकृति को पृष्ठ-भूमि बनाता है, इसी लिए कालिदास भी प्रकृति के पक्के पुजारी बनकर अन्तर्जगत् के सौन्दर्य को बहिर्जगत् में भी देखते हुए दोनों में समन्वय ही नहीं, प्रत्युत तादात्म्य भी स्थापित करना चाहते हैं। इनकी प्रकृति जड़प्रकृति नहीं। इनकी दृष्टि में प्रकृति का प्रत्येक अंश—क्या तो बड़ा-सा-बड़ा पर्वत और क्या छोटा-सा छोटा पुष्प—अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखे हुए ऐसा ही चेतन है जैसा कि कोई मानव, दानव या देव। चेतनों की तरह ही उनमें भी सुख-दुख का संवेदन और आशा-निराशा एवं भय-हर्ष की अनुभूति है। एक ओर इनके ऋतुसंहार में मानव-हृदय के उद्दाम प्रणय के थपेड़े सारी प्रकृति में प्रतिफलित हुए मिलते हैं, तो दूसरी ओर शकुन्तला के पति-गृह जाने के अवसर पर कोई वृक्ष 'क्षौम' देने लगता है, तो कोई 'लाक्षारस' और उसके चले जाने पर गृह-ललनाओं की भांति लताएँ भी 'पाण्डुपत्रों' के आँसू गिराने लग जाती हैं तथा मृगियाँ भी 'दर्भ-कवल 'उगल' देती हैं जैसे कि शकुन्तला-वृक्षलतादि सबके सब परस्पर सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए एक ही विशाल परिवार के सदस्य हों। कवि को विश्व की अनेकता में यह एकता का दिव्य दर्शन भारतीय ऐकात्म्यवाद की पृष्ठ-भूमि पर हुआ प्रतीत होता है।

कालिदास के प्रकृति-वीक्षण के सम्बन्ध में एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि यद्यपि इनकी निशित दृष्टि मानव-प्रकृति की तरह बाह्य प्रकृति के भी अन्तरतम स्तर में घुस जाती थी, तथापि इन्होंने प्रकृति-वर्णन में उसके कान्त, कोमल एवं मधुर पहलू को ही चित्रित किया है, उदग्र, भीषण एवं भद्दे पहलू को नहीं। ये प्रकृति को अधिकतर एक नायिका के रूप में देखते हैं, जिसमें सरसता, सहृदयता और प्रेम का अनवच्छिन्न स्रोत फूट रहा हो। और जो दुःखाकुल मानव हृदय को आशा और सान्त्वना का सन्देश देती हो। इनके प्रकृति-चित्रण में हमें कहीं तो वायु के झंकोरों से फड़फड़ाते किसलय-करों से ताल देते तथा भ्रमर-झंकार से मधुर संगीत छेड़े हुए लता-नर्तकियाँ नाच रही हैं, कहीं चन्द्र अपनी किरण-रूपी अंगुलियों से रजनी के बिखरे हुए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्धकार-रूपी केशों को हटाकर उसके प्रदोषकाल-रूपी मुख को चूम रहा है। मेघदूत तो सारा का सारा ही प्रकृति में नायिकात्व की कोमल भावना का एक बृहत् निदर्शन है। हमारे विचार से कालिदास तथा परवर्ती कवियों का प्रकृति में यह मानवता का आरोप ही बाद को हिन्दी में छायावाद का बीज बना है।

शैली—संस्कृत-काव्यों अथवा नाटकों में कालिदास की शैली अपना एक विशेष स्थान रखती है। इन्हें जो विश्व–प्रतिष्ठा मिली है, उसका बहुत कुछ-श्रेय इनकी शैली को है। कैसा भी नीरस और अशिष्ट कथानक अथवा घटना क्यों न हो, उसे ये अपने कल्पना-प्रसूत अद्भुत सृष्टि-नैपुण्य-द्वारा ऐसा भव्य मार्मिक और चमत्कृति-पूर्ण बना देते हैं कि वह देखते ही बनता है। निस्संदेह इतिहास के गर्तों में से इन्होंने कथानक लिये हैं, किन्तु केवल कङ्काल-मात्र ही। मांस-रुधिर, नख-शिख, वेशभूषा और अन्त में रस का प्राण फूंकते हुए उन्हें सजीव बनाकर सदा के लिए अमर कर देना—ये सब कालिदास की अपनी ही चीजें हैं।

कालिदास की लिखने के लिए वैदर्भी शैली है और दण्डी के—'तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्' इस कथनानुसार इस शैली के शोधन का सर्व-प्रथम श्रेय इन्हें ही है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ' ने वैदर्भी रीति का निम्नलिखित लक्षण दिया है :—

माधुर्य-व्यञ्जकैर्वर्णैं रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥ (ix 3)

अर्थात् ऐसी ललितपद-रचना, जिसमें वर्ण माधुर्य उगल रहे हों, और वृत्ति (समास) न हो अथवा यदि हो भी तो छोटी ही, वैदर्भी रीति होती है। इसके अनुसार भाषा में क्लिष्टता, प्रयास-साध्यता, एवं कृत्रिमता सर्वथा हेय हैं। भाषा ऐसी ललित, स्वाभाविक तथा सरल होनी चाहिए कि सुनते ही कानों में अमृत घोलकर तत्काल अर्थबोध करा दे। ये सब बातें हमें कालिदास की सभी रचनाओं में प्राप्त होती हैं और इनकी यह ललित, परिष्कृत तथा प्रसादगुण-पूर्ण शैली ही इनको सर्वप्रिय बनाने में अधिक सहायक सिद्ध हुई है।

मानव-हृदय के भावों को व्यक्त करने का प्रकार भी कालिदास का अनोखा ही है। ये शब्दों की व्यञ्जना-शक्ति पर अधिक बल देते हैं, अभिधा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शक्ति पर कम। इस कारण इनके भाव सदा व्यङ्ग्य ही रहते हैं, वाच्य नहीं होते और भावों की यह व्यङ्ग्यता ही काव्य-जगत् की सर्वश्रेष्ठ विभूति है, जो इनकी सभी कृतियों में ओत प्रोत हुई मिलती है। एक छोटे से उदाहरण के रूप में—'[1]कुमारसम्भव में महादेव के साथ अपने विवाह की बात सुनकर पिता के आगे पार्वती लजा गई, किन्तु कवि 'लजा गई' क्यों कहता, उसे तो 'मुख नीचे किये हुए अपने हाथ पर के कमल की पंखुड़ियों को गिनने लगी' कहकर व्यञ्जना द्वारा ही लज्जा-भाव का मार्मिक चित्र खींचना था। भावों की व्यङ्ग्यता के साथ-साथ कवि उनको अपने ठोस और अखण्ड रूप में ही रखना पसन्द करता है, उनकी 'चीरफाड़' नहीं करता। दुष्यन्त प्रेम से आहत-हृदय होने के अनन्तर जब फिर शकुन्तला को देखते हैं, तो उस समय उन्हें अपार आनन्द होता है। कालिदास ने—'अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम्' कह कर अकेले 'निर्वाणम्' पद से ही उनके अनिर्वचनीय आनन्द का बोध करा दिया है। इसके विपरीत भवभूति को देखिये कि वह वैसे ही आनन्द का कैसा विश्लेषण करता है जब कि सीता को दोबारा घर से निकाल देने के अनन्तर एक दिन वन में राम की उससे भेंट होती है तो उसके कर-स्पर्श का उनको ऐसा आनंद होता है कि 'जो सम्भवतः[2] कल्पवृक्ष के किसलयों से निचोड़ा हुआ रस हो अथवा चन्द्रमा के किरण समूह को दबाकर निकाला गया द्रव हो, अथवा विरह की आग से जले हुए प्राणों को शीतल बनाने के लिए हृदय पर सञ्जीवनी औषधि का लेप हो।' स्पष्ट है कि भाव-व्यञ्जन में कालिदास ने तो अधिकतर संश्लेषणात्मक शैली ही अपनाई है, विश्लेषणात्मक नहीं।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में अलङ्कारों का भी स्थान-स्थान में प्रयोग किया है, जो नितान्त दर्शनीय है। इनके अलंकार स्वाभाविक रूप में ही आते हैं और इनकी कविता-कामिनी के सौंदर्य में निरन्तर वृद्धि ही करते हैं। कहीं-कहीं अनुप्रास आदि शब्दालंकार भी हैं तो सही, किन्तु बहुत कम और वही जो अनायास ही घुस आये हैं। बलात् अलंकारों को लादने की चेष्टा कवि ने कभी नहीं की है, क्योंकि उससे रस का स्वाद ही विगड़ जाता है। इन्होंने अपनी कृतियों में अर्थालंकारों को अधिक महत्त्व दिया है और उनमें भी

१—६.८४ २—उत्तर० ३.२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषत: उपमा को, जिसके कारण ही इनकी जगत् में—'उपमा कालिदासस्य' यह ख्याति हुई है। वास्तव में देखा जाय, तो उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की मूलभित्ति उपमा ही है और इसी कारण कवि को वह अधिक रुची। कालिदास की उपमायें बड़ी स्वाभाविक, सरस तथा मार्मिक होती हैं, अतएव वे जगत् में अद्वितीय हैं। जिस बात को बतलाने के लिये बहुत शब्द-विस्तार अपेक्षित होता है, वह इनकी एक छोटी सी उपमा द्वारा बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण के रूप में—'मार्ग में आये हुए किसी चट्टान से टकराती हुई नदी की तरह पार्वती महादेव को देखकर न तो जा ही सकी और न ठहर ही सकी', 'नगर की महिलायें आनन्द भरी-आँखों से राजकुमार का इस प्रकार अनुसरण कर रही थीं जिस तरह कि रातें शीतकाल के चमकते हुए तारों से ध्रुव का अनुसरण करती हैं', 'राजा लोग बाहरी प्रसन्नता में हृदय की ईर्ष्या को छिपाये हुए थे जैसे कि वाहर की शान्त गहराई में ग्राहों को छिपाई हुई झीलें', 'मृत्यु-द्वार-सा बाण का घाव'—आदि कैसी सरस एवं मार्मिक उपमाएँ हैं। उपमा के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास—आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है। स्वभावोक्ति में तो ये बहुत ही निपुण हैं। मेघदूत में उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अर्थान्तरन्यास का अच्छा निदर्शन है।

चरित्र-चित्रण की शैली भी कालिदास की अनूठी है। नपेतुले शब्दों में ये अपने पात्रों का व्यक्तित्व तत्क्षण ही पाठकों के मानस-चक्षु के आगे खड़ा कर देते हैं। शकुन्तला को 'तनुगात्री' तथा विरह-पीड़ित यक्ष-पत्नी को 'शिशिर-मथिता पद्मिनीव' कहते ही उन दोनों का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है। ललित पद-विन्यास, प्रचुर प्रसादगुण, मधुर भाव-व्यञ्जना, सरस अलंकार तथा संजीव चरित्र-चित्रण वाली शैली के कारण ही कालिदास को विश्वप्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। इनकी मधुर सूक्तियों से मुग्ध होकर ही बाण ने विश्व को यह चुनौती दी थी :—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ?

अर्थात्—कालिदास की आम्र-मञ्जरियों की तरह सरस और मधुर सूक्तियों को सुन कर किसके हृदय में आनन्द नहीं पैदा होता ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने भी इस महाकवि की निम्नलिखित शब्दों में वन्दना की है—

"चिरकाल रसाल ही रहा जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा—
जय हो उस कालिदास की कविता-केलि कला-विलास की ।

प्रेम—कालिदास शृंगार-रस के कवि थे । इन्होंने मानव-हृदय की प्रेमवृत्ति को लेकर ही अपनी अधिकतर कृतियों में उसकी व्याख्या की है । साहित्यिकों के इस कथन पर कि शृंगार सब रसों का राजा है, बहुत कुछ सत्यता है, क्योंकि प्रेम मानव-हृदय के भाव-जगत् में महत्त्व-पूर्ण स्थान रखता है; वह उसका अधिपति है; इसीलिए कालिदास के अन्तर्वर्ती 'कलाकार' ने जगत् को 'प्रेमदृष्टि' से देखा और उसकी सारी रचनायें प्रेम-प्रधान हो गईं । कवि के ऋतुसंहार से लेकर शाकुन्तल तक सारे ग्रन्थ प्रेम के क्रमिक विकास की एक विस्तृत कहानी हैं । ऋतुसंहार में प्राकृतिक सौंदर्य से अनुगत युवा-युवतियों की प्रेम-सरिता तरंगें मार रही हैं और यही बात मालविकाग्निमित्र में मालविका और अग्निमित्र के कथानक में भी मिलती है, किन्तु इन दोनों रचनाओं में यह प्रेम केवल शारीरिक सौंदर्य एवं उसके आकर्षणों पर अवलम्बित तथा ऐन्द्रिक परितृप्ति में परिनिष्ठित हुआ अपने भौतिक पहलू को, अपने प्रारम्भिक वासना-रूप को ही व्यक्त करता है; उससे आगे नहीं जाता । वास्तव में कवि ने इन दोनों ग्रन्थों में प्रेम की पृष्ठभूमि बतलाकर प्रेम का उपक्रम मात्र किया है । कुमारसम्भव और विक्रमोर्वशी हमें प्रेम-विकास की दिशा में दूसरे सोपान पर चढ़ाते हैं । उनमें कवि ने प्रेम में पर्याप्त सुधार किया है। भौतिकता के दलदल में से उठाकर उसे आध्यात्मिकता के क्षेत्र पर प्रतिष्ठापित किया—एक ओर तो वासना की भूखी उर्वशी को प्रायश्चित्त-स्वरूप लता में परिवर्तित करके और दूसरी ओर निज सौंदर्य पर गर्वोन्मत्त पार्वती को तपोवन में उतार करके । मेघदूत तो सारा एक विरहानल-कुण्ड ही है, जिसमें कवि द्वारा यक्ष का प्रेम वासना-मल दूर करने के लिये खूब फूका जा रहा है । अपनी अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कृति शाकुन्तल में कालिदास ने भौतिक रूप से प्रारम्भ हुए प्रेम में वासना-कर्दम को क्रमशः धोते धोते अपने आध्यात्मिक रूप में परिनिष्ठित करवाकर उसे दिव्य और अमर बना दिया और यही भारतीय संस्कृति का आदर्श-प्रेम है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कतिपय पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् कवि की रचनाओं में कामुकता का आरोप लगाकर उनसे नाक-भौं सिकोड़ते हैं, किन्तु वे भ्रम में हैं। कालिदास कर्त्तव्य-पथ से गिरा देने वाले उच्छृङ्खल, भोग-परक प्रेम के कभी पक्षपाती नहीं हैं। ऐसे प्रेम को तो इन्होंने मेघदूत में स्वामी के शाप से, कुमारसम्भव में महादेव के रोष से और शाकुन्तल में दुर्वासा ऋषि के शाप से फूक ही डाला। एमर्सन के शब्दों में—कवि उद्धार कर देने वाले देव होते हैं। वे हमारी भावनाओं में प्रवेश करके उन्हें परिष्कृत करते हुए समाज को उठाते हैं, गिराते नहीं। इसलिए कालिदास की रचनाओं में जहाँ कला के 'सत्यम्' और 'सुन्दरम्' अंश हैं, वहाँ उनके साथ-साथ 'शिवम्' अंश भी पूरा-पूरा है।

काव्य और उसके भेद—रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है, जो अभिनीत होकर देखा जा सके। इसके भीतर शाकुन्तल आदि नाटक आते हैं। श्रव्य काव्य पढ़ा और सुना ही जा सकता है। इसके तीन भेद होते हैं। पद्य, गद्य और चम्पू (गद्य-पद्य-मिश्रित)। पद्य काव्य भी तीन प्रकार के हैं—महाकाव्य, खण्ड-काव्य और मुक्त-काव्य।

महाकाव्य—यह एक विस्तृत प्रबंध-काव्य होता है, इसमें किसी प्रख्यात राजा या एक ही वंश के अनेक राजाओं का पूरा-पूरा जीवन-वृत्तान्त होता है। नगरों, ऋतुओं, सूर्य-चन्द्रोदयों, वन-विहार, जल-क्रीड़ा, यज्ञ, यात्रा आदि के वर्णन करने का भी नियम है। शृंगार, वीर अथवा शान्त— इनमें से कोई एक रस प्रधान रहता है और दूसरे उसके अङ्ग। सारा कथानक सर्गों में विभक्त रहता है। कुमारसम्भव और रघुवंश कालिदास के महाकाव्य हैं।

खण्डकाव्य—यह आकार में महाकाव्य से बहुत छोटा होता है। इसको गीतिकाव्य भी कहते हैं। यह महाकाव्य का एक खण्ड ही होता है, क्योंकि इसमें समूचा जीवन-वृत्तान्त नहीं होता है, प्रत्युत जीवन के किसी एक ही पहलू या एक ही वृत्ति—जैसे प्रेम, धर्म या नीति की व्याख्या होती है। जो भेद एक उद्यान और उसमें होने वाले एक पौधे में है, वही भेद महाकाव्य और खण्डकाव्य में है।

मेघदूत—यह संस्कृत-साहित्य के गीति-काव्यों में सर्व प्रथम गिना जाता है। कालिदास की परिपक्व कला, कल्पना की ऊँची उड़ान, परिष्कृत माधुरी-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भरी भाषा विन्‍य की धारावाहिक गति, एवं गीति की एकतानता का यह एक ऐसा अद्भुत नमूना है जिसकी टक्कर का विश्वभर में दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। मेघदूत 'मन्दाक्रान्ता' में लिखा हुआ १२१ पद्यों का छोटा सा काव्य है। इसमें कुबेर के शाप से प्रिया-वियुक्त हुए यक्ष के व्यथित हृदय की वेदना-भरी कहानी है, हृदय को द्रवित कर देने वाली 'विप्रलम्भ' की एक करुण-गीतिका है। यह दो भागों में विभक्त है—पूर्वमेघ और उत्तरमेघ।

पूर्वमेघ—प्रिया के प्रति अन्ध-प्रेम होने के कारण अपने कर्त्तव्य से प्रमाद करने वाला एक यक्ष यक्षेश्वर कुबेर द्वारा शाप के रूप में वर्ष भर के लिये अलकापुरी से निकाला जाता है। बेचारे ने विन्ध्याचल में रामगिरि पर डेरा डाला और वहीं आश्रमों में रहने लगा। एक दिन उसे आषाढ़ मास के आरम्भ में पहाड़ की चोटी पर उमड़ा हुआ बादल दिखाई दिया; तत्काल उसका हृदय भर आता है। मेघ के दिखाई देने पर सुखी मनुष्य का भी चित्त डगमगा जाता है, फिर उसका तो कहना ही क्या, जो प्रिया को गले लगाना चाहता है, किन्तु दूर पड़ा हुआ है। यक्ष ने फिर मिलने की आशा में वियोग के दिनों को गिनती हुई अपनी प्रिया को मेघ द्वारा कुशल समाचार पहुँचाना चाहा, अतएव पुष्पादिक से मेघ का स्वागत करके प्रार्थना करता है :—हे भाई! सन्तप्तों के तुम ही एक-मात्र सहारे हो; तुम्हें उत्तरदिशा की ओर जाना है; वहाँ अलकापुरी में जाकर एक छोटा-सा सन्देश मेरी प्रिया को पहुँचा देना। देखो, कैसी मन्द-मन्द पवन चल रही है; चातक पक्षी तुम्हारी बाईं ओर होकर बोल रहा है, बगुलों की पंक्तियाँ आकाश में उड़ रही हैं और साथ ही बाम्बी से यह इन्द्रधनुष भी प्रकट हो गया है। ये सब तुम्हारी यात्रा के लिए शुभ शकुन हैं, किन्तु मैं सन्देश कहूँ और तुम प्रस्थित हो—इससे पूर्व मैं तुम्हें मार्ग बता देना चाहता हूँ—ग्रामीण युवतियों की भोली-भाली आनन्द-भरी आँखों से पिये जाते हुये तुम माल को पार करके आम्रकूट पहुँचना। वहाँ से कुछ परे तुम्हें विन्ध्याचल की उन्नतावनत तलहटी में विभिन्न धारायें बनाकर बहती हुई रेवा नदी मिलेगी। वहाँ से तुम दशार्ण देश को जाना, जहाँ जामुन के वन पके हुए फलों से काले बने होंगे। उसकी राजधानी विदिशा में प्रवेश करके तुम प्रिया के भ्रूभङ्ग-युक्त मुख की तरह चञ्चल तरंगोंवाली वेत्रवती का जल पीना और नीचै नामवाले पर्वत पर विश्राम लेना। वहाँ से चलकर यद्यपि तुम्हारे लिए मार्ग कुछ टेढ़ा पड़ेगा, तो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी उज्जयिनी जाये बिना न रहना, क्योंकि वह ऐसी सुन्दर नगरी है मानो स्वर्ग की ही एक टुकड़ी भू पर लायी हुई हो। यदि वहाँ अटारियों में रहनेवाली ललनाओं की बिजली की चमक से भीत एवं चञ्चल चितवनों का स्वाद नहीं लोगे, तो तुम्हारी आँखें एक महान् लाभ से वंचित ही रहेंगी। अतः निर्विन्ध्या को पार क के तुम अवन्ति देश में प्रविष्ट होना और फिर तुम उज्जयिनी पहुँच जाओगे। वहाँ बाजार में विक्रयार्थ सजा कर रखे हुए हीरे, पन्ने, मोती आदि के ढेर के ढेर देखकर तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा मानो समुद्र में अब पानी के अतिरिक्त और कुछ रहा ही नहीं। पास ही में महाकाल शिव का मन्दिर है। वहाँ तुम शिवजी की सायंकालीन पूजा के समय जाना जिससे कि गर्ज कर तुम नगाड़े का काम दे सको। वह रात उज्जयिनी में बिता कर प्रातः फिर चल पड़ना और गम्भीरा को पार करके देवगिरि को जाना। वहाँ स्कन्द रहते हैं। पुष्प-मेघ बनकर उनपर फूलों की वर्षा करना। तदनन्तर तुम चर्मण्वती नदी प्राप्त करोगे। उससे परे दशपुर आयेगा, जहाँ कि स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य के लिये प्रख्यात हैं। वहाँ से तुम कुरुक्षेत्र पहुँचोगे, जहाँ अर्जुन ने क्षत्रियों के ऊपर इस तरह बाण बरसाये थे जिस तरह तुम कमलों पर बौछार बरसाते हो। वहाँ सरस्वती का जल पीना और आगे कनखल चले जाना, जहाँ परम-पावनी गङ्गा मैदान में बहने के लिये हिमालय से उतरती है। उसका भी जल पीकर जब तुम आगे बढ़ोगे, तो तुम हिमालय पहुँच जाओगे। यहाँ देवदारु वृक्षों के घने वन के वन मिलेंगे। कहीं कस्तूरी मृगों की सुगन्धि आती रहेगी और कहीं शरभ तुम्हारी गर्जना सुनकर तुम से टक्कर लेने के लिए आकाश में उछलेंगे। वहाँ तुम्हें मीठे स्वर से गाती हुई किन्नरियाँ भी दिखाई देंगी। वायु से भरे हुए बाँस अपनी बाँसुरी बजा रहे होंगे, तो तुम भी गरज कर मृदंग का काम करना। इस तरह हिमालय की सब विशेषताओं को देखते-देखते चलो; तब विश्राम लेने के लिए तुम उसकी किसी चोटी पर बैठ जाना। फिर वहाँ से उत्तर की ओर चलकर क्रौञ्च-रन्ध्र से तुम कैलास पहुँच जाओगे, जहाँ शिवजी रहते हैं। उस पर्वत की गोद में बसी हुई अलकापुरी को तुम उसके ऊँचे-ऊँचे प्रासादों से तत्काल पहचान लोगे।

उत्तरमेघ—भय्या मेघ, अलकापुरी के प्रासादों का क्या वर्णन करूँ। उन्हें तुम अपनी तरह ही आकाश से बातें करते पाओगे। उनके फर्श मणियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के हैं और दीवारें विविध चित्रों से सज्जित एवं रत्नों से जटित हैं। वहाँ ऐसी-ऐसी सुन्दरियां हैं, जो तुमने कभी देखी ही न होंगी। वृक्ष बारह मास फलते रहते हैं। प्रत्येक साँझ नित्यप्रति चाँदनी से उज्ज्वल हुई रहती है। वहाँ आँसू गिरते हैं, तो आनन्द में ही; ताप होता है, तो काम का ही और कलह होता है, तो प्रेम का ही। यौवन ही एकमात्र अवस्था है; बुढ़ापा नहीं। गृहों में सब प्रकार की विभूतियाँ और सुख-सामग्री नित्य उपस्थित रहती है। वसन-भूषण आदि जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है, कल्पवृक्ष तत्काल पूरी कर देता है। अभिप्राय यह कि वहां सर्वत्र प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है। इसी नगरी में कुबेर के भवन से उत्तर की ओर मेरा गृह है, जिसका विविध-रत्न-जटित बहिर्द्वार तुम्हें दूर से ही इन्द्रधनुष-सा चमकता हुआ दृष्टिगोचर होगा। उसके भीतर एक मन्दार वृक्ष है, जिसे मेरी प्रिया ने पाल रखा है। पास ही एक बावड़ी है, जिसकी सीढ़ियाँ मरकत-मणियों से निर्मित हैं और जिसके एक किनारे पर तुम्हारे जैसा ही एक क्रीडा-पर्वत है। उद्यान में एक रक्ताशोक और एक बकुल वृक्ष है। इन सब चिह्नों तथा द्वार पर चित्रित 'शंख' और 'पद्म' से मेरी अनुपस्थिति के कारण सूने-से पड़े हुए मेरे घर को तुम तत्काल पहिचान लोगे। भीतर तुम्हें युवतियों में ब्रह्मा की आदि सृष्टि-सी एक सुन्दरी दिखलाई देगी, जो शरीर से दुबली, कमर से पतली और स्तनों से झुकी हुई होगी और जिसकी आँखें तो डरी हुई हिरनियों की तरह चञ्चल होंगी, किन्तु चाल नितम्ब-भार के कारण अलसाई-सी होगी, उसे मेरी पत्नी समझना। वह चक्रवाकी की तरह अकेली है, क्योंकि उसका सहचर मैं दूर पड़ा हुआ हूँ। मेरे वियोग के दुःख में बेचारी तुषार-पात से मारी हुई पद्मिनी की तरह कुछ की कुछ हो गई होगी। उसे तुम कभी तो मेरा चित्र बनाने का विफल प्रयत्न करती हुई पाओगे और कभी गोद में वीणा रखकर मेरे नाम की गीतिका द्वारा व्यर्थ मनोविनोद में लगी हुई देखोगे। कभी वह मैना से बात करती होगी—"ओ मीठा बोलनेवाली, क्या तुझे भी कभी अपने स्वामी की याद आती है? उनके लिये तू बड़ी प्यारी थी।" कभी वह वियोग के शेष महीनों को देहली पर रखे हुए पुष्पों से गिनती होगी। तुम पहले तो—मैं तुम्हारे पति का मित्र हूँ—इस प्रकार अपना परिचय देना और तदनन्तर मेरा यह संदेश कहना—

'प्रिये, में प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, भय-भीत हुई मृगियों की दृष्टि में तुम्हारे चितवन की, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख-सौन्दर्य की, मयूरों के पुच्छों में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तुम्हारे केशपाश की श्रौर नदियों की तरंगों में तुम्हारे भ्रू-विलास की कल्पना करता रहता हूँ, किन्तु बड़ा दुख है कि उनमें से किसी में भी तुम्हारे श्रंगों की समता नहीं मिलती। देखो हृदय में कितनी ही आशायें रखे हुए मैं भी तो अकेला इन वियोग की घड़ियों को किसी तरह काट ही रहा हूँ; अतः श्रो सजनि, तुम निराश न होना। भला सोचो तो सही कि निरन्तर सुख ही सुख या दुख ही दुख क्या कभी किसी को मिला है? भाग्य का चक्र कभी तो ऊपर चला जाता है श्रौर कभी नीचे आ जाता है। अब मेरे शाप के समाप्त होने के लिए केवल चार महीने शेष हैं; इन्हें श्राँख मीचकर सह लो श्रौर फिर हम दोनों शरद् की चाँदनी रातों में वियोग के कारण बढ़ी हुई उन-उन इच्छाश्रों को अच्छी तरह पूरी कर लेंगे।"

यह सन्देश देकर अन्त में यक्ष मेघ से बोला–"भैया, यह मेरा कार्य–चाहे मित्रता के नाते बोलो चाहे मुझ दुखी के प्रति दया के नाते बोलो—किसी तरह कर करा के बाद को जहां तुम्हारी इच्छा हो चले जाना। ईश्वर करे तुम्हारा मेरी तरह बिजली से कभी वियोग न हो–यही मेरी तुम्हारे लिए कामना है। अच्छा, जाश्रो, नमस्कार।"

मेघदूत का उद्गम–कुमारसम्भव श्रौर रघुवंश की तरह मेघदूत किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आधार पर टिका हुआ नहीं है। यह तो निरा कल्पना-प्रसूत ही है। मेघ को दूत बनाकर यक्ष की पत्नी को संदेश भेजने की बात संस्कृत-साहित्य में बिलकुल नयी है। कुछ आलोचकों का विचार है कि यह ग्रंथ कालिदास के व्यक्तिगत जीवन में घटी हुई किसी वियोग-घटना पर आधारित है। सम्भवतः किसी कारण-वश कवि को अपनी प्रिया से बिछुड़ कर जाना पड़ा हो श्रौर वियोग की वह आप-बीती वेदना ही मेघदूत के रूप में अभिव्यक्त हुई हो। श्री हरिनाथ महोदय का कहना है कि "कालिदास से पूर्व ही चीन के एक कवि ह्यू-कान् (Hsiu Kan) (२०० ई०) ने मेघ को दूत बनाकर भेजने की कल्पना कर ली थी", किंतु कालिदास के जन्मकाल-सम्बन्धी पांचवीं शताब्दीवाले वाद के खण्डन हो जाने से यह बात भी स्वयं खण्डित हो जाती है। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ मेघदूत की टीका में-'सीतां प्रति रामस्य हनुमत्सं देशं मनसि निधाय मेघदूत-संदेशं कविः कृतवानित्याहुः' कहकर वाल्मीकि-रामायण में आई हुई राम का हनुमान् द्वारा सीता को संदेश पहुँचानेवाली घटना को मेघदूत का बीज बतलाते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और 'आहुः' कहकर यह भी द्योतित करते हैं कि उनके समय में मेघदूत-विषयक यह धारणा बहुप्रचलित थी। इसमें संदेह नहीं कि मेघदूत में 'जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु रामगिर्याश्रमेषु' 'रघुपतिपदैरङ्कितम्' 'दशमुखोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः' 'इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा' इत्यादि पंक्तियों पर राम के कथानक की छाप अवश्य पड़ी हुई है; साथ ही मेघदूत तथा रामायण का वर्षाऋतु-वर्णन और कतिपय अन्यान्य बातें भी बहुत कुछ समान ही हैं, सम्भव है कि कालिदास को वाल्मीकि से थोड़ी-बहुत भाव-प्रेरणा मिली हो जैसे कि रघुवंशादि में भी मिली है, किन्तु निर्माण की दृष्टि से मेघदूत की सारी वस्तुएँ कालिदास की अपनी ही हैं, जिससे इस ग्रंथ की मौलिकता पर कोई आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। निस्सन्देह दूतकाव्यों की परम्परा चलाने का आदि श्रेय कालिदास को ही है।

मेघदूत की विशेषता—पीछे कह आये हैं कि कालिदास का मेघदूत गीतिकाव्यों का चूड़ामणि है। साहित्यिक जगत् में जो ख्याति कवि को रघुवंश और शकुन्तला ने प्रदान की है, मेघदूत ने भी उससे किसी तरह भी कम ख्याति प्रदान नहीं की। विद्वानों की तो यहाँ तक सम्मति है कि यदि कालिदास रघुवंश, शाकुन्तल को न लिखकर केवल मेघदूत को ही लिखते, तो भी संसार इन्हें प्रकाण्ड महाकवियों में ही गिनता। कल्पना का विविध विलास, भावों की कोमल अभिव्यञ्जना तथा माधुर्य का सतत प्रवाह जो हमें इस रचना में मिलता है, वह अन्यत्र कहाँ? यक्ष तो केवल माध्यम अथवा निमित्त-मात्र है। वास्तव में विरह-पीड़ित मानव का समूचा अन्तर्जगत्—क्या तो आशाएँ, क्या निराशाएँ, क्या हर्ष और क्या विषाद—हमारी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। मेघदूत के प्रत्येक पद्य के शब्द-शब्द और अक्षर-अक्षर में विरह-व्यथित हृदय की गहरी आह और सूक्ष्म धड़कन सुनाई देती है। यहां तक कि पर्वत, नदियाँ, नगरियाँ, ग्राम एवं ग्राम-भूमियाँ आदि सारी बाह्य प्रकृति भी सहानुभूति-पूर्ण होकर अन्तर्जगत् के साथ अपनी एकता स्थापित करती हुई स्वयं भी विरह की आग उगल रही है। पूर्वमेघ तो प्रायः प्रकृति के ही चित्रों का एक विशाल संग्रह है। सर्वप्रथम प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण अंश मेघ ही कभी तो 'चिर-विरह के कारण गर्म-गर्म आँसू गिराते हुए अपने प्रिय-सखा शैल को गले लगाता हुआ', कभी 'किनारे के वृक्षों से गिरे हुए पुराने पत्तों के रूप में विरह से पीली निर्विन्ध्या की कृशता को दूर करता हुआ' कभी 'मछली की किलोल के रूप में गम्भीरा के चञ्चल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चितवन को विफल न जाने देता हुआ' चित्रित हुआ है। कहीं प्रिय–समागम के सुख-लोभ से बगुलियाँ पंक्ति बांध कर आकाश में उड़ रही हैं, 'शिलीन्ध्रों' से रोमाञ्चित पृथिवी जुती जाती हुई प्रथम वृष्टि के कारण महक छोड़ रही है, कहीं चौकड़ी भरती हुई मृगियाँ मेघ को मार्ग बता रही हैं, कहीं गर्जन-पूर्वक तीर से जल-ग्रहण के रूप में मेघ द्वारा अधरपान किए जाने पर वेत्रवती चञ्चल तरंगों के रूप में भृकुटि ताने हुए है, कहीं 'प्रतनु सलिल' की एक वेणी बाँधे हुए कृश-गात सिन्धु अपनी विरहावस्था को व्यक्त कर रही है, कहीं सूर्य प्रवास से आकर अपने करों से विरहपीड़ित नलिनी के 'कमल-वदन' पर गिरे हुए ओस के आँसू पोंछ रहा है और कहीं 'अपने फेन' से गौरी के भ्रूभंग का उपहास करती हुई 'जह्नु-कन्या' वियोग के भय से लहर-करों द्वारा शिवजी के केशों को पकड़े हुए है।' प्रकृति की इस समवेदना से विरही यक्ष के संतप्त हृदय को बड़ी शान्ति मिलती रहती है। इस तरह विरह-भावना से प्रतिबिम्बित बहिर्जगत् को पृष्ठ-भूमि बनाकर कलाकार उत्तर मेघ में अन्तर्जगत् का चित्रण करता है, जिसमें हमें उसी तूलिका-कौशल का दर्शन होता है जैसे बाह्य प्रकृति के चित्रण में। बेचारी विरह-पीड़ित यक्ष-पत्नी पाले से मुरझाई हुई कमलिनी की तरह क्या थी और क्या हो गई; न तो बहुत बोलती है और न ही संसार के पदार्थों में रुचि रखती है; आभूषण-रहित हो कर एक मैली-सी साड़ी पहने 'सहचर से वियुक्त चक्रवाकी की तरह अकेली एक मूर्तिमती हूक-सी बनी बैठी है। वह कभी गोद में वीणा लेकर प्रिय का गीत छेड़ना चाहती है कि सहसा हृदय में स्मृति की विषम वेदना आँसू बनकर बह जाती है और तत्क्षण ही उसका कण्ठ भी मूक और वीणा भी मूक रह जाती है। रातें आँखों में ही बीतती है और बेचारी पति-समागम के सुख-स्वप्नों से भी वञ्चित ही रहती है। उसका कोमल हृदय कभी का टूट गया होता यदि अवधि समाप्त होने पर पति से पुनर्मिलन की आशा उसे थामे न होती। वास्तव में मेघदूत की नायिका यक्ष-पत्नी भारत की एक आदर्श नारी है और सर्वथा उसी पंक्ति में बैठने का अधिकार रखती है, जिस पंक्ति में कालिदास की अन्य नायिकायें–पार्वती, इन्दुमती, सीता और शकुन्तला बैठी है। अब दूसरा यक्ष का भी चित्र देखिये; बेचारा प्रकृति के सौंदर्य और विरह में अपने हृदय का आभास प्राप्त कर आश्वसित होकर प्रियतमा से पुनर्मिलन की आशा में किसी तरह जीवित ही रह रहा है; कभी किसी शिला-फलक पर गेरू से अपनी प्रणय-कुपित प्रेयसी का चित्र बनाकर उसे मनाने के लिए ज्यों ही चरणों पर गिरना चाहता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि क्रूर भाग्य आँखों को आंसुओं से भर कर उसे देखने ही नहीं देता; कभी दक्षिण की ओर से बहनेवाली देवदारु-द्रुमों की सुगन्धित पवन का इस विचार से आलिङ्गन करता है कि वह अवश्य उसके प्रेयसी के अङ्गों का स्पर्श करके आई होगी; कभी चकित हुई मृगियों की दृष्टि में अपनी प्रियतमा की चितवनों की, चाँद में उसके मुख-सौंदर्य की और नदी-तरंगों में उसके भ्रूविलासों की कल्पना किया करता है; कभी स्वप्न में प्रिया-समागम होने पर उसे आलिङ्गन करने के लिए आकाश में भुजाओं को उठाता है जिसे देखकर वन-देवियाँ भी दो-दो आँसू गिरा देती हैं। यह सब विरह-व्यथित हृदय की ऐसी कठोर वेदना है कि सहृदय पाठकों को शृंगार अपना क्षेत्र छोड़कर करुण-रस की सीमा के आसपास गया हुआ दिखाई देता है। इस तरह यक्ष का प्रेम वियोग के अग्नि-कुण्ड में पड़ कर वासनात्मक मल को भस्म करके अपनी सीमित परिधि से निकला हुआ असीम-रूप में अभिव्यक्त होने लगता है; अब उसे क्या महल, क्या मार्ग, क्या आगे और क्या पीछे—सभी जगह प्रियतमा ही प्रियतमा दृष्टिगत होने लगती है—यहाँ तक कि अन्ततोगत्वा सारा विश्व उसे प्रियतमात्मकता के एकत्व-वाद में परिसमाप्त हुआ अनुभूत होने लगता है।

"प्रासादे सा, पथि पथि च सा, पृष्ठतः सा, पुरः सा ।
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः ॥"

यह है भारत का आदर्श प्रेम, जो साधना द्वारा पूत होकर विश्वप्रेम में परिणत हुआ यक्ष को वृक्ष, पर्वत, नदी, नद–अर्थात् सभी जड़-चेतनों के प्रति ममत्व की दिव्य अनुभूति प्रदान करता है और इस तरह उसे सान्त से अनन्त की ओर ले जाता है, 'मर्त्य' से 'अमर' बना देता है।

मेघदूत में अलंकारों का भी स्थान-स्थान में बड़ा अच्छा और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है जिससे रचना को बहुत सौन्दर्य मिला है। कवि की कला-सहजा उपमा का विलास तो देखते ही बनता है। कहीं तो नदी का चंचल तरंगोंवाला जल पिया जाता हुआ नायिका का भृकुटि-ताने अधर-सा है (२५), कहीं हिमालय के तुषार-गौर शृंग से लगा हुआ मेघ शिवजी के वृषभ द्वारा उखाड़कर अपने ऊपर फेंका हुआ पंक-सा है (५५), कहीं वर्षाकाल में जल-बिन्दुओं की झड़ी लगानेवाला मेघ किसी कामिनी का मोतियों से सुशोभित केशपाश-सा है (६५), और कहीं विरह-शय्या पर एक ही पार्श्व में लेटी हुई चिन्ता-कृश यक्षपत्नी पूर्व दिशा में कलामात्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शेष चन्द्रमा-सी है (२९ उ०)। उत्प्रेक्षा भी यथास्थान अच्छी ही प्रयुक्त हुई मिलती है—कहीं दूर से छोटी-सी दिखाई देनेवाली नदी की धवल धार—जब मेघ उसका जल ग्रहण करने के लिए एक ओर झुकता है—ऐसी प्रतीत होती है मानो कि पृथिवी के मध्य मोटे-से नीलम को रखे हुए मोतियों की लड़ी हो; (४९) कहीं पके हुए जंगली आम्रों से घिरे पर्वत की चोटी से सटा हुआ मेघ ऐसा लगता है मानो मध्य में काला और शेष भाग में पीला-सा पृथिवी-नायिका का स्तन हो (१८), और कहीं गंगा के धवल जल को ग्रहण करने के लिए झुका हुआ काला मेघ ऐसा लग रहा है, मानो प्रयाग से अतिरिक्त किसी दूसरे स्थान में गंगा-यमुना का संगम हो गया हो (५४)। अर्थान्तरन्यास भी ऐसे अच्छे और सार्वभौम तथ्य पर आश्रित हैं कि उनमें से बहुत से तो संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध आभाणक भी बन गये हैं जैसे—'कामार्त्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतनाचेतनेषु', 'याच्ञा मोघा वरम-धिगुणे नाधमे लब्धकामा', 'कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा, नीचैर्ग-च्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' इत्यादि।

मेघदूत की लोकप्रियता—अपने गुणों के कारण मेघदूत बहुत ही अधिक लोक-प्रिय बना। इससे परवर्ती अनेक कवियों ने भाव-प्रेरणा ली और इसी के अनुकरण पर कितने ही दूत-काव्यों की रचना हुई। आठवीं शताब्दी (ई०) में प्रसिद्ध जैन कवि जिनसेन ने मेघदूत के प्रत्येक पद्य के प्रत्येक पाद को समस्या-पूर्ति के रूप में लेकर जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ का पार्श्वाभ्युदयनामक जीवन-चरित्र लिखा। निदर्शन के रूप में प्रथम पद्य के प्रथम-पाद की समस्या-पूर्ति इस तरह है :—

श्रीमन्मूर्त्या मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या
योगैकाग्र्यस्तिमिततरया तस्थिवांसं निदध्यौ।
पार्श्वं दैत्यो नभसि विहरन् बद्धवैरेण दग्धः
कश्चित् कान्ता-विरह-गुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः॥

बारहवीं शताब्दी में धोयी कवि ने 'पवनदूत' रचा; तत्पश्चात् नेमिदूत, कोकिलदूत, हंसदूत, शीलदूत, उद्धवदूत–आदि दूत-काव्यों की प्रथा-सी चल पड़ी। हिन्दी में भी व्रजभाषा और खड़ी बोली को मिलाकर मेघदूत के छः पद्या-नुवाद बन चुके हैं और एक तो उनमें सचित्र भी है। भारत के बाहरी देशों पर भी मेघदूत का बड़ा प्रभाव पड़ा। जर्मन कवि शिलर (Schiller) ने अपने-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'मेरियो स्टुअर्ट' नाटक में कलिदास के अनुसार ही मेघ-द्वारा संदेश भेजने की कल्पना की है। जर्मन विद्वान् श्वेट्ज़ ने मेघदूत का जर्मन गद्य में और प्रो० मैक्समूलर ने जर्मन-पद्य में अनुवाद किया। अंमेरिका के प्रसिद्ध संस्कृत-अनुवादक आर्थर राइडर ने मेघदूत का अंग्रेजी में बड़ा अच्छा पद्यानुवाद किया है। डा० बेक्ख ने इसको तिब्बती भाषा में अनूदित किया। इससे यह बात अच्छी तरह प्रमाणित हो जाती है कि प्राचीन विद्वानों ने मेघदूत को जो गौरव प्रदान किया था, उसे सभी आधुनिक विद्वान् भली भाँति निभा रहे हैं।

टीकायें—मेघदूत पर कुल मिलाकर इस समय ४० से अधिक टीकायें मिलती हैं। टीकाकारों में प्रसिद्ध ये हैं—१. वल्लभ, २. निरुक्तकार, ३. मल्लिनाथ, ४. सारोद्धारिणी, ५. सरस्वती तीर्थ, ६. सुमतिविजय और ७. महिमसिंहगणि। कालक्रमानुसार सर्वप्रथम टीकाकार वल्लभ (७वीं शताब्दी) ही हैं और तदनन्तर निरुक्तकार तथा मल्लिनाथ हैं। मल्लिनाथ सर्वप्रसिद्ध ही हैं। शेष टीकायें उनके बाद की हैं। मेघदूत के मूल पद्यों के पाठ, संख्या तथा क्रम के संबंध में टीकाकारों में मतभेद पाया जाता है। जिनसेन के पाठ में १२० पद्य हैं, वल्लभ के पाठ में १११ और मल्लिनाथ के पाठ में १२१ (उन पाँच पद्यों को मिलाकर, जिन्हें इन्होंने प्रक्षिप्त बताया है)। प्रो० मैक्डानल ११५ और विल्सन महोदय ११६ पद्यों को ही मौलिक बतलाते हैं। वास्तव में पाठ-भेद होने पर भी उसका इस काव्य पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। हाँ अन्त के उपसंहारात्मक प्रक्षिप्त पद्य कला की दृष्टि से अवश्य अनुपादेय हैं और उन्हें हटा ही देना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीकालिदासप्रणीतम्

मेघदूतम्

पूर्वमेघः

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः[1]
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

अन्वयः—स्वाधिकारात् प्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तङ्गमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसतिं चक्रे ।

पदार्थः—स्वाधिकारात्प्रमत्तः=अपने काम से प्रमाद करने वाला, असावधान। कान्ताविरहगुरुणा=प्रिया के वियोग से दुःसह। वर्षभोग्येण=साल तक भोगे जानेवाले। भर्तुः=स्वामी के। शापेन=शाप से। अस्तंगमितमहिमा=जिसकी महिमा (सामर्थ्य) का विनाश कर दिया गया था, अर्थात् महिमा से वञ्चित किया गया हुआ। यक्षः=देवयोनिविशेषः, 'विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय' इत्यमरः। जनकतनया०=जनक की पुत्री (सीता) के स्नानों से पवित्र जलोंवाले। स्निग्धच्छाया०=घने छायादार वृक्षों से युक्त। रामगिर्याश्रमेषु=रामगिरि के आश्रमों में। वसतिम्=निवासस्थान, डेरा। चक्रे=बनाया।

भाषानुवादः—अपने कार्य से प्रमाद (असावधानी) करनेवाले (अत एव) प्रिया के वियोग के कारण दुःसह एवं वर्ष तक भोगने योग्य स्वामी के शाप द्वारा (अपनी) महिमा से वञ्चित किये गये किसी यक्ष ने जनक-पुत्री (सीता) के स्नानों से पवित्र हुए जलोंवाले तथा घने छायादार वृक्षों से युक्त रामगिरि के आश्रमों में डेरा डाला।

१—स्वाधिकारप्रमत्तः सु० वि०, वल्ल०, म० सि०, विल्स०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—स्वाधिकारात्प्रमत्तः=अधिक्रियते अस्मिन् इति अधि+√कृ, त० उभ०+घञ्, अधिकरणम्–अधिकारः स्वस्य अथवा स्वः अधिकारः ष०तत्पु० अथवा कर्मधा० तस्मात्—यहाँ 'प्रमाद' अर्थ में "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" से पञ्चमी का प्रयोग हुआ। प्रमत्त—प्र+√मद्, दि० प०+त(क्त) कान्ताविरहगुरुणा=कान्तायाः (षष्ठीत०) विरहेण (तृती० त०) गुरुणा। वर्षभोग्येण=वर्षं भोग्येन; यहाँ "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" से द्वितीया, "अत्यन्तसंयोगे च" से समास तथा 'कुमति च' से न को णत्व हुआ है। शापेन=√ शप्, भ्वा० उभ०+अ(घञ्) भावे—शापः तेन हेतौ तृतीया। जनकतनयास्नान०= जनकतनयायाः स्नानैः पुण्यानि उदकानि येषु (बहुव्रीहि)। अस्तंगमितमहिमा अस्तं (अव्यय) गमितो महिमा यस्य (बहुव्रीहि)। गमित=√ गम्, भ्वा० प०= (णिच्)+त। स्निग्धच्छाया=छाया–प्रधाना; तरवः छायातरवः, मध्यमपदलोपी कर्म०। स्निग्धाः छायातरवः येषु बहुव्रीहिः। दक्षिणावर्तनाथ छायातरु का विग्रह 'छायाप्रचुरास्तरवः' करता है। रामगिर्याश्रमेषु=रामगिरेराश्रमेषु (षष्ठी तत्पु०) चक्रे=√कृ तना० उभय, लिट् लकार, प्रथमपुरुष एक०। 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' इत्यात्मनेपदम्।

विशेष—मेघदूतः=मेघ एव दूतः मेघदूतः स एव अभेदोपचारात्तत्संज्ञं काव्यम्। यहाँ 'अभेदोपचारात्' का अर्थ आरोप (Superimposition) है, अर्थात् पहले तो मेघ में ही दूतत्व का आरोप है, और फिर मेघदूत में भी काव्यत्व का आरोप है। अथवा मेघ एव दूतः यस्मिन् काव्ये तत् (बहुव्रीहि) मेघदूतम्—दूत=√ दु, गतौ+त(क्त) इसमें 'दुतनिभ्यां दीर्घश्च' इस उणादिसूत्र से 'उ' को दीर्घ हुआ। अथवा √दु उपतापे+क्त, कर्त्तरि इससे दुत (दुःखित) बना, परन्तु यह अर्थ यहाँ उचित नहीं। मेघदूत एक 'खण्डकाव्य' है, (जिसके विशद वर्णन के लिए ग्रन्थ की भूमिका देखिए), क्योंकि इसमें महाकाव्य के सब लक्षण पूरे नहीं घटते। 'खण्डकाव्यं महाकाव्यस्यैकदेशानुसारि यत्'। महाकाव्य का लक्षण दण्डी के काव्यादर्श और विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में देखिए। इस खण्डकाव्य में शृंगार रस प्रधान है। यहाँ विप्रलम्भशृंगार (Love Sentiment in Separation) है।

संस्कृत में ग्रन्थ-प्रारम्भ करने के लिये तीन प्रकार के मङ्गल होते हैं—
१. आशीः (Benediction); २. नमस्क्रिया (Salutation);

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३. वस्तुनिर्देश: (Introduction of subjectmatter)। इस काव्य का प्रा रम्भ कालिदास ने तीसरे प्रकार से किया है।

कान्ताविरह०,—यहाँ 'भार्या' शब्द का प्रयोग न करके कवि ने जान-बूझकर 'कान्ता' (प्रेयसी) का प्रयोग किया है। इसलिये परिकरांकुर अलंकार है। जहाँ विशेष्य साभिप्राय (significant) हो, वहाँ परिकरांकुर अलंकार कहते हैं। गुरु=भारी, दुःसह, सहन करने में कठिन।

महिमा—महिमन् (पुं०) प्रथमा एक०। इसका अर्थ—बड़ाई दैवी शक्ति, जैसे—अन्तरिक्ष में उड़ना, अदृश्य होना आदि। शाप में दैवी शक्ति को नाश करने का सामर्थ्य है। देखिये-विक्रमोर्वशी IV–'गुरुशापसंमूढहृदया' और देखिये दशकुमार० V–'तथा गिरिदुहित्रा ...... गतस्ते शाप इत्यनुगृहीता (अहं) सद्य एव प्रत्यापन्नमहिमानं त्वां यथावदभ्यजानाम्। 'अस्तंगमितमहिमा' साभिप्राय विशेषण है, क्योंकि यदि कुबेर के शाप के कारण यक्ष की महिमा लुप्त न हुई होती, तो वह अदृश्यरूप होकर अपनी कान्ता से मिलकर और उसका कुशल-क्षेम पूछ कर वापिस आ सकता था। इस अवस्था में मेघ के द्वारा सन्देश भेजने का अवसर ही न आता और न कवि को काव्य की पृष्ठ-भूमि मिलती। विशेषण यदि साभिप्राय हो तो परिकर अलंकार बनता है।

स्वाधिकारात्प्रमत्तः—कुछ टीकाकारों के अनुसार यक्ष का यह काम था कि वह प्रतिदिन प्रातः कुबेर के लिए अभिनव पुष्पों को शिव जी की पूजा के निमित्त लाया करता था। एक दिन आनेवाले प्रातःकाल अपनी कान्ता का संग छोड़ने की अनिच्छा से वह रात के समय में ही कमल की कलियों को ले आया जो दूसरे दिन खिल जाने वाली थीं। अगले दिन प्रातः जब कुबेर इन्हें शिव जी पर चढ़ा रहा था, तो एक भ्रमर ने, जो कि किसी अधखिली कली में छिपा हुआ था, उसकी अंगुलियों में डंक मार दिया। इससे क्रुद्ध होकर उसने यक्ष को शाप दिया :—"अपनी कान्ता से–जिसके कारण तूने अपने कर्तव्य से प्रमाद किया है—एक सालभर पृथक् रहेगा"। कुछ टीकाकार कहते हैं कि 'यह यक्ष कुबेर के उद्यान का रक्षक था। एक दिन वह अपना स्थान छोड़कर कहीं चला गया। इतने में इन्द्र के हाथी ने उद्यान में घुस कर वहाँ की फूलों की क्यारियों को रौंद डाला, (विल्सन)।

यक्ष—ये नरदेव अथवा गन्धर्व-श्रेणी से सम्बन्ध रखते हैं और भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साहित्य में इनका पर्याप्त उल्लेख मिलता है। ये धन के देवता कुबेर के सेवक कहे गये हैं, इस कारण कुबेर को 'यक्षेश्वर' भी कहा जाता है; देखिए पद्य ७ 'गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्'। यक्षों का काम कुबेर के उद्यानों और कोश की रक्षा करना है। यक्ष शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है 'यक्ष्यते पूज्यते इति यक्षः' अथवा 'इः कामः तस्य इव अक्षिणी यस्य' अथवा 'इः अक्ष्णोः यस्य' इति।

स्निग्धच्छाया०—मल्लि० ने० 'स्निग्ध' का अर्थ सान्द्र (घना) लिया है। छायाप्रधानास्तरवश्छायातरवः शाकपार्थिवादिवत् मध्यमपदलोपी कर्मधारय है। इस प्रकार 'छाया-तरवः' से नमेरु वृक्षों का अर्थ लिया है। इसका 'घने छाया देने वाले वृक्ष' यह अर्थ करना अच्छा है। 'स्निग्ध' का अर्थ 'रम्य' सुन्दर भी लिया जा सकता है; इस प्रकार यह छाया का विशेषण है। एक टीकाकार 'छाया-तरवः की इस प्रकार व्याख्या करता है—'पूर्वापरदिग्भागेऽपि सवितरि येषां छाया न परिवर्त्तते ते छाया-तरव उच्यन्ते'।

आश्रमेषु—इससे यह प्रकट होता है कि अपनी कान्ता से वियुक्त हुआ यक्ष एक स्थान पर न ठहर कर कई आश्रमों में रहता रहा।

जनकतनयास्नान-पुण्योदकेषु—सीता जन्म से पवित्रता की मूर्ति मानी जाती है, अतः उसके स्नान से रामगिरि के आश्रम भी पवित्र हो गये। देखिए उत्तर० 'उत्पत्तिपरिपूतायाः किमन्यैः पावनान्तरैः'।

रामगिरि—वल्लभ और मल्लिनाथ 'रामगिरि' से चित्रकूट पर्वत लेते हैं। विल्सन महोदय के विचार में यह पर्वत 'रामटेक' (Hill of Rama) ही है, जो नागपुर के पास उत्तर की ओर है। आधुनिक पुरातत्त्व-अनुसंधान के अनुसार 'रामगिरि' का मध्यप्रान्त में स्थित रामगढ़ से अभिप्राय है, क्योंकि यह आम्रकूट या अमरकण्टक के बिलकुल समीप है—जिससे नर्मदा नदी निकलती है। कवि ने आम्रकूट और नर्मदा इन दोनों का आगे उल्लेख किया है।

इस सारे काव्य में 'मन्दाक्रान्ता छन्द है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—
'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्'। इस छन्द में प्रत्येक पाद में
S S S S I I I I I S S I S S I S S
१७ अक्षर होते हैं और वे मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, और दो गुरु होते हैं
S S S S I I I I I S S I S S I S S
—जैसे—कश्चित्का—न्ताविर—हगुरु—णास्वाधि—कारात्प्र—मत्तः ॥१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य [1] प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श॥ २॥

अन्वयः—अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः स कामी तस्मिन् अद्रौ कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुं वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं मेघं ददर्श।

पदार्थः—अबलाविप्रयुक्तः=प्रिया से बिछुड़ा हुआ। कनकवलय०=सोने के कड़े के गिर पड़ने से शून्य कलाईवाला। कामी=भोग-विलासी। अद्रौ=पहाड़ पर। कतिचित् मासान्=कुछ महीनों को। नीत्वा=बिताकर। आश्लिष्टसानुम्=पहाड़ की चोटी से सटे हुए। वप्रक्रीडापरिणत०=टीले से मिट्टी उखाड़ कर खेल में तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए हाथी के समान दीखनेवाले। मेघम्=बादल को। ददर्श=देखा।

भाषानुवाद—प्रिया से बिछुड़े हुए, (कृशता के कारण) सोने के कड़े के गिर जाने से शून्य कलाईवाले, उस कामी ने कुछ महीने उस पहाड़ पर बिता कर, आषाढ़ के पहले दिन पहाड़ की चोटी से सटे हुए बादल को देखा, जो कि टीले से मिट्टी उखाड़ने के खेल में तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए हाथी के समान दिखाई दे रहा था।

व्याकरणम्—अबलाविप्रयुक्तः=अबलया विप्रयुक्तः (तृतीया०तत्पु०)। कामी=√कम्+इन् (णिनि) कर्तरि अथवा √कम्+घञ् भावे कामः सः अस्ति अस्य इति काम+इनि (मत्वर्थ)। कतिचित्=कति+चित्; इसमें 'कति' 'मासान्' का विशेषण है। 'कति' सर्वनाम के रूप बहु० में ही होते हैं। इसके रूप प्र० द्वि० में कति तथा अन्य विभक्तियों में 'हरि' के समान होते हैं। प्रथमदिवसे प्रथमः दिवसः (कर्मधा०) तस्मिन्, अधिकरणे सप्तमी। आश्लिष्ट०=आ√श्लिष्, दि० प० (चिमटना)+क्त। आश्लिष्टः सानुः येन (बहुव्री०) तम्। कनकवलय०=कनकस्य वलयः कनकवलयः (ष० तत्पु०) तस्य भ्रंशेन रिक्तः प्रकोष्ठः यस्य सः (ब०व्री०)। वप्रक्रीडापरिणत=वप्रक्रीडासु परिणतः स चासौ गजः (कर्मधा०) सः इव प्रेक्षणीयः उपमान—कर्मधा०। 'उपमानानि सामान्यवचनैः' से समास हुआ। तं मेघम्

१—प्रशमदिवसे—वल्ल०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रेक्षणीयम् प्र+√ईक्ष् (भ्वा० आ०)+अनीय (कृत्यप्र०) । ददर्श=√दृश्, भ्वा० प० (देखना) लिट् प्र० पु० एक० ।

विशेष:—आषाढ=इसके विषय में मल्लि० ने टीका में लिखा है—आषाढा-नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्याषाढी (ङीप्) साऽऽषाढी अस्मिन्पौर्णमासी-त्याषाढो मासः। इसके साथ अण् (अ) प्रत्यय तथा ङीप् (ई)प्रत्यय लगने से क्रमशः 'आषाढः', 'आषाढी' ये शब्द इस नाम के महीने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । आषाढा नक्षत्र दो प्रकार का होता है—पूर्वा आषाढा तथा उत्तरा आषाढा ।

प्रथमदिवसे—इससे यह बात प्रतीत होती है कि सम्भवतः कालिदास के समय में वर्षा आषाढ मास के प्रथम दिन से प्रारम्भ होती थी। ऋतुसंहार में वर्षा-प्रारम्भ का यही समय बताया गया है । 'प्रथमदिवसे' इसके स्थान में पद्य सं० ४ में 'प्रत्यासन्ने नभसि' इस पाठ की उपपत्ति के लिए, 'प्रशमदिवसे' (अन्त के दिन) यह पाठान्तर है। इसके अनुसार 'प्रथमदिवसे' इस पाठ से सामान्यतः आषाढ़ और श्रावण दोनों महीनों की समीपता का बोध होता है, न कि इन महीनों के कुछ दिनों का। इस सम्बन्ध में मेघदूत (उ० मे०) के पद्य ५० में (शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा—) कहे गए 'चतुरः मासान्' इन शब्दों का अक्षरार्थ न लेकर 'प्रायः चार महीने' अर्थ लेना चाहिए । अधिक के लिए वहाँ का विशेष देखिए ।

वप्रक्रीडापरिणत०—टीले से मिट्टी उखाड़ कर खेल में तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए हाथी के समान दिखाई देनेवाले। इसमें उपमा है । सम्भवतः यह उपमा इसलिए दी गई है, क्योंकि बादल कई प्रकार की विचित्र आकृतियों को धारण करता है; जैसे—हाथी, भैंसा, सूअर, बैल आदि । देखिए पार्श्वा० 'महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गरूपिणः' । वप्र का अर्थ किले के आस-पास की दीवार या कच्ची दीवार से है; अतः 'वप्रक्रीडा' से सींगों या दाँतों द्वारा इस प्रकार की दीवार के साथ टक्कर मारना अर्थ विवक्षित है । देखिए—रघु० सर्ग V पद्य ४४–'निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु । नीलोर्ध्व कुण्ठितेन । शिशु० IV, २९ 'परिणतदिक्करिकास्तटीर्बिभर्ति' । परिणत शब्द का 'एक पार्श्व से तिरछे होकर दाँतों द्वारा प्रहार करने वाला हाथी' अर्थ है । देखिए—तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः । हलायुध II ६५ । गज शब्द पृथक् आने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से प्रकृत पद्य में 'परिणत' शब्द विशेष्यता को छोड़कर केवल विशेषणता का ही प्रतिपादक है। 'गजप्रेक्षणीयम्' में उपमा-वाचक इव शब्द का लोप होने से यह लुप्तोपमा है।

कनकवलयभ्रंश०—इसके लिए देखिए अभि० शाकु० III, १२ 'अनभिलुलितज्याघातांकं मुहुर्मणिबन्धनात्कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥२॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः [1]कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥३॥

अन्वयः—राजराजस्य अनुचरः अन्तर्बाष्पः (सन्) कौतुकाधानहेतोः तस्य पुरः कथमपि स्थित्वा चिरं दध्यौ। मेघालोके (सति) सुखिनः अपि चेतः अन्यथावृत्ति भवति, कण्ठाऽऽश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे (सति) किं पुनः?

पदार्थः—राजराजस्य=कुबेर के। अनुचरः=सेवक ने। अन्तर्बाष्पः=अन्दर ही अन्दर आंसुओं को रोके हुए। कौतुकाधानहेतोः=उत्कण्ठा उत्पादन का कारणीभूत। कथमपि=किसी तरह, बड़े कष्ट से। दध्यौ=सोचा। मेघालोके=बादल के दीखने पर। सुखिनः अपि=सुखी (व्यक्ति) का भी। चेतः=चित्त। अन्यथावृत्ति=और ही वृत्तिवाला अर्थात् विकृत। भवति=हो जाता है। कण्ठाऽश्लेषप्रणयिनि जने=गले लगाने की अभिलाषावाले व्यक्ति के। दूरसंस्थे=दूर स्थित होने पर। किं पुनः=तो कहना ही क्या?

भाषानुवादः—कुबेर का सेवक (यक्ष) भीतर ही भीतर आँसू रोके हुए, उत्सुकता पैदा कर देनेवाले उस बादल के सामने किसी तरह ठहर कर देर तक सोचता रहा। बादल के दिखाई देने पर सुखी (व्यक्ति) का भी चित्त विकृत (डावांडोल) हो जाता है, फिर गले मिलने की अभिलाषावाले व्यक्ति के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या?

व्याकरणम्—राजराजस्य=राज्ञां (यक्षाणां) राजा (ष० तत्पु०) राजराजः; 'राजराजो धनाधिपः' इत्यमरः। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इससे 'टच्' (अ) प्रत्यय हुआ। 'राजराज' के रूप राम की तरह चलेंगे। अन्तर्बाष्पः=अन्तः (अव्यय) स्तम्भितं बाष्पं (मध्यमपदलोपी कर्म०) यस्य सः (बहुव्री०)

१—केतका० सु० वि०, वल्ल०, सारो०, म० सि०, वि० तथा अन्य।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कौतुका० =कौतुकस्य आधानम् तस्य हेतोः (षष्ठी-त०) आधान =आ+√धा, (जु० उभ०)+ल्युट् भावे आधानम् । स्थित्वा =√स्था, (भ्वा० प०)+क्त्वा । चिरम् =अव्यय । दध्यौ =√ध्यै (भ्वा० प०) लिट् प्र० पु० एक० । मेघालोके =मेघस्य आलोकः तस्मिन् सत्-सप्त० । आलोक =आ+√लोक्+घञ्, भावे । सुखिनः =सुखमस्य विद्यते इति सुखी तस्य, सुखिन् का ष० एक० । अन्यथावृत्ति =अन्यथा वृत्तिः यस्य (बहुव्री०) चेतः (नपुं०) का विशे० । कण्ठाश्लेषः = =कण्ठस्य आश्लेषः तस्य प्रणय-इनि (मत्वर्थे) तस्मिन् । दूरसंस्थे =दूरे संस्था (स्थितिः) यस्य बहुव्री० । संस्था—सम्+√स्था+घञ् भावे+टाप् ।

विशेष:—कौतुकाधानहेतोः =यह पाठ 'केतकाधानहेतोः,' इस पाठान्तर से अच्छा है, क्योंकि इससे प्रेमियों के हृदय में वर्षाकाल के आने से अधिक विकार पैदा होता है और बादल को देखकर एक दूसरे के प्रति उत्कण्ठा का भाव पैदा होना स्वाभाविक ही है । केतका० से वर्षा में केतकी के पौधे के प्रकट होने से उतनी उत्कण्ठा नहीं होती जितनी बादल के दीखने से । साथ ही इस पाठान्तर से आषाढ़ के प्रथम दिवस से जब कि वर्षा का प्रारम्भ होता है, कोई सम्बन्ध नहीं मिलता । मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा०—सारोद्धारिणी के अनुसार 'अन्यथावृत्ति' का अर्थ 'अस्वस्थम्' या प्रचलोत्कलिकाकुलम्' इस प्रकार है । देखिये—विक्रमोर्वशी, अंक IV—'एतेन पुनर्निवृत्तानामप्युत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेनानर्थाधीनो भविष्यति' । और देखिए—ऋतु० II. 'समागत घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ! ॥३॥

अथ समाहितान्तःकरणः सन् किं कृतवानित्यत आह—

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी[1]
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम् ।
स[2] प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥४॥

अन्वय:—सः (यक्षः) नभसि प्रत्यासन्ने दयिताजीविताऽऽलम्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमयीं प्रवृत्तिं हारयिष्यन् प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै (जीमूताय) प्रीतः (सन्) प्रीति-प्रमुख-वच स्वागतं व्याजहार ।

१-लम्बानर्थं सु० वि०, म० सि०, सारो०, विल्स० । २-संप्रत्यग्रैः वल्ल० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—नभसि=श्रावणमास के। प्रत्यासन्ने=समीप आने पर। दयिता-जीवितालम्बनार्थी=प्रिया के जीवन के आलम्बन (धारण) के इच्छुक। जीमूतेन=बादल के द्वारा। स्वकुशलमयीम्=अपनी कुशल (को बतलाने) वाले। प्रवृत्तिम्=समाचार को। हारयिष्यन्=भेजना चाहता हुआ। प्रत्यग्रैः=अभिनव (ताज़े)। कुटजकुसुमैः=गिरिमल्लिका (पहाड़ी चमेली, कुरैया) के फूलों से। कल्पितार्घाय=जिसके लिये अर्घ (पूजा की सामग्री) तैयार की गई है। प्रीतिप्रमुखवचनं=प्रेमपूर्वक शब्दों में (क्रिया-विशेषण)। स्वागतम्=शुभागमन। व्याजहार=कहा।

भाषानुवाद—सावन मास के समीप आने पर प्रिया के प्राणों को सहारा देना चाहते हुए उस (यक्ष) ने मेघ द्वारा अपना कुशल-समाचार पहुँचाने की अभिलाषा से ताजे चमेली के फूलों से अर्घ-सामग्री तैयार करके उस (मेघ) को, प्रसन्न होकर, प्रेम--पूर्वक शब्दों में 'स्वागतम्' कहा।

व्याकरणम्—प्रत्यासन्ने=प्रति+आ+√सद् (भ्वा० प०)+कर्त्तरि, क्त, सन् सप्तमी एकवचन। नभसि=नभस् (नपुं०) सप्तमी एक०। दयिता-जीविता०=दयिताया जीवितं (ष० तत्पु०) दयिताजीवितं तस्य आलम्बनं तस्य अर्थी, 'सः' का विशेषण। जीमूतेन=जीवनस्य उदकस्य मूतः पटवन्धः जीमूतः (पृषोदरादित्वात्साधुः)। स्वकुशल०=स्वस्य कुशलम् (ष० तत्पु०)तेन प्रकृतमिति स्वकुशल+मयट् स्त्रियाम्। हारयिष्यन्=√हृ (भ्वा० उभ०)+णिच् (प्रेरणार्थक) भविष्यदर्थ में शतन्त, प्रथ० एक० 'सः' का विशेषण। प्रत्यग्रैः=अग्रं प्रति गतः प्रत्यग्रः तैः। कल्पितार्घाय=कल्पितोऽर्घो यस्मै (बहुव्री०)। तस्मै=तद्(पुं०) चतु० एक०। सम्प्रदाने चतुर्थी। प्रीतिप्रमुख०=प्रीतिप्रमुखानि वचनानि यस्मिन् कर्मणि यथा तथा (बहुव्री०), क्रि० विशे०। स्वागतम्=सु (अव्यय)+आ+√गम्+क्त, भावे आगतं, सुशोभनमागतम्। (नित्यकर्मधा०) व्याजहार=वि+आ √हृ (भ्वा० उभ०), लिट्, प्र० पु० एक०।

विशेषः—प्रत्यासन्ने नभसि=श्रावणमास विरही प्रेमियों के लिए दुःख देने-वाला होता है। देखिए—पद्य, ८ 'कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायाम्'। निम्नलिखित उक्तियाँ भी देखिये—'शिखिनि कूजति गर्जति तोयदे स्फुरति जातिलताकुसुमाकरे। अहह पान्थ न जीवति ते प्रिया नभसि मासि न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासि गृहं यदि ॥' 'उपरि पयोधरमाला दूरे दयिता किमेतदापतितम् । हिमवति दिव्यौषधयः कोपाविष्टः फणो शिरसि ॥' मुद्रा० ।

कल्पितार्घाय =अर्घयते अनेन इति अर्घः । 'अर्घ' की व्युत्पत्ति√अर्ह, अथवा√अर्घ् से हुई है । 'अर्घ' किसी देवता, प्रतिष्ठित व्यक्ति या अतिथि-विशेष को दिया जाता है । सामान्यतः इसमें निम्नलिखित वस्तुएँ होती हैं—'आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः । यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टांगार्घ्यं प्रकीर्तितम् ॥'

प्रीतिप्रमुख०—मल्लि० इसे क्रि० विशे० मानता है, पर सारोद्धारिणी में इसे 'स्वागतम्' का विशेषण मानकर इसकी व्याख्या की गई है—प्रीत्या प्रमुखं स्नेहं-निर्भरं वचनं यत्र तत् स्वागतम् ॥४॥

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि [1]प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥५॥

अन्वयः—धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः मेघः क्व ! पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः सन्देशार्थाः क्व ! इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तं ययाचे । हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः (भवन्ति) ।

पदार्थः—धूमज्योतिःसलिल० =धुआँ, प्रकाश, जल और वायु का । संनिपातः =मिश्रण, मेल । पटुकरणैः प्राणिभिः =समर्थ इन्द्रियों-वाले प्राणियों द्वारा । प्रापणीयाः =पहुँचाए जाने योग्य । सन्देशार्थाः =सन्देश की बातें । इति =यह । औत्सुक्यात् =उत्कण्ठा के कारण । अपरिगणयन् =न विचारते हुए । गुह्यकः =यक्ष ने । ययाचे =प्रार्थना की । हि =क्योंकि । कामार्ताः =काम से पीड़ित । चेतनाचेतनेषु =सजीव और निर्जीव पदार्थों के प्रति । प्रकृतिकृपणाः—स्वभाव से दीन, विवेक-रहित ।

भाषानुवादः—'कहाँ तो धुआँ, प्रकाश, जल और वायु—इनका सम्मिश्रण-रूप मेघ और कहाँ सशक्त इन्द्रियोंवाले प्राणियों द्वारा पहुँचाए जानेवाले सन्देश' इस (बात) को न विचारते हुए यक्ष ने उस (बादल) से प्रार्थना की; क्योंकि

१— णय ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काम से पीड़ित लोग जड़-चेतन पदार्थों के प्रति स्वभावतः दीन—विवेकशून्य हो जाया करते हैं।

व्याकरणम्—धूमज्योति० = धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुच्च (द्वन्द्व-समास) तेषां संनिपातः (ष०तत्पु०)। संनिपातः = सम् + नि + √पत् (भ्वा० प० + घञ् भावे)। पटुकरणैः = पटूनि करणानि (इन्द्रियाणि) येषाम् बहुव्री० तैः। प्राणिभिः का विशे०। प्रापणीयाः = प्र + √आप् (स्वा० प०) + णिच् + अनीय (कृत्य प्र०)। सन्देशार्थाः संदिश्यन्ते इति सन्देशाः ते एव अर्थाः (कर्मधारय); भवन्ति लुप्तक्रिया का कर्त्ता। औत्सुक्यात् = उत्सुकस्य भावः औत्सुक्यम् तस्मात् कारणात् अपरिगणयन् = न + परि + √गण् + अत् (शतृ) ययाचे = √याच् (भ्वा० आ०) लिट् लकार, प्र० पु० एक०। कामार्ताः = कामेन आर्ताः (तृ० तत्पु०)। प्रकृति–कृपणाः = प्रकृत्या कृपणाः (तृ० तत्पु०)। चेतनाचेतनेषु = चेतनाश्चाचेतनाश्च (द्वन्द्व) तेषु। गुह्यक—गुह्यं कुत्सितं कायति √कै = शब्दे + कः। गुह्यं गोपनीयं कं सुखं यस्येति वा। गूहति निधिं रक्षति, √गुह + अक् (ण्वुल्)। यहाँ धातु और प्रत्यय के बीच 'य' अनियमित रूप से लगा है।

विशेषः—क्व······· क्व = द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः। क्व···क्व यह विषमालंकार का उदाहरण है। विषमालंकार में दो विषम वस्तुओं को बताया जाता है। देखिए—रघु० I, २ 'क्व सूर्य-प्रभवो वंशः क्व चाल्प-विषया मतिः'। अभि० शाकु० I, १० 'क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते'। और देखिए इसी नाटक का II. १८ पद्य 'क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः'। कुमार० ५, ४ पद्य में भी देखिए 'तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः'।

धूमज्योतिःसलिल० = इस पाद से हमें यह पता लगता है कि कवि कालिदास भौतिक विज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान से भी परिचित था। मेघ के अवयव—धुआँ, ज्योति (अग्नि), जल तथा वायु बता कर अच्छा रासायनिक विश्लेषण दिखाया है। इस पंक्ति से हमें कवि के प्रकृति-निरीक्षण का उदाहरण भी मिलता है।

कामार्ता हि प्रकृति० = इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इसमें सामान्य का विशेष अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन होता है। प्रस्तुत पद्य में विशेष का सामान्य से समर्थन किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जातं वंशे भुवनविदिते [1]पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा[2] वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

अन्वयः—हे मेघ ! । त्वां भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां वंशे जातं कामरूपं मघोनः प्रकृतिपुरुषं जानामि, तेन विधिवशात् दूरबन्धुः अहम् त्वयि अर्थित्वम् गतः। अधिगुणे याच्ञा मोघा (अपि) वरम् अधमे लब्धकामा (अपि) न वरम् ।

पदार्थः—भुवनविदिते=भुवनों में प्रसिद्ध। पुष्करावर्तकानाम्=पुष्कर और आवर्तकों के। इस पद के विशेष परिचय के लिए नीचे विशेष देखिए। कामरूपम्=इच्छा के अनुसार रूप धारण करनेवाले । मघोनः=इन्द्र के। प्रकृतिपुरुषम्=प्रधान पुरुष, सर्वे—सर्वा। विधिवशात्=भाग्यवश। दूरबन्धुः= दूरस्थित बन्धु (स्त्री) वाला। अर्थित्वं गतः=याचक बना हूँ। अधिगुणे= अधिक गुणवाले (व्यक्ति) के प्रति। याच्ञा, याचना, प्रार्थना। मोघा (अपि)=निष्फल भी। वरम्=अच्छी। अधमे+नीच के प्रति। लब्धकामा =सफल हुई (पूरी की गई)।

भाषानुवादः—(हे मेघ!) 'मैं जानता हूँ कि तुम भुवनों में प्रसिद्ध 'पुष्कर' और 'आवर्तकों' के कुल में पैदा हुए हो, इच्छा के अनुसार रूप धारण करनेवाले, इन्द्र के प्रधान-पुरुष हो; इसलिए भाग्यवश दूर-बन्धु (स्त्री) वाला मैं तुम्हारा याचक बना हूँ। अधिक गुणवाले (व्यक्ति) के प्रति की गई प्रार्थना निष्फल हुई (भी) अच्छी है, नीच के प्रति सफल हुई (भी) अच्छी नहीं।

व्याकरणम्—भुवनविदिते=भुवनेषु विदिते √विद् (अ०)+त (क्त)। जातम्=√जन् (दिवा० आ०)+क्त। कामरूपम्=कामकृतानि रूपाणि (मध्यमपदलोपी कर्म०) यस्य (बहुव्री०)। मघोनः='मघवत्' शब्द का ष० एक०। शेषे षष्ठी मह्यते पूज्यते असौ मघवा। प्रकृतिपुरुषम्=प्रकृतिषु पुरुषः (प्रधान-भूतः) (स० तत्पु०), अथवा प्रकृतिश्चासौ पुरुषश्च (कर्म० समास)। दूरबन्धुः= दूरः बन्धुर्यस्य सः (यक्षः), बहुव्री०। बध्नाति स्नेहेन हृदयमिति; √बन्ध् (क्र्या० प०, बाँधना)+उ। दूरः=दूरस्थः बन्धुः यस्येति (ष० ब्री०)। अर्थित्वम्=

१—पुष्कला० का० पा०। २—वन्ध्या।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थयते असौ अर्थी√अर्थ्+इन् (णिनि) तस्य भावः (त्व)। गतः+√गम्, (भ्वा० प०) जाना+त (क्त) प्र० पु० एक०। अधिगुणे=गुणमधिगतः प्रादि तत्पु० अथवा अधि (अधिकः) गुणो यस्य तस्मिन्। (बहुव्री०) याच्ञा=√याच्+न (नङ्)। लब्धकामा=लब्धः कामः यया सा (बहुव्री०)।

विशेषः—पुष्करावर्तकानाम्=मल्लि० के अनुसार 'पुष्कर' और 'आवर्तक' से दो प्रकार की मेघों की श्रेष्ठ जातियों का बोध होता है। सारोद्धारिणी में इस पद की निम्नप्रकार से व्याख्या की गई है—पुष्करं पानीयमावर्तयन्ति यथाकामं पृथिव्यां भ्रमयन्ति इति। विल्सन (Wilson) महोदय का विचार है कि 'पुष्कर' और 'आवर्तक' ये नाम इसलिये पड़े हैं कि इन शब्दों से 'आवर्त' (जलभंवर) का बोध होता है। ब्रह्म-पु० और पुराणसर्व० में इनके विषय में यह कहा है—'पुष्करा नाम ते मेघा बृहंतस्तोयमत्सराः। पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः। नानारूपधरास्ते तु महाधीरस्वनास्तथा। कल्पान्ते वृष्टि-कर्तारः संवर्ताग्नेर्नियामकाः। मोनियर विलियम के अनुसार 'पुष्करावर्तक' का पुंल्लि० बहु० में प्रयोग होता है और इनसे मेघों की उस जाति से अभि-प्राय है, जो मृत्यु और दुर्भिक्ष का कारण होती है। 'पुष्करावर्तकानाम्' के प्रयोग के लिए देखिए कु० स० II, ५० 'तदीयास्तोयदेष्वद्य पुष्करावर्तकादिषु'; और देखिए वेणी० III, ५ छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः'। कहीं-कहीं 'पुष्कर' के स्थान में 'पुष्कल' ऐसा पाठान्तर मिलता है। 'रलयोरभेदः' इस नियम से 'र' को 'ल' होने से अर्थ में कोई भेद नहीं होता है।

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे०=इस पाद में विशेष का सामान्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इसी प्रकार के विचार के लिये देखिये—किरात० I, ८ 'समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद्वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ॥६॥

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः
संदेशं मे हर[1] धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

अन्वयः—हे पयोद! त्वं सन्तप्तानां शरणम् असि, तत् धनपतिक्रोध-विश्लेषितस्य मे सन्देशं प्रियायाः हर। ते यक्षेश्वराणां बाह्योद्यान-स्थित-हर-शिरश्चन्द्रिका-धौतहर्म्या अलका नाम वसतिः गन्तव्या।

१—धनपतेः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—पयोद=बादल। सन्तप्तानाम्=ताप से पीड़ितों की (ताप का कारण चाहे धूप हो, चाहे विरह)। शरणम्=रक्षा करनेवाला (जल देकर अथवा घर की प्रेरणा करके)। धनपतिक्रोध०=कुबेर के क्रोध द्वारा प्रिया से वियुक्त हुए। बाह्योद्यानस्थित०=जिसके महल बाहर के उद्यान (बाग) में रहनेवाले शिव के सिर पर स्थित (चन्द्रमा की) चन्द्रिका (चाँदनी) से धुले रहते हैं अर्थात् प्रकाशित हैं ऐसे। वसतिः—स्थान। गन्तव्य=जाना है।

भाषानुवादः—हे मेघ! तुम पाप से पीड़ितों की रक्षा करनेवाले हो, इसलिए कुबेर के क्रोध से (प्रिया-) वियुक्त हुए मेरे सन्देश को प्रिया के पास ले जाओ। तुम्हे यक्षेश्वरों की अलका नाम की पुरी जाना है, जहाँ के महल बाहर के उद्यान में रहनेवाले महादेव के सिर पर स्थित (चन्द्रमा की) चाँदनी से धुले रहते हैं।

व्याकरणम्—पयोद=पयः ददाति इति√दा+क, सम्बोधन। सन्तप्तानाम् =सम्+√तप् [भ्वा० प०]+क्त तेषाम्। असि=√अस् [अदा० गण प०], लट् लकार म० पु० एक०। धनपतिक्रोध०=धनपतेः क्रोधेन विश्लेषितस्य। वि+√श्लिष् [दिवा० प०] णिच्+त, तस्य। हर=√हृ, [भ्वा० उभ०], लोट् म० पु० एक०। बाह्योद्यानस्थित०=बाह्य उद्याने स्थितस्य हरस्य शिरसि या चन्द्रिका तया धौतानि हर्म्याणि यस्यां सा तथोक्ता [बहुव्री०]। बहिः भवम् इति बाह्यम्। बाह्यमुद्यानम् (कर्मधा०)। अलका=अलति भूषयति इति अलका; इसमें√अल् के साथ कन् प्रत्यय है। नाम=प्राकाश्ये अव्ययम्। 'नाम प्राकाश्य-सम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने' इत्यमरः। गन्तव्या=√गम्+ (भ्वा० प०) तव्य (कृत्यप्र०) स्त्रीलिं०।

विशेषः—शिरश्चन्द्रिका='मूर्ध्नि वद्धचन्द्रकला' सारोद्धारिणी। पद्य ४५ और ४६ में नवशशिभृता' तथा 'हरशशिरुचा' शब्दों का प्रयोग हुआ है। विशेष परिचय के लिये इन पद्यों का 'विशेष' देखें। इसके अतिरिक्त देखिये कु० सं० VII. १९ 'पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्'। यक्षेश्वराणाम्=इसके विषय में सारोद्धारिणी और सुमतिविजय का कथन है—"गुरावेकश्चेति पूज्यत्वाद्बहुवचनम्"; देखिये हेमचन्द्र II. २. १२४।

अलका—यह धन देवता कुबेर की राजधानी है, जो स्वयं उत्तर दिशा का स्वामी है। अलका को वसुधारा, वसुस्थली और प्रभा भी कहते हैं। यह कैलाश

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर्वत पर, जो कि हिमालय की चोटी है, स्थित है। देखिए—'विभाति यस्यां ललितालकायां मनोहरा वैश्रवणस्य लक्ष्मीः' B. V. II. ९ ॥७॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।[1]
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्याद[2]न्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

अन्वयः—पवन-पदवीम् आरूढं त्वां पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसन्त्यः (तथा) उद्गृहीतालकान्ताः (सत्यः) प्रेक्षिष्यन्ते । त्वयि संनद्धे (सति) विरह-विधुरां जायां कः उपेक्षेत अन्यः अपि यः जनः अहम् इव पराधीनवृत्तिः न स्यात् ।

पदार्थः—पवन-पदवीम्=वायु-मार्ग को, आकाश में। आरूढम्=चढ़े हुये, जाते हुये । पथिकवनिताः=पथिकों (परदेश गये हुए व्यक्तियों) की स्त्रियाँ। प्रत्ययात्=(उनके घर लौट आने के) विश्वास से । आश्वसन्त्यः=आश्वासन रखती हुईं, आशा-पूर्ण होकर। उद्गृहीतालकान्ताः=बालों के अग्र-भाग को ऊपर पकड़े हुईं। प्रेक्षिष्यन्ते=(उत्कण्ठा से) देखेंगी । त्वयि संनद्धे=तेरे तैयार होने पर, उमड़ आने पर। विरह-विधुराम्=विरह से व्याकुल। जायाम्=पत्नी को। कः उपेक्षेत=कौन उपेक्षा करे (छोड़ दे) । पराधीनवृत्तिः=जिसकी आजीविका दूसरे के अधीन है।

भाषानुवादः—आकाश में उमड़े हुये तुमको पथिकों की स्त्रियाँ (पतियों के घर लौट आने के) विश्वास से आशापूर्ण होकर बालों के अग्रभाग को ऊपर किए हुईं देखेंगी। तुम्हारे उमड़ आने पर विरह से व्याकुल हुई पत्नी की उपेक्षा दूसरा कौन व्यक्ति करे जिसकी आजीविका मेरी तरह दूसरों के अधीन न हो ? (अर्थात् कोई नहीं) ।

व्याकरणम्—आरूढम्=आ+√रुह् (भ्वा० प०)+क्त । उद्गृहीता० =उद्गृहीता अलकानामन्ताः याभिः ताः (बहुव्री०) उद्गृहीत=उद्+√ग्रह् (क्र्या० उभ०)+ई+क्त । पथिकवनिताः=पन्थानं गच्छन्ति ते पथिकाः (ष्कन् प्रत्ययः) तेषां वनिताः प्रोषितभर्तृकाः । प्रत्ययात्=प्रति+√इ+अच् भावे प्रत्ययः तस्मात् । आश्वसन्त्यः=आ+√श्वस् (अदा० प०) से शत्रन्त+

१—आश्वसत्यः मल्लि०, सारो० । २ न्योप्ययमिव का० पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ङीप् (ई) प्रत्यय लगाने से 'आश्वसन्ती' रूप बना। फिर नदी के समान इसके रूप हुए। प्रेक्षिष्यन्ते=प्र+ईक्ष् (भ्वा० आ०), लृट् प्र० पु० बहु०।

संनद्धे+सम्+√नह् (दिवा० प०)+क्त; सप्तमी एक०। विरहविधुराम् =विरहेण विधुरा ताम् (तृ० त०)। विधुरा=विगता धूः अस्या इति विधुरा (बहुव्रीहि) त्वयि संनद्धे सत्—सप्तमी (locative absolute)। उपेक्षेत=उप+√ईक्ष् (भ्वा० आ०), विधिलिङ् प्र० पु० एक०। पराधीनवृत्तिः=परस्मिन्नधीना पराधीना वृत्तिर्यस्य (बहुव्री०)।

विशेष:—आश्वसन्त्यः=पाणिनि-व्याकरण के अनुसार 'आश्वसन्त्यः' प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि 'श्वस्' अदादिगण की धातु है, इसलिये अ विकरण (शप्) के लोप हो जाने से 'शप्श्यनोर्नित्यम्' से यहां नुम् (न्) न होकर 'आश्वसत्यः' होना चाहिए था, किन्तु काशिकाकार 'न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्' (महाभारत) "आश्वसेयुर्निशाचराः" (भट्टि) आदि के उदाहरण देकर "आश्वसन्त्यः" का समर्थन करता हुआ अन्त में कहता है "निरङ्कुशाः कवयः"। माधव अपने धातुपाठ में कालिदास के 'आश्वसन्त्य.' का उदाहरण देकर कहता है कि गणकार्य अनित्य होता है, अतएव इस अदादिगण की 'श्वस्' धातु में 'शप्' का लोप नहीं हुआ है। इन सब उदाहरणों में 'श्वस्' भ्वादिगण की धातु ही मानी गई है। कुछ प्रतियों में तो 'आश्वसत्यः' ऐसा पाठ मिलता है।

'संनद्धे' की सारोद्धारिणी में इस प्रकार व्याख्या है—'प्रकटितसुरधनुस्तडिल्लतागर्जितादि-सामग्रीके। देखिये विक्र० VI. १. 'नवजलधरः संनद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः।'

विरहविधुराम्=क्षीरस्वामी 'विधुर' का विग्रह इस प्रकार करते हैं—'विघटिता धूः कार्यभारोऽस्य।'

इस पद्य में, अर्थान्तरन्यास अलंकार है, जिसका यह लक्षण है—'कार्यकारणसामान्यविशेषाणां परस्परं समर्थनं यत्र सोऽर्थान्तरन्यास उदाहृतः ॥८॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहत[1]गतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यः पाति प्रणयि[2] हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥९॥

१—अविहित। २—पातप्रणयि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—[हे मेघ ! त्वम्] दिवस-गणना-तत्पराम् [अतएव] अव्यापन्नाम् एकपत्नीं तां भ्रातृ-जायाम् अविहतगतिः [सन्] अवश्यं द्रक्ष्यसि। आशाबन्धः कुसुम-सदृशम् [अत एव] विप्रयोगे सद्यःपाति अङ्गनानां प्रणयि हृदयं प्रायशः रुणद्धि।

पदार्थः—दिवस-गणना-तत्पराम्=अवधि के दिनों के गिनने में लगी हुई। अव्यापन्नाम्=न मरी हुई, जीवित। अविहतगतिः=बिना (किसी) रुकावट की गति वाला, बे-रोकटोक जाता हुआ। भ्रातृजायाम्=भाई की पत्नी; भाभी [यक्ष बादल को अपना भाई समझता है]। आशाबन्धः=आशा का बन्धन, तन्तु। विप्रयोगे=वियोग में। सद्यःपाति=जल्दी ही गिर जाने वाले, शीघ्र ही टूट पड़ने वाले। प्रणयि=प्रेम से युक्त। प्रायशः=प्रायः। रुणद्धि=रोके रखता है—अर्थात् जीवित रखता है। सारोद्धारिणीकार ने इसकी 'अवलम्बते' तथा सुमतिविजय ने 'धारयति' व्याख्या की है।

भाषानुवादः—हे मेघ ! तू [अवधि के] दिनों को गिनने में लगी हुई [अतएव आशा में] जीवित [अपनी] पतिव्रता भाभी को बिना [किसी] रुकावट के जाता हुआ अवश्य देखेगा, क्योंकि आशा का तन्तु फूल की तरह [कोमल] [अतएव], शीघ्र ही टूट पड़ जाने वाले स्त्रियों के प्रेम-भरे हृदय को प्रायः वियोग में रोके रखता है।

व्याकरणम्—दिवसगणना०=दिवसानां गणनायां तत्परा ताम् (स० तत्पु०) [गणना√गण् चु० प०,+णिच्+युच् भावे] अव्यापन्नाम्=अ [नञ्]+वि+आ +√पद् [दिवा० आ०]+क्त स्त्री०, द्वि० एक०। एकपत्नीम्=एकः पतिः यस्याः इति (ब०व्री०)। एक+पति+ङीप्। √पत्+न+ङीप्। यहां 'न' और 'ङीप्' का प्रयोग 'नित्यं सपत्न्यादिषु' सूत्र से हुआ है। अविहतगतिः=न विहता गतिर्यस्य [बहुव्री०]। विहत—वि+√हन् [अ० प०]+त (क्त) द्रक्ष्यसि= √दृश् [भ्वा० प०], लृट् म० पु० एक०। भ्रातृजायाम्=भ्रातुः जायाम् [ष० त०] 'जाया' शब्द की व्युत्पत्ति के लिए देखिए—'पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते। जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥" मनु० IX. ८। आशाबन्धः=आशायाः बन्धः [ष० तत्पु०] अथवा आशा एव बन्धः [कर्मधारय] कुसुमसदृशम्=कुसुमेन सदृशम् [तृ० तत्पु०] अङ्गनानाम्= प्रशस्तानि अङ्गानि आसाम्, इति अङ्गनाः तासाम्, यहाँ 'न' प्रत्यय 'अङ्गात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कल्याणे' से सुन्दर अङ्गों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। विप्रयोगे = वि+प्र√युज् [रुधा० प०]+घञ् भावे तस्मिन्। सद्यःपाति = सद्यः पतितुं शीलमस्य । सद्यः— अव्य० पत् [भ्वा० प०]+णिनि नपुं० प्र० ए०। रुणद्धि = √रुध [रुधा० उभ०] √लट् प्र० पु० एक० ।

विशेषः—कुसुमसदृशम् = देखिए विक्र० I. ६. 'कुसुममयबन्धनं हृदयम्' और उत्तर० IV. १२. 'पुरंध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति' । आशाबन्धः— देखिए—मालती० IX. २६. 'आशातन्तुर्न च प्रणयिनाऽत्यन्तमुच्छेदनीयः, प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः', और उद्धवसन्देशः ४३ 'आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वती प्राणबन्धम्' । अभि० शाकु० IV—'गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति'; विक्र० III 'शक्यं खल्वाशाबन्धेनात्मानं धारयितुम् ।'

अव्यापन्नाम्—इसका अर्थ है जो मरी नहीं अर्थात् जो यथा-तथा शरीर धारण किए हुए है, या जीवित है। यह साभिप्राय विशेषण है। इससे मन तथा शरीर की दुर्बलता व्यञ्जित होती है।

भ्रातृजायाम्—यक्ष मेघ को भाई समझता है, अतः उसने निज पत्नी को 'भ्रातृजाया' कहा है।

इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

मल्लि० के अनुसार 'तां चावश्यम्' यह पद्य मन्दं मन्दम् वाले अगले पद्य के अनन्तर आता है अर्थात् यह ९वां पद्य है और वह १०वाँ। परन्तु मल्लि० का क्रम प्रकरणानुसार ठीक-सा नहीं लगता। कारण कि यक्ष ने मेघ को उसकी यात्रा का आनुषङ्गिक फल पूर्ववर्ती पद्य 'त्वामारूढम्' में 'पथिक-वनिताओं का आश्वासन' बताया है, इसलिये 'उसके अनन्तर मुख्य फल बताना भी आवश्यक ही है और वह है 'ताञ्चावश्यम्' में भ्रातृजाया का दर्शन। इस पद्य का 'च' शब्द इन दोनों फलों का समुच्चायक है। मल्लि० ने व्याख्या करते समय इस 'च' का अर्थ ही नहीं बताया। यात्रा के दोनों फल बता देने के बाद 'शुभ शकुन' के दो पद्य आते हैं 'मन्दं मन्दम्' 'कर्तुं यच्च'। पहिले में 'अनुकूल वायु, एवं वामस्थित चातक का नदन और दूसरे में 'शिलीन्ध्रों का उद्भव एवं हंस'। इस तरह शकुन भी बता देने के बाद [आपृच्छस्व] रामगिरि से बिदा लेकर यात्रा मार्ग बताने के लिए 'मार्गं मत्तः' पद्य आता है। इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिये प्रकरण-समन्वय की दृष्टि से 'त्वामारूढम्' और 'ताञ्चावश्यम्' तदनन्तर 'मन्दं मन्दम्' और 'कर्तुं यच्च' यही पद्य-क्रम उचित है। का० पा० का भी यही मत है। शारदारञ्जन राय और मोरेश्वर काले ने भी यही पद्य क्रम दिया है, जो हमने माना है ॥९॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्वः[1]।
गर्भाधानक्षण[2] परिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते[3] नयनसुभगं[4] खे भवन्तं बलाकाः ॥१०॥

अन्वयः—अनुकूलः पवनः त्वां मन्दं मन्दं यथा नुदति। अयं सगन्धः चातकः ते वामः (सन्) मधुरं नदति। गर्भाधानक्षणपरिचयात् खे आबद्धमालाः बलाकाः नयन-सुभगं त्वां नूनं सेविष्यन्ते।

पदार्थः—मन्दं मन्दम्=धीरे-धीरे। यथा=अनुरूप, ठीक ही। नुदति=प्रेरणा करता है, ले जाता है। सगर्वः=अभिमानी। वामः= बायाँ, बांई ओर स्थित। नदति=शब्द करता है, बोलता है। गर्भाधान-क्षण-परिचयात्=गर्भ धारण करने (संभोग) के आनन्द के अभ्यास के कारण। खे=आकाश में। आबद्ध-मालाः=पंक्तियाँ बाँधे हुए। नयन-सुभगम्=आंखों को सुन्दर लगने-वाले। बलाकाः=बक-स्त्रियाँ। नूनम्=अवश्य, सेविष्यन्ते=सेवा करेंगी, पास पहुँचेंगी।

भाषानुवादः—अनुकूल पवन तुझे धीरे-धीरे ठीक ही ले जा रहा है; यह अभिमानी चातक तेरे बाँई ओर स्थित होकर मीठा-मीठा बोल रहा है। गर्भाधान के आनन्द के अभ्यास के कारण आकाश में पङ्क्तियाँ बाँधे हुए बगुलियाँ आँखों को सुन्दर लगने वाले तेरे पास अवश्य पहुँचेंगी।

व्याकरणम्—मन्दं मन्दम्=यह 'भृशार्थ' में (अधिकता को सूचित करने के अर्थ में) द्विरुक्ति है। इसका अर्थ 'बहुत धीरे' है। वामन का 'मन्दं मन्दमित्यत्र प्रकारार्थे द्विर्भावः' यह कहना गलत है, क्योंकि यहां 'मन्दं मन्दं' से मन्द-सा वा कुछ मन्द अर्थ विवक्षित नहीं है। साथ ही 'प्रकारार्थे द्वित्वं कर्मधारयवत्' होता है, इसलिए यहाँ समास होने पर 'मन्द-मन्दं' होना चाहिए था

१—ते सगन्धः मल्लिना०। २—गर्भाधानक्षणपरिचयं वि०, क्षम० स्थिर०। ३—प्रेक्षिष्यन्ते। ४—सुखदम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न कि 'मन्दं मन्दम्'। इस प्रकार 'मन्दं-मन्दं' का 'अर्थ बहुत धीरे-धीरे' ही है। वाम:=वामस्थ:। नुदति=√नुद् (प्रेरणा करना) (तुदा० प०), लट् प्र० पु० एक०। नदति=√नद् (अव्यक्त शब्द करना) (भ्वा० प०) लट् प्र० पु० एक०। गर्भाधानक्षरण०=गर्भस्य आधानं तदेव क्षण: (उत्सव:) तस्मिन् परिचयात् (स० तत्पु०)। आबद्धमाला:=आबद्धा: माला: याभि: (बहुव्री०) ता:। नयनसुभगम्=नयनयो: सुभग: (शेषषष्ठ्या समास:) तम् सेविष्यन्ते=√सेव् (भ्वा० आ०) लृट्, प्र० पु० एक०।

विशेष:—यथा=मल्लि० ने इसका अर्थ 'सदृश' 'ठीक' किया है, परन्तु सारोद्धारिणी और सुमतिविजय इसे पद्य के पूर्वार्द्ध में आए हुए उपवाक्यों को उत्तरार्ध में दिए गए प्रधान-वाक्य के साथ जोड़ने वाले संयोजक 'ज्यों' के अर्थ में लेते हैं। ऐसा करने से पद्यार्थ ऐसा होगा—'ज्यों ही अनुकूल वायु तुझे धीरे-धीरे ले जाएगी और यह अभिमानी चातक तेरे बांई ओर स्थित होकर मीठा-मीठा बोलेगा, गर्भाधान-रूपी आनन्द के अभ्यास के कारण आकाश में पंक्तियाँ बांधे हुए बगुलियाँ······सेवा करेंगी'। वामश्चायम्—इस सम्बन्ध में विल्सन महोदय यह पद्य देते हैं—'बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसंज्ञिता: खगा:। मृगा वा वामगा दृष्टा: सैन्यसम्पद्बलप्रदा:। मोर, चातक आदि पक्षियों का तथा हरिणों का बाईं ओर से होकर जाना शुभ शकुन है।

सगर्व:—इसका पाठान्तर 'सगन्ध:' है। गन्ध गर्व को कहते हैं। इसका दूसरा अर्थ 'सम्बन्धी' भी है जो इस स्थल में भी ठीक बैठता है, क्योंकि कविता की दृष्टि से 'बादल' और 'चातक' का परस्पर बड़ा सम्बन्ध है। देखिए—अभि० शाकु० V 'सर्व: सगन्धेषु विश्वसिति'।

गर्भाधानक्षण०—कुछ टीकाकार—गर्भाधाने=गर्भग्रहणावसरे क्षणं क्षणमात्रं परिचय: संगम: तस्मात् 'गर्भग्रहण के अवसर में क्षण भर के लिए ही मेल होने के कारण' यह अर्थ करते हैं। सुमतिविजय ने इसी अर्थ को माना है। पर क्षण शब्द से यहाँ उत्सव, आनन्द अर्थ ही लेना उपयुक्त है। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में—'दम्पति बगुलियाँ गर्भाधान के समय एक दूसरे को रिझाने के लिए आकाश में ऊँची उड़ान भरकर काले मेघ की ऊँचाई तक पहुँचेंगी।

सेविष्यन्ते नयन०=देखिए V मृच्छ० २३ 'प्रोड्डीयेव बलाकया सरभसं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सोत्कण्ठमालिङ्गितः (मेघः), 'बलाका' का सदा स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है, अतः 'बलाका' का बकपत्नियाँ अर्थ है ॥१०॥

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां[1]
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।
आ कैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥

अन्वयः—यत् च महीम् उच्छिलीन्ध्रातपत्रां कर्तुं प्रभवति, तत् श्रवणसुभगं ते गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्काः बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः राजहंसाः नभसि आ कैलासात् भवतः सहायाः सम्पत्स्यन्ते ।

पदार्थः—यत्=जो (गर्जित)। महीम्=पृथ्वी को। उच्छिलीन्ध्रातपत्राम्=उठी हुई (ऊपर प्रकट हुई) कन्दलिका (खुम्ब, छत्रक आदि) रूपी छत्रों वाली। कर्त्तुं प्रभवति=करने को समर्थ है। श्रवणसुभगम्=कानों को सुख देने वाला। बिसकिसलय०=मृणाल (भिस) के अग्रभाग के टुकड़ों को मार्ग का भोजन बनानेवाले। नभसि=आकाश में। आ कैलासात्=कैलास पर्वत तक। भवतः=तुम्हारे। सहायाः=साथ जानेवाले। "सहायास्तु सयात्रः स्यात्" इति शब्दार्णवे। सम्पत्स्यन्ते=हो जाएंगे।

भाषानुवादः—जो पृथ्वी को उठी हुई कन्दलिकाओं (छत्रक, खुम्ब) रूपी छत्रों वाली बनाने में समर्थ है, उस कानों को सुख देनेवाले तुम्हारे गर्जन को सुनकर मानसरोवर के लिए उत्सुक, कमल-नाल (भिस) के अग्रभाग के टुकड़ों को पाथेय (मार्ग का भोजन) बनाये हुए राजहंस कैलास तक तुम्हारे साथी बन जायेंगे।

व्याकरणम्—कर्त्तुम्=√कृ (तना० उभ०) तुमुन्नन्त। उच्छिलीन्ध्रातपत्राम्=उद्गतानि शिलीन्ध्राणि एव आतपत्राणि यस्याम् (बहुव्री०)। प्रभवति=प्र√भू 'होना' (भ्वा० प०), लट् प्र० पु० एक०। श्रुत्वा=√श्रु 'सुनना' (भ्वा० प०)+क्त्वा। मानसोत्काः=मानसे सरसि 'उत्काः (स० तत्पु०)। 'उत्क उन्मनाः' इति निपातनात्साधुः। बिसकिसलय०=बिसस्य किसलयानि (ष० तत्पु०) तेषां छेदाः (ष० तत्पु०) एव पाथेयं, तदस्ति येषाम् इति (ब० व्री०। राजहंसाः का विशे०। पाथेयवन्तः—पथि साधु पाथेयं पथि भोज्यं तद्वन्तः। "पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्"। नभसि=नभस् शब्द नपुं०, सप्त० एक०। आ कैलासात्=आ

१—उच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां मल्लि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निपात के योग से मर्यादा में पञ्चमी का प्रयोग होता है । सम्पत्स्यन्ते=सम्+√पद् 'जाना' (दिवा० आ०), लृट् प्र० पु० एक० ।

विशेष:—उच्छिलीन्ध्राम्=उद्गतानि शिलीन्ध्राणि, देखिए—हलायुध V. १५ 'छत्रके वृक्षजातौ च शिलीन्ध्रं स्मर्यते बुधैः । श्रवणसुभगं खे०, देखिए ऋतु सं० II, 3—'वलाहकाः श्रोत्रमनोहरस्वनाः ।'

मानसोत्काः—देखिए—विक्र० IV. १४ 'मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसाम् । कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिञ्जितम् । और देखिए—उत्तरमेघ पद्य १६ 'यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टम्' । मानस झील के उद्भव के बारे में रामायण में इस प्रकार कहा गया है—'कैलासशिखरे रम्यं मनसा निर्मितं सरः । ब्रह्मणा प्रागिदं यस्मात्तदभून्मानसं सरः' । विल्सन के अनुसार यह झील हिमालय और कैलास के मध्य में स्थित है । कैलास पर्वत उत्तर की ओर हिमालय के समानान्तर स्थित है । यहाँ वर्षाकाल के प्रारम्भ में हंसों का विशेष निवास होता है । देखिए उत्तरमेघ पद्य १६ — 'यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टम् । न स्थास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्राप्य हंसाः ।।'

बिसकिसलयच्छेद०—देखिए—विक्र० VI. १५ 'पश्चात् सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं त्वं पाथेयमुत्सृज बिसं ग्रहणाय भूयः' और — अभि० शाकु० II. 'तेन हि गृहीतपाथेयो भव' ।

राजहंसाः=हंसविशेषाः; "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः" इत्यमरः । हंसों का नीर-क्षीर-विवेक प्रसिद्ध है । देखिये—पञ्च० कथामुख, 'हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्' और अभि० शाकु० VI. २८, 'हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः' ।

आ कैलासात्=कैलास पर्वत हिमालय के उत्तर में स्थित है और इसे शिव तथा पार्वती का निवास-स्थान कहा जाता है । शिव के मित्र कुबेर का भी यही निवास है । इस सम्बन्ध में पूर्वमेघ के पद्य ६० से ६२ और टीका देखिए ।।११।।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ।।१२।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—पुंसां वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलासु अङ्कितं तुङ्गम् अमुं प्रियसखं शैलम् आलिङ्ग्य आपृच्छस्व, काले काले भवतः संयोगम् एत्य यस्य चिर-विरहजम् उष्णं वाष्पं मुञ्चतः स्नेहव्यक्तिः भवति ।

पदार्थः—पुंसाम् = लोगों के । वन्द्यैः = आराधना के योग्य, पूजनीय । रघुपतिपदैः = रामचन्द्रजी के चरणों (चरणन्यासों) से । मेखलासु = मध्य भाग में, ढालू चट्टानों में । अङ्कितम् = चिह्नित, निशानोंवाले । तुंगम् = ऊँचे । प्रियसखम् = (अपने) प्यारे मित्र । अमुम् = इस । शैलम् = पर्वत (रामगिरि) को । आलिङ्ग्य = गले लगाकर । आपृच्छस्व = जाने की आज्ञा लो, बिदा लो । काले काले = प्रत्येक (वर्षा) काल में । संयोगम् = सम्पर्क (मेल) को । एत्य = पाकर । चिरविरहजं—देर के विरह से पैदा हुए । उष्णम् = गरम । वाष्पम् = आँसू । मुञ्चतः = छोड़ते हुए, बहाते हुए । स्नेह-व्यक्तिः = प्रेम का आविर्भाव ।

भाषानुवादः—लोगों के आराधन-योग्य रामचन्द्रजी के चरणों (चरण-न्यासों) से मध्य-भाग में चिह्नित हुए, ऊँचे इस (अपने) प्रिय मित्र पर्वत (रामगिरि) को आलिंगन करके (इससे) जाने की आज्ञा लेना, जिसका कि प्रत्येक (वर्षा) काल में तुमसे भेंट होकर देर के विरह से उत्पन्न गर्म-गर्म अश्रुजल को बहाते हुए (तुम्हारे लिए) प्रेम-प्रकाशन होता रहता है ।

व्याकरणम्—रघुपतिपदैः—रघूणां पतिः (ष० तत्पु०) तस्य पदानि तैः अनुक्ते कर्तरि तृतीया । रघुपति के रूप हरि शब्द के रूप के समान होंगे । समास के अन्त में पति शब्द आने से उसके रूप 'पतिः समास एव घिसंज्ञा' इस नियम से हरिवत् होते हैं । आपृच्छस्व = आ + √प्रच्छ् (पूछना) (तुदा० प०) लोट् म० पु० एक० । 'आ' उपसर्ग के योग में यह धातु 'आङि नु प्रच्छ्योः' से आत्मनेपदी हो जाती है । भास ने स्वप्न वास० I में 'आपृच्छामि भवन्तौ' परस्मैपद का प्रयोग नियम-विरुद्ध किया है । प्रियसखम् = प्रियश्चासौ सखा च (कर्मधा०) तम् । 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इससे 'टच्' प्रत्ययान्त समास हुआ । इसके रूप सखि के समान न होकर 'राम' की तरह होंगे । आलिङ्ग्य = आ + √लिङ्ग् (जाना) (भ्वा० प०) + य (ल्यप्) । वन्द्यैः = √वन्द् (भ्वा० आ०) + य (कृत्यप्र०) तृ० बहु० । कालेकाले = वीप्सायां द्विरुक्तिः । एत्य = आ + √इ, (जाना) (अदा० प०) + य (ल्यप्) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिरविरहजम्=चिरविरहात् जातः चिरविरहजः तम्। मुञ्चतः=√मुच् (छोड़ना) (तुदा० प०+अत्, ष० एक०)। स्नेहव्यक्तिः=√स्निह्, (दिवा० प०) घ भावे स्नेहः। स्नेहस्य व्यक्तिः (वि+√अञ्ज्+क्तिन्, भावे), ष० तत्पु०।

विशेषः—आपृच्छस्व=क्षीरस्वामी (अमरकोश III. २. ७) अपनी टीका में कहते हैं:—आपृच्छनम्=आङ्पूर्वः प्रच्छिरालिङ्गनादिनानन्दनार्थः, यथा—आपृच्छस्व प्रियसखममुम्। एवं√प्रच्छ् का 'आ' उपसर्ग के साथ गले लगाकर प्रसन्न होना, आदर करना, जाने की आज्ञा लेना, बिदा लेना अर्थ है।

भवतो यस्य संयोगमेत्य=सुमतिविजय ने 'यस्य' को 'संयोग' के साथ तथा 'भवतः' को 'स्नेहव्यक्तिः' के साथ मिलाया है, जिसका यह अर्थ हुआ 'जिस (पर्वत) को मिलकर तुम्हारा प्रेम प्रकाश होता रहता है।' परन्तु मल्लि० द्वारा किया गया अर्थ ही अच्छा है, क्योंकि ग्रीष्म से तपे हुए पर्वतों से ही प्रथम वर्षा में गर्म जल टपकता है न कि मेघ से। अतएव 'चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम्' इस स्थान पर वल्लभ कहता है—'पर्वता हि जलवृष्ट्या स्निग्धा भवन्ति वाष्पं च मुञ्चन्ति' ॥१२॥

मार्गं तावच्छृणु[1] कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं[2]
संदेशं मे तदनु जलद ! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्[3]।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य[4] ॥१३॥

अन्वयः—(हे) जलद ! तावत् कथयतः (मत्तः) त्वत्प्रयाणानुरूपं मार्गं शृणु, यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य, क्षीणः क्षीण स्रोतसां परिलघु पयः उपभुज्य च गन्तासि; तदनु श्रोत्रपेयं मे सन्देशं श्रोष्यसि।

पदार्थः—तावत्=अब, पहले। त्वत्प्रयाणानुरूपम्=तुम्हारी यात्रा के अनुकूल। यत्र=मार्ग में। खिन्नः खिन्नः—थक-थककर। शिखरिषु=पर्वतों पर। पदं न्यस्य=पैरों को रखकर [विश्राम करके]। क्षीणः क्षीणः=बार-बार दुर्बल हुआ। स्रोतसाम्=नदियों का। परिलघु=हल्का। पयः—जल।

१—मत्तः शृणु, का० पा०। २—अनुकूलम्। ३—श्रव्यबन्धम् पा०। ४—चोपयुज्य का० पा० आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपभुज्य=उपभोग करके, पी करके। गन्तासि=जायेगा। तदनु=फिर (मार्ग सुनने के बाद)। श्रोत्रपेयम्=कानों द्वारा पीए जाने योग्य अर्थात् अतितृष्णा से सुनने योग्य। सन्देशम् श्रोष्यसि=सन्देश सुनेगा।

भाषानुवादः—हे मेघ, पहले (मुझसे) अपनी यात्रा के अनुकूल मार्ग सुन ले, जो कि मैं कहता हूं और जिसमें थक-थककर (तू) पर्वतों पर विश्राम करके एवं बार-बार दुर्बल हुआ नदियों के हल्के जल का उपभोग करके जायगा; तब कानों को प्रिय लगनेवाले मेरे सन्देश को सुनेगा।

व्याकरणम्—जलद=जलं ददातीति जलदः। जलम्+√दा (जु० उ० प०) +क सम्बो० जलद ! कथयतः+√कथ् (कहना) (चुरा० उभ०)+अतः ष० एक०। त्वत्-प्रयाणानुरूपम्=तव प्रयाणं तस्य अनुरूपः तम (ष० तत्पु०) प्रयाणम् प्र+√या (अ० प०) अन (ल्युट्) रूपस्य सदृशो योग्यो वा अनुरूपस्तम्। शृणु=√श्रु (सुनना) (भ्वा० प०), लोट् म० पु० एक०। खिन्नः खिन्नः="नित्यवीप्सयोः" इति नित्यर्थे द्विर्भावः : खिन्नः√खिद (दुःखी होना), (तुदा० प०),+न (क्त) शिखरिषु=शिखरिन् का स० बहु०। न्यस्य=नि+√अस् (फेंकना) (दिवा० प०)+य (ल्यप्) क्षीणः क्षीणः=यहाँ भी कृदन्त होने से पहले के समान द्विरुक्ति है। क्षीणः√क्षीण (नाश होना) (भ्वा० प०) +न (क्त)। गन्तासि=√गम (जाना) (भ्वा० प०) लुट्, म० पु० एक०। श्रोत्रपेयम्=श्रोत्राभ्यां पेयं, श्रूयते अनेन इति√श्रु+ष्ट्रन्—श्रोत्रम्। (तृ० तत्पु०)। पेयम्=√पा (पीना) भ्वा० प०+य (कृत्यप्र० कर्मणि) श्रोष्यसि=√श्रु (भ्वा० प०), लृट्, म० पु० एक०। परिलघु=परि=अतिशयेन लघु प्रादि-तत्पु०, पयः का विशे०। स्रोतसाम्=स्रोतस् (नपुं०) का ष० बहु०। उपभुज्य=उप√भुज् (खाना) (रुधा० उभ०) +य (ल्यप्) तदनु=तत्+अनु। यहाँ 'अनुर्लक्षणे' इस सूत्र से कर्म-प्रवचनीय है। फिर अनु के योग में "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" से तत् में द्वितीया हुई।

विशेषः—'मार्गं तावत्' का पाठान्तर 'मार्गं मत्तः' है 'मत्तः' का अर्थ 'मुझ से' है।

श्रोत्रपेयम्=इसका पाठान्तर श्रव्यबन्धम् है, जिसका अर्थ जिस (सन्देश का शब्द-विन्यास (कानों को) तृप्त करनेवाला है। इस पाठार्थ का 'श्रोत्रपेयम्' वाले पाठार्थ से विशेष भेद नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'उपभुज्य'=का पाठान्तर 'उपयुज्य' है जो कि अर्थ में समान ही है।

परिलघु पय:=मल्लि० ने परिलघु का अर्थ 'गुरुत्वदोषरहितम् किया' है। वारि अतिशय का बोधक है। पहाड़ी नदियों का पानी पत्थरों के टकराने के कारण बहुत हल्का हो जाता है और हल्का पानी स्वास्थ्य के लिए बड़ा अच्छा कहा गया है। देखिए—वाग्भट 'उपलास्फालनाक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः। हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवन्त्यमूः' ॥१३॥

अद्रेः शृंगं हरति[1] पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
[2]र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्[3] ॥१४॥

अन्वय—**पवनः अद्रेः शृङ्गम् हरति किंस्वित् इति उन्मुखीभिः मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः चकित-चकितम् दृष्टोत्साहः (त्वम्) सरसनिचुलात् अस्मात् स्थानात् पथि दिङ्नागानाम् स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् उदङ्मुखः (सन्) खम् उत्पत।**

पदार्थः—अद्रेः=पहाड़ की। शृङ्गम्=चोटी को। हरति=ले जाता है। किंस्वित्=क्या? उन्मुखीभिः=ऊँचे मुख किए हुए। मुग्धसिद्धांगनाभिः=भोली-भाली सिद्धों की स्त्रियों के द्वारा। चकित-चकितम्=बहुत आश्चर्य से। दृष्टोत्साहः=देखे गए उत्साहवाला। सरसनिचुलात्=गीली स्थल की बेतों से युक्त पथि=मार्ग में। दिङ्नागानाम्=दिशाओं के हाथियों के। स्थूलहस्तावलेपान्=वड़ी-वड़ी सूंड़ों के प्रहारों को। परिहरन्=छोड़ता हुआ (उनसे) बचता हुआ। उदङ्मुखः=उत्तर की ओर मुख किये हुए। खम्=आकाश को। उत्पत=उड जाना।

भाषानुवादः—क्या पवन पर्वत की चोटी को (उड़ाए) ले जा रहा है? इस विचार से ऊपर मुंह किये हुए भोली भाली सिद्धों की स्त्रियां बड़े आश्चर्य से तेरा उत्साह देखेंगी। तू गीली निचुलों (स्थल की बेतों) वाले इस स्थान से दिग्-गजों (दिशाओं के हाथियों) के वड़ी-बड़ी सूंड़ों के प्रहारों से बचता हुआ उत्तर दिशा की ओर मुख किये हुए आकाश में उड़ जाना।

१—वहति वल्ल०। २—दृष्टोच्छ्रायः वल्ल०, वि० ३—अवलेहान्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—अद्रेः=अद्रि का ष० एक०। हरति=√हृ (ले जाना) (भ्वा० उभ०)। लृट्, प्र० पु० एक०। किंस्वित्=(अव्यय) किंस्विच्छब्दो वितर्काऽर्थे उन्मुखीभिः=उद्=ऊर्ध्वं+मुखं यासां ताः ताभिः (बहुव्री)०। मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः—मुग्धाभिः सिद्धानामङ्गनाभिः (ष० तत्पु०)। दृष्टोत्साहः=दृष्ट उत्साहः यस्य सः (ब० व्री०)। दृष्ट=√दृश् (देखना) (भ्वा० प०) + क्त उत्साहः+उत्√सह्+घञ् भावे। चकित-चकितम्="प्रकारे गुणवचनस्य" इति प्रकारार्थे द्विर्भावः। सरसनिचुलात्=सरसाः निचुलाः यस्मिन् (ब० व्री०) स्थानात् का विशे०। दिङ्नागानाम्=दिशां नागाः हस्तिनस्तेषाम् (ष० त०) स्थूलहस्तावलेपान्=स्थूला ये हस्ताः तेषाम् अवलेपान् परिहरन्=परि+√हृ (ले जाना) (भ्वा० उभ०),+अत् प्र० एक०। उदङ्मुखः=उदङ्, उत+अञ्चु (जाना) (भ्वा० प०) क्विप्। उदङ् मुखं यस्य सः (ब० व्री०)। उत्पत=उत्+√पत् (गिरना) (भ्वा० प०), लोट् म० पु० एक०।

विशेष—मल्लिनाथ के अनुसार इस पद्य में कवि श्लेष द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वी दिङ्नागाचार्य के प्रति संकेत करता हुआ अपनी काव्य-कला को सम्बोधित करके कहता है, यह व्यंग्यार्थ है।

पदार्थः—पवनः=वायु-जैसी तीव्र गति। अद्रेः—पहाड़-जैसे ऊंची कोटि के विद्वान् (दिङ्नाग) की। शृंगम्=शृंग सी ऊंची प्रतिभा को। हरति किंस्वित्?=हर लेती है, पछाड़ देती है क्या? उन्मुखीभिः=अचम्भित हो कर ऊपर मुंह किए हुए। मुग्धसिद्धांगनाभिः—प्रसन्न हुए सिद्ध (निपुण) कवियों तथा स्त्रियों द्वारा। दृष्टोत्साहः=देखे गये उत्साहवाला। सरस-निचुलात्=जहाँ रसिक निचुल (इस नाम वाला तुम्हारा प्रशंसक) रहता है। दिङ्नागानाम्=आचार्य दिङ्नाग के (आदर-अर्थ में बहुवचन) स्थूलहस्तावलेपान्= हाथ से निर्देश किये गये मोटे-मोटे दोषों को परिहरन्=छोड़ते हुए। खम्=कल्पना के आकाश में, कल्पनालोक में। उत्पत=चढ़ जाओ, उड़ जाओ।

भाषानुवादः—(हे मेरी कविते) तेरी तीव्र गति उच्चकोटि के विद्वान् आचार्य दिङ्नाग की ऊँची प्रतिभा को [भी] पछाड़ गई है क्या? इस अचम्भे में, मुंह बाए, प्रसन्न हुए सिद्ध कवि लोग एवं (उनकी) पत्नियाँ तेरे उत्साह को देखेंगी। तू इस स्थान से—जहाँ तेरा प्रशंसक सहृदय निचुल रहता है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आचार्य दिङ्नाग द्वारा हस्त-निर्देश पूर्वक बताए गये (अपने) मोटे-मोटे दोषों को त्यागती हुई खड़े-मस्तक होकर कल्पनालोक में उड़ जा ।

व्याकरणम्:—(उपर्युक्त व्यंग्यार्थ का) मुग्ध-सिद्धाङ्गनाभिः = मुग्धाः (प्रसन्नाः) ये सिद्धाः (सिद्धकवयः) अङ्गनाश्च ताभिः । स्थूलहस्तावलेपान् = स्थूला ये हस्तनिर्दिष्टा अवलेपाः (मध्यम-पदलोपी कर्म०) तान् । अवलेपाः दोषाः (अवलेपस्तु गर्वः स्याल्लेपनं दूषणेऽपि च—इति विश्वः) ।

इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि निचुल के विषय में, जिसे कालिदास का सहाध्यायी कहा गया है, हमें मल्लिनाथ के कथन के अतिरिक्त और कुछ परिचय प्राप्त नहीं । मल्लिनाथ के अनुसार उसका नाम 'निचुल' इसलिए पड़ा कि उसने निचुल (स्थल बेंत) पर यह कविता रची थी— 'संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि । स्थित्वाऽनुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात्' । दिङ्नागाचार्य प्रसिद्ध बौद्ध लेखक था । उसने 'प्रमाण-समुच्चय' नामक ग्रंथ लिखा है । इस पुस्तक पर धर्मकीर्ति ने जो अन्य बौद्ध लेखक है, वार्त्तिक लिखे हैं । कुमारिल ने इन दोनों लेखकों की समालोचना की है । दिङ्नाग के कालिदास-समकालीन होने का प्रमाण दक्षिणावर्तनाथ से, जो कि मल्लिनाथ से पहले का टीकाकार है—विदित होता है; परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यहां किस दिङ्नाग से अभिप्राय है, क्योंकि साहित्य-जगत् में इस नाम के कई कवि हुए हैं । पाश्चात्त्य विद्वान् दिङ्नाग को कालिदास का समकालीन नहीं मानते । इस सम्बन्ध में प्रो० मैकडानल (Macdonell) का यह कथन है—'यह विचार अत्यधिक सन्देहास्पद है । फिर यह भी तो अनिश्चित है कि मल्लिनाथ का बौद्ध आचार्य दिङ्नाग से ही अभिप्राय है । तीसरे, बौद्धमतानुसार यह कहना कि दिङ्नाग वसुबन्धु का शिष्य था—इस बात पर कुछ महत्त्व नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यह कथन सोलहवीं शताब्दी तक निर्धारित नहीं किया जा सका । चौथे—वसुबन्धु छठी शताब्दी में हुआ—इस बात की पुष्टि विशेषतः विक्रमादित्यवाले सिद्धान्त पर आधारित है और यह चीन वालों के इस प्रमाण के विरुद्ध है कि वसुबन्धु की कृतियों का चीनी भाषा में ४०४ ई० में अनुवाद किया गया ।' इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित नहीं कि स्वयं कालिदास को मल्लिनाथ द्वारा दिया गया अर्थ विवक्षित है । फिर यदि 'स्थूलहस्तावलेपान्' का अर्थ "हस्त-संकेत द्वारा दर्शाए गए प्रधान-प्रधान दोषों को" मान भी लिया जाय,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तो भी 'दिङ्नागानाम् में प्रयुक्त बहुवचन सर्वथा अनुपपन्न प्रतीत होता है। क्योंकि दिङ्नाग जो कि कवि का कविता-क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्वी था और जिसने कालिदास के 'स्थूलहस्तावलेपन' बताये हैं, उसके प्रति बहुवचन द्वारा आदरभाव दिखाना संभव प्रतीत नहीं होता। श्री शारदारञ्जन राय के अनुसार 'निचुल' कवि की अपनी ही उपाधि थी, जो उसने 'संसर्गतो—आदि ऊपर कहे पद्य रचने पर प्राप्त की थी।

सिद्ध=√सिध् (जाना) (भ्वा० प०)+त (कर्तरि)। सिद्धों में दैवी शक्ति होती है। ये देव-योनि के हैं और सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य भाग में रहते हैं। इनमें निम्न प्रकार की आठ सिद्धियां होती हैं—अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः।

दिङ्नागानाम्=आठ दिशाओं के अधिष्ठातृ-रूप हाथियों के ये नाम हैं—'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।' अमर० I १। उत्तर दिशा का अधिष्ठाता एक ही गज है, तो यहां 'दिङ्नागानाम्' इस बहुवचन के समर्थन में सारोद्धारिणी का कथन है—बहुत्वमेवात्र विवक्षितं यदम्बुदं प्रति यक्षशिक्षेयम्। दिगन्तराणि परिहृत्य त्वयोत्तरैव हरित् तूर्णं गन्तव्येति भावः।

अद्रेः—इससे निःसन्देह रामगिरिपर्वत अभिप्रेत है न कि चित्रकूट जैसा मल्लिनाथ का विचार है। देखिए पद्य संख्या १ का 'विशेष' भाग।

स्थूलहस्तावलेपान्=सुमतिविजय ने इसकी इस प्रकार व्याख्या की है—'पुष्टशुंडादण्डस्पर्शान्', सारोद्धारिणी के अनुसार 'पीवरकराघातान्' है।

दृष्टोत्साहः—इसका पाठान्तर 'दृष्टोच्छ्रायः' (दृष्ट उच्छ्राय उन्नतिर्यस्य) भी अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि मेघ ऊँचाई के कारण ऊपर मुख किये हुए सिद्धों की स्त्रियों का ध्यान विशेषरूप से आकर्षित करता है ॥१४॥

रत्नच्छाया[1]व्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते[2] ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥१५॥

अन्वयः—रत्न-च्छाया-व्यतिकर इव प्रेक्ष्यम् आखण्डलस्य एतत् धनुः-

---

१—रत्नच्छाय०, का० पा०। २—आलप्स्यते, वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खण्डम् पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति, येन (धनुःखण्डेन) ते श्यामम् वपुः स्फुरित-रुचिना बर्हेण गोपवेषस्य विष्णोः (श्यामम् वपुः) इव अतितराम् कान्तिम् आपत्स्यते।

पदार्थः—रत्नच्छायाव्यतिकर इव=रत्नों की कान्तियों का सम्मिश्रण-सा प्रेक्ष्यम्=दिखाई देने वाला। पुरस्तात्—सामने। वल्मीकाग्राद्=बांबी (दीमकों की पहाड़ी) के ऊपर से। आखण्डलस्य+इन्द्र का। धनुःखण्डम्+धनुष का टुकड़ा। प्रभवति=प्रकट हो रहा है (निकल रहा है)। ते=तेरा। वपुः (नपुं०, प्र० एक०)=शरीर। स्फुरित-रुचिना=चमकती हुई कान्तिवाले। बर्हेण= मोर के पंख से। गोपवेषस्य=गोपाल का वेष धारण किये हुए। विष्णोः—कृष्ण के। अतितराम्=बहुत अधिक। कान्तिम्=शोभा को। आपत्स्यते=प्राप्त करेगा।

भावानुवादः—रत्नों की कान्तियों का सम्मिश्रण-सा दिखाई देने वाला यह इन्द्र-धनुष का टुकड़ा सामने वाम्बी के अग्रभाग (ऊपर) से निकल रहा है, जिससे तेरी साँवली देह इस तरह अत्यधिक चमक उठेगी जिस तरह चमकीली कान्ति वाले मोर के पंख से गोपवेशधारी विष्णु (कृष्ण) की (सांवली देह)।

व्याकरणम्ः—रत्नच्छाया=रत्नानां छायानां व्यतिकरो मिश्रणम्। व्यतिकर=वि+अति+√कृ√अप् भावे। प्रेक्ष्यम् अ+√ईक्ष् (भ्वा० आ)+य। धनुः का विशे० आखण्डलस्य=आ समन्तात् खण्डयति पर्वतान् आखण्डलः तस्य। आ+√खण्ड् (चुरा० प०)+अल (कलच्)। पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि इति अस्ताति स्वार्थे। यहां 'पूर्व' पुर में 'अस्ताति च' में बदल गया है। स्फुरितरुचिना=स्फुरिता रुचिर्यस्य (ब० व्री०)। गोपवेषस्य=गाः पाति इति गोपः, गोपस्य वेषो यस्य स तस्य (ब० व्री०)। धनुःखण्डम्=इसकी जगह वल्लभ ने 'धनुष्खण्डम्' यह पाठ दिया है और इसका समर्थन पाणिनि के सूत्र "नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य" (VIII. ३. ४१), से किया है, परन्तु चन्द्रगोमिन् ने 'समासेऽनुत्तरस्य' (VI. ४. ३,) इस सूत्र में 'नित्य' को छोड़ दिया है और वह 'धनुःखण्डम्' इस रूप को स्वीकार करता है। यही पाठ मल्लि० तथा अन्य टीकाकारों ने दिया है। अतितराम्=अति+तरप्+आम् (तुलनात्मक प्रत्यय) यह शब्द 'कान्तिम्' का विशेषण है। इसे 'आपत्स्यते,' का क्रिया वि० भी मान लिया जा सकता है। आपत्स्यते==आ√पद् (दिवा० आ०), प्राप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करना, लृट् प्र० पु० एक० ।

विशेष:—रत्नच्छायव्यतिकर:=यह पाठ भी उचित प्रतीत होता है। 'छाया बाहुल्ये' २।४।२२ इस सूत्र से रत्न-बाहुल्य के कारण 'रत्नानां छाया' इति रत्नच्छायम्, यह छायान्त तत्पुरुष नपुंसक बन जाता है। पुरस्तात्=सारोद्धारिणी और सुमतिविजय इसकी व्याख्या 'पूर्वस्यां दिशि' इस प्रकार करते हैं।

वल्मीकाग्रात्=इस पर सारोद्धारिणी टीका इस प्रकार है—"इन्द्रचापं किल वल्मीकान्तर्व्यवस्थितमहानागशिरोमणिकिरणसमूहात्समुत्पद्यते।" सरस्वतीकार ने वल्मीक का अर्थ 'सातपो मेघ:' किया है, परन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया। एक दूसरे टीकाकार रामनाथ ने प्रमाण दिया है। 'वल्मीक: सातपो मेघ: वल्मीक: सूर्य इत्यपि'। जब आतप वाले मेघ पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तभी वे इन्द्रधनुष के आकार में दिखलाई देती हैं। इसी कारण वराहमिहिर ने इन्द्रधनुष की उत्पत्ति इस प्रकार कही है—'सूर्यस्य विविधवर्णा: पवनेन विघट्टिता: साभ्रे वियति धनु:-संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनु:। केचिदनन्तकुलोरगनिश्वासोद्भूतमाहुराचार्या:।'

गोपवेषस्य—पौराणिक कथा के अनुसार कृष्ण विष्णु-अवतार के रूप में बाल्यावस्था में गोपाल थे। इसका वर्णन हरिवंश और भागवत पुराण में आया है।

आपत्स्यते=विल्सन ने इसका पाठान्तर 'आलप्स्यते' दिया है, किन्तु उसका अर्थ 'प्राप्त करेगा' नहीं बनेगा, क्योंकि आ+लभ् का अर्थ मारना होता है, देखिए अमरकोश "आलम्भ-पिञ्ज···वधा अपि" १५।११५; २ पूर्वमेघदूत ४७।

इस पद्य में पूर्णोपमा अलंकार है ॥१५॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः[1]
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यःसीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय[2] एवोत्तरेण ॥१६॥

अन्वयः—कृषिफलम् त्वयि आयत्तम् इति (हेतोः) भ्रूविलासानभिज्ञैः प्रीतिस्निग्धैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः (सन्) मालं क्षेत्रं सद्यः सीरोत्कषणसुरभि (यथा स्यात् तथा) आरुह्य किञ्चित् पश्चात् व्रज, भूयः लघुगतिः (सन्) उत्तरेण एव (व्रज)।

१—भ्रूविकारानभिज्ञैः मल्लि०। २—किञ्चिदेवोत्तरेण वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—कृषिफलम्=खेती का फल (अन्न) । त्वयि=तुम पर । आयत्तम्=अवलम्बितम्, निर्भर है । भ्रूविलासानभिज्ञैः=भौंहों के विलासों से अपरिचित, भोलीभाली चितवनवाली । प्रीतिस्निग्धैः प्रेम से सनी हुई । जनपदवधूलोचनैः=ग्रामीण स्त्रियों की आँखों से । पीयमानः=पीया जाता हुआ, अर्थात् देखा जाता हुआ । मालम् क्षेत्रम्=मालनामक क्षेत्र (पठार) पर । सद्यः=शीघ्र ही । सीरोत्कषणसुरभि=जिससे कि हल के चलाने से सुगन्धि पैदा हो जाय उस तरह । आरुह्य=चढ़कर । किंचित् पश्चात्=कुछ पश्चिम को अथवा पीछे को । व्रज=जाना । लघुगतिः (सन्)=शीघ्र गतिवाला (होता हुआ) ।

भाषानुवादः—खेती का फल (अन्नादिक) तुम पर निर्भर है—इस कारण ग्रामीण स्त्रियों की भौंहों के विलास से अपरिचित प्रेमभरी आँखों से देखे जाते हुए (तुम) 'माल' नामक पठार पर शीघ्र ही ऐसा चढ़कर जिससे कि हल चलाने से सुगन्धि पैदा हो जाय, कुछ पश्चिम को जाना; फिर शीघ्र गति (होते हुए) तुम उत्तर की ओर (मुड़ जाना) ।

व्याकरणम्—आयत्तम्=आ+यम् (वश में होना), (भ्वा० प०)+क्त । भ्रूविलासानभिज्ञैः=भ्रुवोः विलासानाम् अनभिज्ञैः । न अभिज्ञानि अनभिज्ञानि (लोचनानि) तैः । प्रीतिस्निग्धैः=प्रीत्या स्निग्धैः (तृ० तत्पु०) । जनपदवधू०=जनपदस्य वधूनां लोचनैः (ष० तत्पु०) पीयमानः=√पा (पीना) । (भ्वा० प०) कर्मणि+शानच् । सद्यः=अव्यय । सीरोत्कषण०=सीरैर्हलैरुत्कषणेन सुरभि यथा यात्तथा; यह आरुह्य का क्रि० वि० है । वल्लभ इसे 'क्षेत्रं' का विशे० लेते हैं, परन्तु सारोद्धारिणी और सरस्वतीतीर्थ 'सीरोत्कषण क्षेत्रम्' एक पद मानकर इसे 'मालम्' की विशेषता बतलाने वाला बहुव्रीहि समास समझते हैं । इसका अर्थ इस प्रकार है—'जिस माल नाम के देश में हल चलाने से खेतों में सुगन्धि आ रही है ।' यह अन्तिम अर्थ अच्छा प्रतीत होता है । किञ्चित् पश्चात्='मनाक् पश्चिमभागेन' (सरस्वती तीर्थ), 'मनाक् पश्चिमभागाश्रितम्' (सारो०) । वल्लभ इसकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं—'किंचिन्मनागारुह्य पश्चादनन्तरम् ।

विशेषः—भ्रूविलासानभिज्ञैः=भ्रुवोः विलासाः तेषामनभिज्ञैः । देखिए—भट्टि० II. १५ स्त्रीभूषणं चेष्टितमप्रगल्भं चारूण्यवक्राण्यपि वीक्षितानि । ऋजूंश्च विश्वासकृतः स्वभावान् गोपाङ्गनानां मुमुदे विलोक्य' ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पीयमानः=इसका अर्थ उत्कण्ठा-भरी आँखों से इस प्रकार देखना जैसे आँखों द्वारा पी लिया गया हो । देखिए—रघु० II. 'पपौ निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोपिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्' और देखिए—'ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यः' ।

मालम्=मल्लि० और सरस्वती० इसका अर्थ 'उन्नतभूतलं' (पठार) करते हैं, परन्तु सुमति-विजय इसका 'मालाख्यं देशम्' अर्थ लेते हैं । सम्भवतः 'मालम्' से इस नाम का विशेष भूभाग अभीष्ट हो । विल्सन (Wilson) 'माल' को माल्दा (Malda) स्थान से, जो रतनपुर के उत्तर की ओर है, मिलाते हैं ।

सीरोत्कषणसुरभि—इस सम्बन्ध में देखिए मेघ० पद्य २१ 'जग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः' ॥१६॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

अन्वयः—आम्रकूटः सानुमान् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् अध्वश्रमपरिगतम् त्वाम् साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति । क्षुद्रः अपि संश्रयाय मित्रे प्राप्ते (सति) प्रथम-सुकृतापेक्षया विमुखः न भवति । यः तथा उच्चैः (सः) किम् पुनः ?

पदार्थः—आम्रकूटः=आम्रकूट नाम वाला । सानुमान्=पर्वत । आसारप्रशमित०=मूसलाधार वर्षा से वन की अग्नि को शान्त करनेवाले । अध्वश्रमपरिगतम्=मार्ग के श्रम से व्याप्त (थके हुए) । साधु=अच्छी प्रकार । मूर्ध्ना=चोटी पर । वक्ष्यति=उठाएगा । क्षुद्रः अपि=नीच भी । संश्रयाय=शरण के लिए । प्राप्ते (सति)=आने पर । प्रथमसुकृतापेक्षया=पहले किए गए उपकारों का विचार करके । विमुखो न भवति=विमुख (प्रतिकूल) नहीं होता, मुंह नहीं मोड़ता । तथोच्चैः=इस प्रकार से उन्नत (ऊँचे) का । किम् पुनः=फिर क्या (कहना) ?

भाषानुवादः—आम्रकूट पर्वत वर्षा की मूसलाधार से वन की आग को शान्ति कर देनेवाले, मार्ग (चलने) से थके हुए तुझे अच्छी तरह अपनी चोटी पर उठाएगा; नीच भी आश्रम के लिए मित्र के आने पर उसके पहले किए गए उपकारों का विचार करके मुंह नहीं मोड़ता; फिर जो इस प्रकार ऊंचा हो, उसका तो कहना ही क्या ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—सानुमान्=सानूनि अस्य सन्तीति+मतुप् । आम्रकूटः= आम्राः आम्रवृक्षाः कूटेषु शृंगेषु यस्य, अथवा आम्राणां कूटः समूहः यत्र (बहुव्री०) आसारप्रशमित०=आसारेण (आ+√सृ+घञ्, भावे आसारः) धारापातेन प्रशमितो वनोपप्लवो दावाग्निः येन (ब० व्री०)। ०वनोपप्लवम्—उप+√प्लु+ अप् भावे उपप्लवः (उत्पातः) । देखिए—उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोदितः' कुमा० । अध्वश्रमपरिगतम्=अध्वनः श्रमेण मार्गस्य खेदेन परिगतं व्याप्तम् । साधु=अव्यय । मूर्ध्ना=मूर्धन् का तृ० एक० । वक्ष्यति=√वह् (उठाना, ले जाना), (भ्वा० प०), लट् प्र० पु० एक० । संश्रयाय=संश्रय का च० एक० । सम्+√श्रि (आश्रय लेना, भ्वा० प०)+अप् भावे तस्मै । प्राप्त=प्र+√आप् (स्वा० प०)+क्त, स० एक० । प्रथमसुकृतापेक्षया= प्रथमानि यानि सुकृतानि प्रथमसुकृतानि तेषाम् अपेक्षा तया। उच्चैः=अव्यय है, परन्तु यहां विशेषण के समान प्रयुक्त हुआ है।

विशेषः—आम्रकूटः=विल्सन (Wilson) ने इसे अमरकण्टक माना है। आम्रकूट नाम इसलिए पड़ा कि इसके पास के जंगलों में आम के वृक्ष बहुलता से पाये जाते हैं। यह पर्वत नर्मदा नदी का उद्गम-स्थान और विन्ध्याचल का पूर्वी भाग है। इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है, क्योंकि इसमें पूर्वार्ध के विशेषार्थ का उत्तरार्ध के सामान्यार्थ से समर्थन किया गया है ॥१७॥

कुछ प्रतियों में इस पद्य के अनन्तर निम्नलिखित पद्य भी मिलता है।

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद ! शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः ।
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्नि
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥१७क॥

अन्वयः—हे जलद ! आम्रकूटः सानुमान् अध्वक्लान्तम् प्रतिमुखगतम् त्वां श्लाघमानः शिरसा वक्ष्यति, त्वम् अपि आसारेण तस्य नैदाघम् अग्निम् शमयेः। महत्सु सद्भावार्द्रः उपकारः न चिरेण फलति।

भाषानुवादः—हे मेघ ! आम्रकूट पर्वत रास्ते के थके-मांदे सामने आए तुझे सराहते हुए शिर से धारण करेगा। तू भी वर्षा की धाराओं से उसकी ग्रीष्म से पैदा हुई आग (दावाग्नि) को बुझाना; महापुरुषों के प्रति सद्भावपूर्ण उपकार शीघ्र ही फल देता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः—हम इस पद्य के अर्थ में "त्वामासार········" इस पद्य के अर्थ से कोई नवीनता नहीं पाते, इसलिए इसे मौलिक न समझ कर 'प्रक्षिप्त' ही समझना चाहिए ॥१७क॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
[1]मध्येश्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥

अन्वयः—(हे मेघ !) स्निग्ध-वेणी-सवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे (सति) परिणत-फल-द्योतिभिः काननाम्रैः छन्नोपान्तः अचलः मध्येश्यामः शेषविस्तार-पाण्डुः भुवः स्तनः इव अमर-मिथुन-प्रेक्षणीयाम् अवस्थाम् नूनम् यास्यति ।

पदार्थः—परिणतफलद्योतिभिः=पके हुए फलों से चमकनेवाले । काननाम्रैः= जंगल के आमों से । छन्नोपांतः=ढके हुए पार्श्व भागों वाला । अचलः (आम्रकूट) पर्वत । स्निग्धवेणीसवर्णे=चिकनी वेणी (केशपाश, बालों की चोटी) से मिलते हुए रंगवाले । भुवः स्तन इव=पृथ्वी के स्तन कें समान । शेष-विस्तार-पाण्डुः= जिसका बाकी का विस्तार (विस्तृतभाग) पीला-सा है । अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्= गगनचारी-दम्पतियों (जोड़ों) के द्वारा दर्शनीय । अवस्थाम्=दशा को । नूनम्=निश्चय से । यास्यति=प्राप्त होगा ।

भावानुवादः—(हे मेघ !) चिकनी वेणी (केशपाश, चोटी) से मिलते-जुलते रंगवाले तेरे (इसके) शिखर पर चढ़ने पर, पके हुए फलों से चमकनेवाले जंगली आमों से घिरे हुए पार्श्व-भागों वाला (यह आम्रकूट) पर्वत गगनचारी दम्पतियों (जोड़ों) को अवश्य ही ऐसा दीखने योग्य बन जायेगा जैसा कि मध्यभाग में काला और बाकी के विस्तृत भाग में पीला-सा पृथ्वी का स्तन हो ।

व्याकरणम्—स्निग्धवेणी०=स्निग्धा=तैलचिक्कणा या वेणी केशपाशः तस्याः समानः वर्णः यस्य सः, तस्मिन् (ब० व्री०) । स्निग्धः=√स्निह् (दिवा० प०)+क्त । आरूढे=आ+√रुह् (भ्वा० प०)+क्त, स० एक० (सति—सप्तमी)। काननाम्रैः=काननेषु भवाः आम्राः तैः (मध्यमपदलोपी कर्म०) परिणतफल०= परिणतैःपरिपक्वैःफलैः द्योतन्ते इति । परिणत=परि=√नम् (भ्वा० प०)+ क्त । छन्नोपान्तः=छन्ना आवृता उपान्ताः पार्श्व-भागाः यस्य सः (ब० व्री०) ।

१—मेघश्यामः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

छन्नः=√छद् (चु० उभ० ढ़कना)+क्त। शेषविस्तार०=शेषे विस्तारे पाण्डुः (सप्त० तत्पु०)। प्रेक्षणीयाम्=प्र+√ईक्ष (भ्वा० आ०), देखना+अनीय (योग्यार्थ कृत्यप्रत्यय), यह शब्द 'अवस्थाम्' का विशेषण है। नूनम्—अव्यय। यास्यति=√या (अदा० प०) जाना, लृट् प्र० पु० एक०।

विशेषणः—स्निग्धवेणी०=सारोद्धा०, सुमतिविजय तथा सरस्वतीतीर्थ के अनुसार 'स्निग्ध' का अर्थ 'कान्तिमत्' है। वेणी के लिए देखिए पद्य २५,३०।

स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः—देखिए रघु० V 'स (रघुः) निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ। स्तनाविव दिशः तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ···अलंघयत्॥' और देखिए—शकु० IV 'आताम्रहरितपाण्डुर'। यहाँ उपमा अलंकार है ॥१८॥

[1]स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त्तं
[2]तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥

अन्वयः—(हे मेघ!) वनचर-वधू-भुक्त-कुञ्जे तस्मिन् (आम्रकूटे) मुहूर्तं स्थित्वा तोयोत्सर्ग-द्रुततर-गतिः (सन्) तत्परम् वर्त्म तीर्णः उपल-विषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् रेवाम् गजस्य अङ्गे भक्तिच्छेदैः विरचिताम् भूतिम् इव द्रक्ष्यसि।

पदार्थः—वनचरवधू०=वन में विचरण करनेवालों की स्त्रियों द्वारा भोगे गए निकुञ्जों (लतागृहों) वाले। तस्मिन्=उस आम्रकूट पर्वत पर। मुहूर्तम्=क्षणभर, थोड़े काल तक। स्थित्वा=ठहर कर। तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः=जल छोड़ देने के कारण शीघ्र गतिवाला। तत्परम्=उस (आम्रकूट पर्वत) से परे। वर्त्म=(नपुं०) मार्ग को। तीर्णः=पार करके, लाँघकर। उपलविषमे=पत्थरों के कारण विषम (ऊँची-नीची)। विन्ध्यपादे=विन्ध्यपर्वत की तल-हटी में, नीचे। विशीर्णाम्=बिखरी हुई, चारों ओर फैली हुई। भक्तिच्छेदैः चित्रकार की रेखाओं (रचनाओं) के प्रकारों से। विरचिताम्=बनाए हुए। भूतिम्=शृंगार को, सजावट को। रेवाम्=नर्मदा को। द्रक्ष्यसि=देखेगा।

भाषानुवादः—(हे मेघ!) उस (आम्रकूटपर्वत) पर, जहां वनचारियों की

१—तस्मिन् स्थित्वा का० पा०। २—तोयोत्सर्गात् म० सिं०, सा०, स० तीं०, वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्त्रियों ने कुञ्जों का आनन्द लिया है, कुछ देर ठहर कर, पानी बरसा देने के कारण बहुत शीघ्र चलता हुआ (तू) उससे परे का मार्ग लांघ कर नर्मदा नदी को देखेगा, जो विन्ध्याचल की पत्थरों से ऊबड़-खाबड़ तलहटी में बिखरी हुई ऐसी लगती है जैसी कि हाथी के अङ्ग (मस्तक) पर चित्रकारी की रेखाओं के (विभिन्न) प्रकारों से बनाई गई सजावट हो ।

व्याकरणम्—वनचरवधू०=वने चरन्ति ते वनचराः (वन+√चर्+ट= कर्तरि वनचरः (उपपदतत्पु०) 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इस सूत्र से तत्पु० में विभक्ति का अलोप प्रायिक होता है यदि बाद में कृदन्त शब्द हो । एवं लोप में वनचर और अलोप में वनेचर दोनों प्रयोग ठीक हैं । देखिए कुमार. I. 'वनेचराणां वनितासखानां दरी···और देखिए—किरा० I. १, 'युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः' तेषां वधूभिः भुक्ताः कुञ्जा यत्र (आम्रकूटे) (ब०व्री०) मुहूर्तम्='कालाध्वनोरत्यन्त-संयोगे' से द्वितीया । तोयोत्सर्ग०=तोयस्योत्सर्गः (उत्+√सृज्+घञ् भावे) तेन द्रुततरा गतिर्यस्य सः (ब० व्री०) । तत्परम्=तस्मात् परम् सुप्सुपा इति समासः । तीर्णः=√तॄ (तैरना), (भ्वा० प०)+न (क्त), प्र० पु० ए० । उपलविषमे=उपलैर्विषमे (तृ० तत्पु०) । विन्ध्यपादे=विन्ध्यस्य पादे (ष० तत्पु०) । विशीर्णाम्=वि+√शॄ (क्र्या० प०), टुकड़े २ करना+न (क्त) द्वि० एकवचन । विरचिताम्=वि+√रच् (चुरा० उभ०) बनाना, स्त्री० द्वि० एक; भूतिम् का विशेषण । द्रक्ष्यसि=√दृश् (भ्वा० प०) देखना, लृट् प्र० पु० एक० ।

विशेष—तत्परं वर्त्म तीर्णः=वल्लभ के अनुसार 'तस्मादनन्तरं वर्त्म मार्गमवतीर्णः' इसका अर्थ 'इसके परे मार्ग पर उतर कर' यह हुआ ।

विन्ध्यपादे=सात कुल-पर्वतों में से एक पर्वत-श्रेणी का नाम 'विन्ध्य' है । कुल-पर्वतों के ये नाम हैं—महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥' विन्ध्याचल आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा है । इससे आर्यावर्त और दक्षिणावर्त (South) पृथक्-पृथक् किए गए हैं । यह पर्वत-श्रेणी समुद्र के पूर्वी तट से पश्चिमी तट तक फैली हुई है । देखिए— मनु० II, २२—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥

विशीर्णाम्=शतशः स्फुटितप्रवाहाम् (सारोद्धारिणी) । रेवाम्=यह नर्मदा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नदी का दूसरा नाम है, जो कि भारत की सात पवित्र नदियों में से एक है। इसका उद्‌गम (निकास) आम्रकूट-पर्वत है यह पश्चिम की ओर बहती हुई कैम्बे की खाड़ी में जा गिरती है। सात पवित्र नदियों के लिये यह प्रार्थनाश्लोक है :—"गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥"

भक्तिच्छेदैः=विच्छित्तिपत्रभङ्गैर्विरचितां विन्यस्ताम्' (सारोद्धारिणी)। देखिए—कु० स० VIII. ६९ 'भक्तिभिर्बहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मत्तदन्तिनः'।

यहाँ उपमा अलंकार है। विभिन्न धाराओं में विभक्त हुई रेवा (नर्मदा) की उपमा हाथी के मस्तक पर बनाई हुई भिन्न-भिन्न प्रकार की चित्र-रचना से की गई है ॥१९॥

[1]तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
जम्बू[2]कुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।
अन्तःसारं घन ! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

अन्वयः—(त्वम्) वान्त-वृष्टिः (सन्) तिक्तैः वन-गज-मदैः वासितम् जम्बू-कुञ्ज-प्रतिहत-रयम् तस्याः (रेवायाः) तोयम् आदाय गच्छेः। हे घन ! अन्तःसारम् त्वाम् अनिलः तुलयितुं न शक्ष्यति; हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति; पूर्णता गौरवाय (भवति)।

पदार्थः—वान्तवृष्टिः=वर्षा उंडेले हुए, जल बरसाये हुए। तिक्तैः= सुगन्धित। "तिक्तो रसे सुगन्धौ च" इति विश्वः। वन-गज-मदैः=जंगली हाथियों के मद से। वासितम्=सुरभित, सुगन्धिवाले। जम्बू-कुञ्ज-प्रतिहत-रयम्=जामुनों के कुञ्जों के द्वारा रोके गए वेगवाले। तोयम्=जल को। आदाय=लेकर। घन=हे मेघ, बादल। अन्तःसारम्=भीतर से सारवान्, ठोस। अनिलः=वायु। तुलयितुम्=हिलाने को। न शक्ष्यति=समर्थ न होगा। हि=क्योंकि। रिक्तः=खाली। लघुः=हल्का। पूर्णता=भरा होना, भरापन, ठोसपन। गौरवाय=गुरुता के लिए।

भाषानुवादः—वर्षा को उडेले हुए तुम जंगली हाथियों के सुगन्धिवाले मद

१—तीक्ष्णैः। २—खण्ड।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से सुगन्धित (और) जामुनों के कुन्जों द्वारा रोके गए वेगवाले उस (नर्मदा) के जल को लेकर जाना। हे मेघ! भीतर से ठोस बने हुए तुझे वायु हिला न सकेगी, क्योंकि प्रत्येक खाली वस्तु हल्की होती है (और) भरापन गुरुता के लिए (होता है)।

व्याकरणम्—वान्त=√वम्+क्त (कर्मणि)। वान्तवृष्टिः=वान्ता उद्गीर्णा वृष्टिर्येन सः। तिक्तैः=तिक्त शब्द का तृ० बहु०। वनगजमदैः=वनस्य गजा वनगजास्तेषां मदैः। वासितम्=√वस्, [चु० प०] (स्निग्ध या सुगन्धित करना)+क्त। जम्बूकुन्ज०=जम्बूनां कुन्जैः प्रतिहतः (प्रति+√हन्+क्त, कर्त्तरि) रयः यस्य (ब० व्री०)। गच्छेः=√गम् (भ्वा० प०) वि० लिङ् म० पु० ए०। अन्तःसारम्=अन्तः सारो बलं यस्य तम् (ब० व्री०)। तुलयितुम्=तुलां करोति इति तुला+णिच्+तुमुन्। चुरा० गण की तुल् से तुमुन् प्रत्यय लगकर तोलयितुम् रूप बनता है। शक्ष्यति=√शक्, (स्वा० प०) (समर्थ होना), लृट्, प्र० पु० ए०। रिक्तः=√रिच् (रुधा० उभ०) (खाली करना) +क्त। प्रतिहतरयम्=प्रतिहतः रयो यस्य एवंभूतं तोयम् (बहुव्री०)। रिक्तः सर्वः=यह सामान्यार्थ में पुंल्लिङ्ग 'सामान्ये नपुंसकम्' इस नियम के विपरीत है। गौरवाय=गुरोः भावः इति गुरु+अण् तस्मै। 'क्लृपि सम्पद्यमाने च' इससे चतुर्थी।

विशेषः—वान्तवृष्टिः=वान्ता वृष्टिः येन (बहु०) वम् धातु का अर्थ 'उगलना' है। यहाँ गौणवृत्ति (Secondary sense) ली गई है। देखिए, 'निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम्। अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते।'

तिक्तैः=सुरभितैः "कटुतिक्तकषायास्तु सौरभ्येऽपि प्रकीर्तिताः"। यहाँ 'तिक्त' का तीखा या कसैला भी अर्थ है, क्योंकि वैद्यक शास्त्र के अनुसार वायु रोग वाले को वमन (vomiting) करा देने के बाद श्लेष्मा (कफ) सुखाने के लिए तीखा, कसैला पानी पिलाने से वात-प्रकोप नहीं होता। देखिए—वाग्भट मल्लि० की टीका में 'कषायाश्च हिमास्तस्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिताः। किमु तिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः॥ कृतशुद्धेः क्रमात्पीतपेयादेः पथ्यभोजिनः। वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिव योगिनः॥'

जम्बूकुन्ज०=जामुनों के कुन्जों में जल के इकट्ठा होने से जल पवित्र तथा हल्का हो जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तःसारम्='अन्तर्मध्ये सारं जलं यस्य' सुमति-विजय। इसका दूसरा अर्थ मल्लि० ने इस प्रकार किया है—'अन्तः सारो बलं यस्य'।

तुलयितुम्=सरस्वती० और सुमति-विजय इसकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं—'अभिभवितुं पराभवं कर्त्तुं वा' परन्तु सारोद्धारिणी ने इसका अर्थ 'आन्दोलयितुम्' किया है।

मेघ में वात-चिकित्सा के लिए आए हुए पुरुष का व्यवहार-समारोप है, इसलिए यहाँ समासोक्ति अलंकार है। द्वितीय पद्यार्ध में अर्थान्तरन्यास अलंकार है, क्योंकि इसमें तीसरे पाद के विशेषार्थ का चौथे पाद के सामान्यार्थ से समर्थन किया गया है ॥२०॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
[1]जग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते [2]जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२१॥

अन्वयः—अर्धरूढैः केसरैः हरितकपिशम् नीपम् दृष्ट्वा अनुकच्छम् आविर्भूत-प्रथममुकुलाः कन्दलीः च जग्ध्वा अरण्येषु उर्व्याः अधिक-सुरभिम् गन्धम् आघ्राय सारङ्गाः जललवमुचः ते मार्गम् सूचयिष्यन्ति।

पदार्थः—अर्धरूढैः=आधे निकले हुए। केसरैः=तन्तुओं से, रेशों से। हरितकपिशम्=हरे और काले—लाल (धूसर) रंगवाले। नीपम्=कदम्ब के फूल को। दृष्ट्वा=देखकर। अनुकच्छम्=दलदल में। आविर्भूतप्रथममुकुलाः=जिनमें पहले-पहल कलियां प्रकट हुई हैं। कन्दलीः=केले-जैसे पुष्प-वृक्षों को। जग्ध्वा=खाकर। अरण्येषु=वनों में। उर्व्याः=पृथिवी की। अधिक-सुरभिम्=बहुत सुगन्धित। गन्धम्=गन्ध को। आघ्राय=सूंघकर। सारंगाः=भृंग, मृग और हाथी। जललवमुचः=पानी की बूंदों को बरसानेवाले। ते=तेरे। मार्गम्=रास्ते को। सूचयिष्यन्ति=बतलायेंगे।

भाषानुवादः—आधे निकले हुए केसरों (तन्तुओं, रेशों) से हरे और धूसर रंगवाले कदम्ब पुष्पों को देखकर, दलदल में प्रकट हुई पहली-पहली कलियोंवाली कंदलियों (भुंइकेलियों) को खा कर, एवं जंगलों में पृथ्वी की अधिक तीव्र गन्ध को

१—दग्धारण्येषु। २—नवजलमुचः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूंघकर (क्रमशः) भौरे, मृग और हाथी जल की बूँदें बरसाने वाले तेरा मार्ग सूचित करेंगे।

व्याकरणम्—अर्धरूढैः अर्धं यथा स्यात् तथा रूढैः=√रुह्, (भ्वा० प०, उगना)+क्त, तृ० बहु०। हरितकपिशम्=हरितं च तत् कपिशं च, कर्मधा०। दृष्ट्वा=√दृश् (भ्वा० प०)+क्त्वा। अनुकच्छम्=इसमें 'अनु' का सप्तम्यर्थ है अर्थात् कच्छेषु इति अनुकच्छम्। 'अनु' को सामीप्य अर्थ में भी लिया जा सकता है—कच्छस्य समीपे (अव्ययीभा० स०)। कं जलं छयति परिच्छिनत्ति इति कच्छः; क+√छो (अवच्छेदने, दिवा० प०)+अ। 'प्रकरणे मूल-विभुजादिभ्य उपसंख्यानम्' इससे क प्रत्यय हुआ। आविर्भूतप्रथम०=आविर्भूताः प्रथमा मुकुला यासां ताः (ब० व्री०) जग्ध्वा=√अद् (अदा० प०)+क्त्वा। आघ्राय=आ+√घ्रा (भ्वा० प० सूंघना)+य (ल्यप्)। जललवमुचः=जलस्य लवान् मुञ्चति इति तस्य (मेघस्य) सूचयिष्यन्ति=√सूच् (चुरा० उभ०) बताना, सूचित करना, लृट् प्र० पु० बहु०।

विशेषः—जग्ध्वारण्येष्वधिक०—इसके स्थान पर कुछ टीकाकारों ने 'दग्धारण्येष्वधिक०' यह पाठान्तर दिया है। उनका कहना है कि इस पद्य के दूसरे तथा तीसरे पाद में दो ही 'च' आते हैं। पहला 'च' 'नीपं' और 'कन्दलीः' को जोड़ता है और दूसरा 'च' 'दृष्ट्वा' तथा 'आघ्राय' को। यदि 'जग्ध्वारण्येष्व०' को उचित पाठ माना जाय, तो दो क्त्वान्त या एक ल्यवन्त तीनों एक साथ ही आ जाते हैं और उनके संयोजक केवल दो 'च' ही रह जाते हैं तथा 'जग्ध्वा' का कर्म इससे काफी दूर हो जाता है और प्रथम पद्यार्ध का एक पद द्वितीय पद्यार्ध में पड़ जाने से 'अर्धान्तरैकपदता' दोष भी आ जाता है। किन्तु हम उनसे सहमत नहीं हैं। यहां 'सारङ्गाः' में कवि को तीन कर्ता अभिप्रेत हैं—भ्रमर, मृग और हाथी। इसलिए पूर्वकालिक क्रियायें भी तीन होनी चाहिएँ। एक मूलक्रिया है और दो क्रियाओं के संयोजक दो 'च' ठीक ही हैं।

सारङ्गाः=मल्लि० इस शब्द से हरिण और हाथी का अर्थ लेता है। सुमति० कहता है कि मृग के अतिरिक्त इससे 'भ्रमर' अर्थ भी लिया जा सकता है। सारोद्धारिणी के अनुसार इससे उपर्युक्त तीनों अर्थों के अतिरिक्त 'चातक' पक्षी भी अर्थ है। वल्लभ इससे 'मोरों' का अर्थ लेता है। सरस्वती-तीर्थ कहता है कि पद्य में 'सारङ्गाः' शब्द से 'हरिण' ही लिए जा सकते हैं, क्योंकि कालिदास 'सारङ्ग' शब्द का सामान्यतः 'हरिण' के अर्थ में प्रयोग करता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। देखिए—अभि० शाकु० I. ५ 'एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा'। विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक में भी देखिए—'इमं तावत्प्रियाप्रवृत्तिनिमित्तं सारङ्गमासीनमभ्यर्थये'। 'चातक' के अर्थ में भी कालिदास 'सारङ्ग' का प्रयोग करता है, परन्तु बहुत कम। देखिए—रघु० XVII. १२ 'प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः'। पाणिनि के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—(सार+अङ्ग=सारङ्ग)। यह बहुव्री० समास है। टीकाकारों ने इसके हाथी, भ्रमर, चातक, मृग अर्थ लेकर सारं सलीलं गच्छति (हाथी); सारं मधुरं गायति (भ्रमर, चातक, मोर,) साराणि=चित्रितानि अङ्गानि यस्य सः (मृग) इस तरह 'सारङ्ग' शब्द की व्युत्पत्ति की है।

सूचयिष्यन्ति=अनुमापयिष्यन्ति। किस-किस मार्ग से पानी बरसाता हुआ बादल गया है—इस बात का अनुमान वर्षा से, नीप और कन्दली के खिलने और पृथिवी के गन्ध से ही किया जा सकता है॥२१॥

कुछ टीकाकारों ने 'नीपं दृष्ट्वा' इस पद्य के अनन्तर निम्नलिखित पद्य भी दिया है, पर वह प्रसिद्ध नहीं है—

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरां[1]श्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
[2]सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥२१-क॥

अन्वयः—अम्भोबिन्दु-ग्रहण-चतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः बलाकाः परिगणनया निर्दिशन्तः सिद्धाः स्तनित-समये सोत्कम्पानि प्रियसहचरी-संभ्रमालिङ्गितानि आसाद्य त्वाम् मानयिष्यन्ति।

पदार्थः—अम्भोबिन्दुग्रहण०=जल की बूंदों को पकड़ने में चतुर। चातकान्—चातक पक्षियों को। वीक्षमाणाः=देखते हुए। श्रेणीभूताः—पङ्क्तियाँ बांधे हुए। बलाकाः=बगुलों की पंक्तियों को। परिगणनया=गिनने से। निर्दिशन्तः=(अंगुली से) दिखाते हुए। सिद्धाः—देवयोनि-विशेष, जो आधे मनुष्य और आधे देवता (Demigods) होते हैं। सोत्कम्पानि=प्रकम्प-भरी, कँपकँपी के साथ। प्रियसहचरीसंभ्रम०=प्यारी सहचरियों के भय से पूर्ण आलिंगनों को। आसाद्य=प्राप्त करके। मानयिष्यन्ति=मान करेंगे, धन्यवाद देंगे।

१—रभसान्। २—सोत्कण्ठानि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाषानुवादः—जल की बूंदों को पकड़ने में चतुर चातक पक्षियों को देखते हुए (तथा) पङ्क्तियां बांधे हुए बगुलों की पंक्तियों को गिनती द्वारा (अंगुली से) दिखाते हुए सिद्ध (तुम्हारे) गर्जन के समय प्रियसहचरियों के भय से प्रकम्पभरे आलिंगनों को प्राप्त करके तुम्हारा धन्यवाद करेंगे।

व्याकरणम्—अम्भोबिन्दु० = अम्भसः बिन्दूनां ग्रहणे चतुराः तान्। वीक्षमाणाः = वि + √ईक्ष् (भ्वा० आ०), (देखना) + शानच् प्र० बहु०। निर्दिशन्तः = निर् = √दिश् (भ्वा० प०), (दिखाना) + अत, प्र० बहु०। सोत्कम्पानि उत्कम्पेन सह वर्तमानानि सोत्कम्पानि। प्रिय-सहचरीसंभ्रम० = प्रियसहचरीणां संभ्रमेण आलिंगितानि। आसाद्य = आ + √सद् (भ्वा० प०) + य (ल्यप्) मानयिष्यन्ति = √मन् (चुरा० प०) लृट्, प्र० पु० बहु०।

विशेषः—स्तनितसमये = देखिए-शिशु० VI ३३ 'प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः सपदि वारिधरा रवभीरवः। प्रणयिनः परिरब्धुमथांगना ववलिरे वलिरेचितमध्यमाः॥ देखिए—ऋतु० II. १४, किरा० X.१९ ॥२१॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।
शुक्लापाङ्गैः [1]सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
[2]प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२२॥

अन्वयः—हे सखे! मत्प्रियार्थम् द्रुतम् यियासोः अपि ते ककुभसुरभौ पर्वते-पर्वते काल-क्षेपम् उत्पश्यामि। सजलनयनैः शुक्लापाङ्गैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातः (सन्) भवान् कथम् अपि आशु गन्तुम् व्यवस्येत्।

पदार्थः—मत्प्रियार्थम् = मेरी प्यारी के लिए अथवा मेरे भले के लिए। द्रुतम् = जल्दी। यियासोः = जाने की इच्छा रखने वाले। ककुभसुरभौ = कुटज के फूलों से सुगन्धित। पर्वते पर्वते = प्रत्येक पर्वत पर। कालक्षेपम् = समय के विलम्ब की। उत्पश्यामि = मैं सम्भावना करता हूँ। सजल-नयनैः = आँसुओं से भरे नेत्रोंवाले। शुक्लापांगैः = श्वेत कनखियों वाले मयूरों द्वारा। केकाः = (अपनी) टें-टें ध्वनि को। स्वागतीकृत्य = स्वागत के शब्द बनाकर। प्रत्युद्यातः =

१—सनयनजलैः। २—प्रत्युद्घातः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अगवानी किया जाता हुआ, अभिनन्दित किया गया। कथमपि=यथा-तथा, जैसे-तैसे। आशु=जल्दी। गन्तुम्=जाने के लिए। व्यवस्येत्=उद्योग करना, यत्न करना।

भाषानुवादः—हे मित्र! मैं संभावना करता हूँ कि मेरी प्रिया के (अथवा प्रिय) कार्य के निमित्त जल्दी-जल्दी जाना चाहते हुए भी तुम्हें कुटज के फूलों से सुगन्धित प्रत्येक पर्वत पर (कुछ) देरी लग (ही) जायगी। (आनन्द के कारण) डबडबाते नेत्रों वाले मयूरों से (अपनी) टें-टें की ध्वनि को स्वागत का शब्द बनाकर अभिनन्दित किए जाते हुए तुम जैसे-तैसे जल्दी जाने का प्रयत्न करना।

व्याकरणम्—सखे!=सखि का सम्बोधन। मत्प्रियार्थम्=मदीया प्रिया मत्प्रिया तस्यै इति अथवा मदीयं प्रियं (कार्यम्) तस्मै इति (नित्यस०)। द्रुतम्=अव्यय, 'लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्' इत्यमरः। यियासोः=यियासु (√या, अदा० प० का सन्नन्त+उ, तस्य) षष्ठी एक०। ककुभ-सुरभौ=ककुभैः=कुटज-कुसुमैः सुरभौ सुगन्धिते। पर्वते पर्वते=वीप्सायां द्विरुक्तिः। कालक्षेपम्=कालस्य क्षेपम् (ष० तत्पु०)। उत्पश्यामि=उत्+√दृश् (भ्वा० प०) उत्त० पु० एक०। स्वागतीकृत्य=अस्वागतं स्वागतं संपद्यमानं कृत्वा इति स्वागतीकृत्य, स्वागत+च्वि+√कृ (तना० उभ०)+य (ल्यप्)। प्रत्युद्यातः=प्रति+उत्+√या (अदा० प०)+क्त, प्र० एक०। कथमपि=अव्यय। देखिए रघु० 'क्लेशात् कथमप्यक्रामति'। आशु=अव्यय। गन्तुम्=√गम्, (भ्वा० प०)+तुम् (तुमुन्)। व्यवस्येत्=वि+अव+√सो (दिवा० प०) (नाश करना) प्र० पु० एक०, प्रार्थनायां लिङ्, 'शेषे प्रथमा' इससे 'भवान्' शब्द के प्रयोग में प्रथम पुरुष।

विशेषः—शुक्लापांगैः=मयूरैः 'मयूरो बर्हिणो बर्हीं शुक्लापांगः शिखावलः' इति यादवः। मयूरों के अपांग (नेत्र-प्रान्त, कनखियां) श्वेत होते हैं, इसलिए उनको शुक्लापांग' कहते हैं। केका='केका वाणी मयूरस्य' इत्यमरः। मयूर की टें-टें, टेंकार।

मत्प्रियार्थम्='मदभीष्ट-कार्य-साधनार्थम्। अस्मत्प्रिया-सन्देश-कथनार्थं वा'—सारोद्धारिणी। 'मदीया प्रिया मत्प्रिया तदर्थम्। अथवा मत्प्रिय-सन्देश-प्रकाशन-लक्षणं तदर्थम्।'-महिमसिंहगणि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वागतीकृत्य=टें-टें की वाणी को स्वागत के शब्द बनाकर। देखिए—मृच्छ० V २३ 'एह्येहीति शिखण्डिनां पटुतरं केकाभिराक्रन्दितः' और देखिए—रघु० II. १ 'विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य। उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥'

यहाँ 'परिणाम' अलंकार है, क्योंकि स्वागतवचन केकारूप होकर प्रकृत अर्थात् मेघ के प्रत्युद्गमन में उपयोगी होते हैं। परिणाम अलंकार में उपमान उपमेय रूप होकर प्रकृतार्थ में उपयोगी होता है, देखिए साहित्यदर्पण—'विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि। परिणामो भवेत्' X ३४ ॥२२॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
[1]र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।
त्वय्यासन्ने [2]परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२३॥

अन्वयः—(हे मेघ!) त्वयि आसन्ने (सति) दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छायोपवन-वृतयः, गृह—बलिभुजाम् नीडारम्भैः आकुल—ग्राम-चैत्याः, परिणतफल—श्याम-जम्बू—वनान्ताः (तथा) कतिपय-दिन-स्थायि-हंसाः सम्पत्स्यन्ते

पदार्थः—त्वयि आसन्ने=तेरे पास आने पर। दशार्णाः=इस नाम का देश। सूचिभिन्नैः=डोडियों के अग्रभाग में खिले हुए। केतकैः=केतकी के फूलों से। पाण्डुच्छायोपवन०=जहाँ के उद्यान की बाड़ें पीली-सी कान्ति वाली (हो गई) हैं। गृह-बलि-भुजाम्=घर की बलि को खानेवाले (कौए आदि) पक्षियों के। नीडारम्भैः=घोंसलों के निर्माणों से। आकुलग्रामचैत्याः=जिसके ग्राम की गलियों के पवित्र (पीपल आदि) वृक्ष भरे पड़े हैं। परिणत-फल-श्याम-जम्बू=जहाँ जामुन के जंगलों के पर्यन्तभाग पके हुए फलों से काले हो गए हैं। कतिपयदिन०=जहाँ हँस थोड़े दिनों तक ठहरने वाले हैं, ऐसे। सम्पत्स्यन्ते=हो जाएँगे।

भाषानुवादः—(हे मेघ!) तेरे आ जाने पर दशार्ण-देश में उद्यानों की बाड़ें (hedges) अग्रभाग में खिले हुए केतकी के फूलों से पीली सी हो जाएँगी; ग्राम की गलियों के पवित्र (पीपल आदि) वृक्ष घरों में बलि के अन्न

१—नीडारम्भे वि०। २—फलपरिणति० विल्स०; परिणतिफल।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को खानेवाले (कौए आदि) पक्षियों के घोंसलों के निर्माण से भर जाएँगे; (तथा) जामुन के जंगलों के किनारे पके हुए फलों से काले पड़ जाएँगे और हंस थोड़े दिनों तक (ही) ठहर पाएंगे ।

व्याकरणम्—त्वयि आसन्ने=आ+√सद् (भ्वा० प०)+न (क्त) सत्-सप्तमी (locative absolute)। सूचिभिन्नैः='सूच्याकारेषु मुकुलाग्रेषु भिन्नैः=विकसितैः'—सरस्वती तीर्थ। पाण्डुच्छायोपवन०=पाण्ड्वी छाया यासां ताः (बहुव्री०) पाण्डुच्छाया उपवनानां वृतयः येषु ते (बहुव्री०)। गृह-बलि-भुजाम्=गृहेषु बलिं भुञ्जते ते गृह-बलि-भुजः तेषां गृहबलि-भुजाम्। नीडारम्भैः=नीडानां निलयानाम् आरम्भैः (आ+√रभ्+घञ्, भावे आरम्भः तैः) निर्माणैः। आकुल-ग्राम-चैत्याः=आकुलानि संकीर्णानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु (ब० व्री०), चिता अथवा चित्या तस्या इमानि इति चित्या+अण्=चैत्यानि । परिणत-फल-श्याम०=परिणतैः (परि+√नम्+क्त परिणत) पक्वैः फलैः श्यामा जम्बूवनानाम् अन्ताः येषु ते(बहुव्री०)। मल्लि० इसका विग्रह इस प्रकार करता है—परिणतफलश्यामानि जम्बूवनानि (कर्मधा०) तैः अन्ताः (रम्याः) तृ० तत्पु०। कतिपयदिनस्थायि०+कतिपयेष्वेव दिनेषु स्थायिनो हंसा येषु ते (बहुव्री०)। इस समास की रचना में—जैसा मल्लि० और सरस्वती० का विचार है—पाणिनि के "पोटायुवतिस्तोककतिपय···" आदि नियम का उल्लंघन किया गया है। उक्त नियमानुसार इस समास में 'कतिपय' शब्द को पूर्व में न रख कर अन्त में रखने से 'दिनकतिपयस्थायिहंसाः' ऐसा पाठ होना चाहिए था, परन्तु यह नियम प्रायिक ही है, इसलिए कालिदास का प्रयोग अपवाद ही समझना चाहिए। सम्पत्स्यन्ते=सम्+√पद् (दिवा० आ०), लृट् प्र० पु० बहु०। देखिए—पद्य ११ पूर्वमेघ।

विशेषः—दशार्णाः=दशार्णानाम् निवासाः जनपदाः 'तस्य निवासः' से दशार्ण से अण् प्रत्यय हुआ। इस प्रत्यय का 'जनपदे लुक्' से लोप हुआ। दशार्ण की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—दश ऋणानि (दुर्गाणि) येषामिति दशार्णाः क्षत्रिय-विशेषाः। सरस्वती० के अनुसार यह प्रदेश विन्ध्याचल के उत्तर में स्थित है। विल्सन (Wilson) के विचार में 'दशार्ण' "दोसारेने" (Dosarene) से मिलता-जुलता है। कात्यायन के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति 'दशन्+ऋण' से हुई है और इसका 'दस दुर्गों का प्रदेश' यह अर्थ है। यह प्रदेश वर्त-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मान काल का 'छत्तीस गढ़' ही हो सकता है, क्योंकि छत्तीसगढ़ में से होकर 'दशार्णा' नाम की एक नदी बहती है, जो विन्ध्याचल से निकलती है।

ग्रामचैत्याः='ग्रामाणां चैत्यानि=चतुष्पथस्थवृक्षाः' सरस्वती०। 'चैत्याः पूज्यपादपाः पिप्पलादयः' सारो०। वल्लभ 'चैत्य' का अर्थ 'बुद्धालय' करता है, परन्तु यह मल्लि० तथा अन्य टीकाकारों को उचित प्रतीत नहीं होता। इस पर श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं :—समाधि-प्रस्तर और वृक्ष इन दो अर्थों में चैत्य शब्द प्रयुक्त होता है। यहाँ वृक्ष अर्थ अभिप्रेत है। चिता वाली भूमि में मृतात्मा के उद्देश्य से रोपे हुए वृक्ष को चैत्य कहते थे। पीछे गाँवों के पूजार्थ अश्वत्थ आदि महावृक्षों के लिए चैत्य शब्द प्रयुक्त होने लगा।'

गृहबलिभुजाम्=इसका 'गृहेषु बलिं भुञ्जते इति' सरस्वती० के द्वारा किया गया अर्थ है। कोई 'गृह' का अर्थ यहां 'कलत्र' करते हैं, परन्तु यह खींचातानी ही है।

जम्बूवनान्ताः=मल्लि० ने 'अन्त' का अर्थ 'रम्य' किया है अर्थात् 'जम्बू के वनों से रमणीय', परन्तु यह ठीक मालूम नहीं देता, क्योंकि 'वनान्त' में आये अन्त शब्द का अर्थ बाहरी भाग लेना अच्छा है, अतः वनान्त का अर्थ कालिदास तथा अन्य कवियों ने 'जंगल का किनारा, पर्यन्त या जंगल के पास की भूमि' लिया है। देखिए—रघु० II. १९ आवर्तमानं वनिता वनान्तात्। रघु० II. ५८ 'वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते। उत्तर० II में 'यत्र रम्यो वनान्तः' यह प्रयोग है। और देखिए—ऋतु० 'भ्रमति पवनधूमः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते'। लक्ष्मीनिवास ने इसका 'जम्बूवनप्रदेशाः' अर्थ किया है ॥२३॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं[1] कामुकत्वस्य [2]लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु[3] यस्मा-
त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि[4] ॥२४॥

अन्वयः—दिक्षु प्रथित-विदिशा-लक्षणाम् तेषाम् (दशार्णानाम्) राजधानीम् गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविकलम् फलम् (अपि) लब्धा यस्मात् (त्वम्) वेत्रवत्याः स्वादु चलोर्मि पयः सभ्रूभङ्गम् मुखम् इव तीरोपान्त-स्तनितसुभगम् (यथा स्यात् तथा) पास्यसि।

१—फलमतिमहत् विल्स०। २—लब्ध्वा। ३—स्वादु यत्तत् मल्लि०, म० सिं०, सु० वि०, सारो०, स० ती०, स्वादुयुक्तं वल्ल० विल्स०। ४—चलोर्म्याः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—दिक्षु=दिशाओं में। प्रथित-विदिशा-लक्षणाम्=जिसका विदिशा नाम प्रसिद्ध है। तेषाम् राजधानीम्=उसकी (दशार्ण देश की) राजधानी में। गत्वा=जाकर। सद्यः=शीघ्र ही। कामुकत्वस्य=विलासिता का। अवि-कलम्=अशेष, सम्पूर्ण। फलम्=फल को। लब्धा=प्राप्त करेगा। यस्मात्=क्योंकि। वेत्रवत्याः=वेत्रवती नाम की नदी का। चलोर्मि=चञ्चल लहरों वाला। पयः=जल। तीरोपान्तस्तनित०=किनारे के पास गर्जन से सुन्दर। सभ्रूभङ्गम्=(दन्ताघात से वेदना के कारण) तेवड़ी-चढ़े। मुखम् इव=मुंह की तरह। पास्यसि=पान करेगा।

भाषानुवादः—उस (दशार्ण देश) की दिशाओं में विदिशा नाम से सुविख्यात राजधानी में जाकर (तुम्हें) शीघ्र ही कामित्व (विलासिता) का अशेष फल (भी) मिल जायेगा, क्योंकि (तुम) वेत्रवती नदी के चञ्चल लहरोंवाले एवं मधुर जल को ऐसा पीओगे जैसे तेवड़ी-चढ़े एवं मधुर मुंह को (कामुक पीते हैं)।

व्याकरणम्=दिक्षु=दिक्(स्त्री०)+सु, स० एक०। प्रथितविदिशा०=प्रथितं प्रसिद्धं विदिशेति लक्षणं नामधेयं यस्यास्ताम् (ब० व्री०) राजधानीम्=राज्ञाम् धानीम् (स्थानम्)। गत्वा=√गम् (भ्वा० प०), जाना+क्त्वा। कामुकत्वस्य=कामुकस्य भावः कामुकत्वं तस्य। अविकलम्=विगता कला यस्य तद्विकलम्(बहुव्री०) न विकलम् अविकलम् (नञ् तत्पु०), लब्धा=√लभ् (भ्वा० आ०), पाना, लुट् प्र० पु० एक० (कर्मणि लुट्, त्वया इति शेषः) चलोर्मि=चला ऊर्मयो यस्याः तत्। सभ्रूभङ्गम्=भ्रूभङ्गेन सह वर्तमानम् (बहुव्री०)। तीरोपान्तस्तनित०=तीरस्य उपान्ते तटप्रान्ते यत् स्तनितं गर्जितं तेन सुभगम् यथा स्यात् तथा। पास्यसि=√पा, (भ्वा० प०), पीना, लृट् लकार, म० पु० एक०।

विशेषः—विदिशा=यह प्राचीन काल में वेत्रवती नाम की नदी पर स्थित एक प्रसिद्ध नगर था। यह 'दशार्ण' देश की राजधानी था। वर्तमान काल में इससे मालवा-स्थित 'भिलसा' लिया जाता है। विदिशा के आधार पर उस प्रदेश का नाम, जिसमें यह स्थित थी, प्रायः 'वैदिश' कहलाता था।

राजधानीम्=राज्ञां धानी स्थानम्। राजा का स्थान। देखिए—यमधानी, पुष्प-धानी (उर्दू : फूल-दान)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वादु यस्मात्—इसके स्थान में 'स्वादु यत्र' अथवा 'स्वादुयुक्तम्' पाठ भी मिलता है। पहले पाठ का अर्थ है 'जहाँ विदिशा में'। यह पाठ 'स्वादु यस्मात्' से अच्छा नहीं है, क्योंकि 'यत्र' में अन्तिम अक्षर ह्रस्व होने से छन्दोभंग दोष हो जाता है। पदान्त में अन्तिम अक्षर का विकल्प से दीर्घ मान लेने का नियम (पादान्तस्थं विकल्पेन) द्वितीय और चतुर्थ पाद के अन्तिम अक्षर पर ही लागू होता है न कि प्रथम और तृतीय के अन्तिम अक्षर पर भी। इसलिए हतवृत्तता दोष आ जाने के कारण 'यत्र' पाठ की अपेक्षा 'यस्मात्' पाठ ही ठीक है। 'स्वादु यस्मात्' इस पाठ से स्पष्ट किया गया है कि क्यों बादल को विलासिता का फल प्राप्त होगा। 'स्वादुयुक्तम्' पाठ भी ठीक नहीं बैठता, क्योंकि स्वादु स्वयं विशेषण शब्द है। 'स्वादयुक्तम्' होता तो कुछ बात भी थी।

फलमविकलम्—इसकी जगह 'फलमपि महत्' यह पाठ भी मिलता है। इस पाठ से यह अर्थ हो जाता है—'(कामित्व का) महान् फल भी (मिल जाएगा)'। 'अविकलम्' के स्थान में महत् वाला पाठ भी अच्छा ही है, क्योंकि भोगविलास का महान् फल अधर-पान ही समझा जाता है। देखिए—'कामशास्त्र 'कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते'।

चलोर्मि—इसके स्थान में चलोर्म्याः पाठान्तर है, जो कि 'वेत्रवत्याः' का विशेषण है। किन्तु 'पयः' का विशेषण बनाने में स्वारस्य है, क्योंकि लहरों वाले जल का भ्रूभङ्गवाले मुख से समानता बतलाने में ही कवि का अभिप्राय है। इस कारण 'चलोर्मि' वाला पाठ ही अच्छा है।

वेत्रवत्याः—वेत्रवती नदी का आधुनिक नाम 'बेतवा' है। यह विन्ध्याचल के उत्तर से निकलकर भिल्सा या विदिशा में से होती हुई काल्पी के पास यमुना नदी में जा मिलती है। इस नदी का बहुत-सा भाग मालव प्रान्त में से होकर जाता है। देखिए—कादम्बरी I 'मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्।

इस पद्य में जल की समता मुख से दी गई है। उपमेय-गत 'चलोर्मित्व' और उपमान-गत 'सभ्रूभंगत्व' भिन्न-भिन्न धर्म होने पर भी दोनों का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव है। वेत्रवती और नायिका का साम्य गम्य होने से एकदेशविवर्तिनी उपमा है ॥२४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र [1]विश्रान्ति-हेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ।।२५।।

अन्वयः—(हे मेघ) तत्र (विदिशायां) विश्रान्ति-हेतोः (त्वम्) प्रौढ-पुष्पैः कदम्बैः त्वत्सम्पर्कात् पुलकितम् इव नीचैराख्यम् गिरिम् अधिवसेः, यः (गिरिः) पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिला-वेश्मभिः नागराणाम् उद्दामानि यौवनानि प्रथयति ।

पदार्थः—तत्र=उस विदिशा में। विश्रान्तिहेतोः=आराम करने के लिए। नीचैः आख्यम् गिरिम्+'नीचैः' इस नाम वाले पर्वत पर। अधिवसेः=ठहरना, रहना। प्रौढपुष्पैः कदम्बैः=पूरे खिले हुए कदम्ब (नीप) के फूलों से। त्वत्-संपर्कात्=तेरे संसर्ग या मेल से। पण्यस्त्री··गारिभिः=वेश्याओं की रति-क्रीडा में (प्रयुक्त) सुगन्ध को उगलनेवाले। शिलावेश्मभिः=पत्थर के गृहों (गुफाओं) से। नागराणाम्=नगरवासियों के। उद्दामानि=उभरे, उत्कट। यौवनानि=यौवन (जवानी) को। प्रथयति=प्रकट करता है।

भाषानुवादः—(हे मेघ !) वहाँ (विदिशा में) विश्राम करने के लिए (तुम) 'नीचैः' नामवाले पर्वत पर ठहरना, जो कि पूरे खिले हुए फूलों से तुम्हारे संसर्ग के कारण रोमाञ्चित हुआ-सा लगेगा तथा वेश्याओं की रति-क्रीडाओं में (प्रयुक्त) सुगन्ध को उगलनेवाले पत्थर के गृहों (गुफाओं) के द्वारा नगरवासियों के उभरे हुए यौवन को प्रकट करता होगा।

व्याकरणम्—विश्रान्तिहेतोः=विश्रान्तेः हेतोः (ष० तत्पु०)। विश्रान्तेः=वि √श्रम्, [दिवा० प०] (आराम करना+क्तिन् (भावे)। प्रौढपुष्पैः=प्र+√वह, [भ्वा० प०]+क्त, कर्त्तरि प्रौढानि पुष्पाणि येषु (ब० व्री०)। त्वत्सम्पर्कात् सम्+√पृच्, (भ्वा० प०)+घञ् भावे सम्पर्कः (षष्ठी-तत्पु०) तस्मात् हेतौ पञ्चमी। पुलकितम्=पुलकाः अस्य जाताः पुलक+इत, तारकादित्वात्, 'तारकादिभ्यः इतच्'। नीचैराख्यम्=आख्यानम् आख्या, (आ+√ख्या+अङ भावे) नीचैः आख्या यस्य (बहुव्री०) तम्। गिरिम् का

१—विश्रामहेतोः मल्लि०, विल्स० आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशे० । अधिवसेः=अधि+√वस्, (भ्वा० प०), विधिलिङ्, म० पु० एक० । वस् धातु 'अधि' उपसर्ग के योग में 'उपान्वध्याङ्वसः' सूत्र से सकर्मक हो जाता है, अतः 'गिरि' में सप्तमी न आकर द्वितीया का प्रयोग हुआ । पण्यस्त्रीरति०= पण्याः क्रेयाः स्त्रियः तासां रतिषु यः परिमलः तम् उद्गिरन्ति=आविष्कुर्वन्ति इति तैः (शिलावेश्मभिः) । नागराणाम्=नगरे भवा इति, नगर+अण् नागराः तेषाम् । उद्दामानि=दाम्नः शृंखलाया उद्गतानि इति । (प्रादितत्पु०) यौवनानि='यूनः भावः' इति युवन्+अण्=यौवनम् तानि । यह 'प्रथयति' का कर्म है । प्रथयति=√प्रथ्, (चु० प०) (प्रसिद्ध या प्रकट करना)+णिच्, लट्, प्रथम पु० एक० ।

विशेषः—मल्लि० ने 'विश्रान्ति-हेतोः' के स्थान में 'विश्राम-हेतोः' पाठ दिया है और विश्राम शब्द की व्युत्पत्ति पर "विश्रामेत्यत्र नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' इति पाणिनीये वृद्धिप्रतिषेधेऽपि 'विश्रामो वा' इति चन्द्रव्याकरणे विकल्पेन वृद्धि-विधानाद्रूपसिद्धिः' लिख कर 'विश्राम' शब्द को व्याकरण के द्वारा शुद्ध सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, परन्तु पाणिनि-व्याकरण के अनुसार 'विश्रम' ही शुद्ध प्रयोग है 'विश्राम' नहीं । मल्लि० ने "विश्रामो वा" यह चन्द्रव्याकरण का सूत्र दिया है, परन्तु यह सूत्र चन्द्रव्याकरण में कहीं भी नहीं मिलता । चन्द्रव्याकरण भी सूत्र VI. १, ४२ के अनुसार 'विश्रम' ही सिद्ध करता है । संभवतः मल्लि० के मस्तिष्क में जैनेन्द्र व्याकरण का 'विश्रामो वा' (V. २. ४१) यह सूत्र हो । विश्राम शब्द के अशुद्ध होने के कारण ही वल्लभ इस पद्य की टीका करता हुआ लिखता है:—'विश्राम-शब्दः कवीनां प्रमादजः' अतः 'विश्रान्ति-हेतोः' पाठ ठीक है ।

पुलकितमिव=पूरे खिले हुए कदम्ब के फूलों में शरीर में प्रकट हुए रोंगटों की उत्प्रेक्षा की गई है । यहाँ 'पुलकितम्' का अर्थ 'रोमाञ्चितम्' है। रोमाञ्चित तथा कदम्ब पूल के लिए देखिए—उत्तर० III. ४२ 'सस्वेद-रोमाञ्चित-कम्पिताङ्गी जाता प्रिय-स्पर्श-सुखेन बाला । मरुन्नवाम्भः-प्रविधूत-सिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव ।'

उद्गारिभिः=उगलने वाले, प्रकट करने वाले (शिलाओं के घर) । यहाँ 'उद्गार' शब्द गौणार्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसलिए जुगुप्सा होने से अश्लीलत्व दोष नहीं आता, प्रत्युत इससे काव्य की शोभा ही बढ़ जाती है। देखिए—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दण्डी 'काव्यादर्श' में क्या कहते हैं—'निष्ठ्यूतोद्गीर्ण-वान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम्। अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते।' उद्गार का असली अर्थ 'वमन' है।

पण्यस्त्री=वेश्या, देखिए—'वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्री रूपजीविनी' इति शब्दार्णवः, मोल से खरीदी जानेवाली औरत। उभरे हुए यौवनवाली वेश्याएँ किसी-किसी पर अनुरक्त होकर स्वच्छन्द विहार चाहती हुईं 'माता' आदि के डर से आधी रात के समय किसी एकान्त स्थान में जाकर प्रेमियों के साथ रमण करती हैं—विदिशा में यह प्रसिद्ध ही है (मल्लि०)।

इस पद्य में उत्प्रेक्षालंकार है, क्योंकि यहाँ लिखे हुए फूलों में रोमाञ्चत्व की संभावना की गई है। देखिए—साहित्यदर्पण 'भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना' ॥२५॥

विश्रान्तः सन् व्रज [1]नगनदीतीरजानां[2] निषिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२६॥

अन्वयः—तत्र (नीचैःगिरौ) विश्रान्तः (सन्) नगनदीतीरजानाम् उद्यानानाम् यूथिका-जालकानि नव-जलकणैः निषिञ्चन् गण्डस्वेदापनयन-रुजाक्लान्त-कर्णोत्पलानाम् पुष्पलावीमुखानाम् छायादानात् क्षणपरिचितः (सन्) व्रज।

पदार्थः—विश्रान्तः सन्=आराम कर चुकने पर। नगनदी-तीरजानाम् उद्यानानाम्=पहाड़ी नदियों के किनारों पर (स्थित) बागों की। यूथिकाजालकानि=जूही की कलियों को। नवजलकणैः=नए जल की बूंदों से। निषिञ्चन्=सींचता हुआ। गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्त-कर्णोत्पलानाम्=जिनके कानों में (डाले गये) कमल गालों पर (आये हुए) पसीने को हटाने की बाधा से मुरझा गये हैं (ऐसी)। पुष्पलावीमुखानाम्=फूलों को तोड़नेवाली स्त्रियों के मुखों का। छायादानात्=छाया के देने के कारण। क्षणपरिचितः=क्षणभर परिचय प्राप्त कर। व्रज=जाना।

१—वननदी० मल्लि०; नवनदी० सारो०, म० सिं०। २—तीरजातानि सिञ्चन् मल्लि०, विल्स० इत्यादि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाषानुवादः—वहां, विश्राम करके पहाड़ी नदियों के किनारों पर (स्थित) बागों में जुही की कलियों को नये जल की बूंदों से सींचता हुआ, फूलों को तोड़नेवाली स्त्रियों के मुखों का, जहाँ कानों में (लटकाये हुए) कमल गालों पर आये हुए पसीने को हटाने की बाधा से मुरझाये होंगे, छाया देने के कारण क्षण-भर परिचय प्राप्त करते हुए जाना ।

व्याकरणम्—विश्रान्तः—वि+√श्रम् (दिवा० प०)+क्त । वननदीतीर-जानाम्=वने या नद्यः तासां तीरेषु जातानाम् । नवजलकणैः=नवजलानां कणैः (ष० तत्पु०) । निषिञ्चन्=नि+√सिच् (तुदा० प०)+अत् । सिच् धातु का अर्थ गीला करना है, इसलिये जलकण में तृतीया हुई । जब सिच् का अर्थ किसी द्रव को छिड़कने का हो, तो इसके साथ कर्म कारक आता है । यहाँ इसका कर्म 'यूथिकाजालकानि' है । गण्ड-स्वेदापनय०=गण्डयोः स्वेदस्यापनयनेन या रुजा तया क्लान्तानि कर्णयोः उत्पलानि येषु तेषां (पुष्पलावी-मुखानाम्) (बहुव्री०)। पुष्पलावीमुखानाम्=पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः, 'कर्मण्यण्' इति 'अण्' 'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीप्, तासां मुखानि तेषाम् (ष० त०) छायादानात्=छायायाः दानात् (ष० तत्पु०) । क्षणपरिचितः=क्षणं परिचितः 'कालाध्वनो-रत्यन्तसंयोगे' द्वितीया । व्रज=√व्रज् (भ्वा० प०), जाना, लोट् म० पु० एक० ।

विशेषः—नगनदीतीरजानाम्=मल्लि० 'नगनदीतीरजानाम्' के स्थान में 'वननदीतीरजानि' पाठ देता है और इसका 'जंगल की नदियों के किनारों पर स्वयं उगे हुए बागों के' यह अर्थ करता है । कहीं-कहीं 'वन-नदी' के स्थान में 'नद-नदी' पाठ मिलता है; पर मल्लि० ने उसका खण्डन कर दिया है । क्योंकि 'नद-नदी' इस पाठ में 'पुमान् स्त्रिया' इस व्याकरण के सूत्र से एक-शेष हो जाने से 'नद' ही शेष रह जाना चाहिए था। के० पी० पाठक 'वन-नदी' से किसी विशेष नदी को लेते हैं और इसके समर्थन में सारोद्धा० का उद्धरण देते हैं:—"अथवा मालवदेशे यूथिका-खण्ड-मण्डितोद्यान-मालित-तीरदेशा वननदीनाम्ना सरिदस्तीति" । साथ ही वल्लभ की यह पङ्क्ति भी देते हैं:—'कानन-सरिन्नदी-विशेषो वा' । सारोद्धा० में 'नवनदी' पाठ आया है, परन्तु इसमें 'वननदी' पाठ भी माना गया है जैसा कि ऊपर उद्धरण दिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है। सुमति०, वल्लभ तथा विल्सन (Wilson) 'नग-नदी' पाठ देते हैं। जिसका अर्थ 'पहाड़ी नदी' है।

पुष्पलावी=विल्सन इससे मालाकार-जाति का अर्थ लेते हैं।

छायादानात्क्षण०=छाया के देने से फूलों को तोड़नेवाली स्त्रियाँ मेघ को कामुक समझ कर प्रसन्न होंगी और मेघ भी उनके क्षणिक सहवास का आनन्द ले लेगा।

मेघ में कामुक-व्यवहार-समारोप होने से इस पद्य में 'समासोक्ति' अलंकार है ॥२६॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा[1] स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरण[2] चकितैस्तत्र पौराङ्गनानां[3]
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितो[4]ऽसि ॥२७॥

अन्वयः—उत्तराशाम् प्रस्थितस्य भवतः पन्थाः यदपि वक्रः (तथापि) उज्जयिन्याः सौधोत्सङ्ग-प्रणय-विमुखः मा स्म भूः। तत्र विद्युद्-दाम-स्फुरण-चकितैः लोलापाङ्गैः पौराङ्गनानाम् लोचनैः यदि न रमसे (तर्हि, त्वम्) वञ्चितः असि।

पदार्थः—उत्तराशाम्=उत्तर दिशा की ओर। प्रस्थितस्य=जाते हुए। भवतः=तुम्हारा। पन्थाः=मार्ग। यदपि=यद्यपि। वक्रः=टेढ़ा। उज्जयिन्याः=उज्जयिनी (विशाला) के। सौधोत्संग-प्रणय-विमुखः=महलों के ऊपर वाले भागों का परिचय (सम्पर्क) प्राप्त करने से पराङ्मुख। मा स्म भूः—मत होना। तत्र=वहां, उज्जयिनी में। विद्युद्दामस्फुरण-चकितैः=बिजली की रेखा की चमक से भौचक्कीसी हुईं, डरी हुईं। पौराङ्गनानाम्=नगर की नारियों के। लोलापाङ्गैः=चञ्चल कनखियों वाली। लोचनैः=आंखों से। न रमसे=रमण नहीं करता, आनन्द नहीं लेता। वञ्चितः असि=(जीवन-सफलता से) ठगा गया है।

भाषानुवादः—उत्तर दिशा की ओर जाते हुए तुम्हारा मार्ग यद्यपि टेढ़ा पड़ेगा, (तथापि) उज्जयिनी के महलों के ऊपर वाले भागों का परिचय प्राप्त

१—मा च विल्स०। २—स्फुरितचकितैः मल्लि०। ३—यत्र का० पा०। ४—वञ्चितः स्याः का० पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने से विमुख न होना। वहाँ (उज्जयिनी में) बिजली की रेखाओं की चमक से भौचक्की (डरी) हुई नगर की नारियों की चञ्चल कनखियोंवाली आँखों का यदि तुमने आनन्द नहीं लिया, तो तुम (जीवन-सफलता से) अपने को वञ्चित ही समझो।

व्याकरणम्—उत्तराशाम्=उत्तरा आशा (दिशा) कर्मधा०। ताम् प्रस्थितस्य=प्र+√स्था (भ्वा० प०)+क्त, ष० एक० 'भवतः' का विशेषण है। सौधोत्सङ्गप्रणय०=सौधानाम् उत्सङ्गेषु प्रणयः तस्य विमुखः। सौधः=सुधा (चूना) लेपः अस्यास्तीति सौधः (सौधम् वा)। मा स्म भूः='माङि लुङ्, 'स्मोत्तरे लङ् च' यहाँ चकार से स्म के योग में लुङ् भी होता है। 'न माङ्योगे' इससे 'अट्' आगम का प्रतिषेध हुआ। देखिए—पूर्वमेघ पद्य २९॥ विद्युद्दामस्फुरित-चकितैः=विद्युतः (वि+√द्युत्+क्विप् तस्याः) दाम्नां स्फुरणेभ्यः चकितैः। लोलापाङ्गैः=लोलाः (चञ्चलाः) अपाङ्गाः नेत्रप्रान्ताः येषु तानि (ब० व्री०) पौराङ्गनानाम्=पुरे भवा इति,—पुर=अण्+ङीप्=पौर्यः। अङ्गनाः तासाम् (समास में पौरी का पुंवद्भाव)। वञ्चितः=वञ्च्, (चु० आ०, ठगना, रहित कर देना)+क्त।

विशेषः—वक्रः पन्थाः=विन्ध्याचल से उत्तर की ओर बहती हुई निर्विन्ध्या नदी के पूर्व भाग में कुछ दूरी पर उज्जयिनी स्थित है और उत्तर का रास्ता निर्विन्ध्या के पश्चिम में है, इसलिए उत्तर की ओर जाते हुए मेघ के रास्ते में घुमाव कहा गया है—मल्लि०।

उज्जयिन्याः=प्राचीन काल में अवन्ती देश की राजधानी उज्जयिनी थी। इसका वर्णन नासिक पर्वत की गुफाओं के शिला-लेखों में है। प्टोलमी (Ptolemy) इसको 'चष्टाण' (Chastana) की राजधानी बताता है। उज्जयिनी सिप्रा नदी के किनारे पर स्थित है और यहाँ महाकाल (शिव) का मन्दिर है। 'महाकाल' के लिए पूर्वमेघ का पद्य ३६ देखें। यहाँ बहुत से लोग यात्रा के लिए आया करते हैं। उज्जयिनी को ही अवन्तिका, विशाला और पुष्पकरण्डिनी भी कहते हैं। वही कालिदास की निवास-भूमि और विक्रमादित्य की राजधानी कही जाती है। यही कारण है कि घुमाव पड़ने पर भी कालिदास मेघ को उज्जयिनी भेजता है। यह महाभारत के सात तीर्थ-स्थानों में से एक है जिनका प्रातः स्मरण किया जाता है। इन सात तीर्थों के नाम ये हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका। पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।"

वञ्चितोऽसि=इसका शब्दार्थ है कि तू (जीवन-सफलता से) वञ्चित है, ठगा गया है। इसके स्थान पर पाठान्तर 'वञ्चितः स्याः' है। सरस्वती० ने इसका अर्थ 'व्यर्थ-जन्मा भविष्यसि' दिया है और कहा है–'अथवा यदि तवैवं नोपदिशामि तर्हि त्वं मया वञ्चितोऽसि'। इसका अर्थ है कि यदि मैं तुम्हें ऐसा करने का उपदेश न दूं, तो सचमुच मैंने तुमको धोका दिया है। देखिए—अभि० शा० II 'अनवाप्त-चक्षुःफलोऽसि' ॥२७॥

सम्प्रत्युज्जयिनीं गच्छतस्तस्य मध्येमार्गं निर्विन्ध्यासम्बन्धमाह—

वीचिक्षोभस्तनित[1] विहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्या स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः[2] सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणय[3]वचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥२८॥

अन्वयः—**पथि वीचि-क्षोभ-स्तनित-विहग-श्रेणि-काञ्ची-गुणायाः, स्खलित-सुभगम् संसर्पन्त्याः (तथा) दर्शितावर्त-नाभेः निर्विन्ध्यायाः सन्निपत्य रसाभ्यन्तरः भव; हि स्त्रीणाम् प्रियेषु विभ्रमः आद्यम् प्रणय-वचनम् (भवति)।**

पदार्थः—पथि=उज्जयिनी के मार्ग में। वीचिक्षोभस्तनितविहग०=लहरों के चलने से शब्द करते हुए पक्षियों (हँसों) की पंक्ति ही जिसकी करधनी (तागड़ी) है। स्खलितसुभगं संसर्पन्त्या=(१) पत्थरों पर टकराने से (२) जवानी के मद से गिरने से जो बड़ी सुन्दर चाल से चल रही है। दर्शितावर्त-नाभेः=जिसने जल के भंवर-रूपी नाभि को दिखा दिया है। निर्विन्ध्यायाः=निर्विन्ध्या नाम की नदी के। संनिपत्य=सम्पर्क में आकर। रसाभ्यन्तरः—(१) अन्दर जल धारण करनेवाला (२) शृंगाररस का स्वाद लेनेवाला। विभ्रमः=विलास, हाव-भाव। आद्यम्=प्रथम, पहला। प्रणय-वचनम्=प्रेम की याचना का शब्द।

भाषानुवादः—मार्ग में निर्विन्ध्या नदी के, जिसकी लहरों के चलने से शब्द करते हुए पक्षियों (हंसों) की पंक्ति ही करधनी है और जो [(१) पत्थरों पर जल के टकराने के कारण (२) जवानी के मद के कारण] ठोकर खाने से सुन्दर

१—क्वणित। २—रसाभ्यन्तरं सारो०, म० सिं०, सु० वि०, विल्स०। ३—प्रणयि० सारो०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चलती हुई भँवर-रूपी नाभि को दिखा रही है—सम्पर्क में आकर उसके रस [(१) जल (२) शृंगार] को ग्रहण करना, क्योंकि स्त्रियों का प्रेमियों के प्रति हाव-भाव प्रथम याचना का शब्द हुआ करता है।

व्याकरणम्ः—वीचिक्षोभस्तनितविहग०—वीचीनां क्षोभेण (ष० तत्पु०) स्तनितानां शब्दायमानानां विहगानां श्रेणिः पङ्क्तिरेव काञ्ची गुणो यस्याः सा (ब० व्री०)। स्खलितसुभगम्=स्खलितेन उपलस्खलनेन मदस्खलनेन च सुभगं यथा स्यात् तथा। संसर्पन्त्याः=प्रवहन्त्याः गच्छन्त्याश्च; सम्+√सृप् [भ्वा० प०]+अत्+ङीप् ष० एक०। दर्शितावर्तनाभेः=दर्शितः प्रकटितः आवर्तोऽम्भसां भ्रमः एव नाभिः (कर्मधा०) यया सा तस्याः (ब० व्री०)। निर्विन्ध्यायाः=निर्विन्ध्या समास प्रादितत्पु० है। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से 'निर्विन्ध्यः' होना चाहिए था, परन्तु 'द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः' इस वार्त्तिक से प्रादितत्पु० में परवल्लिङ्गता जाती रही। एवं निर्विन्ध्या स्त्रीलिंग रूप बना। रसाभ्यन्तरः=(१) रसः=जलम् अभ्यन्तरे यस्य (ब० व्री०)—(२) रसेन (शृंगारेण) अभ्यन्तरोऽन्तरङ्गः (तृ० तत्पु०) भव=√भू (भ्वा० प०), लोट्, म० पु० एक०।

विशेष:—निर्विन्ध्यायाः=निर्विन्ध्या मालव देश की एक नदी है। यह विन्ध्यपर्वत से निकलती है, इसलिए इसका 'निर्विन्ध्या' अनुरूप नाम है—अर्थात् 'निष्क्रान्ता विन्ध्यात् इति निर्विन्ध्या'। जिनसेन ने अपने आदिपुराण में भी इस नदी का वर्णन किया है।

विहगश्रेणिकाञ्ची०=देखिए—विक्रमो० IV २४ 'तरङ्गभ्रूभंगा क्षुभित-विहगश्रेणि-रशना'-ऋतु० III. २४।

दर्शितावर्तनाभेः=जल की भँवर ही नाभि है। देखिए—रघु० XIII. ४२ 'व्याजार्थसंदर्शितमेखलानि'। इस सम्बन्ध में श्रीनन्दरगिकार ने नीचे दिए गए पद्य का उद्धरण दिया है—स्निग्धं दृष्टिपथं विभूषिततनुः कर्णस्य कण्डूयनं नाभेर्दर्शनमुत्पथं च गमनं बालस्य चालिङ्गनम्। केशानां च मुहुर्मुहुर्विवरणं निःश्वस्य चालापनं कुर्युः प्रीतिवशात् स्त्रियः समदना दृष्ट्वा नरं वाञ्छितम्॥'

इस पद्य में 'रूपक' अलंकार है। जहाँ उपमेय को कहकर उसमें उपमान का आरोप किया जाय, वहाँ 'रूपक' होता है। यहाँ हंसपंक्ति में 'रशनात्व' और आवर्त में 'नाभित्व' का आरोप तो शाब्द है, किन्तु निर्विन्ध्या में 'नायिकात्व' का आरोप गम्य होने से एकदेशविवर्ति रूपक है। रस शब्द के दो अर्थ होने से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यहाँ 'श्लेष' अलंकार भी है और अन्तिम पाद में पादत्रयगत वस्तु का समर्थन होने से 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार भी है ॥२८॥

निर्विन्ध्याया विरहावस्थां वर्णयंस्तन्निराकरणं प्रार्थयते—

वेणीभूतप्रतनुसलिला[1] तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।[2]
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती[3]
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥२९॥

अन्वयः—वेणीभूतप्रतनुसलिला, तटरुह-तरु-भ्रंशिभिः जीर्ण-पर्णैः पाण्डुच्छाया सिन्धुः विरहावस्थया ताम् अतीतस्य ते सौभाग्यम् व्यञ्जयन्ती येन विधिना कार्श्यम् त्यजति, हे सुभग ! सः (विधिः) त्वया उपपाद्यः ।

पदार्थः—वेणीभूतप्रतनुसलिला=जिसका कम जल वेणी (स्त्रियों की चोटी) जैसा बना हुआ है । वेणी के लिए देखिये-पद्य-१७, पूर्वमेघ । तटरुहतरुभ्रंशिभिः =किनारों पर उगे हुए वृक्षों से गिरते हुए । जीर्णपर्णैः=पुराने पत्तों से । पाण्डुच्छाया=पीली कान्तिवाली । सिन्धुः=काला सिन्धु नाम की नदी । विरहावस्थया =वियोग की अवस्था द्वारा । ताम्=उस निर्विन्ध्या नदी को । अतीतस्य=पार करते हुए । ते=तेरे । सौभाग्यम्=अच्छे भाग्य को । व्यञ्जयन्ती=प्रकट करती हुई । येन विधिना जिस प्रकार । कार्श्यम्=दुर्बलता को । त्यजति—छोड़ देती है । सुभग=हे भाग्यशाली ! सः=वह विधि । त्वया उपपाद्यः=तुम्हें करनी चाहिए ।

भाषानुवादः—उस (निर्विन्ध्या नदी) को पार करके, हे भाग्यवान् ? तू ऐसा उपाय करना जिससे कि सिन्धु-नदी, जिसका क्षीण जल वेणी (स्त्रियों की चोटी) जैसा बना हुआ है, जो किनारों पर उगे हुए वृक्षों से गिरनेवाले पत्तों से पीली कान्तिवाली हो गई और (अपनी) विरहावस्था से तेरी भाग्यशालिता को प्रकट कर रही है, अपनी दुर्बलता को त्याग दे ।

व्याकरणम्—वेणीभूतप्रतनु०=न वेणी अवेणी, अवेणी वेणी सम्पद्यमानं भूतम् वेणीभूतं प्रतनु सलिलं यस्याः सा (ब० व्री०) । तटरुह-तरु-

---

१—सलिलासावतीतस्य मल्लि०, सलिला सा त्वतीतस्य स० ती० । २—शीर्णपर्णैः वल्ल०; विल्स० । ३—व्यञ्जयन्तीम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भ्रंशिभिः=तटेषु रोहन्ति ये तरवः तेभ्यो भ्रंशिभिः। जीर्णपर्णैः=जीर्णानि पर्णानि जीर्णपर्णानि तैः (कर्मधा०) पाण्डु-च्छाया=पाण्ड्वी छाया यस्याः सा (ब० व्री०)। अतीतस्य=अति√इण् (अदा० प०)=क्त, षष्ठी एक०। सौभाग्यम्=सुभगस्य भावः सौभाग्यम्। व्यञ्जयन्ती=वि+√अञ्ज् (रुधा० प०) णिच्+अत्+ई (स्त्रियाम्), प्र० एक०। कार्श्यम्=कृशस्य भावः कार्श्यम्।

विशेषः—वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः=इसके स्थान में मल्लि० ने··· 'सलिलासावतीतस्य सिन्धुः' यह पाठान्तर दिया है और 'तामतीतस्य' का खण्डन करते हुए लिखा है—'तामतीतस्य' इति पाठमाश्रित्य सिन्धुर्नाम नद्यन्तरमिति व्याख्यानं तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः काश्मीरदेशेऽस्ति। नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यम्, अर्थात् निर्विन्ध्या के अतिरिक्त सिन्धु नाम की कोई और नदी है, यह अर्थ ठीक नहीं, क्योंकि 'सिन्धु' कोई नदी नहीं है, किन्तु एक महानदी है, जो काश्मीर में ही बहती है, न कि मालवा में। मल्लि० के पाठानुसार 'अतीतस्य ते' इतने समय तक परदेश गए हुए तेरे और 'असौ सिन्धुः' यह नदी (निर्विन्ध्या) अर्थ होता है। मल्लि० के मतानुसार 'सिन्धु' शब्द यहाँ नदी-सामान्य का वाचक, है, न कि नदी-विशेष का। इसके समर्थन में मल्लि० ने वैजयन्ती का "स्त्री नद्यां नदे सिन्धुर्देशभेदेऽम्बुधौ गजे' यह उद्धरण दिया है, किन्तु मल्लि० के पाठ की अपेक्षा 'तामतीतस्य सिन्धुः' यह पाठ अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि मालव में 'काली सिन्धु' नाम की एक नदी भी है, जो चम्बल नदी में आ मिलती है। इसका समर्थन सारोद्धा० और सुमति० के द्वारा हो जाता है। इसके अनुसार 'सिन्धु' शब्द से यहाँ इसी नदी-विशेष का ग्रहण होता है न कि 'निर्विन्ध्या' का। मल्लि० को सम्भवतः इस 'काली-सिन्धु' नाम की नदी का पता नहीं था। इसके अतिरिक्त मल्लि० का 'अतीतस्य' का 'एतावन्तं कालमतीत्य गतस्य' अर्थात् इतने समय तक परदेश गए हुए तेरे—यह अर्थ करना निरी खेंचातानी ही है। इसके अतिरिक्त कवि ने 'सिन्धु को कम जलवाली (प्रतनु-सलिला) कार्श्य-प्राप्त और एक धार में ही बहनेवाली (वेणीभूत०) बताया है, किन्तु निर्विन्ध्या तो बड़े बेग से क्षुब्ध (वीचिक्षोभ०) चट्टानों से टकराती गिरती (स्खलितसुभगं) और भँवरों से भरी हुई (दर्शितावर्तनाभेः) बतलाया है, अतः यहाँ 'सिन्धु' नदी 'निर्विन्ध्या' नदी से भिन्न ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेणीभूत०=वेणीभूत से अभिप्राय 'एक-वेणीभूत' का है। देखिए—अभि० शा० VII. २१, 'नियमक्षाममुखी धृतैकवेणी'।

सौभाग्यम्=जिसके लिए स्त्री के हृदय में प्रेम है और जिसे वह चाहती है, वह पुरुष 'सुभग' (भाग्यशाली) होता है।

कवि का तात्पर्य सिन्धु नदी को विरहिणी बताना है, जो वियोग में एक ही वेणी बाँधे रखती है, सूख कर पीली पड़ गई है। मेघ उसका प्रिय है, जो बरसकर (संभोगद्वारा) उसकी कृशता को दूर कर देगा। इस तरह मेघ और नदी में नायक-नायिका का व्यवहारसमारोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है ॥२९॥

प्राप्यावन्ती[1]नुदयनकथाकोविदग्राम[2]वृद्धा-
न्पूर्वोद्दिष्टामुपसर[3] पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव[4] दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३०॥

अन्वयः—उदयन-कथा-कोविद-ग्राम-वृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य (त्वम्) सुचरित-फले स्वल्पीभूते गां गतानाम् स्वर्गिणाम् शेषैः पुण्यैः हृतम् कान्तिमद् दिवःखण्डम् इव (स्थिताम्) पूर्वोद्दिष्टाम् श्रीविशालाम् विशालाम् पुरीम् उपसर।

पदार्थः—उदयनकथा-कोविद-ग्राम-वृद्धान्=जहाँ के गावों के वृद्ध उदयन राजा की कथाओं के जानकार हैं। अवन्तीम्=अवन्ती नाम के देश में। प्राप्य=पहुँचकर। सुचरित-फले=पुण्य-फल के। स्वल्पीभूते=कम हो जाने पर। गां गतानाम्=पृथ्वी पर आये हुए। स्वर्गिणाम्=स्वर्ग में रहने वालों के। शेषैः पुण्यैः=बचे-खुचे पुण्यों द्वारा हृतम् इव=लाया हुआ-सा। दिवः=स्वर्ग का। एकम् कान्तिमत् खण्डम्=एक उज्ज्वल टुकड़ा। श्रीविशालाम्=सम्पत्ति-शाली। विशालां पुरीम्=उज्जयिनी नगरी को। उपसर=पहुँचना।

भाषानुवाद—अवन्ती देश में पहुँच कर, जहाँ के गांवों के वृद्ध पुरुष उदयन राजा की कथाओं से अच्छी तरह परिचित हैं, (तुम) पूर्वनिर्दिष्ट विशाल सम्पत्तिवाली विशाला (उज्जयिनी) नगरी में जाना, जो ऐसी लगती है कि मानो पुण्य-फल के कम हो जाने पर पृथ्वी पर (लौट) आए स्वर्गवालों के

१—अवन्तीम् विल्स०। २—ज्ञान। ३—अनुसर मल्लि०, विल्स० इत्यादि। ४—कृतमिव का० पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बचे-खुचे पुण्यों द्वारा (अपने साथ) लाया गया स्वर्ग का एक उज्ज्वल टुकड़ा हो।

व्याकरणम्—उदयनकथाकोविद०=उदयनस्य वत्सराजस्य कथानां कोविदा ग्रामेषु वृद्धा येषां तान् (ब० व्री०)। मल्लि० कोविद शब्द को पृषोदरादिवत् सिद्ध करते हैं। ओकसः=वेद्य-स्थानस्य बिदाः (जानकार) (स् लुप्त हुआ) √विद्+अ (कः); भानुजी दीक्षित कोविद का निर्वचन इस प्रकार करते हैं—कोः=वेदस्य विदाः अथवा कवि ('को' का स० एक०) विदा ज्ञानं येषां ते। अवन्तीन्=देश-वाचक शब्द संस्कृत में बहुवचनान्त प्रयुक्त होते हैं—जैसे=मगधाः, पाञ्चालाः, विदेहाः आदि। प्राप्य=प्र+√आप् (स्वा० प०), पाना+य (ल्यप्)। सुचरितफले स्वल्पीभूते=सत्सप्तमी (locative absolute)। स्वर्गिणाम्=√स्वर्ग=इन्, षष्ठी बहु०। गतानाम्=गम्+त (क्त), ष० व०। दिवः=द्यौ का ष० एक०। कान्तिमत्=कान्ति+मतुप्। पूर्वोद्दिष्टाम्=पूर्व+उत्+√दिश् (तु० उ०, आज्ञा देना, बताना) +त+आ, द्वि० एक०। श्रीविशालाम्=श्रिया विशालाम् सम्पन्नाम् (तृ० तत्पु०) विशालाम्=विशिष्टाः विविधाः वा शालाः (महल) यस्याम्। विशेष्य शब्द मान कर यह उज्जयिनी का ही नामान्तर है। यदि विशाला 'वैशाली' ही है, जिसका वर्णन भाग० प्र० में आया है, तो इस पुराण की यह पंक्ति देखिए—'विशालवंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम्।' उपसर=उप+√सृ, (भ्वा० प०) (सरकना चलना) लोट् म० पु० एक०।

विशेषः—अवन्तीन्=यह देश मालवा का ही एक भाग है और उज्जयिनी इसकी राजधानी है।

उदयनकथा=वत्सराज उदयन, वासवदत्ता तथा पद्मावती की कथा 'कथा-सरित्सागर' में वर्णित है। भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' में भी उदयन की कथा है। इस कथा का सारांश पूर्वमेघ पद्य ३२ के विशेष में देखिए।

विशालाम्=यह उज्जयिनी का दूसरा नाम है। वल्लभ और सारोद्धा० के अनुसार 'विशालाम्' पुरीम् का विशेषण है और इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है—'विशिष्टाः विविधाः वा शालाः प्राकारा यस्यां सा।'

स्वल्पीभूते सुचरित०—इस सम्बन्ध में देखिए 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' भ० गी० IX. २१। यहाँ पर भी पुण्यों के क्षीण होने पर स्वर्ग से उन लोगों का मर्त्यलोक में प्रवेश करना बताया है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिन्होंने वहां के सब अच्छे अच्छे भोगों को भोग लिया है। और देखिए— विक्र० II 'ननु वक्तव्यं स्थानान्तरगतः स्वर्ग इति।' कथासरि० में उज्जयिनी की स्वर्ग से तुलना की गई है—'अस्तीहोज्जयिनी नाम नगरी भूषणं भुवः। हसन्तीव सुधाधौतैः प्रसादैरमरावतीम् ॥ [XI. ३१]।

यहां प्रकृत (प्रस्तुत) विशाला में अप्रकृत (अप्रस्तुत) स्वर्ग-खण्ड की संभावना की गई है, इसलिए उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥ ३० ॥

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥३१॥

अन्वयः—यत्र (विशालायाम्) प्रत्यूषेषु पटु मदकलम् सारसानां कूजितम् दीर्घीकुर्वन् स्फुटित-कमला-मोद-मैत्री-कषायः, अङ्गानुकूलः शिप्रा-वातः प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतमः इव स्त्रीणाम् सुरत-ग्लानिम् हरति ।

पदार्थः—यत्र=जहाँ (विशाला में)। प्रत्यूषेषु=प्रत्येक उषाकाल में (प्रातः)। पटु=तीव्र। मदकलम्=मद से मीठा। कूजितम्=शब्द को। दीर्घीकुर्वन्=बढ़ाता हुआ, विस्तार देता हुआ। स्फुटित-कमलामोद०=पूर्ण विकसित कमलों के गन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित। अङ्गानुकूलः=अङ्गों को सुख देनेवाला। शिप्रावातः=शिप्रा नदी का वायु। प्रार्थनाचाटुकारः=(रति) याचना में मीठी-मीठी बातें करनेवाले। प्रियतम इव=प्रेमी की तरह। सुरत-ग्लानिम्=संभोग की थकावट को। हरति=दूर कर देता हैं।

भाषानुवादः—जहाँ (विशाला में) प्रातः सारस–पक्षियों की ऊँची और मद से मीठी ध्वनि को विस्तार देता हुआ, पूर्ण-विकसित कमलों की गन्ध के संसर्ग से सुगन्धित (तथा) अङ्गों को सुख देनेवाला शिप्रा नदी का वायु (रति की) याचना में चिकनी-चुपड़ी बातें बनानेवाले प्रेमी की तरह स्त्रियों की रति से पैदा हुई थकावट को दूर करता है।

व्याकरणम्—सारसानाम्=सरसि चरन्ति इति, सरस्+अण् सारसाः तेषाम्। दीर्घीकुर्वन्+अदीर्घं दीर्घं सम्पद्यमानं करोतीति दीर्घीकुर्वन् दीर्घ+च्वि +√कृ, (तना० उभ०)+अत् (शतृ)। स्फुटितकमलामोद०=स्फुटितानां कमलानाम् आमोदेन सह या मैत्री तया कषायः=सुगन्धितः। मैत्री=मित्रस्य भावः इति, मित्र+अण्+ङीप स्त्रियाम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'कटु-तिक्त-कषायास्तु सौरभ्येऽपि प्रकीर्तिताः।' अङ्गानुकूल=अङ्गानामनुकूलः, (ष० तत्पु०)। प्रार्थनाचाटुकारः=प्रार्थनायां चाटुकारः, (स० तत्पु०)। प्रार्थना=प्र+√अर्थ्=युज् भावे। चाटुकारः=चाटु करोति इति, चाटु+√कृ+अण् कर्त्तरि।

विशेषः—दीर्घीकुर्वन्=जब तक वायु चलती रहती है, तब तक सारस बोलते ही रहते हैं। इसलिए 'शिप्रावातः' को 'दीर्घीकुर्वन्' कहा है।

शिप्रा = एक नदी है, जिसके किनारे पर उज्जयिनी स्थित है। देखिए—रघु VI. ३५ 'शिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु।'

प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः=कुछ टीकाकारों ने यहाँ खण्डिता नायिका की विवक्षा की है। जब खण्डिता स्त्री पति के आचरण पर सन्देह करती है, तो पति पत्नी को प्रसन्न करने के लिए चिकनी-चुपड़ी बातें बनाता है, जिससे वह अपना काम बना सके। देखिए—कुमार सं० VIII. २५ चाटुकार इव दक्षिणानिलः। और देखिए पूर्वमेघ पद्य ४१ 'तस्मिन् काले नयन-सलिलं प्रेषितैः खण्डितानां शान्ति नेयं प्रणयिभिः······।' किन्तु मल्लि० के कथनानुसार यहाँ खण्डिता नायिका का कोई प्रसंग नहीं है। खण्डिता नायिका के साथ पहले जब रति ही नहीं हुई, फिर रति की थकावट को दूर करने का प्रश्न ही नहीं उठता; अतः 'प्रार्थना-चाटुकारः' की 'खण्डिता-नायिकानुनेता' ऐसी व्याख्या न करके "पुनः सुरतार्थं प्रिय-वचन-प्रयोक्ता" ऐसी व्याख्या करनी चाहिए। 'खण्डिता नायिका' के लिए देखिए—दशरूपक 'तिष्ठेदीर्ष्याकषायिता खण्डिता।' साहित्य-दर्पण (३.७५) में इसका लक्षण इस प्रकार दिया है 'पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंभोगचिह्नितः। सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता।'

चाटुकारः=देखिए—कुमार० VIII. 'आचचाम सलवङ्गकेशरश्चाटुकार इव दक्षिणानिलः।'

यत्र स्त्रीणां सुरत०—इस प्रकार के विचार के लिए देखिए०—अमरु० ५८ 'प्रातर्वाति मधौ प्रकाशविकसद्राजीवराजीरजोजालामोदमनोहरो रतिरसग्लानिं हरन्मारुतः।'

कवि ने इस पद्य में 'शिप्रावातः' की प्रियतम से समता दिखाई है, इसलिए यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है ॥३१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-
दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥३२॥

अन्वयः—अत्र वत्सराजः प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं जह्रे। अत्र तस्य एव राज्ञः हैमम् तालद्रुमवनम् अभूत। अत्र किल नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाट्य उद्भ्रान्तः—इति अभिज्ञ. जनः आगन्तून् बन्धून् रमयति।

पदार्थः—अत्र=यहाँ (उज्जयिनी में)। वत्सराजः=वत्सदेश का राजा उदयन। प्रद्योतस्य प्रियदुहितरम्=(उज्जयिनी के राजा) प्रद्योत की प्यारी कन्या (वासवदत्ता) को। जह्रे=हर ले गया था। राज्ञः=राजा का। हैमम् तालद्रुम–वनम् अभूत्=सुनहरी तालों के वृक्षों का वन था। किल= ऐसा सुनते हैं कि (किलेत्यैतिह्ये)। नलगिरिः=इस नाम का हाथी, (यहाँ उस चण्ड स्वभाव वाले हाथी से अभिप्राय है जो कि प्रद्योत को इन्द्र के द्वारा दिया गया था)। दर्पात्=अभिमान से, मद से। स्तम्भम्=खम्भे को। उत्पाटच= उखाड़कर। उद्भ्रान्तः=फिरता रहा (घूमा) इति=इस प्रकार। अभिज्ञः जनः=(पूर्व कथाओं को) जानने-वाले आदमी। आगन्तून् बन्धून्=(अन्य देशों व स्थानों से) आये हुए बन्धुओं को। रमयति=प्रसन्न करते हैं, मन बहलाया करते हैं।

भाषानुवादः—यहाँ (उज्जयिनी में) वत्सराज (उदयन) प्रद्योत राजा की प्रियपुत्री (वासवदत्ता)को हर ले गया था; यहाँ उसी राजा प्रद्योत का सुवर्णमय (सुनहरी)ताल–वृक्षों का वन था; कहते हैं कि यहाँ नलगिरि (हाथी) मद के कारण खम्भे को उखाड़कर फिरता रहा—इस प्रकार (पुरानी कथाओं के)जान-कार लोग (देश-देशान्तरों से) आए हुये बन्धुओं का मनोविनोद करते हैं।

व्याकरणम्—वत्सराजः=वत्सानां राजा; 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति 'टच्' प्रत्ययः। राजन् में टच्(अ)प्रत्यय लगाकर 'राज' शब्द बना। इसके रूप 'राम' के समान होंगे। प्रियदुहितरम्=प्रिया दुहिता ताम्, दुहितृ, द्वि० ए० व०। दुहितृ=दूरे हिता अथवा दुर्हिता दुहिता (यास्क)। जह्रे=√हृ, (भ्वा० उभ०) (ले जाना), लृट् प्र० पु० एक०। राज्ञः=राजन्, षष्ठी एक० व०। हैमम्=हेम्न इदम्, हेमन्+अ। अभूत्=√भू, लुङ् प्र० पु० एक०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्पाटच=उत्+√पट् (चु० उभ०)+य। उद्भ्रान्तः=उत्√भ्रम्, (भ्वा० प०)+त(क्त) प्र० ए० व०। अभिज्ञः=अभि+√ज्ञा, (क्रिया० उभ०) (जानना)+अ (क) प्रथमा एक०। आगन्तून्=आ√गम् (भ्वा० प०)+तु (उणादि) रमयति=√रम् (भ्वा० आ०)+णिच्।

विशेषः—प्रद्योतस्य प्रियदुहितरम्=मल्लि० इस पद्य को तथा इसके बाद आने वाले 'हारांस्तारान्' पद्य को प्रक्षिप्त बताता है, परन्तु मल्लि० का मत ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि ये दोनों पद्य 'पार्श्वाभ्युदय' में पाए जाते हैं। 'पार्श्वाभ्युदय' का कर्त्ता जिनसेन आठवीं शती में हुआ और मल्लि० उसके बाद चौदहवीं शती में हुआ।

वल्लभ के कथनानुसार उदयन राजा की कथा 'बृहत्कथा' में दी गई है। बृहत्कथा को गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में लिखा था। इसका संस्कृत अनुवाद क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव ने क्रमशः 'बृहत्कथा-मञ्जरी' और 'कथा-सरित्सागर' में किया है। कथासरित्सागर में दी गई उदयन की कथा का सारांश यह है—"उज्जयिनी के राजा चण्ड महासेन की 'वासवदत्ता' नाम की एक कन्या थी। राजकुमारी ने स्वप्न में वत्सराज उदयन को देखा और उसे देखते ही वह उसपर मोहित हो गई। किसी उपाय से राजकुमारी ने उदयन को अपने प्रेम का परिचय कराया और उदयन उसको पिता के घर से ले भागा।" सारोद्धारिणी के अनुसार चण्ड महासेन का दूसरा नाम प्रद्योत था जिसका परिचय हमें इस पद्य से मिलता है। सुमतिविजय चण्डमहासेन को चण्डप्रद्योत भी कहता है।

इस पद्य में अतीत की बात प्रत्यक्ष-सी बताई गई है, अतः इसमें 'भाविक' अलंकार है। लक्षण यह है—जहाँ अतीत अथवा भविष्य की कोई अत्यद्भुत बात इस प्रकार वर्णन की जाय जैसे कि वह हमारी आँखों के आगे प्रत्यक्ष-सी हो जाय, वहां 'भाविक' अलंकार होता है॥३२॥

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्[1]कोटिशः शंख-शुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गा-
न्संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः॥३३॥

१—गुलिकान् सारो०, स० ती, म० सिं०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—यस्याम् (विशालायाम्) कोटिशः विपणिरचितान् तरल-गुटिकान् तारान् हारान्, शंख-शुक्तीः, शष्प-श्यामान् उन्मयूख-प्ररोहान् मरकत-मणीन्, विद्रुमाणां भङ्गान् च दृष्ट्वा सलिल-निधयः तोयमात्रावशेषाः संलक्ष्यन्ते ।

पदार्थः—यस्याम्=जिस (विशाला) में, उज्जयिनी में। विपणिरचितान्=बाजारों में (बिक्री के लिए) सजाए गए। तारान्=शुद्ध। तरलगुटिकान् जिनमें महारत्न मध्यमणि थे। कोटिशः=करोड़ों। हारान्=मोतियों की मालाओं को। शंखशुक्तीः=शंख और सीपियों को। शष्पश्यामान्=घास के समान गूढ़े हरे रंगवाली। उन्मयूखप्ररोहान्=जिनमें अंकुरों के समान चमकती हुई किरणें प्रकट हो रही थीं। मरकत-मणीन्=मरकत मणियों को। विद्रुमाणां भङ्गान्=विद्रुमों (मूँगों) के टुकड़ों को। दृष्ट्वा=देखकर। सलिलनिधयः=समुद्र। तोयमात्रावशेषाः=जिनमें केवल जल ही जल बाकी रह गया है अर्थात् खाली। संलक्ष्यन्ते=दिखाई देते हैं।

भाषानुवादः—जहाँ (विशाला में) बाजारों में (बिक्री के लिए) सजाए गए, मध्यभाग में महारत्नों वाले करोड़ों असली मोतियों के हारों, शंखों व सीपियों को, घास के समान गूढ़े हरे रंग की तथा अङ्कुरों की तरह ऊपर को उठी हुई किरणों वाली मरकत मणियों को, एवं विद्रुमों (मूँगों) के टुकड़ों को देखकर समुद्र ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे कि इनमें (अब) पानी-पानी ही बाकी रह गया हो।

व्याकरणम्—विपणि-रचितान्=विपणिषु पण्यवीथिकासु रचितान् प्रसारितान्। तरलगुटिकान्=तरलभूता गुटिका येषां ते (ब० व्री०)। शंख-शुक्तीः=शंखाश्च शुक्तयश्च तान् (द्वन्द्व)। शष्पश्यामान्=शष्पम् इव श्यामान् (तत्पु०)। उन्मयूख-प्ररोहान्=उद्गता मयूखा येषां ते (ब० व्री०) उन्मयूखाः तादृशाः प्ररोहा येषां ते उन्मयूखप्ररोहास्तान् (बहुव्री०)। तोयमात्रावशेषाः=तोयम् एव तोयमात्रम् तदवशेषो येषां ते तादृशाः (ब० व्री०)। संलक्ष्यन्ते=सम्+√लक्ष्, चु० उभ० (देखना) कर्मणि लट् प्र० पु० बहु०।

विशेषः—तारान्=इसका अर्थ सुमतिविजय ने 'उज्ज्वलान्' किया है। सरस्वतीतीर्थ 'स्थूलानुज्ज्वलान्' तथा मल्लि० 'शुद्धान्' देता है।

तरलगुटिकान्=इसका पाठान्तर 'तरल-घुटिकान्' है। यहां घुटिकान् सम्भवतः गुटिकान् या गुलिकान् का अशुद्ध रूप है। सरस्वती० इसकी 'निस्तलमुक्ता-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

फलान्' तथा सारोद्धा० 'तरला नायकमणयस्त एव गुलिका येषु तान्' इस प्रकार अर्थ करते हैं।

तोयमात्रावशेषाः — समुद्र को 'रत्नाकर' भी कहते हैं, परन्तु जब कि इसके सब रत्न व मणियाँ विशाला में ही एकत्रित हो गई हैं, तब इसका 'रत्नाकर' नाम अयथार्थ हो गया है, तभी कहा गया है कि समुद्रों में केवल जल ही बाकी रह गया है ॥३३॥

मल्लि० के मतानुसार यहां "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरम्······" और "हारांस्तारांस्तरल···" के अतिरिक्त निम्नलिखित एक और प्रक्षिप्त पद्य मिलता है।

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥३३क॥

अन्वयः—(हे मेघ !) यत्र वाहाः पत्रश्यामाः (अतएव) दिनकरहय-स्पर्धिनः (तथा) शैलोदग्राः करिणः प्रभेदात् त्वमिव वृष्टिमन्तः, योधाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखम् तस्थिवांसः चन्द्रहास-व्रणाङ्कैः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः ।

भाषानुवादः—(हे मेघ !) जहाँ पत्तों की तरह सुन्दर रंग के घोड़े सूरज के घोड़ों के साथ प्रतियोगिता करने वाले हैं, पर्वतों-जैसे ऊंचे हाथी मद-जल के बहने के कारण तुम्हारी तरह वर्षा करते हैं और सैनिकों के नेता लड़ाई में रावण के विरुद्ध अभियान (चढ़ाई) करके चन्द्रहास (रावण की तलवार) के घावों के चिह्नों द्वारा आभूषणों (गहनों) की कान्ति पर लात मारते हैं।

विशेषः—मल्लिनाथ आदि कितने ही विद्वान् इस पद्य को प्रक्षिप्त मानते हैं। यह उत्तरमेघ में भी आया हुआ है, अतः इसका व्याकरण और विशेष वहीं पद्य संख्या १३ में देखिए ॥३३क॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै[1]—
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।[2]
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा[3]
लक्ष्मीं[4] पश्यंल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥३४॥

१—०धूमैः सु० वि० । २—०नृत्तोपचारः का० पा० । ३—अध्वखिन्नान्तरात्मा का० पा० । ४—मुक्त्वा खेदं वल्ल०, खेदं नीत्वा सारो० सु० वि०, त्यक्त्वा खेदं विल्स० रात्रिं नीत्वा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—जालोद्गीर्णैः केशसंस्कारधूपैः उपचितवपुः (तथा) बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः (त्वम्) कुसुम-सुरभिषु ललित-वनितापाद-रागाङ्कितेषु अस्याः लक्ष्मीं पश्यन् अध्वखेदं नयेथाः।

पदार्थः—जालोद्गीर्णैः—(खिड़कियों की) जालियों से निकलते हुए। केशसंस्कारधूपैः=(स्त्रियों के) बालों को सुगन्धित करने वाले धूप से। उपचितवपुः—परिपुष्ट शरीरवाला। बन्धु-प्रीत्या=भ्रातृ-स्नेह से। भवन-शिखिभिः—पालतू मोरों द्वारा। दत्त-नृत्योपहारः=जिसको नाच का उपहार दिया गया है। कुसुमसुरभिषु=फूलों से सुगन्धित। ललित-वनिता·पाद-रागाङ्कितेषु=सुन्दर नारियों के पैरों में लगाए गए महावर से चिह्नित। हर्म्येषु=महलों में। अस्या लक्ष्मीं पश्यन्=इस उज्जयिनी की शोभा को देखता हुआ। अध्वखेदम्=मार्ग की थकावट को। नयेथाः=दूर करना।

भाषानुवादः—(खिड़कियों की) जालियों से निकलते हुए (स्त्रियों के) बालों को सुगन्धित करने वाले धूप (के धूएँ) से परिपुष्ट शरीरवाला होकर बन्धुस्नेह के कारण पालतू मोरों द्वारा नृत्य का उपहार दिया जाता हुआ (तू) फूलों से सुगन्धित तथा सुन्दरियों के पैरों में लगाए गए लाक्षा-रस (महावर, मेंहदी) से चिह्नित महलों में इस (उज्जयिनी) की श्री (शोभा) को देखता हुआ मार्ग की थकावट को दूर करना।

व्याकरणम्—जालोद्गीर्णैः=जालेभ्यः उद्गीर्णाः (पं० त०); उद्गीर्णैः—उत्+√गृ, (तुद्० प०)+त (र), तृ० बहु०। केशसंस्कारधूपैः=केशानां संस्कारस्तस्य धूपैः (ष० तत्पु०)संस्कार=सम्+√कृ=घञ् (करणे)। 'अत्र संस्कारधूपयोस्तादर्थ्येऽपि यूपदार्वादिवत् प्रकृतिविकारत्वाभावादश्वघासादिवत् षष्ठीसमासो न चतुर्थीसमासः' मल्लि०। उपचितवपुः=उपचितं (उप+√चि+क्त) वपुः यस्य सः (ब० व्री०)बन्धुप्रीत्या=बन्धौ बन्धुरिति वा प्रीतिः तया। दत्तनृत्योपहारः=दत्तो नृत्यमेवोपहारः (उप+√हृ+घञ् भावे) उपायनं यस्मै सः(ब० व्री०। (कुसुमसुरभिषु=कुसुमैः सुरभिषु(तृ० तत्पु०)। ललितवनिता पाद०=ललितवनितानां पादरागेण (√रञ्ज्+घञ्+करणे या भावे तेन) अङ्कितेषु हर्म्येषु लक्ष्मीम्=लक्षयति नीतिमन्तं पुमांसमिति, √लक्ष्+मुट्+ई। नयेथाः=√नी (भ्वा० आ०), वि० लिङ्, म० पु०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः—केशसंस्कारधूपैः—इसके स्थान पर "केशसंस्कारधूमैः' पाठान्तर है किन्तु 'धूपैः' वाला पाठ ठीक है।

बन्धुप्रीत्या—बादल और मोर में स्वाभाविक मैत्री है। इसी विचार से मोरों को बादल का 'बन्धु' कहा गया है। इसी प्रकार उत्तरमेघ में 'तन्मध्ये च स्फटिक-फलका ··नीलकण्ठः सुहृद्वः' उत्तरमेघ १९, इस पद्य में मोर को बादल का मित्र कहा गया है। मालविका० नाटक में भी पुष्कर की गम्भीर ध्वनि को बादल का गर्जन समझकर ऊंची गर्दन करके उसके आगमन की प्रतीक्षा करने लगते हैं।

दत्तनृत्योपहारः—दशरूपक के अनुसार 'भवेद् भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताल-लयाश्रितम्' अर्थात् भावों की अभिव्यक्तिवाला नाच 'नृत्य होता है और जिस नाच में ताल और लय हो वह 'नृत्त' होता है। तुच्छ या छोटे पशु-पक्षियों का नाच नृत्त है। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ३८।

ललितवनितापाद०—देखिए—अभि० शा० IV. ४ 'निष्ठ्यूतश्चरणोप-भोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।'

अध्वखेदं नयेथाः—इसका पाठान्तर 'अध्वखिन्नान्तरात्मा' है, जिसका यह अर्थ है—'मार्ग से जिसकी अन्तरात्मा थक गई है।' अन्तिम पाद में 'लक्ष्मीं पश्यन्' के स्थान पर नीचे लिखे पाठान्तर हैं–(१) मुक्त्वा खेदं–वल्लभ (२) खेदं नीत्वा–सुमति० और सारोद्धा० (३) त्यक्त्वा खेदं–विल्सन (Wilson) (४) नीत्वा खेदं—के० पी० पाठक। सुमति और सारोद्धा० 'अध्वखिन्नान्तरात्मा' पाठ मानकर प्रकृत पद्य में क्रियापद न होने से इसको तथा आगे आने वाले पद्य को युग्मक या युगल मानते हैं अर्थात् उनके विचार में इस पद्य का और इसके बाद के पद्य का इकट्ठा अर्थ होता है। मल्लि० ऐसा नहीं करता, क्योंकि उसने तीसरे पाद का पाठ 'अध्व-खेदं नयेथाः' मानकर क्रियापद दे दिया है। हमने भी मल्लि० का पाठ लिया है ॥३४॥

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।[1]

१—चण्डेश्वरस्य विल्स०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडा[1]निरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥३५॥

अन्वयः—भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरम् वीक्ष्यमाणः (सन्) पुण्यम् (तथा) कुवलय-रजोगन्धिभिः तोय-क्रीडा-निरत-युवति-स्नान-तिक्तैः गन्धवत्याः मरुद्भिः धूतोद्यानम् त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य धाम यायाः ।

पदार्थः—भर्तुः कण्ठच्छविरिति=स्वामी (शिवजी) के गर्दन की शोभा के समान (शोभावाला) है, इस विचार से। गणैः=शिवजी के सेवकों से। सादरम्=आदरपूर्वक, आदर के साथ। वीक्ष्यमाणः=देखा जाता हुआ। पुण्यम्=पवित्र। कुवलयरजोगन्धिभिः=कमलों की धूलि (pollen) की गन्धवाले। तोयक्रीडानिरतयुवति०=जल-क्रीडा में लगी हुई स्त्रियों के स्नान से सुवासित। गन्धवत्याः=गन्धवती नदी के। मरुद्भिः=पवनों से। धूतोद्यानम्=जिसके उपवन (बाग) प्रकम्पित (हिलाए ज़ाते) हैं। त्रिभुवन-गुरोः=तीनों लोकों के स्वामी। चण्डीश्वरस्य=पार्वती के पति (शिवजी) के। धाम=स्थान (महाकाल) को। यायाः=जाना।

भाषानुवादः—(यह मेघ) स्वामी के गले की-जैसी शोभावाला है—इस विचार से गणों द्वारा आदर के साथ देखा जाता हुआ (तू) तीनों लोकों के स्वामी पार्वती-नाथ के पवित्र स्थान (महाकाल) को जाना, जहां के उद्यान गन्धवती नदी के पवन से—जो कमलों की धूलि लिए हुए हैं (तथा) जो जल-क्रीड़ा में लगी हुई नवयुवतियों के स्नानीय (चूर्ण) से सुवासित रहता है—झकोरे रहते हैं।

व्याकरणम्—कण्ठच्छविः=कण्ठस्येव छविः शोभा यस्यासौ (बहुव्री०)। वीक्ष्यमाणः=वि+√ईक्ष्, (भ्वा० आ०) (देखना)+शानच् (कर्मणि), प्र० एक०। कुवलयरजा०=कुवलयाना रजः (ष० तत्पु०) कुवलयरजः तस्य यो गन्धः स येषामस्तीति तैः (ब० व्री); बहुव्रीहि समास के अन्त में 'गन्ध' शब्द को 'इ' लगकर 'गन्धि' हो जाता है। तोयक्रीडानिरतयुवति०=तोये क्रीडा तोय-क्रीडा तासु निरतानाम् आसक्तानां (स० तत्पु०) युवतीनां यत् स्नानं स्नानीयं चन्दनादि तेन तिक्तैः सुवासितैः' स्नानम्—स्नान्ति ज.. अनेन इति स्नानम्,

---

[1]—०विरत विलस०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करणे ल्युट्। धूतोद्यानम्=धूतानि (√धू+त), कम्पितानि उद्यानानि यस्मिन् तत् (धाम) (ब० व्री०)। त्रिभुवनगुरोः=त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम् (समाहारे द्विगुः) तस्य गुरोस्त्रैलोक्यनाथस्य। चण्डीश्वरस्य=चण्डयाः ईश्वरः तस्य। धाम=नान्त नपुं० द्वि० ए० व०। यायाः=√या, (अदा० प०) (आना), विधिलिङ् म० पु० एक०।

विशेषः—भर्तुः कण्ठच्छविरिति=समुद्र-मन्थन से निकले हुए 'कालकूट' विष को शिवजी ने निगल लिया था, जिससे उनका गला काला हो गया। इस लिए उनको 'नीलकण्ठः' अथवा 'कण्ठे-कालः' इन नामों से पुकारा जाता है।

तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः=इस समास में 'तिक्तैः' का अर्थ "सुवासितैः' है, "कटुतिक्तकषायास्तु सौरभ्येऽपि प्रकीर्तिताः" इति हलायुधः। यहां 'गन्धिभिः' तथा 'तिक्तैः' दो विशेषणों का प्रयोग अतिशय गन्ध को सूचित करता है।

गन्धवती=यह मालव प्रान्त में उज्जैन के पास बहने वाली एक छोटी नदी है।

त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य=तीनों भुवनों के स्वामी चण्डी (पार्वती) के पति (नाथ) के पवित्र स्थान पर। इससे 'महाकाल' की ओर संकेत किया गया है, जिसका वर्णन अगले पद्य में है। तुलना कीजिए—'उज्जयिन्यां महाकालम् इति देवतायतनमस्ति। तत्र परमेश्वरः सदा संनिधत्ते, सर्वेभ्यो परांश्च ददातीति प्रसिद्धम्। तस्मात् त्रिभुवनगुरोः इत्युक्तम्।'

चण्डेश्वरस्य=यह पाठ अच्छा नहीं। इसका अर्थ 'चण्ड' (इस नाम का एक गण) का स्वामी अथवा चण्ड (उग्र) स्वभाववाला देव। दूसरे अर्थ में समास कर्मधा० है। (चण्डश्चासौ ईश्वरश्च)। गण शिव के उपासक या सेवक हैं।

इस पद्य में 'उदात्त' अलंकार है जिसमें किसी की विभूति या महत्त्व का वर्णन हो, वहाँ 'उदात्त' अलंकार होता है ॥३५॥

अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति[1] भानुः।
कुर्वन्सन्ध्या-बलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
[2]मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३६॥

१—अभ्येति म० सि०, सारो०, सु० वि०, बल्ल०, विल्स०। २—आमन्त्राणाम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—हे जलधर, महाकालम् अन्यस्मिन् अपि काले आसाद्य ते (तत्र तावत्) स्थातव्यम् यावत् भानुः नयन-विषयम् अत्येति । श्लाघनीयाम् शूलिनः सन्ध्या-बलि-पटहताम् कुर्वन् (त्वम्) आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् अविकलम् फलम् लप्स्यसे ।

पदार्थः—जलधर=बादल ! (सम्बोधन)। महाकालम्=चण्डीश्वर के मन्दिर में। अन्यस्मिन् अपि काले=(संध्या के अतिरिक्त) और भी समय में। आसाद्य=पहुँच कर। ते=तुझे। स्थातव्यम्=ठहरना चाहिए। यावत्=जब तक। भानुः=सूर्य। नयनविषयम् अत्येति=आँखों के विषय को अतिक्रमण करता है, अर्थात् आँखों से ओझल नहीं हो जाता। श्लाघनीयाम्=प्रशंसनीय, अच्छी। शूलिनः=शिवजी की। सन्ध्या-बलि-पटहतां कुर्वन्=साँझ की पूजा में नगाड़े (पटह) का काम देता हुआ (तू)। आमन्द्राणाम्=कुछ-कुछ गम्भीर। गर्जितानाम्=गर्जन का। अविकलम्=सम्पूर्ण। फलम्=फल को। लप्स्यसे=प्राप्त करेगा।

भाषानुवादः—हे मेघ ! महाकाल-स्थान पर (साँझ के अतिरिक्त) अन्य समय में भी पहुंच कर तू (तब तक वहीं) ठहरना जब तक कि सूरज आँखों से ओझल नहीं हो जाता। (वहाँ) शिवजी की सांझ की पूजा में अच्छे नगाड़े का काम देता हुआ तू अपने गम्भीर गर्जन का पूरा-पूरा फल प्राप्त कर लेगा।

व्याकरणम्—जलधर=धरतीति धरः जलानां धरः, तत्सम्बुद्धौ। आसाद्य=आ+√सद्, (चुरा० उभ०) (जाना)+य। ते=युष्मद् का ष० ए० 'कृत्यानां कर्तरि वा' इति षष्ठी। इसका अर्थ 'त्वया' का है। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ७, 'गन्तव्या ते वसतिरलका'। ध्यान रहे कि अस्मद् और युष्मद् के दूसरे रूप वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त नहीं होते। स्थातव्यम्=√स्था+तव्य (कृत्य प्र०)। नयनविषयम्=नयनयोः विषयः नयन-विषयः तम्। अत्येति=अति+√इ, अदा० प० (जाना), प्र० पु० एक०। श्लाघनीयाम्=√श्लाघ्, (भ्वा० आ०) (प्रशंसा करना)+अनीय+आ, द्वि० एक०। सन्ध्या-बलि०=सम्यक् ध्यायन्त्यस्याम् इति, सम्+√ध्यै+अङ् 'सन्ध्या'। पटहस्य भावः इति, पटह+तल्=पटहता सन्ध्यायाः बलिः (ष० तत्पु०) तस्य पटहता ताम् कुर्वन्=√कृ (त० उभ०) शतृ। आमन्द्राणाम्=आ (ईषत्)+मन्द्रा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

णाम् गम्भीराणाम् । अविकलम्=विगताः कलाः यस्मात् तत् विकलम्, न विकलम् इति अविकलम् । लप्स्यसे=√लभ्, भ्वा० आ० (प्राप्त करना) लृट् म० पु० एक० ।

विशेषः—महाकालम्—महाकाल उज्जयिनी में एक तीर्थ है, जहां शिवजी की एक मूर्ति भी है। यह द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। महाकाल शिवजी को भी कहते हैं और उनके तीर्थस्थान का भी यही नाम है। देखिए—रघु० VI ३४ 'असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः' ।

अत्येति भानुः=इसका पाठान्तर 'अभ्येति भानुः' अर्थात् जब तक सूरज उदय नहीं होता। वे टीकाकार जो इस दूसरे पाठ के पक्ष में हैं, यह नहीं जानते कि बादल का शिवजी की सायं-सन्ध्या की पूजा में भाग लेना और उस रात को वहाँ विश्राम करना कवि को विवक्षित है जिससे अगले दिन सूर्योदय होने पर अपनी यात्रा के लिए प्रस्थान कर सके। इस सम्बन्ध में देखिए—पूर्वमेघ पद्य ४०। यदि यहां प्रातः सन्ध्या विवक्षित होती तो उसके बाद दिन आना चाहिए था न कि रात, जैसे पद्य ३९-४० से प्रकट है।

कुर्वन् सन्ध्यावलिपटहताम्=महाकाल की पूजा के समय मेघ अपने गंभीर गर्जन से बजते हुए नगाड़े का काम देगा, यह कवि की कल्पना है ॥३६॥

पादन्यासः[1] क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै-
[2]रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः [3]क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥३७॥

अन्वयः—तत्र पादन्यास-क्वणित-रशनाः, लीलावधूतैः रत्न-च्छाया-खचित-वलिभिः चामरैः क्लान्त-हस्ताः वेश्याः त्वत्तः नख-पद-सुखान् वर्षाग्र-बिन्दून् प्राप्य त्वयि मधुकर-श्रेणि-दीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते ।

पदार्थः—तत्र=वहाँ (सन्ध्याकाल में) पादन्यास-क्वणित-रशनाः=पैरों की गति के साथ जिनकी करधनियाँ (मेखलाएँ) बजती रहती हैं। लीलावधूतैः=विलासपूर्वक हिलाए गए। रत्नच्छायाखचितवलिभिः=जिनके हत्थे (दस्ते) (कड़ों के) रत्नों की कान्ति से विभूषित हैं, ऐसे। चामरैः=चँवरों से। क्लान्त-

१—पादन्यास० । २—रचित । ३—कान्त ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हस्ताः वेश्याः = थके हुए हाथों वाली नर्तकियाँ । नखपदसुखान् = (शरीर पर) नाखूनों के घावों को सुख देनेवाली । वर्षाग्रबिन्दून् = वर्षा की पहली बूंदों को । प्राप्य = प्राप्त करके, पाकर । त्वयि = तुम पर । मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् = भ्रमरों की पंक्तियों के समान लम्बी और तिरछी चितवन । आमोक्ष्यन्ते = छोड़ेंगी, फेकेंगी ।

भाषानुवादः—वहाँ (साँझ के समय) नर्तकियाँ, जिनकी पैरों की चाल के साथ-साथ मेखलाएं (करधनियाँ) झनझनाती रहती हैं और जिनके हाथ (कड़ों के) रत्नों की कान्ति से विभूषित हत्थियोंवाले, विलास-पूर्वक डुलाए गए चंवरों से थक जाते हैं, तुमसे नखक्षतों को सुख देनेवाली वर्षा की पहली बूंदों को प्राप्त करके तुम पर भ्रमरों की पंक्तियों की तरह लम्बी और तिरछी चितवन फेकेंगी ।

व्याकरणम्—पादन्यासक्वणितरशनाः = पादयोः चरणयोः न्यासैः । (नि+√अस् (दि०+घञ् भावे) निक्षेपैः क्वणिताः (√क्वण्+क्त) शब्दायमाना रशना यासां ताः (ब० व्री०) । लीलावधूतैः = लीलया अवधूतैः (अव+√धू+त) कम्पितैः । रत्नच्छायाखचितवलिभिः = रत्नानां कंकणमणीनां छायया कान्त्या खचिता (खच्+त कर्मणि) वलयश्चामरदण्डा येषां तैः (ब० व्री०) । क्लान्तहस्ताः = क्लान्तौ हस्तौ यासां ताः (ब० व्री०) । त्वत्तः = तुझ से, त्वत्+तः 'पञ्चम्यास्तसिल्' इति तसिल् प्रत्ययः । नखपदसुखान् = नखानां पदेषु (ष० तत्पु०) क्षतेषु सुखान् सुखकरान् 'सुखहेतौ सुखे सुखम्' इति शब्दार्णवे । वर्षाग्रबिन्दून् = अग्राः बिन्दवः (कर्मधा०) वर्षस्याग्रबिन्दवः (ष० तत्पु०) तान् । प्राप्य = प्र+√आप् स्वा० उभ० (पाना, हासिल करना)+य (ल्यप्), मधुकरश्रेणिदीर्घान् = मधुकरा भ्रमराः तेषां श्रेणयः पंक्तयः तद्वत् दीर्घान् । मधुकर = मधु कर्तुं शीलं यस्य इति, मधु+√कृ+ट ताच्छील्ये । कटाक्षान् = कटाक्ष का द्वि० बहु० । कटाक्षः = कटौ गण्डौ अतिशयितौ अक्षिणी यत्र । कटं गण्डमक्षतीति वा । वेश्याः = वेशे भवाः √विश् = य (दिगादिभ्यो यत्) ; वेशः कृत्रिम आकारः ...न शोभते 'कर्मवेशाद्यत्' इससे 'य' प्रत्यय हुआ । नखपदसुखान् = नखपदेषु सुखान् । आमोक्ष्यन्ते = आ+मुच्, (तुदा० उभ०), लृट् प्र० पु० बहु० ।

विशेषः—रत्नच्छायाखचित० = इसका सारो० तथा अन्य टीकाकार निम्नलिखित अर्थ करते हैं—'रत्नच्छायाखचिता वलय उदरलेखास्तासामेव चामर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ग्राहिणीनां यैस्ते,' परन्तु यह सन्तोषजनक नहीं है। इसका असली अर्थ यही है कि नर्तकियों ने हाथों में कंगन पहिने हुए थे, जो कि रत्न-जटित थे और रत्नों की कान्ति अर्थात् प्रतिबिम्ब उनके हाथों द्वारा डुलाए गए चँवरों के हत्थों पर पड़ता था, जिससे वे रंग-बिरंगे हो जाते थे।

चामरैः = चँवरों से। चँवरें या तो चमर-मृगों के गुच्छेदार पूछों के बालों से या मयूर पंखों से बनती हैं। ये या तो राजाओं के आगे या देवताओं की मूर्तियों के आगे मक्खियाँ या कीट-पतंगों को हटाने के लिए डुलाई जाती हैं। देखिए––विक्र० IV. ४ 'व्याधूयन्ते निचुलतरुभिः मञ्जरीचामराणि'।

नखपदसुखान् = सारो० ने इसकी इस प्रकार व्याख्या की है––'नखपदवत्सुखजनकान् अथवा 'नखपदानां सुखान्' इसका अर्थ 'नखपदेषु सुखान्' है। एवं इसमें 'नखपद' का अर्थ प्रेमियों द्वारा प्रियाओं के शरीर पर किए गए नखघातों (नखपद के क्षतों) के स्थानों का है। यही अर्थ मल्लि० ने भी किया है। इस बात की पुष्टि जैन टीकाकारों ने भी की है। देखिए––'वेणुना दशनपीडिताधरा वीणया नखपदाङ्कितोरवः' रघु० XIX. ३५। और देखिए शिशु० VII. ३८ 'नखपदलिपयोऽपि दीपितार्था.......' पुनः इसी पुस्तक के उत्तरमेघ का पद्य ३६ 'वामश्चास्याः कररुहपदैः मुच्यमानो मदीयैः' भी देखिए। और देखिए कुमार० III. २९ 'सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्'।

मधुकरमणिदीर्घान् कटाक्षान् = इसके लिए देखिए—रघु० VII. ११. 'विलोलनेत्रभ्रमरैः गवाक्षाः' ॥३७॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
[1]नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥३८॥

अन्वयः—पश्चात् पशुपतेः नृत्तारम्भ प्रतिनव-जपा-पुष्प-रक्तम् सान्ध्यं तेजः दधानः उच्चैः भुज-तरु-वनम् मण्डलेन अभिलीनः (सन्) भवान्या शान्तोद्वेग--स्तिमित--नयनम् दृष्टभक्तिः (त्वम्) (तस्य) आर्द्रनागाजिनेच्छाम् हर।

१—नृत्या०, मल्लि०, सारो० इत्यादि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—पश्चात्=साँझ की पूजा के बाद। पशुपतेः शिवजी के। नृत्तारम्भे=नाच (ताण्डव) के प्रारम्भ में। प्रतिनवजपा०=अभिनव (ताजे) जाई के फूल के समान लाल। सान्ध्यं तेजः=साँझ की कान्ति को दधानः धारण करता हुआ। उच्चैर्भुज-तरु-वनम्=(शिव जी की) ऊंचे भुजाओं रूपी वृक्षों के जंगल पर। मण्डलेन अभिलीनः=वृत्ताकार रूप से व्याप्त होकर। भवान्या=पार्वती के द्वारा। शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्=भय के शान्त हो जाने से निश्चल हुई आँखों से। दृष्टभक्तिः=जिसकी भक्ति देखी गई है। आर्द्रनागाजिनेच्छाम्=हाथी के गीले चर्म (चमड़े) की इच्छा को। हर=दूर करना।

भाषानुवादः—पीछे शिव जी के (ताण्डव) नृत्य के आरम्भ में ताजे जपा (जाई) के फूलों के समान लाल-लाल सायंकालीन कान्ति को धारण करता हुआ, ऊँचे (शिवजी की) भुजा-रूपी वृक्षों के जङ्गल पर वृत्ताकार-रूप में व्याप्त होकर, पार्वती से भय-रहित आँखो द्वारा टकटकी से देखी गई भक्ति-वाला (तू) शिव जी की हाथी के गीले (ताजे) चर्म की इच्छा को दूर करना (अर्थात् स्वयं चर्म का काम देना)।

व्याकरणम्—पशुपतेः=पशूनां पतिः (ष० तत्पु०) तस्य। 'पतिः समास एव' इससे 'पशुपति' के रूप मुनि के समान होते हैं। नृत्तारम्भे=नृत्तस्यारम्भे। प्रतिनवजपापुष्परक्तम्=प्रतिनवम् (नवं प्रतिगतं प्रतिनवं) प्रत्यग्रं यत् जपा-पुष्पं तद्वद्रक्तमरुणम्। (उपमानकर्मधा०) सान्ध्यम्=सन्ध्याया इदम्, सन्ध्या+अ, तद्धित। तेजस्=नपुं० लिङ्ग० प्र० एक०। दधानः=√धा, (जु० उभ०) (धारण करना)+शानच्, प्र० एक०। कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदम्। उच्चैर्भुज-तरुवनम्=उच्चैरुन्नतं भुजा एव तरवः (कर्मधा०) तेषां वनम्। अभिलीनः=अभि+√ली, (दिवा० आ०, लेटना)+न (त) कर्त्तरि। भवान्या=भवानी का तृ० एक०। भवस्य पत्नी इति, भव+आनुक्√ङीष्, भवानी तया। शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्=शान्त उद्वेगो गजाजिनदर्शनभयं ययोस्ते अत एव स्तिमिते निश्चले नयने यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात् तथा (क्रि० वि०)। दृष्टभक्तिः=दृष्टा भक्तिर्यस्य सः। आर्द्रनागाजिनेच्छाम्=आर्द्रं यन्नागा-जिनं गजचर्म तत्रेच्छा ताम्। हर=√हृ, (भ्वा० उभ०, ले जाना), लोट्, म० पु० एक०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः—नृत्तारम्भे='नृत्त' उस नाच को कहते हैं जिसमें केवल ताल और लय का साथ हो, तथा 'नृत्य' वह नाच है जिसमें अभिनय द्वारा मानसिक भावों की अभिव्यक्ति हो। देखिए—द० रू० 'अन्यभावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताल-लयाश्रयम्। तुलना कीजिए 'देयरुच्या प्रतीतो यस्ताल-मानरसाश्रितः। सविलासो भ्रुवोः क्षेपो नृत्यमित्युच्यते बुधैः'। मल्लि० ने यहाँ 'नृत्तं' के स्थान पर 'नृत्य' पाठान्तर दिया है। 'नृत्य' वाला पाठ इस विचार से अच्छा है।

आर्द्रनागाजिनेच्छाम्=गजासुर को मारने के बाद महादेवजी ने रुधिर से गीली उसकी खाल को अपनी ऊँची भुजाओं पर लपेट कर 'ताण्डवनृत्य' किया था। यहाँ पर मेघ से कहा जाता है कि वह गजासुर की गीली खाल का स्थानापन्न होकर शिवजी की उस खाल के प्रति उत्पन्न हुई इच्छा को पूरा करे। गजासुर के गीले चर्म को ओढ़े हुए शिवजी को देखकर पार्वती डर जाती है और उनका 'ताण्डव' नहीं देख सकती। यदि बादल लाल-लाल होकर उमड़ आये, तो शिवजी 'नागाजिन' न ओढ़ कर ही नाचेंगे और पार्वती भी निर्भय होकर नाच देखती रहेंगी। इस सम्बन्ध में देखिए कुमा० V. ६७ तथा ७८ पद्य 'गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च' और 'गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा'। और देखिए—माल० मा० V. २३ 'प्रचलितकरिकृत्तिपर्यन्त-वञ्चन्नखाघात०।'

दृष्टभक्तिः=यह कालिदास के व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगों में से एक प्रयोग है। पाणिनि के नियमानुसार 'दृष्टभक्तिः' प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि 'दृष्टा भक्ति-र्यस्य सः' इस तरह बहुव्री० समास में 'दृष्टा' को पुंवद्भाव नहीं हो सकता। कारण कि पुंवद्भाव-विधायक 'स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समाना-धिकरणे स्त्रियामपूरणी-प्रियादिषु' यह सूत्र प्रियादियों से भिन्न शब्दों के परे रहते ही पुंवद्भाव करता है और 'भक्ति' शब्द प्रियादियों में आ जाता है, इसलिए 'दृष्टाभक्तिः' ऐसा ही प्रयोग व्याकरण से बनता है। इसी तरह कालिदास ने रघुवंश सर्ग XII. पद्य १६ में भी 'दृढभक्तिः' लिख कर तथा अन्यत्र भी व्याकरण का उक्त नियम भंग किया है। किन्तु वासुदेव दीक्षित सिद्धान्तकौमुदी की टीका 'बालमनोरमा' में तथा मल्लि० अपनी टीका में इन प्रयोगों को व्याकरण-सम्मत सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं—वे 'दृष्ट' और 'दृढ' शब्दों में स्त्रीलिंग न रखकर इनको भक्ति का विशेषण नहीं मानते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रत्युत विशेष्य मानते हैं । 'सामान्ये नपुंसकम्' इस नियम के आधार पर 'दृष्टम्' (देखी हुई वस्तु) है भक्ति जिसकी, दृढ वस्तु है भक्ति जिसकी, इस तरह ('प्रमाणम् वेदः') दृष्ट और दृढ शब्दों को और भक्ति शब्द को विभिन्नलिङ्ग रखकर 'दृष्टभक्तिः' और 'दृढभक्तिः' को व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध ही मानते हैं, पर यह खींचातानी ही है जो कि संभवतः कवि को विवक्षित न हो । देखिए—'स्त्रियाः पुंवद् भाषित०' सूत्र पर बाल-मनोरमा और उल्लिखित पद्यों पर मल्लि० की टीका ।

'भुज-तरु-वनम्' में रूपक और 'सान्ध्यं तेजः दधानः' में निदर्शना अलंकार है । रूपक का लक्षण पहले दिया जा चुका है । निदर्शना का लक्षण इस प्रकार है—'संभवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित् । यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना' । (सा० द०) । अर्थात् जहाँ सम्भव अथवा असम्भव वस्तुसम्बन्ध बिम्बप्रतिबिम्बभाव को बताये अर्थात् अन्ततोगत्वा सादृश्य में पर्यवसित हो, वहीं 'निदर्शना' अलंकार होता है। प्रकृत में सान्ध्य तेज सन्ध्या में ही रह सकता है, मेघ में नहीं, अतः 'सान्ध्यं तेज इव तेजः दधानः' इस प्रकार अन्त में सादृश्य प्रकट होता है ॥३८॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं[1]
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया[2] दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो[3] मा च[4] भूर्विक्लवास्ताः ॥३९॥

अन्वयः—तत्र (उज्जयिन्याम्) नक्तम् रमण-वसतिं गच्छन्तीनाम् योषिताम् सूचिभेद्यैः तमोभिः रुद्धालोके नर–पति–पथे कनक–निकष–स्निग्धया सौदामन्या उर्वीम् दर्शय; तोयोत्सर्ग–स्तनित–मुखरः च मा भूः (यतः) ताः विक्लवाः ।

पदार्थः—तत्र = उज्जयिनी में । नक्तम् = रात को । रमण-वसतिम् = प्रेमियों के घरों को । गच्छन्तीनाम् = जाती हुई । योषिताम् = स्त्रियों के । सूचिभेद्यैस्तमोभिः—बहुत घने अन्धकार से, घुप अंधेरे से । रुद्धालोके = दिखाई देना जिसका रुक गया है, न दिखाई देने वाले । नरपतिपथे = राजमार्ग में, सड़क

१—रात्रौ विल्स० । २—छायया विल्स० । ३—विमुखः । ४—स्म मल्लि० आदि ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर। कनक-निकष-स्निग्धया=कसौटी पर सोने की रेखा के समान चमकने वाली। सौदामन्या=बिजली से। उर्वीम् पृथ्वी को (मार्ग को) दर्शय= दिखाना। तोयोत्सर्ग-स्तनित-मुखरः=वृष्टि तथा गर्जन से शब्दायमान। मा भूः=मत होना। ताः विक्लवाः=वे डरपोक होती हैं।

भाषानुवादः—वहाँ (उज्जयिनी में) रात को (अपने) प्रेमियों के घरों को जाती हुई स्त्रियों को घने अन्धकार के कारण न दिखाई देनेवाले राजमार्ग में कसौटी पर सोने की रेखा के समान चमकने वाली बिजली द्वारा भूमि दिखाना और बरसने एवं गरजने का शब्द न करना, क्योंकि वे डरपोक होती हैं।

व्याकरणम्—नक्तम्—अव्यय। रमण—वसतिम्=रमणानां वसतिम् (ष० तत्पु०)। गच्छन्तीनाम्=√गम् (भ्वा० प०) (जाना)+अत् (शतृ) स्त्री० ष० बहु०। योषिताम्=योषित् का ष० बहु०। रुद्धालोके=रुद्ध आलोकः (आ+√लोक्+घञ् भावे) यस्मिन् तस्मिन् (ब० व्री०)। नरपतिपथे= नरपतेः पन्थाः (ष० तत्पु०) तस्मिन्, पथिन् शब्द को समास में 'अ' (टच्) हो जाता है और इसके रूप 'राम' शब्द की तरह चलते हैं। सूचिभेद्यैः=सूचिभिः भेद्यैः (ष० तत्पु०)। तमोभिः=तमस् (नपुं०) तृ० ब० अनुक्ते कर्तरि तृतीया। कनक—निकष—स्निग्धया=कनकस्य स्वर्णस्य निकषः उपलगतरेखा तद्वत् स्निग्धया। सौदामन्या=सौदामनी का तृ० एक०। सुदाम्नि मेघे भवा, (सुदा-मन्—पर्वत तथा ऐरावत का भी नाम है)। उर्वीम्=उर्वी का द्वि० एक०। दर्शय=√दृश्, (भ्वा० प०) णिच्, लोट् म० पु० ए०। तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः =तोयस्य उत्सर्गः तोयोत्सर्गेण तोयोत्सर्गसहितेन स्तनितेन (मध्यमपदलो० समास) मुखरः, अथवा तोयोत्सर्गेण च स्तनितेन च मुखरः (द्वन्द्व)। मा भूः= 'माङि लुङ्' 'न माङ् योगे' इनसे 'अट्' आगम का प्रतिषेध हुआ। देखिए— पूर्वमेघ पद्य २८ जहां 'मा स्म भूः' इस प्रकार प्रयोग में आया है।

विशेषः—रमणवसतिं गच्छन्तीनां योषिताम्=यहाँ अभिसारिका स्त्रियों से अभिप्राय है। देखिए—'कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साऽभिसारिका' अमर०। और देखिए—सा० द० ११५। कवियों ने अभिसारिकाओं को बिजली के प्रकाश में रात को अपना रास्ता खोजनेवाली बताया है। देखिए—ऋतु० II.। १० 'सुतीक्ष्णमुच्चैर्ध्वनतां पयोमुचां घनान्धकारावृतशर्वरीष्वपि। तडित्प्रभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागादभिसारिकाः स्त्रियः॥'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूचिभेद्यैः=इतना प्रगाढ (अन्धकार) जो कि सुई से छेदा जा सके (pitch-dark, ink-dark) । पंजाबी में इसके लिए 'अन्धेरा घुप' मुहावरा है। इस विषय में सारो० का कथन है—'अतिनिबिडत्वात्तमसां कविसमये सूचिभेद्यत्वमिष्यते । औपचारिकोऽयं धर्मः ।'

कनकनिकषस्निग्धया=इसमें मल्लि० ने 'स्निग्ध' शब्द को विशेषण न मानकर विशेष्य माना है और इसका अर्थ 'तेज' लेकर ब० व्री० समास किया है । इसकी पुष्टि में शब्दार्णव की इस पंक्ति का प्रमाण दिया है—'स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे रम्ये क्लीबे च तेजसि', परन्तु 'स्निग्ध' का साधारण अर्थ 'रम्य' (चमकने वाला) लिया जाना ही ठीक है । सारो० ने यह व्याख्या की है—कषोपलस्फुरत्कांचनरेखासवर्णया । देखिए— विक्र० VI. १ 'कनकनिकष-स्निग्धा विद्युत्प्रिया मम नोर्वशी' । और देखिए—हितोपदेश 'तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत्' । विल्सन के अनुसार इसका पाठान्तर 'कनकनिकषच्छायया' है । परन्तु अर्थ में कोई विशेष भेद नहीं प्रतीत होता । निकष=निकष्यते इति, नि+√कष्+अच् या घञ् कर्मणि ।

दर्शयोर्वीम्=देखिए ऋतु सं० II. ४० ।

चौथे पाद में 'मा च भूः' के स्थान में मल्लि० आदि ने 'मा स्म भूः' पाठ दिया है किन्तु 'च' वाला पाठ उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इस पद्य में 'दर्शय' 'मा भूः' दो क्रिया शब्दों के संयोजक 'च' की आवश्यकता है ।

यहां काव्यलिङ्ग अलंकार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—'हेतोर्वाक्य-पदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्' अर्थात् जहाँ किसी बात का कारण बताया जाय वहाँ 'काव्यलिङ्ग' होता है। प्रस्तुत पद्य में 'मत गरजना' इसका कारण बताया है कि स्त्रियाँ डरपोक होती हैं ॥३९॥

तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥४०॥

अन्वयः—चिर-विलसनात् खिन्न-विद्युत्कलत्रः भवान् सुप्तपारावतायां कस्याञ्चित् भवन–वलभौ तां रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे (सति) भवान् पुनरपि अध्वशेषम् वाहयेत् । सुहृदाम् अभ्युपेतार्थ-कृत्याः न खलु मन्दायन्ते ।

पदार्थः—चिरविलसनात्=देर तक चमकते रहने से । खिन्नविद्युत्कलत्रः=

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिसकी बिजली-रूपी स्त्री थक गई है। सुप्तपारावतायाम्=जिस पर कबूतर सोए हुए हों, ऐसे। कस्याञ्चित्=किसी। भवनवलभौ=घर की छत पर। तां रात्रिं=उस रात को। नीत्वा=बिताकर। सूर्ये दृष्टे (सति)=सूर्य निकलने पर। अध्वशेषं=बाकी मार्ग को। वाहयेत्=पूरा करना। सुहृदाम् अभ्युपेतार्थ-कृत्याः=जिन्होंने मित्रों के प्रयोजन की बात स्वीकार कर रखी है। न मन्दायन्ते खलु=कभी शिथिल नहीं होते।

भाषानुवादः—देर तक चमकते रहने के कारण थकी हुई बिजली-रूपी स्त्रीवाले तुम उस रात्रि को किसी घर की छत पर, जहाँ कबूतर सोते हों, बिताकर सूर्य के दिखाई देने पर शेष मार्ग को पार करना। मित्रों के मतलब की बात को स्वीकार कर रखनेवाले कभी ढीले नहीं पड़ते।

व्याकरणम्—चिरविलसनात्=चिरं विलसनं तस्मात्। खिन्नविद्युत्कलत्रः=खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य सः (ब० व्री०)। सुप्तपारावतायाम्=सुप्ताः √स्वप्, (अ० प०)+क्त, कर्त्तरि। पारावताः यस्यां सा तस्याम्। (बहुव्री०) पारावत—पारे आपतति इति पारावतः। कस्याञ्चित्=किम् स्त्रीलि० स० एक०+चित्। भवनवलभौ=भवनस्य वलभौ=छद्याम्। अध्वशेषम्=अध्वनः शेषम्। वाहयेत्=√वह् (भ्वा० प०)+णिच्, विधिलिङ्, प्र० पु० एक०। इसका कर्त्ता 'भवान्' है। सुहृदाम्=सुष्ठु हृदयं यस्यासौ सुहृत् तेषाम्। सु और दुर् के बाद 'हृदय' 'हृद्' में बदल जाता है। देखिए—'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' अष्टा० V. ४. १५०। अभ्युपेतार्थकृत्याः=अभ्युपेता=अङ्गीकृता अर्थस्य=प्रयोजनस्य कृत्या=क्रिया यैस्ते; 'कृत्या क्रियादेवतयोः कार्ये स्त्री कुपिते त्रिषु' इति यादवः। अभ्युपेत=अभि+उप+√ई, (अ० प०)+क्त। खलु-अवधारणे अव्यय। मन्दायन्ते=मन्द से क्यष् प्रत्यय लगकर नाम-धातु (Denominative), बना 'वा क्यषः' से आत्मनेपद।

विशेषः—भवनवलभौ=सरस्वती० कहता है—'वलभौ उपरितनभूमौ'। देखिए—'सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि' माल० II. १२; 'धूपैर्जालविनिःसृतैर्वलभयः सन्दिन्धपारावताः' विक्र० III. २.

पुनरपि, जो पद्य ३६ में 'अत्येति' के स्थान पर 'अभ्येति' पाठ के पक्ष में हैं वे इस शब्द को 'दृष्टे सूर्ये' के साथ लगाते हैं; परन्तु मल्लि० इसको 'वाहयेत्' के साथ रखते हैं। यह अच्छा अर्थ मालूम होता है। इसके लिए मेघदूत पद्य ३६ के 'विशेष' स्तम्भ की टिप्पणी देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या:=यह समास 'अभ्युपेतसुहृदर्थकृत्या:' इस प्रकार होना चाहिए था। मल्लि० ने पतञ्जलि के महाभाष्य के आधार पर 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समास:' कहकर उपर्युक्त समास का समर्थन किया है। इसे असमर्थ समास कहते हैं। देखिए–मुद्रा० II. १८ 'किंत्वङ्गीकृतमुत्सृजन्कृपणवच्छ्लाघ्यो जनो लज्जते। निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्'।

दूसरे पाद में 'रूपक' अलङ्कार है। अन्तिम पाद में 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है ॥४०॥

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्त्रं कमल[1]-वदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥४१॥

अन्वयः—तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानां योषितां नयन-सलिलं शान्तिम् नेयम् (अतः) भानोः वर्त्म (त्वम्) आशु त्यज। सः अपि नलिन्याः कमलवदनात् प्रालेयास्त्रम् हर्तुम् प्रत्यावृत्तः (सन्) त्वयि कर-रुधि (सति) अनल्पाभ्यसूयः स्यात्।

पदार्थः—तस्मिन् काले=उस समय (सूर्योदय के समय)। प्रणयिभि:=प्रेमियों के द्वारा। खण्डितानाम्=विश्वासघात किये जाने के कारण ईर्ष्या से जली-भुनी। योषिताम्=नायिकाओं के (स्त्रियों के) नयन-सलिलम्=आँसुओं को। शान्तिं नेयम्=शान्त करना है। भानो: वर्त्म आशु त्यज=सूर्य के मार्ग को शीघ्र छोड़ देना अर्थात् उसको न ढाँपना। सोऽपि=यह (सूर्य) भी। नलिन्या: कमलवदनात्=पद्मिनी के कमल-रूपी मुख से। प्रालेयास्रं हर्तुम्=ओस-रूपी आँसुओं को दूर करने (पोंछने) के लिए प्रत्यावृत्त:=वापिस आया हुआ (रहता) है। त्वयि कर-रुधि (सति)=(सूर्य के) किरण-रूपी हाथों को रोक देनेवाले तेरे प्रति। अनल्पाभ्यसूय:=बहुत अधिक द्वेष वाला। स्यात्=हो जाय।

भाषानुवादः—उस (सूर्योदय के) समय प्रेमियों ने अपनी खण्डिता नायिकाओं के आँसुओं को शान्त करना है। (इसलिए) तू सूर्य का मार्ग छोड़ देना। वह (सूर्य) भी नलिनी के कमल-रूपी मुख से ओस-रूपी आँसुओं को दूर करने (पोंछने) के लिए लौटा हुआ रहता है। (सूर्य के) किरण-रूपी हाथों को रोक

१—नयनात् सु० वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देने वाले तेरे प्रति (सम्भवतः) वह अत्यधिक द्वेष रखने लग जाय।

व्याकरणम्—प्रणयिभिः=प्रणय+इन्, प्रणयिन् का तृ० बहु० खण्डितानाम्=√खण्ड् (चु० प०)+त (क्त)। योषिताम्=योषित् शब्द का ष० बहु०। नयन-सलिलम्=नयनयोः सलिलम् (ष० तत्पु०)। नेयम्=√नी, (भ्वा० उभ०)+य (कृत्यप्रत्यय)√नी द्विकर्मक है, (१) नयन-सलिलम् (२) शान्तिम्। वर्त्म=वर्त्मन् नपुं०। आशु=अव्यय। त्यज=√त्यज् (भ्वा० प०) (छोड़ना), लोट् म० पु० एक०। नलिन्याः=नलिनी का ष० एक०, नलिनी=नलानि अम्बुजानि सन्ति अस्या इति नलिन्+ङीप्। कमल-वदनात्=कमलम् एव वदनं, तस्मात् (कर्मधा०)। प्रालेयास्रम्=प्रालेयं। प्र+√ली+अच् भावे, प्रलये भवमिति+प्रलय+अण्, हिममेवास्रम्=अश्रु। हर्तुम्=√हृ, (भ्वा० उभ०) (ले जाना)+तुमुन्। प्रत्यावृत्तः=प्रति+आ+√वृत्, (भ्वा० आ०)+क्त, प्र० एक०। कररुधि=करं रुणद्धि इति कर+√रुध्+क्विप्), स० एक०। अनल्पाभ्यसूयः=न अल्पा अनल्पा (नञ् तत्पु०) अनल्पा अभ्यसूया यस्य सः (बहुव्री०)। स्यात्=√अस्, (अ० प०) (होना) वि० लिङ् प्र० पु० एक०।

विशेषः—खण्डितानाम्=खण्डिता नायिका की परिभाषा दशरूपक में इस प्रकार दी गई है—'ज्ञातेऽन्यासङ्ग-विकृते खण्डितेर्ष्या-कषायिता' अर्थात् जो स्त्री अपने पति को ऐसा जान कर कि उसने अन्य स्त्री के साथ सहवास किया है, ईर्ष्या और क्रोध से जली-भुनी निराश हो बैठी हो—'खण्डिता' कहलाती है। ऐसी स्त्री को पति चाटुवचनों से प्रसन्न करता है। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ३१ में 'प्रार्थनाचाटुकारः'—विषयक पदार्थ-भाग; और देखिए रघु० V ६७ 'निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव'।

नलिन्याः=नलिनी का अर्थ पद्मिनी या कमलिनी=कमल-लता है। व्याकरण से इस शब्द की व्युत्पत्ति 'नलानि सन्ति यस्याः' है; नल और नलिन दोनों शब्दों का अर्थ कमल है, देखिए शब्दार्णवः—"तृणेऽम्बुजनले ना तु राशि नाले तु न स्त्रियाम्" देखिए—'सुरगज इव बिभ्रत्पद्मिनीं दन्तलग्नाम्' कुमा० III. ७६; और देखिए—'नलिनीं क्षतसेतुरिन्धनो जलसंघात इवासि विद्रुतः' कुमा० IV. ६; 'न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति' मृच्छ० IV. १७।

पति सूरज के दूसरे लोक में चले जाने पर वहाँ दूसरी नलिनी से सहवास होने के कारण इस लोक की नलिनी खण्डिता हो गई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनल्पाभ्यसूयः=जब कोई व्यक्ति कुछ करना चाहता है और दूसरा उसको ऐसा करने से रोकता है, तो उनका परस्पर विद्वेष हो जाना स्वाभाविक है, इसलिए बादल को कहा गया है कि वह नलिनी के मुख की ओर बढ़ाए हुए सूर्य के 'कर' (किरणों) को न रोके। साथ ही सूर्य से विद्वेष करना शास्त्रों में निषिद्ध है, क्योंकि सूर्य-विद्वेष से पाप और साथ ही बड़ी हानि भी होती है। 'अभ्यसूया' का अर्थ ईर्ष्या अथवा क्रोध है। देखिए रघु० VI. ७४ 'शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः'।

कमलवदनात्=सुमतिविजय ने 'कमलवदनात्' के स्थान में--कमलनयनात्' पाठ दिया है। इस पाठ के देने से संभवतः उसका यह विचार हो कि आँसू 'नयन' में ही रहते हैं; किन्तु हमें 'कमल-वदनात्' वाला पाठ ही अच्छा लगता है, क्योंकि नलिनी-लता तो नायिका बन गई, फिर 'वदन' भी तो उसका चाहिए; आँख बिना वदन के हो भी नहीं सकती, वदन पर आँसू पड़ता ही है और उसे ही पोंछते है न कि आँख में का आँसू।

कररुधि त्वयि=किरण-रूपी हाथों को रोकनेवाले तुझ से। यहाँ पर 'कर' शब्द में श्लेष है। 'कर' को किरण और हाथ भी कहते हैं।

इस पद्य में 'कमल' में 'वदनत्व' का, 'प्रालेय' में 'अस्रत्व' का और 'कर' (किरणों) में 'करत्व' (हस्तत्व) का आरोप होने से 'सांग-रूपक' अलंकार है, परन्तु वह 'नलिनी' में 'नायिकात्व' और सूर्य में 'नायकत्व' का आरोप आर्थ होने के कारण एकदेशविवर्ति ही है, समस्त-वस्तु-विषयक नहीं ॥४१॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्याः[1] कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥४२॥

अन्वयः—गम्भीरायाः सरितः प्रसन्ने चेतसि इव (प्रसन्ने) पयसि प्रकृतिसुभगः ते छायात्मा अपि प्रवेशम् लप्स्यते; तस्मात् अस्याः (गम्भीरायाः) कुमुद-विशदानि चटुल-शफरोद्वर्तन-प्रेक्षितानि धैर्यात् मोघीकर्तुम् न अर्हसि।

पदार्थः—गम्भीरायाः सरितः=गम्भीरा नाम की नदी के। प्रसन्ने चेतसीव (प्रसन्ने) पयसि=प्रसन्न (प्रेम के कारण आनन्द भरे) मन के समान (प्रसन्न) स्वच्छ जल में। प्रकृतिसुभगः=स्वभाव से सुन्दर। ते छायात्मापि=तेरी

१—तस्याः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिबिम्बरूप आत्मा भी। प्रवेशम् लप्स्यते=प्रवेश प्राप्त करेगी। कुमुद-विशदानि=कुमुद के समान सफेद। चटुल-शफरोद्वर्तन-प्रेक्षितानि=मछलियों के शीघ्र (फुर्तीले) उच्छलन-रूपी चितवनों को अर्थात् उछलती हुई मछलियों-रूपी चंचल चितवनों को। धैर्यात्=धीरता से, ढीठपन से। मोघीकर्त्तुं नार्हसि=निष्फल करने योग्य नहीं, अर्थात् उन्हें बेकार मत जाने देना।

भाषानुवादः—गम्भीरा नदी के प्रसन्न (निर्मल) जल के भीतर तेरी स्वभावतः सुन्दर प्रतिबिम्ब-रूपी आत्मा इस प्रकार प्रवेश करेगी जैसे कि प्रसन्न (प्रेम के कारण आनन्द भरे) (नायिका के) हृदय में (नायक प्रवेश करता है)। अतः इस (गम्भीरा) की मछलियों को कुमुदों-जैसी सफेद फुर्तीली उच्छलन-(लुढ़कन) रूपी चितवनों को धीरता के कारण निष्फल मत जाने देना।

व्याकरणम्—सरितः=सरित्, ष० एक०। प्रसन्ने=प्र+√सद् (भ्वा० प०)+न (क्त), स० एक०। पयसि=पयस् शब्द की स० एक०। प्रकृति-सुभगः=प्रकृत्या स्वभावेन सुभगः सुन्दरः (तृ० तत्पु०)। ते=युष्मत्, ष० एक०; यह वैकल्पिक रूप है—दूसरा रूप 'तव' है। छायात्मा=छाया चासौ आत्मा च (कर्मधा०)। प्रवेशम्=प्र+√विश् (तु० प०)+अ (घञ्)। लप्स्यसे=लभ्, (भ्वा० आ०) (प्राप्त करना) लृट्, म० पु० एक०। कुमुद-विशदानि=कुमुदानि इव विशदानि धवलानि; उपमानानि सामान्यवचनैः, से उपमान कर्मधा० हुआ। मल्लि० इसका 'कुमुदवद् विशदानि' विग्रह करता है, परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि वति प्रत्यय क्रिया के होने पर होता है। देखिए पाणिनि का सूत्र—"तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः" चटुलशफरोद्वर्तन०=चटुलानि शीघ्राणि (त्रिषु स्याच्चटुलं शीघ्रम् इति विश्वः) शफराणां मीनाना-मुद्वर्तनान्युल्लुण्ठनान्येव प्रेक्षितान्यवलोकितानि कर्मधा०। मोघीकर्त्तुं=मोघ+च्वि √कृ (त० उभ०)+तुमुन्। अर्हसि√अर्ह, (भ्वा० प०), लट् म० पु० एक०।

विशेषः—गम्भीरायाः=गम्भीरा नाम की एक छोटी नदी मालव में है। जिनसेन ने आदि पुराण के अध्याय २४ में इसका वर्णन किया है। गम्भीरा उत्कृष्ट गुणों वाली एक स्त्री को भी कहते हैं जो अपने प्रेम को प्रकट नहीं करती।

प्रसन्ने पयसि=साफ, निर्मल, पारदर्शक। देखिए—उत्तर० I, 'प्रसन्न-पुण्यसलिला भगवती भागीरथी'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

छायात्मापि=सारोद्धा० इस पर यह व्याख्या है—'छाया प्रतिबिम्ब तद्रूप आत्मा'। सरस्वती० कहता है—'छायात्मापि प्रतिबिम्बमपि साक्षात्त्वदीयस्तावत्तिष्ठतु तव प्रतिबिम्बमपि लप्स्यत इति शब्दार्थः'। इसका अभिप्राय यह है कि तुम तो क्या बल्कि तुम्हारा प्रतिबिम्ब भी जल में प्रवेश करेगा।

धैर्यात्=इसका अर्थ मल्लि० ने धार्ष्टयात् (ढिठाई से) किया है, परन्तु यह विचित्र सा प्रतीत होता है। वल्लभ तथा अन्य टीकाकार इसका गाम्भीर्यात् या धीरत्वात् (आत्मसंयम अथवा मन की दृढ़ता के कारण) अर्थ कहते हैं। ये अर्थ 'धूर्तता के कारण' की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक लगते हैं।

यहाँ जल का चित्त के साथ और प्रेक्षित (चितवन) का कुमुद के साथ सादृश्य बतलाने से उपमा है, परन्तु यह एकदेश-विवर्तिनी है। क्योंकि गम्भीरा का नायिका के साथ सादृश्य कवि ने 'आर्थ' रखा है। शफरोद्वर्तन में प्रेक्षितत्व का आरोप होने से 'रूपक' भी है ॥४२॥

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तबानीरशाखं
[1]हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां[2] को बिहातुं समर्थः ॥४३॥

अन्वयः—(हे) सखे! प्राप्त-वानीर-शाखम् किञ्चित् करधृतम् इव मुक्त-रोधो-नितम्बम् नीलम् तस्याः सलिल-वसनम् हृत्वा लम्बमानस्य ते प्रस्थानम् कथम् अपि भावि। ज्ञातास्वादः कः विवृत-जघनाम् विहातु समर्थः।

पदार्थः—सखे=हे मित्र! प्राप्तवानीरशाखम्=बेंत की शाखायें जिस तक पहुँची हुई हैं। किञ्चित्करधृतमिव=जो कि कुछ-कुछ मानो हाथ से पकड़ा हुआ हो। मुक्त-रोधो-नितम्बम्=जिसने तट-रूपी नितम्बों को छोड़ दिया है। नीलं सलिल-वसनं=नीले रंग के जल-रूपी वस्त्र को। हृत्वा=हटाकर। लम्बमानस्य=ऊपर लम्बा पड़े हुए, पसरे हुए। ते प्रस्थानम्=तेरा जाना। कथमपि भावि=बड़ा कठिन होगा। ज्ञातास्वादः=जिसने स्वाद अनुभव कर रखा हो। विवृत-जघनाम्—उघड़ी जंघाओं वाली (स्त्री) को। विहातुं=छोड़ने को। कः समर्थः=कौन समर्थ है?

भाषानुवादः—हे मित्र! बेंत की टहनियों से छुए जाते हुए इस (गम्भीरा)

१—नीत्वा। २—पुलिनजघनाम्। विल्स०, विपुलजघनाम्। म० सिं०, सु० वि०, वल्लभ आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के नीले रंगवाले जल-रूपी वस्त्र को हटाकर जो कि तट-रूपी नितम्बों से सरका हुआ, मानो (उसने अपने) हाथों से कुछ पकड़ा हुआ हो (उसके ऊपर) पसरं हुए तेरा चला जाना बड़ा कठिन होगा। जिसने स्वाद ले रखा हो, (भला वह) कौन (व्यक्ति) उघड़ी जाँघवाली को छोड़ सकता है?

व्याकरणम्—सखे=सखि का सम्बोधन एकवचन। प्राप्तवानीरशाखम्=प्राप्ता वानीरशाखा येन तत् (ब० व्री०)। करधृतम्=करेण धृतम् (तृ० तत्पु०) मुक्तरोधोनितम्बम्=मुक्तस्त्यक्तो रोधस्तटमेव नितम्बः कटिर्येन तत्तथोक्तम्, (ब० व्री०), सलिल-वसनम्=सलिलमेव वसनम् (कर्मधा०)। हृत्वा=√हृ (भ्वा० उभ०) (ले जाना)+त्वा (क्त्वा)। लम्बमानस्य=√लम्ब्, (भ्वा० आ०)+मान (शानच्)। ते=युष्मत् का ष० ए० 'तव' और 'ते' दोनों होते हैं। दूसरा रूप वाक्य के प्रारम्भ में नहीं आता। कथमपि=क्रि० वि०। भावि=भविष्यति इति, √भू+णिनि कर्त्तरि, भविष्यदर्थे नपुं० एक०। ज्ञातास्वादः=ज्ञातोऽनुभूतः आस्वादो रसः येन (ब० व्री०)। विवृत-जघनाम्=विवृतं प्रकटीभूतं जघनं कटिर्यस्याः सा (ब० व्री०)। विहातुम्=वि+√हा (जुहो० प०)+तुमुन्।

विशेष:—प्राप्तवानीरशाखम्=वानीर की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—वां शुष्कम् आ समन्तान्नीरमस्य। देखिए—उत्तर० II. २० 'इह समदशकुन्ताक्रान्त-वानीरवीरुत्'।

विवृत-जघनाम्=विल्सन (Wilson) ने इसकी जगह 'पुलिन-जघनाम्' पाठ दिया है, परन्तु यह ठीक नहीं बैठता, क्योंकि 'पुलिन' तीर (तट) को कहते हैं और तीर को पहले नितम्ब कह ही दिया है, उसकी पुनरावृत्ति ही है; दूसरे मेघ 'सलिल-रूपी वसन' का ही हरण करता है 'पुलिन' का नहीं; तीसरे काव्य में सलिल का वसन से साम्य अधिक प्रसिद्ध है। हाँ, वल्लभ आदि का 'विपुल-जघनाम्' वाला पाठ विल्सन की अपेक्षा कुछ ठीक है।

वानीरशाखम्, रोधोनितम्बम् और सलिल-वसनम् में रूपक है, परन्तु वह एकदेशविवर्ति ही है, क्योंकि गम्भीरा में नायिकात्व का आरोप (Superimposition) आर्थ है। अन्तिम पाद में सामान्य द्वारा उपरोक्त विशेष बात का समर्थन होने से 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है॥४३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः[1]
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४४॥

अन्वयः—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित-वसुधा-गन्ध-सम्पर्क-रम्यः, स्रोतोरन्ध्र-ध्वनित-सुभगम् दन्तिभिः पीयमानः, काननोदुम्बराणाम् परिणमयिता शीतः वायुः देवपूर्वम् गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति ।

पदार्थः—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित-वसुधा० = तेरे बरसने से उभरी हुई पृथ्वी के गन्ध के संसर्ग से सुन्दर। स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् (क्रि० विशे०) = (हाथियों के) नासाग्रछिद्रों में शब्द करने के कारण जिसका सेवन अच्छा प्रतीत हो। दन्तिभिः पीयमानः = हाथियों के द्वारा सेवन किया जाता हुआ। शीतो वायुः = शीतल पवन। काननोदुम्बराणाम् = जंगली अंजीरों को। परिणमयिता = पकानेवाला। देवपूर्वं गिरिम् = देव (शब्द) है पहले जिसके ऐसे पर्वत को (अर्थात् देव-गिरि पर्वत को)। उपजिगमिषोः ते = जाने की इच्छा रखने वाले तेरे। नीचैः वास्यति = नीचे बहेगा (चलेगा)।

भाषानुवादः—तेरे बरसने से उभरी हुई पृथ्वी के गन्ध के संसर्ग से रमणीय, हाथियों से नासिका के (अग्रभागवाले) छिद्रों में पैदा होते हुए सुन्दर शब्द के साथ सेवित (पीयमानः), जंगली गूलरों को पकानेवाला शीतल वायु देवगिरि को जाना चाहते हुए तेरे नीचे से बहेगा (चलेगा)।

व्याकरणम्—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधा० = तव निष्यन्दः त्वन्निष्यन्दः (नि + √स्यन्द् + घञ् भावे) तेन उच्छ्वसिताया वसुधाया गन्धस्तस्य सम्पर्केण रम्यः। उच्छ्वसित—उत् + √श्वस् = क्त कर्मणि। स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् = स्रोतसः घ्राणेन्द्रियस्य रन्ध्रेषु यद् ध्वनितं शब्दस्तेन सुभगं यथा स्यात्तथा (क्रि० विशे०)। दन्तिभिः = दन्तिन् (दन्त + इन्) का तृ० बहु०। पीयमानः = √पा, (भ्वा० प०) (पीना) + मान (शानच्), कर्मणि। काननोदुम्बराणाम् = काननेषु उदुम्बराणाम् जन्तुफलानाम् (ष० तत्पु०)। परिणमयिता = (परि + √नम्, भ्वा० प० + णिच् + तृच् कर्तरि)। परि + √नम् से णिच् बनाने में वृद्धि नहीं होती। देवपूर्वम् = देवः देवशब्दः पूर्वं यस्य सः (ब०व्री०) तम्। गिरिम् = गिरि का द्वि० एक०। उपजिगमिषोः = उपगन्तुमिच्छोः इति, उप = √गम् (भ्वा० प०) + सन् + उ

[1]—पुण्यः विल्स०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ष० एक०। ते=युष्मद् का ष० एक०; सम्बन्धविवक्षया षष्ठी । नीचैः—क्रियाविशे०। वास्यति=√वा, [अदा० प०] (बहना, चलना) लृट् प्र० पु० एक०।

विशेष:—स्रोतोरन्ध्रध्वनित०=वल्लभ और सारोद्धा० कहते हैं कि 'स्रोतस्' स्वयं 'करिकर' का पर्यायवाची शब्द है और शिशुपाल० के XVIII. ४९ पद्य का अपने कथन के समर्थन में प्रमाण देते हैं। मल्लि० ने 'स्रोत' का अर्थ 'नासाग्र' किया है, परन्तु अमरकोष 'स्रोत्र इन्द्रिये निम्नगारये' के अनुसार 'स्रोत' का अर्थ इन्द्रिय है। प्रकृत में घ्राणेन्द्रिय ही विवक्षित है।

नीचैर्वास्यति=मल्लि० के अनुसार इसका अर्थ 'वायु धीरे-धीरे तुम्हारी सेवा करेगी' परन्तु सरस्वती० इसका शाब्दिक अर्थ लेते हैं—यथा, 'ते तव नीचैरधस्ताद्वास्यति'।

देवपूर्वं गिरिम्=देवगिरि से उस स्थान का निर्देश है, जिसे देवगढ़ कहते हैं और जो चम्बल नदी के दक्षिण की ओर मालव के मध्य में स्थित है। इस पवत पर कार्त्तिकेय का मन्दिर है। देवगिरि पर्वत को दक्षिण में स्थित देवगिरि (दौलताबाद) समझना ठीक नहीं है। 'देवपूर्वं गिरिम्' में मल्लि० ने एकावली का प्रमाण देकर अवाच्यवचन दोष माना है, अर्थात् व्यक्ति वाचक शब्दों के अवयवीभूत शब्दों में परिवर्तन आ जाने से वह व्यक्ति-वाचक नहीं रहता है, परन्तु इस प्रकार की रचना के लिए देखिए—'दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारिगुरुं विदुर्बुधाः' रघु० VIII. २९, और देखिए—'हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते' शिशु० I. ४२ । 'धनुरुपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश' किरात० XVIII. ४४। शारदारञ्जन राय के अनुसार मल्लि० का यह विवाद ही अनावश्यक है, क्योंकि देवगिरि शब्द व्यक्तिवाचक नहीं है, 'गिरि' सामान्य शब्द है उसके आगे 'देव' शब्द आ जाता है। यदि कवि देवगिरि को व्यक्तिवाचक शब्द मान कर और उसका परिवर्तन करके 'देवपूर्वः गिरिः' पढ़ता, तो अवश्य दोष था ॥४४॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां [1]चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥४५॥

१—वसूनाम सारो०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—तत्र (देवगिरौ) नियत-वसतिम् स्कन्दम् पुष्पमेघीकृतात्मा (सन्) भवान् व्योम-गङ्गा-जलार्द्रैः पुष्पासारैः स्नपयतु । तत् हि वासवीनाम् चमूनाम् रक्षा-हेतोः नव-शशि-भृता हुतवह-मुखे संभृतम् अत्यादित्यम् तेजः (अस्ति) ।

पदार्थः—तत्र = देवगिरि पर। नियतवसतिम् = स्थायी रूप से रहनेवाले। स्कन्दम् = स्वामी कार्त्तिकेय को। पुष्पमेघीकृतात्मा = अपने आप को फूलों का मेघ बनाते हुए; पुष्पवर्षी मेघ बनकर। व्योमगङ्गा-जलार्द्रैः = स्वर्ग की गङ्गा के जल से गीले हुए। पुष्पासारैः = फूलों की बौछारों से। स्नपयतु = नहलाना, अभिषेक करो। तत् = वह (स्कन्द) वासवीनां चमूनाम् = इन्द्र की सेनाओं की। रक्षा-हेतोः = रक्षा के लिए। नवशशिभृता = भगवान् चन्द्रशेखर से। हुतवहमुखे = अग्नि के मुख में। संभृतम् = संचित, एकत्रित किया हुआ। अत्यादित्यं तेजः = सूर्य से बढ़-चढ़ कर तेज (है)।

भाषानुवादः—वहाँ (देवगिरि पर) स्थायी-रूप से रहनवाले स्वामी कार्त्तिकेय को तुम पुष्प-मेघ रूप बनकर आकाश गंगा के जल से गीले हुए फूलों की बौछारों द्वारा नहलाना। वह (स्कन्द) इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिए भगवान् शशिशेखर (शिव) के द्वारा अग्नि के मुख में एकत्रित किया हुआ, सूर्य को भी अतिक्रमण करने वाला तेज है।

व्याकरणम्—नियत-वसतिम् = नियता (नि+√यम्+त) वसतिर्यस्य तम् (ब० व्री०)। पुष्पमेघीकृतात्मा = पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः, अपुष्पमेघः पुष्पमेघः सम्पद्यमानः कृत इति पुष्पमेघीकृतः, अभूततद्भावे कर्तरि च्विः, पुष्पमेघीकृत आत्मा येन सः (ब० व्री०) व्योमगङ्गाजलार्द्रैः = व्योम्नः गङ्गा व्योमगङ्गा तस्या यज्जलं तेनार्द्रैः। पुष्पासारैः = पुष्पाणामासारैः सम्पातैः। स्नपयतु = √स्ना, (अदा० प०, नहाना, अभिषेक करना)+णिच्, लोट् प्र० पु० एक०। वासवीनाम् = वासवस्येयं वासवी तासां चमूनाम्। रक्षाहेतोः = रक्षायाः हेतोः। नवशशिभृता = नवं शशिनं बिभर्तीति नवशशिभृत् तेन। हुतवहमुखे = वहतीति वहः √वह् (भ्वा० उ०)+अ, हुतस्य स्वाहाकृतस्य अन्नादिकस्य वहः हुतवहः = वह्निः तस्य मुखे। संभृतम् = सम्+√भृञ् (भ्वा० उभ०)+त (क्त)। अत्यादित्यम् = आदित्यमतिक्रान्तम्।

विशेषः—पुष्पमेघीकृतात्मा अपने को पुष्पमेघ में परिणत किए हुए। इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्ध में श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि 'पुष्पमेघ पद में पुष्प शब्द का दूसरा संकेत वही ऊपर पद्य ३७ में कहे हुए 'अग्रविन्दु' या बड़ी-बड़ी बूंदें हैं जो ठीक इसी प्रकार बरसती हैं मानो फूल बरस रहे हों और पुष्पवृष्टि के समान ही शीघ्र समाप्त हो जाती हैं। उन पुष्पाकृति बूंदों में पृथ्वी-तल से ले जाए हुए अपने जल के साथ आकाश-गंगा के जल को भी मिलाकर बरसाना। यही 'व्योमगङ्गाजलार्द्रैः पुष्पासारैः' की सुन्दर ध्वनि है।

वासवीनाम् = वल्लभ कहता है कि यह प्रयोग 'वासवीयानाम्' का अशुद्ध रूप है, मल्लि० 'तस्येदम्' इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय करके यह रूप व्याकरण-सम्मत सिद्ध करता है—'वासवस्येमा वासव्यः तस्येदमित्यण्, पुनः 'ड्ढाणञ्० इति ङीप् (ई)।

स्कन्द = महाभारत में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—'स्कन्नत्वात्स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत्'। स्कन्न का अर्थ है निकला हुआ। शिव के शरीर से निकलकर उनका वीर्य अग्नि के मुंह में चला गया था। हुतवहमुखे = इससे पवित्रता का भाव प्रकट होता है। शम्भु-रहस्य में 'गाय का पिछला आधा भाग, ब्राह्मण के पैर, योगियों का मन, कवियों के शब्द, स्त्रियों, घोड़ों तथा अग्नि का मुख सर्वथा पवित्र समझे गए हैं।' कार्त्तिकेय के कई नामों में से एक नाम 'अग्निभूः' (अग्नि से उत्पन्न हुआ) है। इसी प्रकार पूर्वमेघ पद्य ४६ में 'पावकैः' यह पद कार्त्तिकेय के लिए आया है। कार्त्तिकेय के अन्य नाम 'शरजन्मा, शरवणभवः (कानों के जंगल में पैदा हुआ) इत्यादि हैं। देखिए—रघु० III. २३ 'उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा'; पूर्वमेघ श्लोक ४७ 'आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा'। कार्त्तिकेय की उत्पत्ति शिवजी के वीर्य से हुई है। यह वीर्य जब अग्नि में डाला गया, तो अग्नि इसे सहन करने में असमर्थ रही। उसने इसे गंगा में डाल दिया था। गंगा से वह स्नान करती हुई छः कृत्तिकाओं के पेट में चली गई जिन्होंने सहन न कर सकने के कारण उसे सरकाण्डों की झाड़ी में डाल दिया। वहाँ उससे छः पुत्र उत्पन्न हुए। पृथक्-पृथक् पैदा हुए ये छः बच्चे पीछे मिलाकर एक में ही परिवर्तित किए गए थे, जिसके छः सिर तथा बारह हाथ थे। सात दिन के इस बालक को इन्द्र की सेना का नायक नियुक्त किया गया। इसी ने तारकासुर का वध किया था। इसको शरकण्डों के वन में पैदा होने से 'शरजन्मा' तथा 'शरवणभवः' कहते हैं। देखिए पूर्वमेघ पद्य ४७ 'आराध्यैनं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शरवणभवं देवम्' । इसे कृत्तिकाओं से उत्पन्न होने के कारण 'कार्त्तिकेय' इन्द्र की सेना का सेनापति बनने से 'सेनानी' और अग्नि से जन्म होने के कारण 'अग्निभूः' या 'पावकिः' भी कहते हैं। शिवजी के इस पुत्र को मोर पर सवारी करनेवाला बताया गया है, देखिए—पूर्वमेघ पद्य ४६ 'धौतापांगं' हरशशिरुचा पावकैस्तं मयूरं पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः' । इस सम्बन्ध में रघु० II. ७५ श्लोक–'सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्' । इसका पूरा विवरण कुमार० (X. ४३–५८) में है। इस पर विल्सन-महोदय लिखते हैं:–

"हिन्दू पुराणशास्त्र और ग्रीस-पुराणशास्त्र में ऐसे स्वतन्त्र जन्म धारण करने वालों के कितने ही उदाहरण हैं। स्कन्द 'शरवण' से पैदा हुए, तो पैलस (Pallas) ज्युपिटर के धनुष से पैदा हुआ था।"

नवशशिभृता = नवीन चन्द्र को धारण करनेवाले शिव जी द्वारा। कहा जाता है कि चाँद की कला शिव जी के सिर पर विराजती है। इसी कारण इनके शशिशेखर, इन्दुमौलि, अर्धेन्दुमौलि या चन्द्रशेखर आदि नाम भी हैं। देखिए–मुद्रा० I. १ 'धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला' । इस सम्बन्ध में पूर्वमेघ का पद्य ४६ भी देखें, जिसका उद्धरण ऊपर दिया जा चुका है और देखिए–पूर्वमेघ पद्य ५७ का पहला पाद–'तत्र व्यक्तं दृषदि चरण-न्यासमर्धेन्दुमौलेः' ।

तद्धि तेजः = तत् शब्द स्कन्द का स्थानापन्न सर्वनाम होने से पुंल्लिग होना चाहिए था, क्योंकि वह उद्देश्य है और उद्देश्य 'वेदाः प्रमाणम्' की तरह अपना ही लिङ्ग रखता है। मल्लिं० का 'विधेयप्राधान्यान्नपुंसकनिर्देशः' यह समाधान ठीक नहीं जंचता।

इस पद्य में रूपक अलंकार है ॥ ४५ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा[1] कुवलयदल[2]-प्रापि[3] कर्णे करोति ।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा [4]पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥४६॥

अन्वयः—ज्योतिर्लेखावलयि गलितम् यस्य (मयूरस्य) बर्हम् भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलय-दल-प्रापि (यथा स्यात्तथा) कर्णे करोति; हर-शशिरुचा धौता-पाङ्गम् पावकेः तम् मयूरम् पश्चात् अद्रि-ग्रहण-गुरुभिः गर्जितैः (त्वम्) नर्तयेथाः ।

१—प्रीत्या। २—पद ३—स्पर्धि स० ती०। ४—आप्याययेः विल्स०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—यस्य = जिस (मयूर) के। ज्योतिर्लेखा-वलयि = कान्तिवाली रेखाओं के चक्र वाले। गलितम् = गिरे हुए। बर्हम् = पंख को। भवानी = पार्वती। पुत्र-प्रेम्णा = पुत्र-प्रेम से। कुवलय-दल-प्रापि = कमल की पंखुड़ी के साथ। कर्णे करोति = कान में पहनती है, या कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति = कमल की पंखुड़ी पहनने योग्य कान में धारण करती है। हरशशि-रुचा = शिव जी के (सिर पर स्थित) चन्द्रमा की चमक से। धौतापाङ्गम् = अधिक श्वेत हो गए हैं अपांग (कनखियाँ) जिसके ऐसे। पावकेः = कार्त्तिकेय के। तं मयूरम् = उस मयूर को। पश्चात् = (फूलों के अभिषेक के) पीछे। अद्रि-ग्रहण-गुरुभिः = पर्वत की प्रतिध्वनि से बढ़े हुए। गर्जितैः = गर्जनों से। नर्तयेथाः = नचाना।

भाषानुवादः—तदनन्तर (तुम) स्वामी कार्त्तिकेय (पावकि) के उस मोर को, जिनके (स्वयं) गिरे हुए चमकती रेखाओं के चक्र वाले पंख को पार्वती पुत्र-प्रेम से कमल की पंखुड़ी के साथ कान में पहनती है और जिसके आँखों की कनखियाँ शिव जी के (शिर पर स्थित) चन्द्रमा की चमक से (और भी अधिक) श्वेत रहती हैं—देवगिरि (अद्रि) में गूंजने से बढ़े हुए गर्जनों द्वारा नचाना।

व्याकरणम्—ज्योतिर्लेखावलयि = ज्योतिषस्तेजसो लेखा राजयः तासां वलयं मण्डलमस्यास्तीति। गलितम् = √गल्, (भ्वा० प०) (गिरना) + त (क्त)। भवानी = भवस्य शिवस्य पत्नी, भव + ङीप् (इन्द्र-वरुण-भव इत्यादिना आनुगागमः)। पुत्र-प्रेम्णा = पुत्रस्य प्रेम्णा (ष० तत्पु०)। कुवलयदलप्रापि = कुवलयस्य दलं पत्रं तत्प्राप्नोति इति, तत्प्रापि = तद्योगि यथा स्यात् तथा (क्रि० विशे०)। प्रापि = प्र + √आप् (स्वा० उभ०) + इन् (णिनि)। यद्वा कुवलयस्य दलप्रापि दलभाजि दलार्हे कर्णे करोति-प्राप्नोति प्राप् (क्विप्) क्विबन्तात्सप्तमी (कर्णे का विशे०)। हरशशिरुचा = हरस्य शिरसि स्थितो यः चन्द्रस्तस्य रुचा (मध्यमपदलोपी कर्म०)। धौतापाङ्गम् = धौतौ अतिधवलितौ अपाङ्गौ नेत्रान्तौ ('अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ' इत्यमरः) यस्य तम् (ब० व्री०) पावकेः = पावकस्याग्नेरपत्यं पावकिस्तस्य स्कन्दस्य। 'अत इञ्' इति इञ्। अद्रिग्रहणगुरुभिः = अद्रेः (कर्तुः) देवगिरेः ग्रहणेन गुहासंक्रमणेन गुरुभिः = वृद्धि गतैः प्रतिध्वानमहद्भिरित्यर्थः। गर्जितैः = (गर्ज्, भ्वा० प० + त, भावे क्तः)। नर्तयेथाः = √नृत्, (दि०प०) (नाचना) + णिच्, विधिलिङ् (आत्मनेपद) म० पु० ए०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यहाँ 'नृत्' धातु का णिजन्त 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' से परस्मै० होना चाहिए था, क्योंकि नृत् (नाचना) चलनार्थ है अथवा 'अणौ अकर्मकात् चित्तवत्कर्तृकात्' इससे परस्मैपद प्राप्त है. क्योंकि नृत् 'अणि' अकर्मक और 'चित्तवत् (चेतन) कर्तृक' है, परन्तु 'न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः' इससे परस्मैपद का निषेध होकर 'णिचश्च' से आत्मनेपद हुआ है।

विशेष:—वहँ कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति=इसके मल्लि० के अनुसार दो अर्थ हो सकते हैं—(१) पंख को कमल की पंखुड़ियों के साथ रखती है। इस दशा में 'कुवलयदलप्रापि' करोति क्रिया का विशेषण है (२) पंख को अपने कान में (कर्णे) रखती है, अर्थात् कान में उस स्थान पर रखती है, जहाँ कमल की पंखुड़ियाँ डाली जानी चाहिएँ। इस अवस्था में 'कुवलयदलप्रापि' कर्णे का विशेषण है।

सरस्वती० 'प्रापि' के स्थान में 'स्पर्धि' पाठ देता है, जिसका अर्थ 'जो पंख कुवलय (कमल) की पंखुड़ी से होड़ करता है' इस प्रकार है। यह अर्थ मल्लि० के द्वारा बतलाए गए दोनों प्रकार के वैकल्पिक अर्थों की अपेक्षा अधिक अच्छा प्रतीत होता है, और विच्छित्ति प्रकट करता है।

पावकेस्तं मयूरम्='पावकेः' का शब्दार्थ 'अग्नि से उत्पन्न हुआ' है। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ४५ का 'विशेष' भाग। विल्सन (Wilson) महोदय 'पावकेः' के स्थान में 'आप्याययेः' (०रुचाप्याययेः) पाठ देकर 'उस मयूर को जलबिन्दुओं से आप्यायित करना अर्थात् तृप्त करना, तदनन्तर उसे नचाना।' यह अर्थ करते हैं। प्रकृत पद्य में दो क्रिया-पद होने से दो वाक्य बनेंगे। पद्य में 'पश्चात्' शब्द की स्थिति से ही इस पाठान्तर को प्रोत्साहन मिला प्रतीत होता है किन्तु इसमें मयूर का स्वामी कार्त्तिकेय के साथ सम्बन्ध जुड़ने से रह जाता है।

हरशशिरुचा=शिवजी के सिर पर स्थित चन्द्रमा की चमक से। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ४५ का 'विशेष' भाग तथा पूर्वमेघ पद्य ५७ का पहला पाद 'तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः'। यहाँ हमें क्रमशः 'नवशशिभृत्' तथा 'अर्धेन्दुमौलि' शब्द जो शिव के पर्यायवाची हैं—मिलते हैं ॥४६॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिस्त्यक्तमार्गः ।[१]
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४७॥

१—दत्तमार्गः विल्स० दत्तवर्त्मा, मुक्तमार्गः मल्लि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—एतम् शरवणभवम् देवम् आराध्य वीणिभिः सिद्धि-द्वन्द्वैः जल-कणभयात् त्यक्त-मार्गः (सन्) उल्लङ्घिताध्वा सुरभि-तनया-लम्भजाम् भुवि स्रोतो-मूर्त्या परिणताम् रन्तिदेवस्य कीर्तिम् मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः।

पदार्थः—शरवणभवं देवम्=सरकण्डों के वन में पैदा हुए देव की अर्थात् स्कन्द की। आराध्य=उपासना करके। वीणिभिः=वीणाओं को लिए हुए। सिद्धद्वन्द्वैः=सिद्धों के युगलों (जोड़ों) द्वारा। जलकण-भयात्=जल की बूंदों के भय से। त्यक्तमार्गः=जिसका रास्ता (खुला) छोड़ दिया गया है। उल्लङ्घिताध्वा=जिसने मार्ग पार कर लिया है। सुरभितनयालम्भजाम्=गौओं के बलिदानों से उत्पन्न हुई। स्रोतो-मूर्त्या=नदी के रूप में। भुवि परिणताम्=पृथ्वी पर परिणत या परिवर्तित हुई। रन्तिदेवस्य कीर्तिम्=दशपुरपति रन्तिदेव की कीर्ति (चर्मण्वती नाम की नदी) को। मानयिष्यन्=सत्कार करने की इच्छा से। व्यालम्बेथाः=नींचे उतर कर ठहरना।

भाषानुवादः—सरकण्डों के वन में पैदा हुए इस देव (स्वामी कार्त्तिकेय) की आराधना करके (तुम) वीणा (हाथ में) लिए हुए सिद्धदम्पतियों के जल-कणों के (गिरने के) डर से मार्ग छोड़ देने पर कुछ रास्ता पार करके गौओं के बलिदानों से उत्पन्न (एवं) पृथ्वी पर नदी के रूप में परिवर्तित हुई (राजा) रन्तिदेव की कीर्ति (चर्मण्वती) के प्रति सम्मान दिखाने की अभिलाषा से (देवगिरि से) नीचे उतर कर ठहर जाना।

व्याकरणम्—एनम्=इदम् (पुंल्लि०) का द्वि० एक०; यह दूसरा प्रयोग अन्वादेश में है। शरवणभवम्=शरा बाणतृणानि तेषां वनं शरवणम्, ('प्रनिरन्तः शरे'—इससे 'वन' के न को ण हुआ) तत्र भवः जन्म यस्य तम् (ब० व्री०)। आराध्य=आ+√राध्, (भ्वा० आ० समर्थ होना)+य (ल्यप्)। वीणिभिः=वीणावद्भिः; वीणा एषां विद्यते इति वीणिनः तैः 'व्रीह्यादित्वादिनिः, इससे 'इनि' प्रत्यय हुआ। जल-कण-भयात्=जलस्य कणाः जलकणाः तेभ्यो भयात्। त्यक्तमार्गः=त्यक्तो मार्गो यस्य सः (ब० व्री०)। उल्लङ्घिताध्वा=उल्लङ्घितः अध्वा येन सः (ब० व्री०), उत्+√लंघ्, (भ्वा० प०, सीमा का अतिक्रमण करना)+त (क्त)। सुरभितनयालम्भजाम्=सुरभेः तनयानां गवामालम्भनेन संज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम् (कीर्तिम्)। स्रोतोमूर्त्या=स्रोतसः मूर्त्तिः स्रोतोमूर्त्तिः तया। भुवि=भू (पृथ्वी) स० एक०। परिणताम्=परि+√नम्,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(भ्वा०प०)+त(क्त), स्त्री०द्वि०एक०। मानयिष्यन्=√मान्०(चु० प०)+स्यत् (भविष्यत् अर्थ में शतृ), प्र० एक०। व्यालम्बेथाः=वि+आ√लम्ब, (भ्वा० आ०, नीचे उतरना) विधिलिङ्, म० पु० एक०।

विशेष—शरवणभवम् देवम्=देखिए—पूर्वमेघ पद्य ४५ का विशेष भाग।

सिद्ध-द्वन्द्वै·········मार्ग=सिद्ध-दम्पति स्वामी कार्त्तिकेय को बीणा बजा कर प्रसन्न करने के लिए आते हैं। वर्षा के कणों के भय से उन्हें एक-दम मेघ का मार्ग छोड़ देना पड़ेगा, क्योंकि पानी पड़ जाने से वीणा बजती नहीं; इसलिए वे वीणा को वर्षा की बूंदों से बचाने के लिए मार्ग से भाग निकल पड़ेंगे एवं मेघ का रास्ता साफ हो जायगा।

सुरभि-तनया-लम्भजाम्=कहा जाता है कि पहले कभी राजा रन्तिदेव ने गोमेध नाम के यज्ञों में बहुत सी गौओं का वध किया। उनके चर्म से बहते हुए खून की एक नदी बन गई, जिसका नाम 'चर्मण्वती' पड़ा। इस नदी को आज कल 'चम्बल' कहते हैं। यहाँ इसी नदी का उल्लेख है। देखो महाभारत(वनपर्व) और भागवत पुराण।

रन्तिदेवस्य कीर्तिम्=दशपुर का राजा रन्तिदेव संस्कृति का छोटा पुत्र था और वह भरत से छः पीढ़ी बाद हुआ। रन्तिदेव बड़ा धर्मात्मा था और उसने कई यज्ञ किए। इन यज्ञों में गौओं का वध किया जाता था। इससे उसकी कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली ॥४७॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शाङ्र्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥४८॥

अन्वयः—शाङ्र्गिणः वर्णचौरे त्वयि (चर्मण्वत्याः) जलम् आदातुम् अवनते (सति) पृथुम् अपि दूरभावात् तनुम् तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् गगन-गतयः नूनम् दृष्टीः आवर्ज्य एकं स्थूलमध्येन्द्रनीलम् भुवः मुक्तागुणम् इव प्रेक्षिष्यन्ते।

पदार्थः—शार्ङ्गिणः वर्णचौरे=कृष्ण के रंग को चुरानेवाले अर्थात् कृष्ण के रंग के समान काले। त्वयि=तेरे। जलम् आदातुम्=जल लेने के लिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवनते (सति) = झुकने पर। पृथुम् अपि = बड़े भारी (विस्तृत) भी। दूरभावात् = दूर होने के कारण। तनुम् = छोटे। तस्याः सिन्धोः = उस नदी (चर्मण्वती) के। प्रवाहम् = बहाव को। गगनगतयः = आकाश में विचरण करने वाले (सिद्ध, गन्धर्व आदि)। नूनम् = अवश्य। दृष्टीः आवर्ज्य = आँखों को नीचे करके, दृष्टि डालकर। स्थूलमध्येन्द्र-नीलम् = जिसके मध्य में एक महान् इन्द्र-नील मणि लगा हुआ है, ऐसी। भुवः = पृथ्वी की। एकं मुक्तागुणम् इव = मानो कि मोतियों की एक लड़ीवाली माला हो ऐसा। प्रेक्षिष्यन्ते = देखेंगे।

भाषानुवादः—कृष्ण का रंग चुरानेवाले (अर्थात् काले-काले) तेरे (चर्मण्वती के) जल को लेने के लिए नीचे झुकने पर, आकाश में विचरनेवाले (सिद्ध-गन्धर्व आदि) उस नदी के प्रवाह को, जो विस्तृत होने पर भी दूर होने के कारण छोटा-सा (लगेगा) आँखों को नीचे की ओर करके इस प्रकार देखेंगे मानो कि (यह) पृथ्वी की एक-लड़ी मोतियों की माला हो, जिसके मध्य में इन्द्र-नील मणि लगा हुआ है।

व्याकरणम्—शार्ङ्गिणः = शृङ्गस्येदं शार्ङ्गम् (धनुः) तदस्यास्तीति शार्ङ्गी तस्य। शृंग+अण्+इनि, ष० एक०। वर्णचौरे = वर्ण चोरयतीति वर्णचौरः तस्मिन्। आदातुम् = आ+√दा, (जु० उभ०)+तुमुन्। अवनते = अव+√नम्+क्त, कर्त्तरि। दूरभावात् = दूरस्य भावः √भू+घञ् भावे, तस्मात्। गगनगतयः = गगने गतिर्येषां ते (ब० व्री०)। आवर्ज्य = आ+वृज्, (चु० प०)+य (ल्यप्)। दृष्टीः = दृष्टि का द्वि० बहु०। स्थूलमध्येन्द्रनीलम् = मध्यः इन्द्रनीलः (कर्मधा०)। स्थूलः मध्येन्द्रनीलः यस्य (बहुव्री०) तम्। 'मुक्तागुणम्' का विशेषण। मुक्तागुणम् = मुक्तानां गुणम् (ष० तत्पु०); यह 'प्रवाहम्' का उपमान है। प्रेक्षिष्यन्ते = प्र+√ईक्ष्, (भ्वा० आ० देखना), लृट्, प्र० पु० बहु०। नूनम् = अव्यय।

विशेषः—वर्णचौरे = देखिए—पूर्वमेघ ४९ 'कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम्'। और देखिए—पूर्वमेघ १५ 'येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिम्……गोपवेषस्य विष्णोः।'

पृथुमपि तनुम् = इसका भावार्थ यह है कि वैसे तो चर्मण्वती का बहाव विस्तृत है, परन्तु आकाश में विचरण करनेवाले सिद्ध-गन्धर्व आदि जब दूर से इसे देखेंगे, तो यही बहाव छोटा-सा प्रतीत होगा। इस अवस्था में यह नदी,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिससे जल लेने के लिए बादल इसके एक कोने की ओर झुकेगा, पृथ्वी की एक लड़ीवाली मोतियों की माला के समान प्रतीत होगी और उस पर स्थित काले रंग का बादल उस माला का मध्य नील–मणि प्रतीत होगा। इस सम्बन्ध में देखिए—अभि० शाकु० VII ८ 'सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्ति भजन्त्यापगाः।' इस पद्य के अन्तर्गत विचार के लिए देखिए—रघु० XIII. ४८ 'एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी। मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः॥

आवर्ज्य=सरस्वती० इसका अर्थ 'नमयित्वा' सारोद्धा० 'आनम्य' और वल्लभ 'निक्षिप्य' करते हैं। इन सब अर्थों से झुकना अथवा नीचे फेंकने का आशय स्पष्ट होता है। इस प्रकार यह अर्थ मल्लि० के द्वारा किए गए 'नियम्य' (रोककर) इस अर्थ की अपेक्षा अच्छा प्रतीत होता है।

इस पद्य में चर्मण्वती नदी पर मोतियों की लड़ी की सम्भावना की जाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है॥४८॥

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं[1]
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्॥४९॥

अन्वयः—ताम् (चर्मण्वतीम्) उत्तीर्य (त्वम्) आत्मबिम्बम् परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम् पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरि-विलसत्-कृष्ण-शार-प्रभाणाम् कुन्दक्षेपानुगमधुकर-श्रीमुषाम् दशपुर-वधू-नेत्रकौतूहलानाम् पात्रीकुर्वन् व्रज।

पदार्थः—ताम्—उस (चर्मण्वती) को। उत्तीर्य—लांघकर। आत्मबिम्बम्—अपने स्वरूप (मूर्ति) को; अपने आपको। परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्—जो बेत-सी लम्बी भौंहों के विलास से परिचित (अभ्यस्त) हैं। पक्ष्मोत्क्षेपात्—पलकों के ऊपर उठाने के कारण। उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्—जिनमें काले, लाल तथा सफेद ('कृष्णरक्त-सिताः शाराः' इति यादवः) कान्ति ऊपर शोभा दे रही होगी। कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम्—जो चमेली के फूलों के इतस्ततः हिलने-डुलने के अनुसार (स्वयं भी) हिलने-डुलने वाले भ्रमरों की शोभा चुराने वाले होते हैं। दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्—दशपुर (नगर) की स्त्रियों की

१—जुषाम्। विल्सन।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आंखों के कौतूहलों अर्थात् कौतूहल-भरी उनकी आँखों का । पात्रीकुर्वन्—पात्र, विषय बनाता हुआ । व्रज—जाना ।

भाषानुवादः—उस (चर्मण्वती) को पार करके (तुम) अपने स्वरूप (अपने आप) को (रन्तिदेव के नगर) दशपुर की नवयुवतियों की (उन) आँखों के कौतूहलों का विषय बनाते हुए जाना, जो बेल-सी (लम्बी-लम्बी) भौंहों के विलास में अभ्यस्त हैं, जिनके पलकों के उठने के कारण काली, श्वेत तथा लाल रंगों की कान्ति ऊपर विलास करती रहती है और जो चमेली के फूलों के इधर-उधर हिलने-डुलने के पीछे (स्वयं भी) हिलने-डुलनेवाले भ्रमरों की शोभा को चुराती हैं ।

व्याकरणम्—उत्तीर्य = उत्+√तॄ, (भ्वा० प० तैरना)+य (ल्यप्) । आत्मबिम्बम् = आत्मनो बिम्बः (मूर्तिः, स्वरूपम्) आत्मबिम्बस्तम् । परिचित-भ्रूलता० = परिचिताः भ्रुवो लताः इव भ्रूलताः तासाम् (उपमितसमासः) विभ्रमा विलासाः, येषु तेषाम् (ब० व्री०) । पक्ष्मोत्क्षेपात् = पक्ष्माणि नेत्रलोमानि तेषामुत्क्षेपादुन्नमनात्; उत्+√क्षिप् (तुदा० प० फेंकना)+अ(घञ्) । उपरिविलसत्कृष्ण० = उपरि विलसन्त्यः कृष्णाश्च ताः शाराश्च कृष्णशारा नील-शबलाः ('वर्णो वर्णेन' समासः) प्रभाः येषां तेषाम् (ब० व्री०)। कुन्दक्षेपानुगमधुकर० = कुन्दानां क्षेप इतस्ततश्चलनं तस्यानुगा अनुसारिणो ये मधुकरास्तेषां श्रियं मुष्णन्तीति तथोक्तानाम् । मुषाम् = √मुष्, (क्र्या० प० चुराना) क्विप् । दशपुरवधूनेत्र० = दश पुराणि यत्र तत् दशपुरम् तस्य वध्वस्तासां नेत्राणि तेषां कौतूहलानां नेत्राभिलाषाणाम् सकौतूहलदृष्टीनामित्यर्थः । पात्रीकुर्वन् = अपात्रं पात्रं सम्पद्यमानं करोति इति पात्रीकुर्वन्; पात्र+च्वि+√कृ+अत् (शतृ) व्रज = √व्रज्, (भ्वा० प०, जाना), लोट्, म० पु० एक० ।

विशेषः—कृष्णशारप्रभाणाम् = यद्यपि 'शार' शब्द का अर्थ 'कृष्ण-रक्त-सिताः शाराः' इस यादव कोष के अनुसार काला-लाल-श्वेत अर्थ होने से आँखों के तीनों ही रंगों का ग्रहण हो जाता है फिर पृथक् दिये गए 'कृष्ण' शब्द के कारण यहाँ काले रंग का प्राधान्य विवक्षित है, अर्थात् प्रधानतः काले, देखिए— 'कृष्णशारच्छविर्योसौ.........कटाक्ष इव पातितः' विक्र० VII. ३१ ।

कुन्दक्षेपानुगमधुकर० = कुन्द (चमेली) का फूल सफेद होता है और इसके मध्य में बैठा हुआ भ्रमर काला होता है । इस प्रकार भ्रमर से युक्त कुन्द की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समानता दशपुर की स्त्रियों के उन नेत्रों से की गई है, जो स्वयं श्वेत होते हुए काली-काली पुतलियों से शोभित हैं। आँखों में लाली भी रहती है, किन्तु यहाँ वह कवि को विवक्षित नहीं; एक तो इसलिए कि उपमान 'भ्रमर-युक्त-कुन्द' से समानता दिखानी है; उसमें लाली नहीं है, दूसरे स्त्रियों के नेत्रों में लाली किसी कारण से आती है, स्वभावत: नहीं। स्त्री-नेत्र में स्वाभाविक लाली सामुद्रिक शास्त्रानुसार एक अशुभ लक्षण होता है।

दशपुर=इसका आधुनिक नाम 'दसोर' अथवा 'मन्दसोर' है जो सिवदा के उत्तर अथवा दक्षिण तट पर है। यह मध्य-भारत के पश्चिमी मालव-मण्डल में इस नाम के जिले का प्राचीन काल में बहुत वैभव-सम्पन्न नगर होगा, क्योंकि इसका वर्णन महाभारत, नासिक-शिलालेखों तथा गुप्तवंश के शिलालेखों में आता है।

विभ्रम=इसके अर्थ के लिए यह पद्य देखिए—"हावो मुखविकार: स्याद् भावश्चित्तसमुद्भव:। विलासो नेत्रयो: ज्ञेयो विभ्रमो भ्रूसमुद्भव:।"

नेत्रकौतूहलानाम्=इस पर सारो० का इस प्रकार कथन है—दशपुराभिधाननगर-नारी-नयनाश्चर्यालोकनानां कौतुकं कारणं विलोकितं कार्यम्। कारणे कार्मोपचारात्कौतुकं जनयन्निरीक्षितानामिति भाव:।

श्रीमुषाम्=सुन्दरता को चुरानेवाले अर्थात् सुन्दरता का अनुकरण करनेवाले। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ४८ में 'शार्ङ्गिणो वर्णचौरे'

इस पद्य में उपमालंकार है ॥४९॥

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ[1] च्छायया गाहमान:
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथा:।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि[2] ॥५०॥

अन्वय:—अथ ब्रह्मावर्तं जनपदम् छायया गाहमान: क्षत्र-प्रधन-पिशुनम् तत् कौरवम् क्षेत्रम् भजेथा:, यत्र गाण्डीवधन्वा शित-शर-शतै: राजन्यानाम् मुखानि धारापातै: कमलानि त्वम् इव अभ्यवर्षत्।

पदार्थ:—अथ=इसके बाद। ब्रह्मावर्तं जनपदम्=ब्रह्मावर्त नाम के देश में। गाहमान:=प्रवेश करता हुआ। क्षत्र-प्रधन-पिशुनम्=क्षत्रियों के युद्ध-

१-अध:, वल्ल०, म०सि०विल्स०, इत्यादि। २—अभ्यसिञ्चत्, विल्स०, वल्ल०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूचक। तत्=उस (प्रसिद्ध)। कौरवम् क्षेत्रम्=कौरवों के क्षेत्र अर्थात् कुरुक्षेत्र को। भजेथाः=प्राप्त करना, जाना। यत्र=जहाँ (कुरुक्षेत्र में)। गाण्डीवधन्वा=गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले (अर्जुन) ने। शितशरशतैः=सैकड़ों तेज वाणों से। राजन्यानां मुखानि=क्षत्रियों के शिरों पर। धारापातैः=मूसलाधार वृष्टि गिराने से। कमलानि=कमलों पर। त्वम् इव=तेरी तरह। अभ्यवर्षत्=वर्षा की थी।

भाषानुवादः—इसके अनन्तर ब्रह्मावर्त नाम के देश में छाया द्वारा प्रवेश करते हुए (तुम) क्षत्रियों के युद्ध-सूचक उस प्रसिद्ध कौरवों के क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) को जाना, जहाँ गाण्डीव धनुषवाले (अर्जुन) ने राजाओं के शिरों पर सैकड़ों तीक्ष्ण बाण यों बरसाए थे जैसे तुम कमलों पर मूसलाधार वृष्टि बरसाते हो।

व्याकरणम्—गाहमानः=√गाह् (भ्वा० आ०, प्रवेश करना)+शानच्, प्र० एक०। क्षत्रप्रधनपिशुनम्=क्षत्राणां प्रधनं युद्धम् ('युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्' इत्यमरः) तस्य पिशुनम् सूचकम्। कौरवम्=कुरूणामिदं कौरवम्; कुरु+अ (तद्धितप्रत्यय)। भजेथाः=√भज्, (भ्वा० उभ०, सेवा करना, प्राप्त करना) विधिलिङ् म० पु० एक०। 'कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' आत्मनेपदम्। गाण्डीवधन्वा=गाण्डी=ग्रन्थिरस्यास्तीति गाण्डीवम्। यहाँ मतुप् अर्थ में 'व' प्रत्यय लगा है। गाण्डीवं धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वा (ब० व्री०)। बहुव्रीहि समास में धनुस् को अनङ् आदेश होकर धन्वन् हो जाता है। राजन्यानाम्' राज्ञाम् अपत्यानि पुमांसः राजन्याः तेषाम् राजन्+यत् (अपत्यार्थक) शितशरशतैः=शिता ये शराः तेषाम् शतैः। शित=√शो (दि० प०) +त। धारापातैः=धाराणामुदक-धाराणां पातैः पातनैः। अभ्यवर्षत्=अभि +√वृष्, (भ्वा० प०, बरसना), लङ् प्र० पु० एक०।

विशेषः—ब्रह्मावर्तम्=यह सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य का देश है। देखिए—मनु० II. १७ 'सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥' दृषद्वती घग्गर नदी का प्राचीन नाम है। ब्रह्मावर्त देश हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम में कुरुक्षेत्र के समीप है। अम्बाला आदि इसी के अन्तर्गत हैं।

क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनम्=कौरवों और पाण्डवों के मध्य हुए युद्ध का अनुमान करा देने वाला स्थान। मल्लि० के अनुसार यहाँ युद्ध में मारे गये क्षत्रियों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कपाल (मुण्ड) तथा अस्थिपञ्जर मिलते हैं; साथ ही यहाँ की सारी भूमि रुधिर से रंगी हुई है, इससे यहाँ लड़े गए भूतपूर्व युद्ध का अनुमान हो जाता है। यह स्थान जिसे कुरुक्षेत्र कहते हैं थानेश्वर के कुछ दक्षिण-पूर्व में स्थित है। महाभारत वनपर्व० के ८३.४ 'दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्योत्तरेण च। ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ॥' इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि कुरुक्षेत्र सरस्वती के दक्षिण से दृषद्वती के उत्तर तक फैला हुआ था। यह अम्बाला छावनी से २० मील दिल्ली की ओर है। कुरुक्षेत्र अब भी तीर्थ-स्थान माना जाता है। इसकी पवित्र भूमि सरस्वती नदी के जल से सींची गई है। सरस्वती अब पृथ्वी में समा चुकी है। कुरुक्षेत्र में इस महाभारत युद्ध के लिए देखिए भगवद्गीता I १, 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥"

गाण्डीवधन्वा = 'गाण्डीव' अर्जुन के धनुष का नाम था, इसलिए इस धनुष को धारण करने के कारण अर्जुन का नाम 'गाण्डीवधन्वा' या 'गाण्डीवधारी' पड़ा है। देखिए—भगवद्गीता I. ३० 'गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्।'

अभ्यवर्षन्मुखानि = देखिए, रघु० XV. ५८ योधाः सस्यमिवाम्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः।'

इस पद्य में अर्जुन की बाण-वर्षा की तुलना बादल की जल-वर्षा से की जाने के कारण उपमा अलंकार है ॥५०॥

[1]हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
[2]बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा [3]तासामधिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमपि[4] भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५१॥

अन्वयः—बन्धुप्रीत्या समर-विमुखः लाङ्गली अभिमतरसाम् रेवतीलोचनाङ्काम् हालाम् हित्वा याः (अपः) सिषेवे, हे सौम्य! तासां सारस्वतीनाम् अपाम् अधिगमम् कृत्वा अन्तःशुद्धः त्वम् अपि वर्ण-मात्रेण कृष्णः भविता (न तु पापेन)।

पदार्थः—बन्धुप्रीत्या = बान्धवों के प्रति प्रेम के कारण। समर-विमुखः = युद्ध से मुंह मोड़े हुए। लाङ्गली = बलराम ने। अभिमतरसाम् = जिसका स्वाद

१—कृत्वा, छित्त्वा। २—बन्धुस्नेहात्, का० पा० आदि। ३—अभिगमम् इत्यादि। ४—त्वमसि, मल्लि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(रस) उन्हें अच्छा लगता था, अभीष्ट स्वादवाली। रेवतीलोचनाङ्काम् = रेवती (बलराम की स्त्री) के नेत्रों (के प्रतिबिम्बों) से चिह्नित। हालाम् = मदिरा को। हित्वा = छोड़कर। याः = जिस (सरस्वती के जल) को। सिषेवे = सेवन किया। (हे) सौम्य = हे सुभग ! तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् = उस सरस्वती नदी के जल का। अधिगमम् कृत्वा = सेवन करके, प्राप्त करके। अन्तः शुद्धः त्वम् अपि = अन्दर से शुद्ध हुए तुम भी। वर्ण-मात्रेण = केवल रंग से ही। कृष्णः = काले। भविता = रहोगे।

भाषानुवादः—बन्धुओं के प्रति प्रेम (होने) के कारण युद्ध से विमुख होकर बलराम ने स्वाद में अनुकूल (अच्छी) लगने वाली तथा रेवती के (प्रतिबिम्बित) नेत्रों द्वारा चिह्नित मदिरा को त्याग कर सरस्वती नदी के जिस जल का सेवन किया था, उसका सेवन करके, हे सुभग ! भीतर से शुद्ध हुए तुम भी केवल रंग से ही काले रहोगे (न कि पाप से)।

व्याकरणम्—बन्धुप्रीत्या = बन्धूनाम् (कौरव-पाण्डवानां) प्रीत्या। समर-विमुखः = समरात् विमुखः) पं० तत्पु०)। लाङ्गली = लाङ्गलम् (हलम्) अस्यास्तीति-लाङ्गल + इन् (इनि)। अभिमतरसाम् = अभिमतो रसो यस्या-स्ताम्। (ब० व्री) रेवतीलोचनाङ्काम् = रेवत्याः स्वप्रियायाः लोचने एवाङ्कः (प्रतिबिम्बरूपम्) चिह्नं यस्यास्ताम् (ब० व्री०) हित्वा = √हा, (जुहो० प०, छोड़ना) + त्वा। सिषेवे = √सेव् (भ्वा० आ०, सेवन करना, लिट्, प्र० पु० एक०। तासाम् = तत् स्त्री० का ष० बहु०। सारस्वतीनाम् = सरस्वती = सरांसि (जलानि) सन्ति अस्याः इति; सरस् + मतुप् स्त्रियाम्। सरस्वत्या नद्या इमाः सारस्वत्यस्तासाम्, सरस्वती + अण् ङीप् अपाम् (जलस्य) = अप् शब्द का ष० बहु०। यह शब्द नित्य बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है। अधिगमम् = अधि + √गम् + अप्, भावे, नपुं० एक०। अन्तः-शुद्धः = अन्तरात्मनि शुद्धः निर्मलः। वर्णमात्रेण = वर्ण एव वर्णमात्रम् तेन। कृष्णः भविता = √भू + तृ, प्र० एक०।

विशेषः—बन्धुप्रीत्या = कौरव-पाण्डवों की लड़ाई में यद्यपि कृष्ण ने तो पाण्डवों का साथ दिया, परन्तु बलराम किसी का भी पक्ष न लेकर सरस्वती तथा अन्य तीर्थों पर यात्रा के लिए चले गए। देखिए भागवत पुराण XI[I]।

लाङ्गली। यह बलराम का नाम है। बलराम का प्रधान शस्त्र 'लाङ्गल' (हल) था, जिससे वे अपने शत्रुओं को खदेड़ देते थे। बलराम कृष्ण के बड़े

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाई थे और इन्हें शेषनाग का अवतार समझा जाता है। ये वसुदेव और देवकी के सातवें पुत्र थे। कंस के दुराचार से बचने के लिए वे वसुदेव की दूसरी स्त्री रोहिणी के गर्भ में अवतीर्ण हुए थे।

रेवतीलोचनाङ्काम्=रेवती बलराम की पत्नी थी और वह अपने पति के साथ पानोत्सवों में भाग लिया करती थी। इसलिए एक साथ इकट्ठे बैठकर मदिरा पीने के समय उसमें रेवती के नेत्रों का प्रतिबिम्ब पड़ जाया करता था और तब वह मदिरा 'रेवती-लोचनाङ्क' बन जाती थी। सारोद्धा० कहती है—'सहपानाद्रेवती-प्रतिबिम्बसम्भवः'। देखिए-ऋतु० १, ३ 'प्रियामुखोच्छ्वास-विकम्पितं मधु'। और देखिए रघु० IX. ३६ 'पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डन-वर्जितम्।'

हित्वा हालाम्=एक बार भ्रमण करते हुए बलराम ने नैमिषारण्य में ऋषियों के साथ यज्ञ करते हुए सूत का, जिसने उनका सत्कार नहीं किया था, कुशा के अग्रभाग से वध कर दिया था। अतएव उन्हे ब्रह्महत्या का पाप लगा। इसके प्रायश्चित्तरूप ऋषियों ने उन्हें तीर्थों की यात्रा करते हुए भारतवर्ष की प्रदक्षिणा करने को कहा। सम्भवतः बलराम ने प्रायश्चित्त-स्वरूप मदिरा-सेवन छोड़ दिया और तीर्थों की यात्रा करके अपने किए गए पाप से निर्मुक्त होने के लिये सरस्वती नदी में स्नान किया, क्योंकि कहा जाता है कि सरस्वती का जल पवित्र है।

सौम्य=इस स्थान पर तथा अन्य स्थानों पर वल्लभ 'सोम्य' पाठ पढ़ता है और इसकी व्याख्या 'सोम इव सोम्यः' (शाखादिभ्यो यत्, किन्तु शाखादिगण आकृतिगण नहीं है और ना ही यह शब्द शाखादिगण में आया हुआ है। क्षीरस्वामी इस शब्द की व्याख्या करता हुआ कहता है—सोम-देवताऽस्येति सौम्यम् 'सोमाट्ट्यण्, सुन्दरे तूपचारात्'। अमरसिंह और क्षीर-स्वामी पुराने प्रामाणिक कोषकार हैं। अमर० लिखता है 'सौम्यं तु सुन्दरे सोमदेवते'।

सारस्वतीनाम्=देखिए पूर्वमेघ पद्य ५० का 'विशेष'। सरस्वती भारत की पवित्र नदियों में से एक नदी है। यह हिमालय के दक्षिण भाग से निकल कर कुरुक्षेत्र के कुछ उत्तर-पश्चिम में बहती हुई मरुस्थल में लीन हो गई है। अम्बाला के पास मुस्तफाबाद में वह अब एक बरसाती नाले के रूप में रह गई है। कहते हैं कि इसके आन्तभौम स्रोत यमुना ने खींच लिए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिगमम् =मल्लि० ने इसके स्थान में 'अभिगमम्' पाठ दिया है। अन्य टीकाकार पार्श्वा०, वल्लभ आदि 'अधिगमम्' पाठ देते हैं। 'अभिगम' का अर्थ 'पास जाना' तथा 'सम्पर्क' है और अधिगम का अर्थ 'सेवन' या 'प्राप्ति' है, जो प्रकरण के अनुसार उचित प्रतीत होता है।

अन्तःशुद्धः —बलराम को सरस्वती नदी पर सूत के वध का प्रायश्चित्त करने के लिए भेजा गया था। यह वध कृष्ण के आदेश से किया गया था। सरस्वती पर जाकर बलराम ने अपने अन्तःकरण को इसके जल से शुद्ध किया था। बादल को कहा गया है कि वह भी बलराम के समान सरस्वती के जल का सेवन करके शुद्ध अन्तःकरणवाला हो जाएगा। बाहर से काले रहने की कोई बात नहीं। बाह्य शुद्धि की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि का अधिक महत्त्व है।

त्वमपि भविता =मल्लि० के अनुसार 'त्वमसि भविता' पाठ में 'भविता' शब्द भू धातु से कर्तरि तृच् प्रत्ययान्त है। 'असि' √अस्, (अदा० प०) (होना), लट्, मध्यम पु० एक० की क्रिया है, जो कि निकट भविष्यार्थ में 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इस पाणिनीय सूत्र से सिद्ध हुई है, किन्तु यदि 'भविता' को भू धातु के लुट् का म० पु० एक० माने तो। 'भवितासि' ऐसा प्रयोग होना चाहिए था न कि 'असि भविता'। छन्द की दृष्टि से ही भू धातु से 'भवितासि' इस लुट् के रूप का 'असि' अंश 'भविता' से पूर्व पृथक् रखा गया है, जो कि पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध है किन्तु ऐसे उदाहरण संस्कृत साहित्य में बहुत पाये जाते हैं। देखिए रघु० IX. ६ 'तं पातयां प्रथममास'। पुनः रघु० XIII. ३६ प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार'। और देखिए—भट्टि III ५ 'उक्षां प्रचक्रुर्नगरस्य मार्गान्। इसी प्रकार के प्रयोग अश्वघोष के काव्यों में तथा तत्कालीन शिला-लेखों में भी पाए जाते हैं। श्री शारदारंजनराय उपर्युक्त समर्थन से सहमत नहीं हैं, वे कहते हैं कि ऊपर के उदाहरणों में 'आम्' प्रत्ययान्तों का असली धातु से पृथक्-करण पाया जाता है न कि अन्य प्रत्ययान्तों का भी। इसलिए वे भी 'असि' के स्थान में 'अपि' पाठ को मानते हैं जैसा कि बल्लभ ने भी माना है ॥५१॥

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव[1] फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५२॥

१—विहस्यैव, विल्स०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः——तस्मात् (कुरुक्षेत्रात्) अनुकनखलम् शैलराजावतीर्णाम् सगर-तनय-स्वर्ग-सोपान-पङ्क्तिम् जह्नोः कन्याम् गच्छेः, या (जाह्नवी) गौरी–वक्त्र–भ्रुकुटि–रचनां फेनैः विहस्य इव इन्दु-लग्नोर्मिहस्ता (सती) शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत् ।

पदार्थः——तस्मात् =वहाँ (कुरुक्षेत्र) से। अनुकनखलम्—कनखल के समीप शैलराजावतीर्णाम्—हिमालय से उतरी हुई । सागर–तनय–स्वर्ग–सोपान–पङ्क्तिम्—(राजा) सगर के पुत्रों की स्वर्ग की सीढ़ी (रूप)। जह्नोः कन्याम्—जह्नु की कन्या (जाह्नवी) अर्थात् गंगा को। या—जिस(गंगा)ने । गौरीवक्त्र-भ्रुकुटि–रचनाम्—गौरी (पार्वती) के मुख पर भ्रूभंगों (तेवड़ी) की क्रिया का। फेनैः (झाग से) विहस्य इव—मानो उपहास करके । इन्दु–लग्नोर्मि–हस्ता—चाँद को छू रहे लहररूपी हाथोंवाली। शम्भोः—महादेव के। केश–ग्रहणम् अकरोत्—बालों को पकड़ा हुआ है।

भाषानुवादः—वहाँ (कुरुक्षेत्र) से कनखल के समीप हिमालय से उतरी हुई सगर के पुत्रों की स्वर्ग की सीढ़ी-रूप जाह्नवी (गंगा) को जाना, जिसने गौरी के मुख पर (प्रकट हुए) भ्रू-भंग–रचना का मानो झाग से उपहास करके लहर रूपी हाथों से चन्द्रमा सहित शिवजी के केशों को पकड़ा हुआ है।

व्याकरणम्—अनुकनखलम्—कनखलस्य समीपेऽनुकनखलम् (अव्ययीभाव)। शैलराजावतीर्णाम्—शैलानां राजा शैलराजः तस्मात् 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इससे 'टच्' प्रत्यय हुआ। राजन् के बाद टच् प्रत्यय लगने से शैलराज समास हुआ। इसके रूप 'राम' के समान चलेंगे। अवतीर्णाम् अव+√तृ (तु० प०)+न (क्त), स्त्री० द्वि० एक०। सगरतनयस्वर्ग०—सगरस्य तनयानां स्वर्गस्य सोपानानां पङ्क्तिम्। जह्नोः कन्याम्—जाह्नवीम्। जह्नोः 'जह्नु', का ष० एक०। गच्छेः—√गम् विधिलिङ्, म० पु० एक०। गौरीवक्त्रभ्रुकुटि० गौर्या वक्त्रे या भ्रुकुटिः तस्या रचना ताम्, भ्रुकुटिः—भ्रुवोः कुटिः (ष० त०) भ्रुकुंसादीनाम् इस वार्त्तिक से भ्रू के ऊ में विकल्प से ह्रस्व हो जाता है। विहस्य—वि+√हस् (भ्वा० प०),+य (ल्यप्) । इन्दुलग्नोर्मिहस्ता—इन्दौ लग्ना ऊर्मयः एव हस्ताः यस्याः सा (बहुव्री०)। शम्भोः—शम्भु का ष० एक०। केशग्रहणम्—केशानां ग्रहणम् (ष० तत्पु०)। अकरोत्—√कृ, (त० उभ०, करना), लङ् प्र० पु० एक०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेष:—अनुकनखलम्—कनखल हरिद्वार के समीप उस स्थान का नाम है, जहाँ गंगा पहाड़ों से होती हुई समतल भूमि पर बहती है। 'कनखल' की निरुक्ति विल्सन (Wilson) महोदय के अनुसार स्कन्द पुराण के गंगामाहात्म्य-विभाग में दिए गए इस श्लोक में दी गई है—'खलः को नाम मुक्ति नो भजते तत्र मज्जनात्। अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥' हरिवंश-पुराण के निम्न श्लोकों में भी 'कनखल' का वर्णन आया है—'गंगाद्वारं कनखलं सोमो वै तत्र संस्थितः' और हरिद्वारे कुशावर्ते नीलके भिल्लपर्वते। स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते' ॥

मल्लि० 'अनुकनखलम्' से 'कनखलस्याद्रेः समीपे' अर्थ लेता है। इस विचार से गंगा कनखल अद्रि (पर्वत) से उतरती हुई सम-तल भूमि पर आ जाती है। इसका समर्थन महाभारत, वन पर्व के १३५ अ० श्लो० ५ से होता है 'एते कनखला राजन् ऋषीणां दयिता नगाः।' सम्भवतः इस स्थान का यह नाम यहां (कनक) सोने के पाए जाने से पड़ा हो। 'कनकखल से बदलकर बाद में 'कनखल' यह नाम हो गया हो। इस सम्बन्ध में देखिए—कथासरित्सागर III. ४-५ 'तीर्थं कनखलं नाम गंगाद्वारेऽस्ति पावनम्। यत्र काञ्चन-पातेन जाह्नवी देवदन्तिना। उशीनरगिरिप्रस्थाद् भित्त्वा तमवतारिता ॥'

जह्नोः कन्याम्=जब भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाए, तब बहती हुई गंगा ने जह्नु ऋषि के तपोवन को बहा दिया, इससे इस ऋषि की तपस्या में भंग पड़ गया और उसने गंगा के जल को पी लिया, परन्तु भगीरथ के अनुनय-विनय करने पर उसकी ढिठाई को क्षमा करके उसने अपने कान से इसकी धारा को पुनः प्रवाहित कर दिया। इसी कारण गंगा को जाह्नवी, जह्नु जाया, जह्नु तनया कहते हैं।

हमें कोई कारण मालूम नहीं होता कि क्यों कालिदास ने हरिद्वार को छोड़ कर कनखल का वर्णन किया है, जब कि हरिद्वार का नाम पुराणों में पाया जाता है और इस सम्बन्ध में मत्स्य पु० का यह श्लोक भी उद्धृत किया जाता है—'सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागर-संगमे ॥"

सगरतनयस्वर्ग० = सगर सूर्यवंशी राजा था। उसकी विमाता ने जन्म से पूर्व उसकी माता को विष (गर, गरल) दे दिया था। जन्म के बाद उसका नाम 'सगर' (स-गर)—विषवाला पड़ा। सगर की दो रानियाँ थीं, जिनका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाम केशिनी और सुमति था। उन्हें भृगु से दो वर प्राप्त हुए। पहले वर से केशिनी के असमञ्जस नाम का पुत्र हुआ और दूसरे वर से सुमति के ६०,००० पुत्र हुए। असमञ्जस के पुत्र का नास अंशुमान्, उसके पुत्र का नाम दिलीप और उसके पुत्र का नाम भगीरथ था। जब राजा सगर ९९ यज्ञ कर चुका और सौवां यज्ञ करने के लिए उसने अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा, तब स्वर्ग में इन्द्र का आसन डोलने लगा। इन्द्र ने घोड़े को चुरा कर पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। पृथ्वी पर घोड़े को खोजते-खोजते सगर के ६०,००० पुत्र पाताल जा पहुंचे। वहाँ उन्होंने कपिलमुनि के आश्रम में चरता हुआ वह घोड़ा देखा। इस पर कपिल को चोर समझकर वे उसे मारने दौड़े। क्रुद्ध होकर कपिल मुनि ने अपने तेज से उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। वहाँ वे सैकड़ों साल भस्म के रूप में पड़े रहे। अंशुमान घूमते-घूमते कपिल मुनि के आश्रम में गए और वहाँ उन्होंने अपने भाइयों की भस्म देखी। वैनतेय सुपर्ण ने कहा कि सगर के पुत्रों का उद्धार स्वर्गीय गंगा के पवित्र जल से ही हो सकता है। यह कठिन काम न तो सगर, न उनका पुत्र असमंजस, न प्रपौत्र अंशुमान् न परप्रपौत्र दिलीप ही कर पाया। सगर के पर-पर-प्रपौत्र (Great-Great-Grandson) भगीरथ ने यह काम अपने हाथ में लिया और वे कठोर तपस्या करके गंगा की धारा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने में सफल हुए। एवं उन्होंने गंगा-जल से अपने ६०,००० चचेरे प्रपितामहों का उद्धार किया। यह कथा रामायण वाल० के XXXV–XLIV सर्गों में वर्णित है। इस सम्बन्ध में देखिए उत्तर० I. २३ 'तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्। अगणिततनूतापांस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो भगवति तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत् ॥'

शंभोः केशग्रहणम्=स्वर्ग से उतरती हुई गंगा सम्भवतः अपने प्रबल प्रवाह से पृथ्वी को बहा न ले जाय, इस विचार से ब्रह्मा ने भगीरथ को शिव जी की प्रार्थना करने को कहा कि वे पहले गंगा को अपने सिर पर धारण करें। ब्रह्मा के आदेश से भगीरथ को पुनः तपस्या करनी पड़ी। एक साल की कठोर तपस्या के बाद प्रसन्न होकर शिवजी ने भगीरथ की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। गंगा आकाश से आकर शिवजी की जटाओं में कई साल विचरती रही। अपनी तपस्या के फल को पूर्ण न हुआ जान कर भगीरथ ने फिर शिवजी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की आराधना की और उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी जटाओं में स्थित गंगा को सात धाराओं (कईयों के अनुसार चार और कुछ एक के अनुसार दस) में प्रवाहित किया। इन धाराओं को 'सप्तसिन्धु' कहते हैं। इसी कारण शिवजी को गंगाधर, धूर्जटि भी कहते हैं। इस घटना के आधार पर गंगा और पार्वती सपत्नियां कही जाती हैं। देखिए—मुद्रा० I. धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्याः······देव्याः निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः॥ और देखिए रत्ना० I. ३. 'तदुक्तं बहुमार्गगां मम पुरो निर्लज्जवोढुस्तव····।'

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः=शिव जी की जटाओं में स्थित अपनी सपत्नी गंगा को देखकर पार्वती ने ईर्ष्या और क्रोध में आकर तेवड़ी चढ़ाई। इसे देख कर गंगा ने अपनी फेन (झाग) से उसका उपहास किया। उठती हुई झाग के सफेद होने के कारण इसको हंसी समझा गया है, क्योंकि कवि-जगत् में हंसी का श्वेत रंग माना जाता है और वह इसलिए कि हंसते समय दाँत दिखाई देने लग जाते हैं, जिनसे श्वेत छटा निकलती है। देखिए—रामायण अयो० सर्ग ५० श्लो० १६ 'जलाघाताट्टहासोग्रां फेन-निर्मलहासिनीम् (गङ्गां) ददर्श।' इस सम्बन्ध में 'शम्भोः केशग्रहणम्' पर टिप्पणी देखिए। हितो० की प्रस्तावना श्लोक I में भी देखिए—सिद्धिः साध्ये सता-मस्तु प्रसादात्तस्य धूर्जटेः। जाह्नवीफेन-लेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला॥'

इन्दुलग्नोर्मिहस्त=गङ्गा तरंग-रूपी हाथों से सिर पर स्थित चन्द्रमा सहित महादेव की जटा को पकड़ लेती है जैसे कि कोई प्रौढ़ा नायिका किया करती है। यहाँ चन्द्रमा को सिर पर धारण की जाने वाली चूड़ामणि माना गया है। देखिए—न्यायमुक्तावली 'चूडामणिकृतविधुभवः'। प्रौढ़ा नायिका गङ्गा शिव जी पर अपना पूर्ण स्वत्व दर्शाती हुई चूडामणि सहित उनके केशों को खींच लेती है, बेचारी पार्वती भ्रुकुटि (तेवड़ी) ताने तकती ही रह जाती है। इस सम्बन्ध में पूर्व मेघ पद्य ४५ का विशेष भाग तथा ऊपर की टिप्पणियाँ देखिए।

इस पद्य के तीसरे पाद में 'उत्प्रेक्षा' और चौथे में 'रूपक' होने से दोनों अलंकारों की संसृष्टि है॥५२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि [1]पश्चार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ।
[2]संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ[3]
स्यादस्थानोप[4]-गतयमुना[5]-संगमेवाभिरामा ॥५३॥

अन्वयः—सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्ध-लम्बी (सन्) अच्छ-स्फटिक-विशदम् यस्याः (गङ्गायाः) अम्भः तिर्यग् पातुम् त्वम् तर्कयेः चेत् (तर्हि) सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवतः छायया असौ (गङ्गा) अस्थानोपगत-यमुना-सङ्गमा इव अभिरामा स्यात् ।

पदार्थ :—सुरगज इव=ऐरावत (या दिग्गज) के समान । व्योम्नि= आकाश में । पश्चार्धलम्बी=पीछे के आधे भाग से झुके हुए । अच्छस्फटिक-विशदम्=निर्मल स्फटिक (बिल्लोर) के समान स्वच्छ । तस्याः=उस (गङ्गा) के । अम्भः=जल को । तिर्यक्=टेढ़े होकर । पातुम् त्वम् तर्कयेः चेत्= यदि तुम पीने का विचार करो । सपदि=एकाएक, सहसा । स्रोतसि=प्रवाह में । भवतः=तुम्हारे । संसर्पन्त्या छायया=चलते हुए प्रतिविम्ब से । असौ= वह (गंगा) । अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इव=जिसका मानो कि (प्रयाग से) भिन्न स्थान पर यमुना से संगम (मेल) हो गया हो ऐसी । अभिरामा स्यात्= सुन्दर प्रतीत हो ।

भाषानुवादः—ऐरावत (हाथी) के समान पीछे के आधे भाग से आकाश में झुके हुए तुम यदि टेढ़े होकर, उस (गङ्गा) के स्वच्छ स्फटिक (बिल्लौर) के समान निर्मल जल को पीने का विचार करो, तो सहसा जलप्रवाह में पड़ती हुई तुम्हारी परछाई से वह (गंगा) ऐसी सुन्दर लगेगी मानो कि उसका (प्रयाग को छोड़कर) अन्यत्र यमुना से संगम (मेल) हो गया हो ।

व्याकरणम्—व्योम्नि=व्योमन् (नपुं०) स० एक० । पश्चार्धलम्बी= पश्चादर्धः पश्चार्धः पृषोदरादित्वात्साधुः अथवा अपरम्-अर्धम् (कर्मधा०) तेन लम्बते इति पश्चार्धलम्बी । अच्छ-स्फटिकविशदम्=अच्छश्चासौ स्फटिकः तद्वद्विशदम् । कर्मधा० । अम्भः=अम्भस् (नपुं०) का द्वि० एक० । तिर्यक्= तिरः वक्रम् अञ्चति इति, तिरस्+√अञ्च्+क्विप्, तत् यथा स्यात् तथा । पातुम्=√पा (भ्वा० प०)+तुमुन् । तर्कयेः=√तर्क् [चुरा० प०] विधिलिङ्

१—पूर्वार्धलम्बी, वल्ल०, विल्स० आदि । २—संतर्प्यन्त्या । ३—सा । ४—उपनत । संगमेन वल्ल०, विल्स० आदि ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

म० पु० एक० । सपदि—अव्यय । स्रोतसि—स्रोतस् (नपुं०) स० एक० । संसर्पन्त्या—सम्√सृप् (भ्वा० प०)+शतृ+ङीप् स्त्रियाम् संसर्पन्ती तया । अस्थानोपगतयमुनासंगमा इव—अस्थाने उपगतो यमुनया सङ्गमो यया सा [गङ्गा], अभिरामा+अभि+√रम्, (भ्वा० आ०)+अ (स्त्रियाम् आ) । स्यात्—√अस्, (अ० प०) विधिलिङ् प्र० पु० एक० ।

विशेष:—सुरगज इव—मल्लि० ने इसका अर्थ 'दिग्गज इव' किया है । आठों दिशाओं के आठ अधिष्ठातृ देवता हैं, जिन्हें 'दिक्पाल' कहा जाता है । इन 'दिक्पालों' के नाम अमरकोष में इस प्रकार दिए हैं—'इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत् । कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥ सारो०, वल्लभ और सुमति० सुरगज का अर्थ 'ऐरावत' लेते हैं । ऐरावत या ऐरावण इन्द्र का हाथी है और इसका पूर्व दिशा से सम्बन्ध है । इन दिग्गजों के नाम अमर ने इस प्रकार दिए हैं—'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥'

पश्चार्धलम्बी—यहाँ समास में 'पश्चाद्' अनियमित रूप से 'पश्च' में बदल जाता है, इसलिए इसे पृषोदरादि के अन्तर्गत माना गया है । 'अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः' इस वार्त्तिक से इस समास का 'अपरम् अर्धम् पश्चार्धम्' यह विग्रह भी माना गया है । देखिए—अभि० शा० १.९ 'पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।' कुछ प्रतियों में इसका 'पूर्वार्धलम्वी' पाठान्तर है, जिसका अर्थ अग्र-भाग को नीचे झुकाए हुए हो सकता है । हाथी आगे झुक कर ही पानी पीता है । वल्लभ, सारो० और विल्सन इसी पाठ को मानते हैं, किन्तु पूर्व भाग जल की ओर होने से आकाश (व्योम्नि) में पिछला भाग ही रहेगा, पूर्व नहीं, अतः 'पश्चार्ध' वाला पाठ ठीक है ।

तिर्यक्…………अस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा—बादल का पीछे के आधे भाग से आकाश में स्थित होकर आगे के भाग से गङ्गा की ओर झुककर पानी लेना हमारे सामने गङ्गा-यमुना के संगम का सुन्दर दृश्य खड़ा कर देता है । यदि उपर्युक्त अवस्था में यमुना बादल रूप होकर गङ्गा से मिलती है, तो दोनों नदियों का संगम अपने स्थान प्रयाग में न होकर उससे भिन्न स्थान में हुआ मानना चाहिए । यहां 'संगम की' संभावना-मात्र की गई है न कि संगम वास्तविक है । इसलिए यहाँ वल्ल०, सारो०, स० ती० तथा विल्सन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा दिए गए 'सङ्गमेनाभिरामा' पाठ की अपेक्षा 'सङ्गमेवाभिरामा' वाला पाठ ही अच्छा है। अस्थान में नञ्-स्थानीय 'अ' तदन्यत्व का बोध कराता है। गङ्गा-यमुना के संगम का असली स्थान प्रयाग या इलाहाबाद ही है। इस संगम को बड़ा पवित्र मानते हैं। इस प्रकार के भाव के लिए देखिए—रघु० VI. ४८ 'कलिन्दकन्या मथुरागतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति।'

इस पद्य के पहले पाद में 'उपमा' और चौथे पाद में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है ॥५३॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां [1]शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥५४॥

अन्वयः—**आसीनानाम् मृगाणाम् नाभिगन्धैः सुरभितशिलम्, तस्याः (गङ्गायाः) एव प्रभवम्, तुषारैः गौरम् अचलम् प्राप्य अध्वश्रम-विनयने तस्य (हिमालयस्य) शृङ्गे निषण्णः (त्वम्) शुभ्र-त्रिनयन-वृषोत्खात-पङ्कोपमेयाम् शोभाम् वक्ष्यसि।**

पदार्थः—आसीनानाम्=बैठे हुए। मृगाणाम्=कस्तूरों या कस्तूरीवाले मृगों की। नाभिगन्धैः=कस्तूरी की गन्ध से। सुरभितशिलम्=सुगन्धित शिलाओं वाले। तस्याः=उस (गङ्गा) के। प्रभवम्=निकास, उत्पत्तिस्थान। तुषारैः गौरम्=बर्फ से श्वेत। अचलम्=पर्वत पर। प्राप्य=पहुंचकर। अध्वश्रमविनयने=मार्ग की थकावट को दूर करनेवाले। तस्य=उस (हिमालय) के। शृङ्गे=चोटी पर। निषण्णः=बैठा हुआ। शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्=शिव जी के श्वेत बैल (नन्दी) के द्वारा उछाले गए कीचड़ से तुलना किए जाने योग्य। शोभाम्=शोभा, सौन्दर्य को। वक्ष्यसि=धारण करेगा।

भाषानुवादः—उस (गङ्गा) के उत्पत्ति-स्थान, हिम से श्वेत पर्वत (हिमालय) पर पहुंचकर—जहाँ की शिलाएं (वहाँ) बैठे हुए मृगों की कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित रहती हैं—मार्ग की थकावट को दूर करनेवाली उसकी चोटी पर बैठा हुआ (तू) शिव जी के बैल द्वारा (अपने ऊपर) उछाले गए कीचड़ के समान शोभा को धारण करेगा।

१—शुभ्राम्, रम्याम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—ग्रासीनानाम्=आ√सद्, (भ्वा० प०) (बैठना)+शानच् मध्य में ईन आगम, ष० बहु० । नाभिगन्धैः=नाभीनां गन्धाः तैः । (ष० तत्पु०) सुरभितशिलम्=सुरभिताः शिलाः यस्य तम् । (बहुव्री०) । सुरभित—सुरभि करोति इस अर्थ में णिच् करके सुरभि से 'सुरभयति' नाम-धातु बना कर कृदन्त त (क्त) प्रत्यय का रूप बना । प्रभवम्=प्रभवति अस्मात्, प्र+√भू, (भ्वा० प०)+अच् (पञ्चम्यर्थ में कृदन्त प्र०) । प्राप्य=प्र+√आप्, (स्वा० प०)+य (ल्यप्) । अध्वश्रमविनयने=अध्वनः श्रमस्य विनयने, विनीयते अनेनेति विनयनम् स० एक०, करणार्थ में ल्युट् (अ न) । अध्वश्रमः-अध्वनि जातः श्रमः इत्यध्वश्रमः, इस तरह यह मध्यमपदलोपी समास भी माना जा सकता है । निषण्णः=नि+√सद्+न (क्त), प्र० एक० । शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खात०=शुभ्रः त्रिनयनस्य यो वृषस्तेनोत्खातः यः पङ्कः तेन सह उपमेयाम् । त्रिनयनः—त्रीणि नयनानि यस्य स त्रिनयनः (ब० व्री०) । वक्ष्यसि=√वह्, (भ्वा० प०, ले जाना धारण करना) लृट् म० पु० एक० ।

विशेषः—नाभिगन्धैर्मृगाणाम्=कस्तूरी को 'नाभिगन्ध' कहते हैं, क्योंकि यह कस्तूरे (एक विशेष प्रकार के मृग) की नाभि में उत्पन्न होती है । 'मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी च' इत्यमरः, अथवा नाभिगन्ध कस्तूरी को कहते हैं, 'नाभिः प्रदाने कस्तूरीमदे च क्वचिदीरितः' इति विश्वः; उसकी गन्ध से । देखिए—रघु० VI. ७४ 'दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः ।' रघु० XVII. २४ 'चन्दनेनांगरागं च मृगनाभिसुगन्धिना ।' और देखिए—कुमा० I. ५४ 'प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि ।'

अध्वश्रम—मार्ग में चलने से पैदा हुई थकावट । देखिए—उत्तरं० I. २४ 'अलसलुलितमुग्धान्यध्वसञ्जातखेदात् ।'

त्रिनयन—तीन नयन (आँखों) वाला देव शिव । इस तरह इनको त्र्यम्बक भी कहते हैं। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ६० 'राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ।' यह तीसरी आँख शिव जी के मस्तक पर कही जाती है । इसी लिए इनको 'निटिलेक्षण' भी कहते हैं । देखिए—दश० च० पूर्वपीठिका-'रोषेक्षणेन निटिलेक्षणेन भस्मीकृतचेतने मकरकेतने ।' तीन आँखों वाला होने के कारण शिव जी को 'अयुग्मनेत्र' या 'विषमनेत्र' भी कहते हैं । मस्तकवाली यह आँख क्रोधाग्नि का स्थान है । इससे शिव जी पापियों या विघ्नकारियों का संहार करते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देखिए—कुमा० III 'क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति। तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार।' और देखिए—उत्तर VII. २ 'पुटभेदो ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः।'

शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खात०=शिव जी का बैल (नन्दी) श्वेत वर्ण का है। वह अपने सींगों से खोद-खोद कर कीचड़ अपने ऊपर फेंका करता है। हिमालय पर्वत की चोटी पर स्थित बादल के साथ उसके अपने शरीर पर फैंके गए कीचड़ से उपमा दी गई है। नन्दी के श्वेतरंग के लिए देखिए—'कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः' रघु० II. ३५ और देखिए—कुमा० सं० VII. ३७। हाथियों के समान बैल या सांड भी टीलों से या पहाड़ों के अग्रभाग से मिट्टी खोद-खोद कर अपने ऊपर डालते हैं। देखिए उत्तरमेघ, ५३ 'शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः'। और देखिए—रघु० XIII. ४७ 'शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूट.'। पूर्वमेघ पद्य २ में भी बादल की उस हाथी के साथ तुलना की गई है, जो टीले से मिट्टी उखाड़ कर तिरछे दाँतों से प्रहार कर रहा हो ('वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्')।

यहाँ चौथे पाद में 'उपमा' अलंकार है ॥५४॥

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—वायौ सरति (सति) सरल-स्कन्ध-संघट्ट-जन्मा, उल्का-क्षपित-चमरी-बाल-भारः दवाग्निः तम् (हिमालयम्) बाधेत चेत् (तर्हि) एवम् वारि धारा-सहस्रैः अलं शमयितुम् अर्हसि; उत्तमानाम् सम्पदः आपन्नार्तिप्रशमन-फलाः (भवन्ति)।

पदार्थः—वायौ सरति (सति)=वायु के चलने पर। सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा =देवदारुओं के तनों की रगड़ से उत्पन्न हुई। उल्काक्षपितचमरीबालभारः= चिंगारियों के द्वारा चमरी गायों की पूछों के बालों को झुलस देनेवाली। दवाग्निः =जंगल की आग। तम्=उस (हिमालय) को। बाधेत चेत्=यदि पीड़ित करे। एनम्=इसको (जंगल की आग को)। वारिधारासहस्रैः=जल की हजारों धाराओं से (मूसलाधार पानी से)। अलम्=पर्याप्त रूप से, अच्छी तरह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शमयितुम् अर्हसि=बुझा देने योग्य हो जाना अर्थात् (तुम्हें) उसे बुझा देना चाहिए । हि=क्योंकि । उत्तमानां संपदः=बड़े लोगों की सम्पत्तियाँ । आपन्नार्तिप्रशमनफलाः=पीड़ितों की विपदा का निवारण ही प्रयोजन रखती हैं ।

भाषानुवादः—वायु के चलने पर देवदारुओं के तनों (शाखाओं)की रगड़ से उत्पन्न (एवं) चिन्गारियों द्वारा चमरी गायों के बालों के समूह को झुलस देनेवाली जंगल की आग यदि उस (हिमालय) को पीड़ित करे (तो तुम्हें) उसे जल की हजारों धाराओं से अच्छी तरह बुझा देना चाहिए, क्योंकि पीड़ितों की पीड़ा का निवारण (ही) बड़े लोगों की सम्पत्तियों का प्रयोजन होता है ।

व्याकरणम्—वायोः=वायु का स० एक० । सरति=√सृ, (भ्वा० प०) (बहना, चलना)+अत् शतृ) सत् सप्त० (locative Absolute) । सरल-स्कन्धसंघट्ट-जन्मा=सरलानां स्कन्धास्तेषां संघट्टनात् जन्म यस्य सः । (ब० व्री०) । उल्का-क्षपितचमरीबालभारः=उल्काभिः क्षपिताश्चमरीणां बालभारा (बालानां भाराः) येन । (ब० व्री०) । क्षपित-√क्षै, (भ्वा० प०) (नाश करना)+णिच्+त (क्त) कर्मणि । दवाग्निः=दवस्य अग्निः । (ष० तत्पु०)। अथवा दव इत्यग्निः दवाग्निः । 'वने च वन-वह्नौ च दवे दाव इतीष्यते' इति यादवः । तम्=तद् (पुं०) द्वि० एक० । बाधेत=√बाध्, (भ्वा० आ०, पीड़ित करना), विधिलिङ् (सम्भावनायाम्)+ईत्, प्र० पु० एक० । एनम्= एतद् (पुं०) का द्वि० एक० । यह वैकल्पिक रूप अन्वादेश में प्रयुक्त होता है। वारिधारासहस्रैः=वारीणां धाराः वारिधाराः, तासां सहस्रैः (ष० तत्पु०) । अलम्=अव्यय । शमयितुम्=√शम्, [दि० प०]+णिच्+तुम् (तुमुन्) अर्हसि=√अर्ह्, (भ्वा० प०) लट् म० पु० एक० । उत्तमानाम्=उत्तम का ष० बहु० । यहाँ विशेषण विशेष्य बन कर प्रयुक्त हुआ है । सम्पदः=सम्पद् (स्त्री०)प्र० बहु० । आपन्नार्तिप्रशमन०=आपन्नानामार्तिः आपन्नार्तिः तस्याः प्रशमनं (प्र+√शम्+ल्युट् भावे) फलं यासां ताः । (ब०व्री०) । आपन्न- आ+√पद्+न(क्त) कर्त्तरि । आर्तिः=आ+√ऋ+—क्तिन्, भावे ।

विशेषः—तं चेद्वायौ=यहाँ 'तम्' के स्थान पर पार्श्वा० 'त्वम्' यह पाठ देता है, परन्तु सम्भवतः यह 'तम्' के स्थान पर गलती से दिया गया है ।

सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा=हिमालय में सरल (देवदारु)के वृक्षों की बहुलता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है और इनके बिना हिमालय का वर्णन अधूरा रहता है। देखिए—कुमा० I ९। रघु० IV. ७५ 'सरलासक्त-मातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः। आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः॥" सरल के वृक्षों, बांसों तथा अन्य प्रकार के वृक्षों की शाखाओं के परस्पर टकराने से पर्वतों में आग लग जाना कोई नई बात नहीं। घने जंगलों में भी वृक्षों की रगड़ से आग लग जाती है। इस सम्बन्ध में ऋतु० I के २३–२७ पद्य देखिए। मल्लि० ने सरल से देवदारु वृक्ष लिया है, किन्तु शारदा-रञ्जनराय के विचारानुसार सरल देवदारु नहीं होता, प्रत्युत देवदारु की जाति का एक अन्य ही वृक्ष होता है। सम्भवतः उनका अभिप्राय चीड़ या कैल से हो। इन्हें सरल इसलिए कहते हैं कि ये सीधे लम्बे होते हैं।

उल्काक्षपितचमरीबालभारः=चमरी एक प्रकार का गाय-जैसे आकार का मृग-विशेष होता है, जिसे 'याक' (Yak) भी कहते हैं। ये तिब्बत में बहुत होते हैं। इनकी पूंछ घने गुच्छेदार बालोंवाली होती है। जंगल के जलते समय आग इनकी पूंछों को जल्दी लग जाती है। सारो० ने चमरी को 'अरण्यगवी' कहा है। उल्का चिंगारी या आग की ज्वाला होती है।

दावाग्निः=इसे जंगल की आग कहते हैं। इस अग्नि के लगने का कारण ऊपर कहा जा चुका है। जब यह आग प्रचण्ड हो जाती है, तो यह सारे के सारे जंगल को जलाए बिना बुझने का नाम नहीं लेती। देखिए—भामिनी वि० 'दवदहन-जटाल-ज्वाला-जालाहतानाम्। वनाग्नि के वर्णन के लिये ऋतु० I–२२-२७ देखिए।

वारिधारासहस्रैः=जंगल की आग का बुझना कठिन-सा कार्य है। इसी विचार से कवि ने बादल को कहा है कि तू इस अग्नि को हजारों जलधाराओं से अर्थात् मूसलाधार पानी बरसा कर शान्त करना।

अलम्=सुमति० और सारो० ने इसका अर्थ 'अतिशयेन' (पूर्णरूप से) किया है। मल्लि० ने इसका 'साकल्येन' अर्थ दिया है। देखिए ऋतु० I २५.।

आपन्नार्तिप्रशमनफलाः०=इस सम्बन्ध में देखिए—'स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः। धाराधरो वर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः॥' किरात० VII. २८ 'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्।' अभि० शाकु०—II. १७. आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः'।

इस पद्य में शब्द अर्थ का अनुकरण करते हैं और पढ़ते हुए हमें वायु का बहना तथा अग्नि के भीषण प्रकोप की स्पष्ट अनुभूति होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहले पाद में 'छेकानुप्रास' अलंकार और दूसरे में 'वृत्त्यनुप्रास' है। चौथे पाद में 'अर्थान्तरन्यास' होने से इन सबकी संसृष्टि है। वर्णों की समता को अनुप्रास कहते हैं। समता का अर्थ एक या अनेक वर्णों का एक अथवा एक से अधिक बार आना है। इसे आवृत्ति भी कहते हैं। अंग्रेजी में इस अलङ्कार को Alliteration कहते हैं। चौथे पाद में अर्थान्तरन्यास है ॥५५॥

ये [1]संरम्भोत्पतनरभसाः [2]स्वाङ्गभङ्गाय तस्मि-
[3]न्मुक्ताध्वानं सपदि शरभा [4]लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टि [5]पातावकीर्णान्
के [6]वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५६॥

अन्वयः—तस्मिन् (हिमालये) संरम्भोत्पतन-रभसाः ये शरभाः मुक्ताध्वानम् भवन्तम् सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः तान् (शरभान्) तुमुल-करका-वृष्टि-पातावकीर्णान् कुर्वीथाः। निष्फलारम्भ-यत्नाः के वा परिभव-पदं न स्युः।

पदार्थः—तस्मिन्=उस (हिमालय) में। संरम्भोत्पतनरभसाः=क्रोध से उछलने के वेगवाले। ये शरभाः=जो आठ टाँगोंवाले जन्तु-विशेष। मुक्ताध्वानम्=रास्ता छोड़ देनेवाले। भवन्तम्=तुम पर। सपदि=सहसा, तत्काल। स्वाङ्गभङ्गाय=अपने (ही) अंगों के नाश के लिए। लङ्घयेयुः=आक्रमण करें। तान्=उन (शरभों) को। तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्=जोर की ओलों की वर्षा गिराकर तितर-बितर। कुर्वीथाः=कर देना। निष्फलारम्भ-यत्नाः=व्यर्थ के कामों के लिए प्रयत्न करनेवाले। के=कौन। वा=सचमुच, निश्चय से। परिभवपदम्=तिरस्कार के पात्र। न स्युः=न हों।

भाषानुवादः—वहाँ (हिमालय में) क्रोधपूर्वक वेग से उछलनेवाले जो शरभ अपने (ही) अङ्गों के विनाश के लिए (उनके) मार्ग से हटे हुए तुम पर सहसा आक्रमण करें, (उनको) तुम जोर की ओलों की वर्षा गिराकर तितर-बितर कर देना। व्यर्थ के कार्यों के लिए प्रयत्न (करने) वाल कौन (व्यक्ति) सचमुच तिरस्कार के पात्र नहीं बनते।

व्याकरणम्—संरम्भोत्पतनरभसाः=संरम्भेण (सम्+√रभ्+घञ् भावे) उत्पतने (उद्+√पत्+ल्युट् भावे) रभसो येषां ते (ब० व्री०)। मुक्ताध्वा-

---

१—त्वां वैमुक्तध्वनिमसहनाः, विल्स०। २—कायभङ्गाय। ३—दर्पोत्सेकादुपरि, विल्स०। ४—लङ्घयिष्यन्त्यलंघ्यम्, विल्स०। ५—हासा, वल्ल०, विल्स०, सारो०, स० वि०। ६—केषां० का० पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नम्=मुक्तः अध्वा येन स मुक्ताध्वा तं मुक्ताध्वानम् (ब० व्री०) भवन्तम् : भवत् का द्वि० एक०। सपदि—अव्यय, स्वाङ्गभङ्गाय—स्वस्याङ्गानां भङ्गः स्वाङ्गभङ्गः तस्मै। लङ्घयेयुः—√लङ्घ, [चुरा० उभ०] (आक्रमण करना) विधिलिङ् प्र० पु० एक०। सम्भावनायां लिङ्। तुमुलकरकावृष्टि०=तुमुलाः याः करकास्तासां वृष्टिस्तस्याः पातेनावकीर्णान्। अवकीर्ण अव्+√कृ [तु० प०]+न (क्त) कुर्वीथाः=√कृ, [तना० उभ०] (करना), म० पु० एक०, कर्त्रभिप्राये क्रियाफले, आत्म०। निष्फलारम्भयत्नाः=आरभ्यन्त इत्यारम्भाः (आ+√रभ् भ्वा० आ०+अ) आरम्भेषु यत्नः, आरम्भयत्नः निष्फलः आरम्भयत्नो येषां ते (बहुव्री०)। स्युः=√अस् [अ० प० विधिलिङ् प्र० पु० बहु०। परिभव०=परि०+√भू+अप् भावे परिभवस्य पदम्। (ष० तत्पु०) 'के' का विधेयविशेषण विधेयप्राधान्यात् नपुंसकलिङ्गता।

विशेषः—मुक्ताध्वानम्—सारो० और वल्लभ ने इसका और ही अर्थ किया है—मुक्तम् अध्वानं (न+ध्वानम्) अगर्जितं येन तम् अर्थात् कृतगर्जि-तम्' (मुक्त+अ+ध्वानम्)—खूब गरजते हुए। यह अर्थ ठीक तो प्रतीत होता है, परन्तु शब्द की तोड़-मरोड़ ही है।

करकाः—'वर्षोपलस्तु करका' इत्यमरः, यह शब्द स्त्री० तथा पुं० भी है। वर्षोपलस्तु करकाकरकोऽपि दृश्यते इति रुद्रः। कुछ टीकाकारों ने करक को पुंल्लिग ही मानकर 'करकावृष्टि०' का 'करकाणाम् आ समन्तात् वृष्टिः' विग्रह किया है, पर यह उनका भ्रम ही है, क्योंकि जैसा कि ऊपर रुद्र का प्रमाण दे रखा है, करका शब्द स्त्रीलिंग भी है। यहाँ श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि "हिमालय पर पहुँचकर मेघ का जल अधिक शीत पाकर ओलों के रूप में बदल जाता है। अतएव वहाँ कवि ने ओलों की वृष्टि का उल्लेख किया है।

लङ्घयेयुः—आक्रमण करें। देखिए—अभि० शा० VII 'एषा खलु केस-रिणी त्वां लङ्घयति'।

शरभाः—यह हिमालय में रहनेवाला आठ टाँगोंवाला मृग- (जन्तु) विशेष होता है। यह बड़ा भयानक होता है। कहते हैं कि यह सिंह को भी मार डालता है। देखिए—महाभारत—'अष्टपादः शरभः सिंहघाती'। मल्लि० ने इसे एक प्रकार का मृग ही माना है और इस पर विश्व कोष का 'शरभः शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे' प्रमाण दिया है। वास्तव में आठ पैरों वाला कोई पशु हिमा-लय में प्राप्त नहीं हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वाङ्गभङ्गाय—मेघ शरभों से बहुत ऊंचा है—वे उसपर आक्रमण करने के लिए जोर से उछलेंगे, मेघ तक तो वे पहुँच नहीं सकेंगे, प्रत्युत उलटे जमीन में जोर से गिरकर उनके अपने ही पैर टूटेंगे।

के वा—मल्लि० ने 'वा' का कोई अर्थ नहीं किया है। 'वा' के बहुत से अर्थ होते हैं। यहाँ इसका 'निश्चय से' अर्थ है। देखिए—अमरकोश 'स्युरेवं तु पुनर्वै वेत्यवधारणवाचकाः'। का० पा० ने 'के वा' के स्थान में 'केषाम्' पाठ दिया है और 'निष्फलारम्भ-यत्नाः' में बहुव्री० न मानकर तत्पुरुष ही माना है, परन्तु इस पाठ में अर्थ में कोई भेद नहीं आता ॥५६॥

विल्सन (Wilson) ने इसके पहले तीनों ही पादों में बहुत अधिक पाठान्तर दिया है। उसके मतानुसार यह इस प्रकार है :—

त्वां वैमुक्तध्वनिमसहनाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयेयुरलङ्घ्यम्।
तान् कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिहासावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५६क॥

अर्थ-भेद—(दूसरों को) न सहन करनेवाले शरभ अभिमान में फूलकर यदि गर्जन छोड़े हुए (अर्थात् चुपचाप जाते हुए) तुम्हारे ऊपर आक्रमण करें, जो कि तुम (उनके) आक्रमण किये जाने योग्य न हो, तो तुम उनको जोर से ओलों की वर्षा-रूपी हँसी (मात्र) से तितर-बितर कर देना।

इसमें श्वेत ओलों को बादल की हँसी माना गया है—उनका तड़-तड़ शब्द हंसी का शब्द है। विल्सन के अनुसार सारो०, वल्लभ और सुमति० ने भी 'हासावकीर्णान्' पाठ माना है। करका को हास मानने के अर्थ में अधिक स्वारस्य है। करका हिम ही है और हिम का हास से साम्य प्रसिद्ध ही है। दोनों सफेद होते हैं।

इस पद्य में 'अनुप्रास' और अन्तिम पाद में 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है ॥५६क॥

तत्र वैव्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरु[1]पचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्व[2]मुद्धूतपापाः
[3]कल्पन्तेऽस्य स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥५७॥

१—उपहित, उपहृत। का० पा०। २—दूरम्, विल्स० सारो०, म० सिं०। ३—सङ्कल्पन्ते, सारो०, सु० वि०, म० सिं०, कल्पिष्यन्ते मल्लि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—तत्र (हिमालये) दृषदि व्यक्तं शश्वत् सिद्धैः उपचित-बलिम् अर्धेन्दुमौलेः चरण-न्यासम् भक्तिनम्रः (सन्) परीयाः, यस्मिन् (पादन्यासे) दृष्टे (सति) उद्धूतपापाः श्रद्दधानाः करणविगमात् ऊर्ध्वम् स्थिर-गण-पद-प्राप्तये कल्पन्ते ।

पदार्थः—दृषदि (किसी) शिला पर। व्यक्तम्—स्पष्ट, प्रत्यक्ष दीखने वाले। शश्वत्—सदा (अव्यय)। सिद्धैः—सिद्धों के द्वारा। उपचितबलिम्—जिसकी पूजा की गई है ऐसे। अर्धेन्दुमौलेः—शिवजी के। चरणन्यासम्—रखे गए पैर के चिह्न को, पदचिह्न को। भक्तिनम्रः भक्ति से झुके हुए। परीयाः—प्रदक्षिणा करना। यस्मिन्—जिस (पैर के चिह्न) के। दृष्टे—देखने पर। उद्धूतपापाः—पापों से उन्मुक्त हुए। श्रद्दधानाः—श्रद्धालु (लोग) भक्तजन। करणविगमादूर्ध्वम्—शरीर छूटने के बाद। अस्य स्थिर-गण-पद-प्राप्तये—शिवजी के गणों के शाश्वत स्थान की प्राप्ति के लिये। कल्पन्ते—समर्थ होते हैं।

भाषानुवादः—वहाँ (हिमालय में) शिला पर स्पष्ट (दिखाई देनेवाले) शिव जी के चरण-निक्षेप (पैर के चिह्न) की भक्ति से नम्र हुए तुम परिक्रमा करना, जिसकी सिद्ध पुरुष निरन्तर पूजा किया करते हैं और जिसका दर्शन होने पर पापों से मुक्त (हुए) श्रद्धालु पुरुष शरीर छूट जाने के बाद शिवजी के गणों का शाश्वत पद प्राप्त करने के लिए समर्थ हो जाते हैं।

व्याकरणम्—दृषदि—दृषद् की स० एक०। व्यक्तम्—√व्यञ्ज्, रुधा० प०+क्त। शश्वत्—(अव्यय)। उपचितबलिम्—उपचितः (उप+√चि, तना०+क्त कर्मणि) कृतः बलिः—पूजा ('बलिः पूजोपहारयोः' इति यादवः) यस्य तम् (बहुव्री०) अर्धेन्दुमौलेः—अर्धश्चासाविन्दुश्चेत्यर्धेन्दुः 'स मौलौ यस्य (बहुव्री०)। चरणन्यासम्—चरणस्य न्यासः चरणन्यासस्तम् (ष० तत्पु०) न्यासः-नि+√अस् (दि० प०), फेंकना+घञ् भावे। भक्तिनम्रः—भक्त्या नम्रः (तृ० तत्पु०)। परीयाः—परि√इ, (अ० प०), विधिलिङ्, म० पु० एक०। यस्मिन् दृष्टे—सत् सप्तमी (Locative Absolute)। उद्धूत-पापाः—उद्धूतानि पापानि येषाम् (ब० व्री०), उद्धूत-उद्+√धू+क्त कर्मणि। श्रद्दधानाः श्रत्+√धा+शानच् कर्त्तरि। करणविगमात्—करणस्य (शरीरस्य) विगमस्तस्मात्। करण—क्रियते अनेन इति√कृ+ल्युट्। ऊर्ध्वम् (अव्यय)। स्थिरगणपदप्राप्तये—स्थिरं गणानां पदं तस्य या प्राप्ति-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तस्यै। कल्पन्त = √क्लृप्, (भ्वा० आ०) (समर्थ होना) लट् प्र० पु० बहु०।

विशेषः—सिद्धैः = यहां सिद्ध शब्द से किन्नर न लेकर वे लोग लिए गए हैं, जो योगाभ्यास में लीन हैं और साधना के द्वारा सिद्धि तथा अलौकिक शक्ति को प्राप्त करते हैं। इसी कारण उन्हें योगी और सिद्ध पुरुष भी कहते हैं। हिमालय ऐसे सिद्धों अथवा योगियों के लिए अभीष्ट स्थान है।

उपचितबलिम् = मल्लि० और विल्सन द्वारा दिए गए इस पाठ के स्थान में अन्य टीकाकारों ने 'उपहृतबलिम्' दिया है, जिसका अर्थ "(जिस चरणन्यास को) वलि चढ़ा दी गई है" है। बलि का अर्थ यहाँ भी पूजा ही है, अतः दोनों पाठों में विशेष अर्थ-भेद कोई नहीं।

अर्धेन्दुमौलेः = शिव जी, जिनके मस्तक पर अर्धचन्द्र है। विशेष विवरण के लिए पूर्वमेघ पद्य ४५ का विशेष भाग देखिए—

चरणन्यासम् = शिव जी के पदचिह्नवाले स्थान को जिसका कि इस पद्य में संकेत है, शम्भुरहस्य में 'श्रीचरणन्यास' कहा गया है। विल्सन (Wilson) के अनुसार सम्भवतः इसका हरिद्वार में किसी छोटी पहाड़ी से सम्बन्ध हो, जिसके कारण 'हर की पैड़ी' (शिव का चरण) ऐसी किंवदन्ती बनी हुई है। किन्तु प्रकरण के अनुसार यह स्थान बर्फीला होना चाहिए, जहाँ चमरी गायें तथा देवदारु वृक्ष हैं। हरिद्वार ऐसा स्थान नहीं है।

परीयाः = इष्ट देव या देवता अथवा पूजार्ह व्यक्ति की प्रदक्षिणा करने की प्रथा भारत में आदिकाल से चली आ रही है। इससे अत्यधिक आदर सूचित होता है और यह धार्मिक कर्म बन गया है। देखिए—'प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता' रघु० II. २१. और देखिए—प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः' रघु० I. ७६।

कल्पन्ते—मल्लि० 'कल्पिष्यन्ते पाठ मानता है, परन्तु इसकी अपेक्षा वल्लभ या विल्सन द्वारा दिया गया 'कल्पन्तेऽस्य' यह पाठ अच्छा प्रतीत होता है। इस पाठ में 'अस्य' का अर्थ 'शिवजी के' है। किन्तु वर्तमान काल मानने के लिए विल्सन को सारो० और म० सिं० की तरह द्वितीय पाद में आए 'ऊर्ध्वम्' के स्थान में 'दूरम्' पाठ मानना पड़ा है। 'ऊर्ध्वम्' वाले पाठ में 'शरीर छूटने के बाद ही स्थिर-गण-पद-प्राप्ति' के योग्य हो सकेंगे। यह भविष्यकालीन प्रयोग ही है। 'कल्पिष्यन्ते' के स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में सारो०, म० सिं० तथा सुमति० ने 'संकल्पन्ते' पाठ दिया है, परन्तु सम्पूर्वक √कल्प् का अर्थ प्रायः निश्चय करना होता है, समर्थ होना नहीं ॥५७॥

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
[1]संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।
[2]निर्ह्लादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु [3]ध्वनिः स्या-
त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र[4]: ॥५८॥

अन्वयः—**अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः मधुरं शब्दायन्ते; संरक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुर-विजयः गीयते; कन्दरेषु ते निर्ह्लादः मुरजे ध्वनिः इव स्यात (चेत् तर्हि) तत्र पशुपतेः समग्रः संगीतार्थः भावी ननु ।**

पदार्थः—अनिलैः पूर्यमाणाः=वायु से भरे हुए । कीचकाः=बाँस । मधुरं शब्दायन्ते=मीठा शब्द करते हैं । संरक्ताभिः=प्रेम भरी अर्थात् प्रेमभरे कण्ठ-वाली । किन्नरीभिः=किन्नरियों द्वारा । त्रिपुरविजयः=(महादेव द्वारा) त्रिपुरा-सुर का विजय । गीयते=गाया जाता है । तत्र=वहाँ (चरण-चिह्न के पास) । कन्दरेषु=गुफाओं में । ते निर्ह्लादः=तेरा शब्द । मुरजे=मृदंग पर । ध्वनिः इव=शब्द के समान । पशुपतेः=शिवजी का । समग्रः=सम्पूर्ण । संगीतार्थः=संगीत की वस्तु, उपकरण । भावी=होगा । ननु=सचमुच ।

भाषानुवादः—वायु से भरे हुए बाँस मधुर शब्द कर रहे होंगे; प्रेमभरी किन्नरियां (महादेव द्वारा) त्रिपुरासुर के विजय का गान कर रही होंगी (यदि) कन्दराओं में तुम्हारा शब्द मृदंग की ध्वनि के समान हो जाय (तो) सचमुच महादेव के संगीत की सब वस्तुएँ जुट जायेंगी ।

व्याकरणम्—पूर्यमाणाः=√पृ (पूर्), (जुहो० प०) + शानच् कर्मणि प्र० बहु० । मधुरम्—क्रिया-विशे० । शब्दायन्ते=शब्द का नाम धातु, जो 'क्यङ्' प्रत्यय जोड़ने से बना है, लट् प्र० पु० बहु । शब्द, वैर, कलह आदि के साथ करोति अर्थ में (शब्दं करोति) 'क्यङ्' प्रत्यय नाम-धातु बनाने के लिए जोड़ा जाता है। संरक्ताभिः+सम्+√रञ्ज्, (भ्वा० उभ०, रंगना)+त (क्त)+टाप् (स्त्री०) तृ० बहु० । त्रिपुरविजयः=त्रीणि पुराणि यस्य स त्रिपुरः (बहुव्री०) अथवा त्रयाणां पुराणां समहारस्त्रिपुरम् (समाहारद्विगु)

१—संसक्ताभिः मल्लि० । २—निर्ह्रादी, का० पा० । ३—कन्दरीषु वल्ल० म० सिं० । ४—समस्तः, का० पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्य विजयः । गीयते√गै, (भ्वा० प० गाना) कर्मणि लट्, प्र० पु० एक० । निर्ह्लादः=निर्+√ह्लाद् (भ्वा० आ०, शब्द करना)+अ (घञ्) । पशुपतेः =पशूनां पतिः पशुपतिस्तस्य (ष० तत्पु०)।। समग्रः=अग्रेण सहितः । संगीतार्थः= संगीतस्य अर्थः=वस्तु (ष० तत्पु०) । भावी=भविष्यति इति, √भू, (भ्वा० प०)+इन् (णिनि), भविष्यदर्थे ।

विशेषः—शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः०=अमरकोश-'कीचका वेणवस्ते स्युः ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' के अनुसार 'कीचक' उस बाँस को कहते हैं, जिसमें वायु भरा हुआ हो और जो वायु भर जाने से शब्द करते हों। इस प्रकार 'कीचक' शब्द से ही वायु से भरे जाने पर शब्द करना अर्थ निकल जाने से 'कीचकाः' का 'अनिलैः पूर्यमाणाः शब्दायन्ते' यह विशेषण व्यर्थ हो जाता है, इसलिए प्रकृत में कीचक शब्द अपने भीतर के विशेषणत्व को छोड़कर केवल विशेष्यत्व का अर्थात् बाँस सामान्य का बोधक समझा जाता है। देखिए –पूर्वमेघ पद्य २ के विशेष में 'परिणतगज–' पर विशेष । इसी प्रकार के वर्णन के लिए देखिए–रघु० II. १२—'स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्'। और देखिए—कुमा० I. ८—'यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन'।

संरक्ताभिः=इसका मल्लि० ने पाठान्तर 'संसक्ताभिः' दिया है और उसका अर्थ 'सम्मिलित हुई अथवा वंश-वाद्यों के बजाने में लगी हुई' किया है। वास्तव में मीठी-मीठी बांसुरी (वंश) तो वायु ही बजा रहा था, किन्नरियाँ नहीं। मीठी बाँसुरी के साथ गान भी मीठा ही होना चाहिए और वह किन्नरियाँ करे रही हैं, इसलिए 'संरक्ताभिः' (=प्रेमभरी अर्थात् मीठे कण्ठ वाली) वाला पाठ ही ठीक है।

किन्नरीभिः=किन्नरों की स्त्रियों द्वारा। किन्नर 'नरदेवों' की श्रेणी है। कुत्सित आकृति के कारण इन्हें किन्नर कहा जाता है (कुत्सिता नराः किन्नराः)। ये मनुष्य-देहधारी हैं और इनके सिर घोड़ों के जैसे होते हैं। पहाड़ में इन्हें घुड़मुखे या कनौरे कहते हैं। देखिए कुमार०–'न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः I-११ ।''

त्रिपुरविजयः=त्रिपुर शब्द को यहाँ बहुव्री० समास मानकर तीन पुरों वाला (असुर) अर्थात् त्रिपुरासुर लिया जाता है, जिसे महादेव ने मारा था। इसलिए महादेव को 'त्रिपुरान्तक' भी कहते हैं, परन्तु मल्लि० ने यहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समाहारद्विगु मान कर नपुंसक-लिङ्गान्त 'त्रिपुरम्' से व्याख्या की है। त्रिपुर का अर्थ तीन नगरों का समाहार (Aggregate) है। यह तीनों सोना चाँदी और लोहे के नगर क्रमशः आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी पर राक्षसों के लिए मय द्वारा बनाए गए थे। कइयों के विचार में यह तीनों नगर विद्युन्माली, रक्ताक्ष और हिरण्याक्ष—इन तीनों राक्षसों के प्रधान पुरुषों के लिए बनाए गए थे।

निर्ह्रादः—इसका पाठान्तर निर्ह्रादी (शब्द करने वाला) है, जो ध्वनि का विशेषण बनता है, परन्तु 'निर्ह्रादः' वाला पाठ अच्छा है, क्योंकि निर्ह्राद और ध्वनि दोनों पर्याय-शब्द हैं, देखिए—अमरकोश 'शब्दे निनाद-ध्वनि-निर्ह्राद-नाद-निस्वनाः'। एक ही अर्थ के वाचक दो शब्द आ जाने के कारण एक का अर्थ प्रतिध्वनि करने से अवाचकत्व दोष आ जाता है, क्योंकि ध्वनि का अर्थ प्रतिध्वनि नहीं होता।

संगीतार्थः=सारो० में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है–'तथा वाद-नृत्यस्यार्थः='समुदायः' इसका यह अर्थ किया जा सकता है 'संगीत की सामग्री'। संगीत का शाब्दिक अर्थ वह गायन है, जिसके साथ वादन तथा नृत्य भी हो, परन्तु इस पद्य में नृत्य का उल्लेख ही नहीं है, अत एव मल्लि० ने पशुपतेः =शिवस्य नृत्ये इति शेषः' लिखकर नृत्य का अध्याहार किया है।

इस पद्य में दिए गए शब्द अर्थ का अनुकरण करते हैं और पढ़ते हुए हमें यही प्रतीत होता है कि मानो हमारे सामने प्रकृति की नाट्यशाला का द्वार खुला है और हम उसके मधुर संगीत का रस ले रहे हों।

इस पद्य में 'यदि' शब्द के बल से सम्बन्ध जोड़े जाने के कारण 'अस-म्बन्धे सम्बन्धातिशयोक्तिः' अलंकार है और वह उत्प्रेक्षा का कारण बनता है यदि उत्प्रेक्षा का वाचक यहाँ 'ननु' शब्द माना जाय तो–अर्थात् मानो जैसे सारी संगीत-सामग्री जुट गई हो ॥५८॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमति[1]क्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनुसरे[2]स्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनिय[3]मनेऽभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥५९॥

१—उपक्रम्य। २—अनुपतेः का० पा०। ३—नियमनायो० का० पा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—प्रालेयाद्रेः उपतटम् तान् तान् विशेषान् अतिक्रम्य यत् भृगु-पति-यशोवर्त्म हंसद्वारं क्रौञ्चरन्ध्रम् (अस्ति) तेन बलि-नियमने अभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव तिर्यगायामशोभी (सन्) उदीचीम् दिशम् अनुसरेः ।

पदार्थः—प्रालेयाद्रेः—हिमालय पर्वत के । उपतटम्=तटों के समीप, ढलानों के पास । तान् तान् विशेषान्=उन-उन (विभिन्न) देखने योग्य अच्छी-अच्छी वस्तुओं को । अतिक्रम्य—लाँघ कर, देखते हुए पार करके । यत्=जो । हंसद्वारम्=हंसों का (मानसरोवर) जाने का रास्ता । भृगुपति-यशोवर्त्म= परशुराम के यश का मार्ग । क्रौचरन्ध्रम्=क्रौञ्च पर्वत का छिद्र (विवर) है । तेन=उस (क्रौञ्च-विल) से । बलिनियमने=बलि को दबाने (वश में करने) में । अभ्युद्यतस्य—उद्यत, उठे हुए, लगे हुए । विष्णोः—भगवान् विष्णु के । श्यामः पादः इव=काले रंग के पैर के समान । तिर्यगायामशोभी=टेढ़ा-लम्बा होने से सुन्दर प्रतीत होता हुआ । उदीचीं दिशम्=उत्तर दिशा को । अनुसरेः=चले जाना ।

भाषानुवादः—हिमालय की ढलानों के पास उन-उन देखने योग्य वस्तुओं को पार करके परशुराम के यश का मार्ग एवं (मानसरोवर जाने के लिए) हँसों का द्वार-रूप क्रौञ्च पर्वत का जो छिद्र है, उससे होकर (तुम) बलि को दबाने में लगे हुए विष्णु भगवान् के साँवले पैर की जैसी टेढ़ी लम्बाई से शोभा प्राप्त करते हुए उत्तर दिशा को चले जाना ।

व्याकरणम्—प्रालेयाद्रेः=प्रालेयस्य (हिमस्य) अद्रेः (पर्वतस्य) । ष० तत्पु० । प्रालेय—प्रलेयशब्दात् अण् । उपतटम्=तटानां समीपे इति उपतटम् समीप अर्थ में अव्ययी० समास । तान् तान् विशेषान्=वीप्सायां द्विर्वचनम् । 'विशेष' से अभिप्राय कनखल के पास गंगा से है' शारदा० राय० । अतिक्रम्य= अति+√क्रम् (भ्वा० उभयप०, चलना)+य (ल्यप्) । भृगुपतियशोवर्त्म= भृगुपतेर्यशसः वर्त्म (ष० तत्पु०) । हंसद्वारम्=हंसानां द्वारम् (ष० तत्पु०) । क्रौंचरन्ध्रम्=क्रौंचस्य (अद्रेः) रन्ध्रम् (ष० तत्पु०) । बलि–नियमने —बलेर्नियमने (ष० तत्पु०)। नियमन—नि+√यम्+ल्युट् भावे। अभ्युद्यतस्य— अभि—उत्—यम्(भ्वा० प०, वश में करना)+त (क्त), ष०एक० । विष्णोः —वेवेष्टि (व्याप्नोति) जगदिति । विष्णु की व्युत्पत्ति√विष् (जुहो० प०)+ उणादि प्रत्यय 'नु' से हुई है । तिर्यगायामशोभी—तिर्यक् तिरश्चीनः यः आयामः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(आ+√यम्+घञ् भावे) दैर्घ्यम् तेन शोभते इति तिर्यगायामशोभी । √शुभ्, (भ्वा० आ०)+इन् (णिनि)। उदीचीम्—उद्+√अञ्च् (जाना) +क्विन्, उदक्+ङीप् स्त्रियाम्, उदीची, ताम् । अनुसरेः—अनु+√सृ, (भ्वा० प०), विधिलिङ् म० पु० एक० ।

विशेषः—क्रौञ्चरन्ध्रम्, हंसद्वारम्, भृगुपतियशोवर्त्म—यह एक बड़ा छेद है, जिसे कहते हैं कि क्रौञ्चपर्वत में परशुराम ने शिवजी से धनुर्विद्या प्राप्त करने के अनन्तर कैलास से दक्षिण की ओर जाने के विचार से बाण द्वारा क्रौंच का भेदन कर अपना रास्ता बनाने के लिए किया था। कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि जब परशुराम शिवजी से धनुर्वेद सीखते थे, तो एक दिन शिवपुत्र स्कन्द के साथ प्रतियोगिता में उन्होंने क्रौञ्च पर्वत को एक तीक्ष्ण तीर मारकर बींध डाला, जिससे उस पर्वत में एक बड़ा लम्बा विवर (छिद्र) बन गया। इस विवर को बनाने से ही परशुराम का यश सारे विश्व में फैल गया। यह भी कहा जाता है कि इसी विवर से होकर हंस मानसरोवर को जाया करते हैं। इसे आजकल 'नीतिमाणा' दर्रा कहते हैं, जो गढ़वाल और कमायूं की सीमा-संधि में है। यहाँ से तिब्बत जाया जाता है। परशुराम को भृगुपति भी कहते है, क्योंकि वे भृगु के वंशज थे। भृगुवंश में प्रतिष्ठित होने से उन्हे 'भृगुपति' इस तरह कहते हैं, जिस तरह रघुवंश में प्रसिद्ध राम को 'रघुपति'। परशुराम को भृगुवंश में जन्म लेने से भार्गव भी कहते हैं। क्रौञ्च का वर्णन हरिवंश पुराण में देखिए।

बलिनियमनाभ्युद्यतस्य—विरोचन का पुत्र और प्रह्लाद का पौत्र बलि एक शक्तिशाली राक्षस-राजा था। वह बड़ा अभिमानी था। उसे स्वर्ग से वञ्चित रखने तथा दण्ड देने के लिए विष्णु ने वामन-अवतार धारण करके अपने पैर को उसके सिर पर रख कर उसे पाताल में धकेल दिया था ॥५९॥

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः[1] स्याः ।
[2]शृङ्गोच्छ्रायैः [3]कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः [4]प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥६०॥

१—दर्शनस्य । २—तुङ्गोच्छ्रायैः, विल्स० । ३—कुसुम । ४—प्रतिदिनम् मल्लि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—ऊर्ध्वम् च गत्वा (त्वम्) दशमुख-भुजोच्छ्वासित-प्रस्थ-सन्धेः त्रिदशवनिता-दर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः, यः कुमुद-विशदैः शृङ्गोच्छ्रायैः खम् वितत्य प्रतिदिशम् राशीभूतः त्र्यम्बकस्य अट्टहासः इव स्थितः (अस्ति) ।

पदार्थः—ऊर्ध्वम्—ऊपर । गत्वा—जाकर । दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थ-सन्धेः कैलासस्य—कैलास का, जिसकी चोटियों की सन्धियों (जोड़ों) को रावण ने (अपनी) भुजाओं से ढीला (उच्छ्वासित) कर दिया था । त्रिदश-वनितादर्पणस्य—जो देवताओं की स्त्रियों का दर्पण (आइना) है । अतिथिः स्याः—अतिथि (पाहुना) बनना । यः—जो (कैलास) । कुमुदविशदैः—कमल के समान श्वेत । शृङ्गोच्छ्रायैः—चोटियों की ऊंचाइयों से, ऊंची २ चोटियों से । खम्—आकाश को । वितत्य घेर कर, व्याप्त करके । प्रतिदिशम्—चारों ओर राशीभूतः—इकट्ठा हुआ । त्र्यम्बकस्य—शिवजी का । अट्टहासः इव—जोर की सी हँसी, ठहाका-सा । स्थितः—स्थित है ।

भाषानुवादः—ऊपर जाकर (तुम) कैलास का अतिथि बनना, जिसकी चोटियों के जोड़ों को रावण की भुजाओं ने ढीला कर दिया था, जो देवाङ्ग-नाओं का दर्पण है तथा जो कुमुद के समान श्वेत ऊँची चोटियों से आकाश में फैल कर ऐसा खड़ा हुआ है मानो शिव जी का चारों ओर इकट्ठा हुआ अट्टहास (ठहाका) हो ।

व्याकरणम्—ऊर्ध्वम्—अव्यय । दशमुखभुजोच्छ्वासित०—दशमुखस्य (दश मुखानि यस्य स दशमुखः तस्य) भुजैरुच्छ्वासिताः प्रस्थानां (सानूनां) सन्धयो यस्य तस्य (ब० व्री०) । उच्छ्वासित–उत्+√श्वस्, (अदा० प०,) सांस लेना)+णिच्+त (क्त) । प्रस्थः—प्र+√स्था (भ्वा० प०)+अ । त्रिदशवनितादर्पणस्य—त्रिदशानां वनिताः त्रिदशवनिताः तासां दर्पणस्य । त्रिदश—तिस्रो दशाः (बाल-कुमार-युवावस्थाः) येषां ते त्रिदशाः (देवताओं को बुढ़ापा नहीं आता)। भानुजी के अनुसार देवताओं में बाल्य और कौमार अवस्था भी नहीं होती, उनकी तो सदा यौवन-अवस्था ही होती है। अतः 'त्रिदश' की व्युत्पत्ति,—'त्रि—तृतीया दशा येषाम् ते' त्रिदशाः । उनके मतानुसार त्रि शब्द संख्यावाचक पूरणार्थ अर्थात् 'तृतीया' का बोधक है। मल्लि० 'त्रिर्दश परिमाणमेषामस्तीति' तीन बार दश अर्थात् ३० वर्ष की वयोवस्थावाले इस प्रकार व्युत्पत्ति करते हैं । देवता सदा ३० वर्ष के युवा ही रहते हैं। कैलासस्य—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कैलास का ष० एक० । कैलास की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की गई है :— (१) के जले लासो लसनमस्य केलासः स्फटिकः तस्यायं कैलासः । (२) केलीनां समूहः कैलम् तस्य समूहः इत्यण् (अ) तेनास्यात्र । (३)—केल् (भ्वा० प०, चलना)+अ+आस् (घञ्) अधिकरणे घञ् । (४) कं—जलम्, इला—भूमिः, केलयोर्जलभूम्योः आस्ते इति । कुमुदविशदैः—कुमुदवद्विशदैः । शृङ्गोच्छ्रायैः—शृङ्गाणामुच्छ्रायैः । खम्—ख का द्वि० एक० । वितत्य—वि+√तन् (तना० उभ०, फैलाना)+य(ल्यप्) । प्रतिदिशम्—दिशायांदिशायां (अव्ययी० स०) । राशीभूतः—अराशिः—राशिः सम्पद्यमानः भूत इति राशीभूतः । राशि+च्वि+√भू (भ्वा० प०)+त(क्त) । त्र्यम्बकस्य—(१) त्रीणि अम्बकानि (नेत्राणि) यस्य तस्य अथवा (२) त्रयाणां लोकानामम्बकः पिता । (३) त्रीन्वेदानम्बते शब्दायते । (३) त्रयः अकारोकारमकारा अम्बाः शब्दा वाचका अस्य । (५) तिस्रोऽम्बा द्यौर्भूमिरापो यस्येति महाभारते (भानुजी दीक्षित) । इस प्रकार 'त्र्यम्बक' की भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति की जाती है । स्थितः—√स्था, (भ्वा० प०)+त (क्त), प्र० एक० ।

विशेष:—दशमुखभुजोच्छ्वासित०—इसमें रावण द्वारा कैलास पर्वत को उठा कर लंका में ले जाने की कथा का संकेत है । जब रावण शिव जी की पूजा के लिए नित्य लंका से कैलास आने की अपेक्षा कैलास को ही शिव जी सहित अपनी लंका पुरी में ले जाने की अभिलाषा से नीचे से अपने कन्धों पर उठाने लगा, तो सारा पर्वत तथा उसमें रहने वाले प्राणी डग-मगाने लगे । शिव जी के साथ उस पर्वत पर रहती हुई पार्वती भय के कारण उनसे लिपट गई । उसके भय को दूर करने के लिए शिवजी ने कैलास को नीचे की ओर दबाया, रावण ने शिवजी को कुपित देख कर झट अपने आपको किसी तरह नीचे कुचला जाने से बचा लिया । दबने की पीड़ा से वह जोर से चिल्लाया इसलिए उसका नाम रावण (रु शब्दे-रवीति इति रावणः) पड़ा । दूसरी कथा यह भी है कि जब रावण कुबेर से लड़ने के लिए कैलास से होकर जा रहा था, तो उसका शिवजी के गणों से झगड़ा हो गया, क्योंकि उस समय पर्वत पर शिव जी पार्वती के साथ बैठे हुए थे, इसलिए गणों ने रावण के वहां से निश्शंक होकर जाने पर आपत्ति की । रावण को बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने कैलास को उखाड़ फेंक देना चाहा । इतने में शिवजी उसे धर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दबाने लगे थे कि वह बच निकला, देखिए—प्रिय० I. २ कैलासश्रियमिव दशमुखोन्मूलनक्षोभनिपतिताम्' "कैलासाद्रावुदस्ते परिचलति गणेषूल्लसत्कौतुकेषु । क्रुद्धेऽप्याश्लिष्टमूर्तिर्भयघनमुमया पातु तुष्टः शिवो नः ॥" और देखिए—शिशु० I. ५० 'समुत्क्षिपन्त्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः । त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥' यह कथा रामा० के उत्तर का० सर्ग XVI में वर्णित है ।

त्रिदशवनितादर्पणस्य—कैलास पर्वत स्फटिक (बिल्लौर) अथवा चांदी का होने से देवताओं की स्त्रियों का दर्पण है—मल्लि० ।

ऊर्ध्वम्—ऊपर (अव्यय); यह शब्द पूर्वमेघ के पद्य ५७ में आ चुका है । देखिए—'करणविगमादूर्ध्वम्' ।

राशीभूताट्टहास—संस्कृत के कवि 'हास' को श्वेत वर्ण वाला समझते हैं । संभवतः इसका कारण यह है कि हंसने में श्वेत दांत प्रकट होते हैं । उन दांतों के योग (मेल) से 'हास' को भी सफेद समझा गया है । जब 'हास' श्वेत माना गया, तो अट्टहास (महाहास—ठहाका) भी सफेद ही हुआ । यहाँ कैलास के श्वेत वर्ण का होने से उसे शिवजी का चारों ओर इकट्ठा हुआ अट्टहास का ढेर-सा समझा गया है । देखिए—दशकु० पूर्वपीठि का प्रारम्भ—गिरिजाट्टहास-कैलास-काश-नीकाश-मूर्त्त्या ।' और देखिए—पूर्वमेघ ५२ 'या (गंगा) विहस्येव फेनैः' ।

भुजोच्छ्वासित—यही समास उत्तरमेघ पद्य ९ में भी आया है । देखिए—'प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम् ।' 'उच्छ्वसित' के प्रयोग के लिए पूर्वमेघ पद्य ४४ देखिए—'त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः' ।

शृङ्गोच्छ्रायैः—विल्सन (Wilson) ने इसके स्थान में 'तुङ्गोच्छ्रायैः' यह पाठ दिया है, किन्तु 'शृंगोच्छ्रायैः' पाठ ठीक है, क्योंकि उच्छ्राय का अर्थ औन्नत्य होता है, अतः तुंग (उन्नत) के साथ 'शृंग' ही ठीक बैठता है ।

प्रतिदिशम्—इसके स्थान में मल्लिनाथ आदि ने 'प्रतिदिनम्' पाठ दिया हैं, इसके अनुसार कैलास के केवल उत्तर दिशा में होने से उत्तर में 'इकट्ठा हुआ अट्टहास' अर्थ भी ठीक बैठता है ।

इस पद्य के दूसरे पाद में 'रूपक' तीसरे में 'उपमा' और चौथे में उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥६०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यःकृत्तद्विरदरदन[1]च्छेदगौरस्य तस्य ।
शोभा[2]मद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री–
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ।।६१।।

अन्वयः—स्निग्ध-भिन्नाञ्जनाभे त्वयि तटगते (सति) सद्यः कृत्त-द्विरद-रदन-च्छेद-गौरस्य तस्य अद्रेः (कैलासस्य) मेचके वाससि अंस-न्यस्ते सति हलभृतः इव स्तिमित-नयन-प्रेक्षणीयाम् भवित्रीम् शोभाम् उत्पश्यामि ।

पदार्थः—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे—पीसे हुए चिकने सुरमे की तरह चमक वाले । त्वयि—तेरे । तटगते (सति)—(कैलास के) ढलानों पर पहुंचने पर सद्यःकृत्तद्विरदरदनच्छेदगौरस्य—ताजे काटे गए हाथी-दांत के टुकड़े के समान श्वेत । तस्य अद्रेः—उस पर्वत (कैलास) के । मेचके वाससि—काले कपड़े के । अंसन्यस्ते सति—कन्धे पर रखे जाने पर । हलभृतः इव—हल को धारण करने काले बलराम की जैसी । स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम्—निश्चल आँखों में देखे जाने योग्य । भवित्रीम्—होने वाली । शोभाम्—सुन्दरता की । उत्पश्यामि —मैं संभावना करता हूं ।

भाषानुवादः—पीसे हुए चिकने सुरमे की तरह चमकनेवाला तू जब (उसकी) ढलान पर पहुंचेगा, तो ताजे काटे गए हाथी-दांत के टुकड़े के समान श्वेत वर्णवाले उस पर्वत (कैलास) की टकटकी से देखने योग्य ऐसी शोभा का होना मैं सोच रहा हूं जैसी कि कन्धे पर काले कपड़े के रखने पर बलराम की (शोभा हुआ करती थी ।) ।

व्याकरणम्—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे—स्निग्धं भिन्नं (√भिद्+न) च यत् अञ्जनं तस्य आभा इव आभा यस्य तस्मिन् (ब० व्री०) । तट-गते—तटं गते (द्वि० त०) सत्-सप्तमी । सद्यः कृत्तद्विरदरदन०—सद्यः तत्काल एव कृत्तस्य (√कृत्+त) द्विरदरदंनस्य यः छेदः तद्वत् गौरस्य (उपमानकर्मधा०) । द्विरदः —द्वौ रदौ (दन्तौ) यस्य सः । अद्रेः—अद्रि का ष० एक० । मेचके–स० एक० । वाससि—वासस् (नपुं०) की स० एक० । अंसन्यस्ते—अंसे न्यस्ते (स० तत्पु०) वाससि का विशेषण । हलभृतः—हलं बिभर्तीति हलभृत् तस्य । स्तिमितनयन-प्रेक्षणीयाम्—स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां (तृ० त०) प्रेक्षणीयाम् । प्रेक्षणीयाम् —प्र+√ईक्ष् (भ्वा० आ०)+अनीय (अनीयर्), +आ (टाप्) स्त्री०

१—दर्शन मल्लि० । २—लीलामद्रेः, का० पा० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वि० एक; 'शोभाम्' का विशेषण। भवित्रीम्—√भू, (भ्वा० प०) (भव्) +इ+भविष्यदर्थे तृच्+ङीप् द्वि० एक०; 'शोभाम्' का विशेषण। उत्पश्यामि—उत्+√दृश्, (भ्वा० प०, देखना), लट् उत्तम पु० एक०। यहाँ दृश् धातु ज्ञानार्थक (अनुमानार्थक) है।

विशेषः—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे—देखिए—ऋतु० II. २।

अञ्जनाभे—बादल की पीसे हुए सुरमे तथा चिकने काजल से समानता दिखाई गई है।

हलभृतः—देखिए पूर्वमेघ पद्य ५१ का 'विशेष' स्तम्भ। बलराम हल को धारण करते थे। यह उनका शस्त्र था। इसी विचार से बलराम को हलभृत्, हलधर लाङ्गली (लाङ्गल—हल) व सीरपाणि भी कहते हैं। बलराम गौर वर्ण के थे और वह काले कपड़े पहनते थे, इसलिए श्वेत कैलास के ऊपर स्थित काले बादल की तुलना काले कपड़ों को धारण किए हुए बलराम से की गई है। इससे बलराम के शरीर की विशालता ध्वनित होती है। देखिए गीतगो० I. ६३ 'वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं हलहति-भीतिमिलितयमुनाभम्। केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे।'

इस पद्य में 'अनुप्रास' तथा 'उपमा' अलंकार है ॥६१॥

हित्वा तस्मि[1]न्भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विहरे[2]त्पादचारेण गौरी।
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु[3] मणितटारोहणायाग्रयायी ॥६२॥

अन्वयः—तस्मिन् क्रीडा-शैले (कैलासे) शम्भुना भुजगवलयम् हित्वा दत्त-हस्ता (सती), गौरी यदि पादचारेण विहरेत् (तर्हि) अग्रयायी स्तम्भितान्तर्जलौघः भङ्गी-भक्त्या विरचित-वपुः (सन्) मणितटारोहणाय सोपानत्वम् कुरु।

पदार्थः—तस्मिन् क्रीडा-शैले—उस क्रीडा-पर्वत (कैलास) पर। भुजगवलयम्—साँप के कंगन को अर्थात् साँप रूपी कंगन को। हित्वा—छोड़कर। शंभुना—शिवजी से। दत्तहस्ता—हाथ का सहारा दी गई। गौरी—पार्वती।

१—नीलम्। २—विचरेत्, मल्लि०, सु० वि० आदि। ३—कुरु सुखपदारोहणायाग्रयायी; व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु विल्स०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पादचारेण—पैदल। विहरेत्—विहार करे। अग्रयायी=आगे-आगे जाता हुआ। स्तम्भितान्तर्जलौघः—अन्दर जल के प्रवाह को रोके हुए। भङ्गीभक्त्या—पौड़ियों के क्रम से। विरचितवपुः—बने हुए शरीरवाला। मणितटारोहणाय—मणियोंवाली ढलान पर चढ़ने के लिए। सोपानत्वं कुरु—(एक लम्बी) सीढ़ी का काम करना।

भाषानुवादः—उस क्रीड़ा-पर्वत पर साँप का कंगन फेंक कर शिव जी द्वारा दिये हाथ का सहारा लिए हुए पार्वती यदि पैदल घूमे (तो) आगे-आगे चलते हुए (तुम) जल-प्रवाह को भीतर ही रोककर (तथा) अपने शरीर की पौड़ियों के क्रम से बना, मणियों की ढलानों पर चढ़ने के लिए सीढ़ीं का काम देना।

व्याकरणम्—क्रीडाशैले—क्रीडायाः शैलः क्रीडाशैलः तस्मिन्। भुजगवलयम्—भुजग एव वलयः (कर्मधा०) तम्। हित्वा—√हा, (जु० प०, छोड़ना)+त्वा (क्त्वा)। दत्तहस्ता—दत्तो हस्तः यस्यै सा (बहुव्री०)। पादचारेण—पादाभ्यां चारः (तृ० तत्पु०) तेन। विहरेत्—वि+√हृ (भ्वा० प०, हरना), विधिलिङ् प्र० पु० एक०। अग्रयायी—अग्रे यातुं शीलमस्य इति, अग्र+√या, (अ० प०)+इन् (णिनिः) ताच्छील्ये स्तम्भितान्तर्जलौघः—स्तम्भितः अन्तः जलस्य ओघः यस्य तथाभूतः (ब० व्री०)। स्तम्भित–√स्तम्भ (भ्वा० आ०, रोकना)+त। भङ्गीभक्त्या—भङ्गीनां भक्त्या (रचनया)। विरचितवपुः—विरचितं वपुः यस्य (ब० व्री०)। मणितटारोहणाय—मणीनां तटं मणितटं तत्र आरोहणाय। सोपानत्वम्—सोपानानां भावः; सोपान+त्व। कुरु—√कृ, (त० उभ०, करना) लोट् म० पु० एक०।

विशेषः—क्रीडाशैले—कैलास, कनकाद्रि, मन्दर, गन्धमादन ये पर्वत देवताओं ने शिव जी की क्रीडा के लिए बनाए हैं। 'क्रीडाशैलः' के लिए उत्तर-मेघ पद्य १७ देखिए।

भुजगवलयम्—लिपटा हुआ साँप ही शिव का कंगन है। देखिए कुमा० V. ६६–'करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना' और न्यायमुक्तावली 'वलयीकृत-वासुकिः···भवः'।

भुजगवलयं हित्वा दत्तहस्ता—मल्लि० ने यहाँ वाक्य की रचना इस प्रकार की है—'शम्भुना भुजगे वलयं हित्वा दत्तहस्ता (सती) गौरी पादचारेण च विचरेद्यदि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(तर्हि) । श्री शारदा-रञ्जन राय के अनुसार यह रचना दोषपूर्ण है, क्योंकि (I) कोई स्त्री अपने प्रेमी का हाथ नहीं छोड़ सकती जब तक कि कोई भय का कारण न हो; जब शिवजी ने अपने भुजग वलय को छोड़ दिया, तो क्या कारण है कि पार्वती शिव का हाथ न पकड़े । (II) फिर 'शम्भुना· · ·हित्वा दत्तहस्ता गौरी· · ·विचरेत्' इस रचना में समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' नियम के अनुसार क्त्वान्त और मुख्य क्रिया का कर्त्ता एक ही होना चाहिए—यहाँ यह नियम भङ्ग होता है, क्योंकि 'हित्वा' का कर्त्ता 'शम्भुना' है और 'विहरेत्' का कर्त्ता गौरी है । अतः उनके अनुसार पदों का अन्वय इस प्रकार होना चाहिए—'शम्भुना दत्तहस्ता' गौरी भुजगवलयं (हस्तं) हित्वा पादचारेण विचरेत् चेत् । इस रचना में 'हित्वा' और 'विहरेत्' की समानकर्त्तृकता का नियम पालन हो जाता है । पुनः जब शिव जी सहायतार्थ अपना हाथ गौरी के आगे पसारेंगे, तो वह उस पर लपेटे हुए भुजग-वलय से डर कर ग्रहण न करेंगी । एवं वह पैदल चलने के लिए विवश होगी । यदि राय की रचना ठीक मानी जाय, तो 'भुजग-वलय' का विग्रह 'भुजगः वलयः यस्य (बहुव्री०)' है जो लुप्त विशेष्य 'हस्तम्' का विशेषण होगा । वास्तव में राय को कर्तृ-भेद का भ्रम ही हुआ है ; 'हित्वा' की 'दत्त' के साथ समान-कर्तृकता है ही और यही मल्लि० को विवक्षित भी है ।

विहरेत्—इसके स्थान पर 'विचरेत्' पाठान्तर है । 'विचरेत्' का अर्थ है भ्रमण करे । 'विहरेत्' पाठ अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि इसका 'क्रीडाशैले' से सम्बन्ध है । यह पाठ ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि पार्श्वा० में भी यह पाया जाता है ।

अग्रयायी—इसका पाठान्तर 'अग्रचारी' है । अर्थ दोनों के समान हैं । अधिक टीकाकार 'अग्रयायी' पाठ देते हैं ।

भङ्गीभक्त्या—सारो० तथा वल्लभ इसकी यह व्याख्या करते हैं—'तरङ्गविच्छित्त्या कल्लोलाकारेण' अर्थात् तरङ्गों के आकार में देखिए—रघु० VI. ३ 'शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह' ।

मणितटारोहणाय—कैलास पर्वत अनमोल मणियों तथा स्फटिकों से बना हुआ समझा जाता है ।

सोपानत्वम्—देखिए-पूर्वमेघ पद्य ५२ 'जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपान-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पङ्क्तिम्'। और देखिए—रघु० VI. २ 'वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्। शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावस्तुङ्गो नगोत्सङ्गमिवारुरोह। तथा 'सोपानमार्गे प्रकरोति शब्दम्'।

इस पद्य में 'अनुप्रास' तथा 'रूपक' अलंकार हैं ॥६२॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं[1]
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे[2] धर्मलब्धस्य न स्या-
त्क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः[3] ॥६३॥

अन्वयः—तत्र अवश्यम् सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् त्वाम् यन्त्र-धारा-गृहत्वम् नेष्यन्ति। (हे) सखे! यदि धर्म-लब्धस्य तव ताभ्यः मोक्षः न स्यात् (तर्हि) क्रीडालोलाः ताः श्रवण-परुषैः गर्जितैः भाययेः।

पदार्थः—तत्र—वहाँ (कैलास पर)। अवश्यम्—निश्चय से, सर्वथा सुरयुवतयः—देवाङ्गनायें, देवों की स्त्रियाँ। वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं त्वां—कंगनों की [पैनी] नोकों की टक्कर से जल उगलते हुए तुझको यन्त्रधारागृहत्वं नेष्यन्ति—यन्त्रों के द्वारा [प्रवाहित की गई] जल की धाराओं का घर [Shower-bath] बना देंगी। धर्म-लब्धस्य तव—गर्मी में प्राप्त हुए तेरा। ताभ्यः—उन (देव–स्त्रियों) से। मोक्षः—छुटकारा। न स्यात्—न हो। क्रीडालोलाः—क्रीडा में आसक्त (लगी) हुई। ताः—उन (देवांगनाओं) को। श्रवणपरुषैः—कानों को कठोर। गर्जितैः—गर्जनों से। भाययेः—डराना।

भाषानुवादः—वहाँ देवाङ्गनायें कंगनों की (पैनी) नोकों की टक्कर से पानी उगलनेवाले तुम को अवश्य ही जल के फव्वारे के रूप में परिणत कर देंगी। हे मित्र! यदि गर्मी में प्राप्त हुए तुम्हारा उनसे छुटकारा न हो (तो) खेल में लगी हुई उन्हें कानों को कठोर लगनेवाले गर्जनों से डरा देना।

व्याकरणम्—तत्र—अव्यय। अवश्यम्—अव्यय। सुरयुवतयः—सुराणां युवतयः (ष० त०) वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्ण०—वलयानां कुलिशानि तैः यानि उद्घट्टनानि तैः उद्गीर्णं तोयं येन तं (त्वाम्) (ब० व्री०) उद्गीर्ण उत्+√

१—जनितसलिलोद्गारमन्तः प्रवेशम्। २—शर्म। ३—भीषयेः, भापयेः,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गृ० (तु० प०)+न (क्त) यन्त्रधारा-गृहत्वम्—यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां गृहं तस्य भावः (त्व-प्रत्यय)। नेष्यन्ति—√नी, (भ्वा० उभ०, ले जाना), लृट्, प्र० पु० बहु० सखे—सखिन् का सम्बो० ए०। धर्मलब्धस्य—धर्मे लब्धस्य (स० तत्पु०)। तव—युष्मद् का ष० ए०। ताभ्यः—तद् (स्त्री०) प० बहु०। मोक्षः—√मुच् (तु० प०, छोड़ना)+सन्+अ। स्यात्—√अस् [अ० प०, होना] विधिलिङ् प्र० पु० एक०। क्रीडालोलाः—क्रीडायां लोलाः (स० तत्पु०]। ताः—तद् (स्त्री०) द्वि० बहु०। श्रवणपरुषैः—श्रवणयोः परुषैः। गर्जितैः—√गर्ज् (भ्वा० प०)+त (क्त), भावे क्तः भाययेः—√भी, (जुहो० प० डरना)+णिच्, विधिलिङ्, मध्य० पु० एक०। इसके सम्बन्ध में अधिक टिप्पणी 'विशेष' स्तम्भ में देखिए।

विशेषः—वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्ण०—मल्लि० ने कुलिश का अर्थ कोटि, अग्रभाग व नोक किया है। इस समास का विग्रह इस प्रकार भी हो सकता है—वलयाः एव कुलिशा वज्राणि तत्कार्यकरणत्वात्। सारो०, म० सिं० तथा सुमति० कुलिशवलय० पाठ देकर इस प्रकार व्याख्या करते हैं—कुलिशसंपृक्तानि—हीरकविद्धानि वलयानि तेषाम् उद्घट्टनम् तेनोद्गीर्णं वान्तं तोयं येन। इस सम्बन्ध में श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं कि "इन शब्दों के मूल में वस्तु-स्थिति इस प्रकार है। कैलास के क्षेत्र में पहुँचने पर अत्यधिक शीत से मेघ का बाह्य आवरण बरफ रूप मे जम जाता है, किन्तु उसके भीतर जल भरा रहता है [स्तंम्भितान्तर्जलौघः]। अति शीत प्रदेशों में बरफ जमने का यही प्राकृतिक नियम है। नदी या समुद्र की ऊपरी सतह पर बरफ जम जाती है और उनके नीचे जल भरा रहता है। बाहर से ठोस और भीतर जल से पूर्ण मेघ में सुरबालायें अपने कंगनों में जड़े हुए हीरों की ठकठक चोट से जब छेद कर देती हैं, तो भीतर का जल फूट निकलता है और मेघ का स्वरूप बने-बनाए फौवारे का हो जाता है।"

यन्त्रधारागृहत्वम्—मल्लि० इसका 'यन्त्रेषु धाराः यन्त्रधाराः' इस प्रकार अर्थ करता है, परन्तु इसे तृतीया तत्पु० समास समझना अच्छा है अर्थात् 'यन्त्रैः धाराः यन्त्रधाराः अथवा यन्त्रप्रक्षिप्ता धारा यन्त्रधाराः (इस प्रकार मध्यमपदलोपी समास भी किया जा सकता है) तासां गृहं तस्य भावः तत्त्वम्'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारागृह वह स्नानागार कहलाता है, जिसमें कृत्रिम साधनों से पानी को धाराओं के रूप में गिराए जाने का प्रबन्ध रहता है। यहाँ मेघ को 'यन्त्रधारा-गृह' बताया गया है। सारो० में 'यन्त्रधारागृहम्' पद पर इस प्रकार लिखा गया है—"यन्त्राणि अनेक-सञ्चार-चतुरान्तर्विवरावभासित-शालभञ्जिका-प्रभृतीनि तत्करतलाद्यवयव–प्रवृत्तवारिधाराभिः उपलक्षितं ग्रीष्मोष्म–निषेधकं धनिनां धाम यन्त्रगृहम्।" म० सिं० की व्याख्या यह है—'एकान्तस्थाने ग्रीष्मताप–निवारणाय काष्ठपाषाणेन पुत्तलिकादि-सम्बन्धेन जल-निर्झरणं मेघजलकण-पातनार्थं स्थानं सुखिनां गृहे यन्त्रधारागृहं कथ्यते।'

नेष्यन्ति—√नी द्विकर्मक है। (i) त्वाम्–प्रधान कर्म है और (ii) यन्त्रधारागृहत्वम्–अप्रधान कर्म है।

घर्मलब्धस्य—ग्रीष्म में जल से स्नान करना बहुत रुचिकर होता है और भारत के ग्रीष्म–प्रधान नगरों में लोग पानी को छोड़ना ही नहीं चाहते। ठीक यही बात सुरसुन्दरियों की भी है। वे मेघ को देखकर यथा-तथा उससे फव्वारे का काम लेती हैं और यही चाहती हैं कि गरमी में वे उनसे दूर न हों।

भाययेः—इसका पाठान्तर 'भीषयेः' है, जो कि पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध है। √भी का णिजन्त रूप भाययति होता है, किन्तु यदि भय कर्त्ता से जनित हो तो 'भीस्म्योर्हेतुभये' (१।३।६५) से नित्य आत्मनेपद होकर षुक् अथवा आत्व के आगम से 'भीषयते' अथवा 'भापयते' ये दो रूप बनते हैं। प्रकृत में भयं का कारण कर्त्ता (मेघ) नहीं है, प्रत्युत करण (गर्जितैः) है, अतः 'भाययेः' यही प्रयोग ठीक है। इसीलिए मल्लि० ने कहा है—'अत्र हेतु-भयाभावाद् आत्मनेपदं षुगागमश्च न' इति। सुमति०, सारो० तथा म० सिं० का दिया हुआ 'भापयेः' पाठ भी अशुद्ध है, क्योंकि यहाँ परस्मैपद हो ही नहीं सकता यही बात 'स्मी' धातु के सम्बन्ध में भी घटती है, परन्तु भट्टोजि दीक्षित अपनी वैयाकरण-सिद्धान्त-कौमुदी में—कथं तर्हि विस्मापयंन् विस्मित-मात्मवृत्तौ' ? इस कालिदास के रघुवंश में आये प्रयोग को शुद्ध बनाने का जो प्रयत्न करते हैं, तदनुसार 'भीषयेः' भी यथा–तथा शुद्ध हो सकता है॥६३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं[1] क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य[2] ।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानि[3] स्ववातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ! ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ।।६४।।

अन्वयः—(हे) जलद ! हेमाम्भोज-प्रसवि मानसस्य सलिलम् आददानः ऐरावतस्य क्षण-मुख-पट-प्रीतिम् कुर्वन् (तथा) कल्प-द्रुम-किसलयानि अंशुकानि स्ववातैः धुन्वन् (त्वम्) नानाचेष्टैः ललितैः तं नगेन्द्रम कामम् निर्विशेः ।

पदार्थः—जलद—बादल । हेमाम्भोजप्रसवि—सुनहरे कमलों को पैदा करने वाले । मानसस्य सलिलम्—मानसरोवर के जल को । आददानः—ग्रहण करता हुआ । ऐरावतस्य—ऐरावत हाथी को । क्षणमुखपटप्रीतिं कुर्वन्—क्षण भर के लिए मुख को ढकनेवाले वस्त्र का आनन्द देते हुए । मल्लि० ने क्षण का अर्थ 'जलादानकाले' किया है । कल्पद्रुमकिसलयानि—कल्पवृक्ष की कोंपलों को । अंशुकानि—जो कि महीन (सूक्ष्म) कपड़े हैं; वस्त्ररूप हैं । स्ववातैः—अपनी हवा से । धुन्वन्—हिलाते हुये । नानाचेष्टैः—अनेक प्रकार की चेष्टाओं वाले । ललितैः—विलासों (क्रीडाओं) से । तं नगेन्द्रम्—उस पर्वतराज (कैलास) का । निर्विशेः—आनन्द लेना ।

भाषानुवादः—हे मेघ ! सुनहरे कमलों को पैदा करनेवाले मानसरोवर के जल को ग्रहण करते हुए, ऐरावत को क्षण भर के लिए मुंह ढकने के वस्त्र का आनन्द देते हुए तथा कल्पवृक्ष के नये पत्तेरूपी सूक्ष्म (महीन) वस्त्रों को अपनी हवा से झकझोरते हुये (तुम) नाना प्रकार की चेष्टाओं वाले विलासों से स्वेच्छानुसार उस पर्वतराज (कैलाश) का आनन्द लूटना ।

व्याकरणम्—जलद—जलं ददातीति जलदः । सम्बो० एक० व० । हेमाम्भोजप्रसवि—हेम्नः अम्भोजानि हेमाम्भोजानि (ष० त०) अथवा हेमनिर्मितानि अम्भोजानि (मध्यमपदलोपी स०) हेमाम्भोजानां प्रसवि (ष० तत्पु०) प्रसूते इति प्रसवि (नपुं०) । सारा समास 'सलिलम्' का विशेषण है । आद-

---

१—कामात्, विल्स० । २—ऐरावणस्य, का०पा० । ३—धुन्वन्वातैः सजलपृषतैः (०नयनैः) कल्पवृक्षांशुकानि च्छायाभिन्नस्फटिकविशदं निर्विशेः पर्वतं तम् विल्स० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दानः—आ+√दा, (जु० उभ०, देना)+आन (शानच्) 'आङो दोऽनास्य-विहरणे' इत्यात्मनेपदम् । क्षणमुखपटप्रीतिम्—क्षणे मुखे पटेन (वस्त्रेण) या प्रीतिस्ताम् । कुर्वन्—√कृ (त० उभ०)+अत् (शत्रन्त) प्र० एक० । कल्प-द्रुमकिसलयानि—कल्पद्रुमाणां किसलयानि (षष्ठी तत्पु०) तान्येवांशुकानि (कर्मधा०) । धुन्वन्—√धु, (स्वा० प०, हिलना)+अत् (शत्रन्त), प्र० एक० । नानाचेष्टैः—नाना चेष्टा येषु तैः (ललितैः), ब० व्री० । नगेन्द्रम्—न गच्छतीति, नञ्+√गम्+डः कर्त्तरि, नगानाम् इन्द्रम् । कामम्—अव्यय । निर्विशेः—निर्+√विश् (भ्वा० प०, प्रविष्ट होना)+यास् विधिलिङ् म० पु० एक० ।

विशेषः—जलद—कवि ने कैलास पर्वत को मेघ का सहज मित्र समझा है । मेघ-पर्वत को, कमल-सूर्य की, समुद्र-चन्द्रमा की, मोर-मेघ की और वायु-अग्नि की मित्रता स्वाभाविक ही है । देखिए पूर्वमेघ पद्य १२ 'आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्गय शैलम् ।'

'मानसस्य—देखिए पूर्वमेघ पद्य का 'विशेष' भाग ।

क्षणमुखपटप्रीतिम्—यहाँ 'क्षण' का अर्थ 'क्षणं यावत्' (क्षणभर के लिए) है । सारो० ने इस समास की यह व्याख्या की है–'मुखपटः करिणां वदनाच्छादकं वासः । तेन प्रीतिं तुष्टिमुत्पादयन् ।' मल्लि० ने इसका अर्थ 'जलादानकाले' (जल लेने के समय) किया है । किन्तु श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि हाथी के 'जलादान-काल में' मुख पर कपड़ा डालने की बात ठीक नहीं बैठती, इसलिए क्षण शब्द का अर्थ यहाँ 'समय' न लेकर 'उत्सव' लेना ठीक है, क्योंकि उत्सवों में हाथी को सजाया जाता है और सिर पर चंदोवा डाला जाता है । 'क्षणमुखपट' मे चंदोवा ही अभीष्ट है ।

कामम्—यथेष्टम् । इसे 'कुर्वन्' के साथ भी जोड़ा जा सकता है; इस अवस्था में इसका अर्थ 'इच्छानुसार' है ।

कल्पद्रुम=कल्प-वृक्ष । 'कल्पःसंकल्पितोऽर्थः तस्य द्रुमः वृक्षः । यहाँ जन्य-जनक-भाव सम्बन्ध में षष्ठी हुई । समास का विग्रह है 'कल्पद्रुमाणां किसल-यानि ।' यह वह वृक्ष है, जो सब प्रकार की अभिलाषाओं को पूरा करता है । कल्प-वृक्षों की संख्या पांच है–'पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥' देखिए—अभि० शा० VII. १२—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने ।' और देखिए—उत्तरमेघ पद्य ५ 'आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतम्' तथा पद्य २२. "एकः सूते सकल-मबलामण्डनं कल्पवृक्षः ।"

ललितैः—क्रीड़ाओं (विलासों) से या आमोदों से । 'ललितैः' यहाँ विशेष्य है यद्यपि यह प्रायः विशेषण रहता है ।

इस पद्य के तीसरे पाद में रूपक अलंकार है ॥६४॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना[1]
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनी याभ्रवृन्दम् ॥६५॥

अन्वयः—(हे) कामचारिन् ! प्रणयिनः इव तस्य उत्सङ्गे (कामिनीम् इव) स्रस्त-गङ्गा दुकूलाम् अलकाम् दृष्ट्वा त्वम् पुनः न ज्ञास्यसे इति न; उच्चै-र्विमाना या (अलका) वः काले सलिलोद्गारम् अभ्रवृन्दम् कामिनी मुक्ता-जालग्रथितम् अलकम् इव वहति ।

पदार्थः—कामचारिन्—हे स्वच्छन्द-चारी । प्रणयिनः इव—प्रियतम के जैसे । तस्य—उस (कैलास) के । उत्सङ्गे—(१) उपरिभाग में, (२) गोद में । स्रस्तगंगादुकूलाम्—(१) जिसकी श्वेत साड़ी-सी गंगा खिसक पड़ी है ऐसी (अलका) । (२) जिसकी गंगा-जैसी श्वेत साड़ी गिर पड़ी है (कामिनी) । अलकां दृष्ट्वा—अलका पुरी को देखकर । त्वम् पुनः—तू फिर । न ज्ञास्यसे इति न—नही जान लेगा यह बात नहीं (अपि तु जान ही लेगा) । उच्चैर्विमा-ना—(१) ऊँचे-ऊँचे सात-मंजल भवनोंवाली, (२) मान से रहित । या—जो । (अलका) । वः काले—तुम्हारे समय में, अर्थात् मेघों के आगमन काल में (वर्षा काल में) । सलिलोद्गारम्—पानी (की धारा) छोड़नेवाले । अभ्र-वृन्दम्—बादलों के समूह को । कामिनी—स्त्री । मुक्ताजालग्रथितम्—जिसमें मोतियों की लड़ियाँ गुथी हुई हैं, ऐसे । अलकम् इव—बालों को जैसे । वहति—धारण करती है ।

भाषानुवादः—हे स्वच्छन्द-चारी ! जिस तरह कोई कामिनी, जिसकी गंगा-सी (सफेद) रेशमी साड़ी खिसकी हुई है—प्रिय के उत्संग (गोद) में

१—उच्चैर्विमानैः । विल्स०, सारो, म० सि०, स० ती० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्थित होती है, उसी तरह उस (कैलास) के उत्संग (ऊपर के भाग) में अलका को देखकर-जिससे श्वेत-वस्त्र-सी गंगा गिरी हुई है—तुम (उसे) नहीं जान सकोगे, सो नहीं (अर्थात् जान ही लोगे)—जो (अलका) ऊँचे विमानों (सात-मञ्जिले भवनों) से युक्त हुई तुम्हारे समय में (वर्षा काल में) पानी (की बूंदे) उगलते हुए मेघ-समूह को इस प्रकार धारण करती है जिस तरह विमान—मान-से रहित (प्रणय-कोप त्यागते हुए) कामिनी (अपने) ऊपर मोतियों के समूह से गूंथे हुए बालों को धारण करती है।

व्याकरणम्—काम-चारिन्—कामेन (स्वेच्छया) चरतीति, √चर् (भ्वा० प०) कर्त्रर्थ+इन् (णिनि) कृदन्त। प्रणयिनः—प्रणय+इन्—प्रणयिन् का ष० एक०। उत्संगे—उद्+√सञ्ज घञ् अधिकरणे उत्संगः तस्मिन्। स्रस्तगंगादुकूलाम्—उपमित-समास। (अलका पक्ष में) 'गंगा दुकूलम् इव; (कामिनी-पक्ष में) गंगा इव दुकूलम् स्रस्तं गंगादुकूलं यस्यास्तां तथोक्ताम् (बहुव्री०) स्रस्त—√स्रंस्, (भ्वा आ०) (गिरना)+त (क्त)। दृष्ट्वा—√दृश्, (भ्वा० प०) (देखना)+त्वा(क्त्वा)। ज्ञास्यसे—√ज्ञा, क्र्या० उ०) (जानना) 'अनुपसर्गात्ज्ञः' इति 'कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मनेपदम्' लृट्, म० पु० एक०। उच्चैर्विमाना—(१) (अलका-पक्ष में) उच्चैः उन्नतानि विमानानि यस्यां सा, (२), (कामिनी-पक्ष में) विगतो मानो यस्याः सा (बहुव्री०) और उच्चैः 'वहति' क्रिया का विशेषण। सलिलोद्गारम्—सलिलमुद्गिरतीति तम्। अभ्रवृन्दम्—अभ्राणां (मेघानां) वृन्दम् (समूहः) ष० तत्पु० यह 'वहति' का कर्म है। मुक्ताजालग्रथितम्—मुक्तानां जालं तेन ग्रथितम् (तत्पु०) ग्रथित ग्रन्थ्, क्र्या प०)+त (क्त) अलकम्—जातावेकवचनम्। यहाँ पर एकव० बहुव० के स्थान पर प्रयुक्त है। वहति—√वह्, (भ्वा० प०) उठाना, ले जाना, धारण करना) प्र० पु० एक०।

विशेषः—उत्संग—इसके यहाँ दो अर्थ हैं (१) ऊर्ध्वभाग और (२) ऊरु (जाँघ) 'उत्संगो मुक्तसंयोगे सक्थन्यूर्ध्वतलेऽपि वा' इति मालतीमालायाम् (मल्लि०)। पहला अर्थ ऊर्ध्व-भाग पर्वत के पक्ष में और दूसरा अर्थ ऊरु (जाँघ) कामिनी-पक्ष में लिया गया है। देखिए—उत्तरमेघ पद्य २६ 'उत्संगे वा मलिन-वसने सौम्य निक्षिप्य वीणाम्'।

उच्चैर्विमाना—विल्सन (Wilson), सारो०, म० सिं० आदि ने 'उच्चै-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विमानैः' पाठ दिया है किन्तु 'विमाना' वाला पाठ ठीक है, क्योंकि कवि का अभिप्राय कामिनी से साम्य बताना है और वह 'विमाना' से ही ठीक वैठता है। विमान के लिए देखिए—उत्तरमेघ पद्य ८ 'नेत्रा नीताः सतत-गतिना यद्विमानाग्रभूमिः'। न त्वं दृष्ट्वा ··ज्ञास्यते यहाँ दो नञों से निश्चयात्मक बोध होता है—अर्थात् अवश्य ही जान लेगा। देखिए 'स्मृति-निश्चिसिद्धार्थेषु नञ्-द्वयप्रयोगः' इति मल्लि०।

मुक्ताजालग्रथितम्—मोतियों की माला (लड़ी) से गूंथा (गुम्फित) हुआ। देखिए उत्तरमेघ पद्य ११ 'मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः।

इस पद्य में कैलास की प्रणयी (प्रेमी) से, अलका की कामिनी से, गंगा की श्वेत वस्त्र से, सलिल की मोतियों से और अभ्र-वृन्द की अलकों से, समता दिखाई गई है, इसलिए यहाँ समस्त वस्तु-विषयक उपमा है और वह उत्संग, गंगादुकूल और विमान में श्लेष होने से श्लेषानुप्राणित है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि कैलास 'अनुकूल नायक' है और अलका 'स्वाधीनपतिका' है। एक ही स्त्री पर अनुरक्त पुरुष को 'अनुकूल नायक' और स्वाधीन पति वाली स्त्री को 'स्वाधीनपतिका' नायिका कहते हैं ।।६५।।

—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तरमेघः

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्[1] ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥१॥

अन्वयः—यत्र ललितवनिताः, सचित्राः, सङ्गीताय प्रहतमुरजाः, मणिमयभुवः, अभ्रंलिहाग्राः प्रासादाः विद्युत्वन्तं सेन्द्रचापं, स्निग्धगम्भीरघोषम्, अन्तस्तोयं, तुङ्गं त्वां तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम् ।

पदार्थः—ललितवनिताः—जहाँ सुन्दरियाँ (रह रही हैं) । संगीताय प्रहतमुरजाः—जहाँ संगीत के लिए मृदंग बज रहे हैं । मणिमयभुवः—जहाँ भूमि (फर्श) मणियों की है । अंभ्रलिहाग्राः—जहाँ अग्रभाग-छतें-आकाश को चूम रही हैं । विद्युत्वन्तम्—बिजलियों से युक्त । सेन्द्रचापम्—इन्द्र-धनुष-धारी स्निग्ध-गम्भीर-घोषम्—कर्णप्रिय गम्भीर गर्जनवाले । अन्तस्तोयम्—भीतर जल रखे हुए । तुङ्गम्—ऊँचे । तैः तैः विशेषैः—उन उन विशेष पदार्थों से । तुलयितुम्—समता करने में, टक्कर लेने में । अलम्—समर्थ हैं ।

भाषानुवादः—जहाँ (अलका में) महल ऐसे हैं जिनमें सुन्दरियाँ (रह रही) हैं, चित्र (टंगे हुए) हैं, संगीत के लिए मृदंग बज रहे हैं, भूमि (फर्श) मणियों की (बनी हुई) है तथा छतें आकाश को चूम रही हैं और जो तुमसे—जो बिजली से युक्त, इन्द्र-धनुषधारी, कर्णप्रिय गम्भीर गर्जनवाले, भीतर जल

१—पर्जन्यघोषम् का० वा० पाठक ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा ऊँचे हो, उन-उन पदार्थों द्वारा टक्कर ले सकते हैं (समता करने में पूरे समर्थ हैं) ।

व्याकरणम्—ललित-वनिताः—ललितः वनिताः येषु (ब० व्री०) । सचित्राः—चित्रैः सह वर्तन्ते इति (ब० व्री०) । प्रहतमुरजाः—प्रहताः (ताडिताः) मुरजाः (मृदंगाः) येषु (ब० व्री०) । मणिमयभुवः—मणय एव मणिमयाः भुवः येषु (ब० व्री०), मणिमयाः मणि+मयट् (स्वरूपार्थ) । अभ्रंलिहाग्राः—अभ्रं लिहन्ति इति अभ्रंलिहानि अग्राणि (शिखराणि) येषां ते (ब० व्री०); अभ्र+मुंम्√लिह् अदा० उभ० (चाटना)+खश् (अ)+अग्र । लिह् धातु के पूर्व यदि 'वह' और 'अभ्र' आ जाएँ, तो इसके साथ खश् (अ) प्रत्यय लगता है। विद्युत्वन्तम्—विद्युतोऽस्य सन्तीति । विद्युत्+वत् (मतुप् possessive particle) विद्युत शब्द तान्त होने से 'तसौ मत्वर्थे' से त् को द् न हुआ, विद्युत्वान्, ही रहा, विद्युद्वान् नहीं बना । सेन्द्रचापम्—इन्द्रस्य चापेन (धनुषा) सहितः सेन्द्रचापः ताम् (ब० व्री०) । स्निग्ध-गम्भीर-घोषम्—स्निग्धः (श्राव्यः) गम्भीरो घोषो (गर्जितं) यस्य तम् (ब० व्री०) अन्तस्तोयम्—अन्तर्गतं तोयं (मध्यमपदलोपी समास) यस्य तम् (ब० व्री०) तुलयितुम्—तुलां कर्तुम्√तुला+णिच् (करोत्यर्थे)+तुमुन् (नाम-धातु) । अलम् (अव्यय) । "अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्" इत्यमरः ।

विशेष:—विल्सन (Wilson) महोदय कहते हैं—"अब हम काव्य के उस भौगोलिक भाग से विदा होते हैं, जो कालिदास ने बिलकुल सही-सही अंकित किया है और कथा के उस भाग में पदार्पण करते हैं, जिसका सम्बन्ध यक्ष और उसके निवास-गृह से है।"

इस पद्य में तथा आगे के १३ पद्यों में अलकापुरी का वर्णन है। इन पद्यों का क्रम मल्लिनाथ द्वारा दिए गए क्रम से कुछ भिन्न है। इनमें से बहुत से पद्यों की तुलना कुमार० VI ३७–४६ में औषधिप्रस्थ के वर्णन से की जा सकती है। अलका के ऊँचे-ऊँचे महलों की तुलना ऊँचे मेघ के साथ इस कारण की गई है कि महलों की प्रत्येक विशेषता मेघ में भी पाई जाती है, जैसे—महलों की सुन्दरियाँ बिजलियाँ-सी, चित्र इन्द्र-धनुष-से, मृदंगों की ध्वनि गर्जन-सी, एवं मणियों के फर्श जल जैसे हैं। यहाँ उपमेय 'प्रसादाः' बहु० के सब विशेषण प्र० बहुवचनान्त है और उपमान 'त्वाम्' द्वि० एक०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सब विशेषण द्वि० एकबचनान्त हैं। सादृश्य के कारण यहाँ 'पूर्णोपमा' अलंकार है। यद्यपि मङ्गलों और मेघ में धर्म भिन्न-भिन्न हैं, तथपि उनका बिम्बप्रतिबिम्बभाव—सादृश्य में पर्यवसान—है। एक धर्म न होने पर भी विभिन्न धर्मों का यदि सादृश्य में पर्यवसान हो, तो भी उपमा ही होती है।

संगीत—'नृत्यं वाद्यं तथा गीतं त्रयं सङ्गीतमुच्यते'—सङ्गीतरत्नाकर। संगीत में नृत्य, वाद्य और गीत तीनों का मेल रहता है।

प्रहतमुरजाः—मुरज का अर्थ मृदंग (नगाड़ा) है। इस प्रकार के भाव के लिए देखिए–कुमा० VI ४०–'शिखरासक्तमेघानां व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनाम्। अनुर्गजितसंदिग्धाः करणैः मुरजस्वनाः।'

स्निग्धगम्भीरघोषम्—यहाँ 'स्निग्ध' का अर्थ कर्णप्रिय–कानों को सुन्दर लगने वाला–है और 'गम्भीर' का अर्थ गहरा है, देखिए–रघु० I. ३६ 'स्निग्ध-गम्भीरनिर्घोषं (पयोवाह)'। का० बा० पाठक ने इसके स्थान पर 'स्निग्धपर्जन्य-घोषम्' यह पाठ दिया है, जिसका अर्थ मेघ की गड़गड़ाहटवाला है। श्लोक में दिया हुआ पाठ अपेक्षा-कृत अच्छा है, क्योंकि मेघ को संबोधन करके 'हे मेघ! मेघ के शब्द वाले तुझ से'—यह अर्थ ठीक नहीं बैठता है।

अभ्रंलिहाग्राः—इसके लिए देखिए—नैषध० VI. ५७ 'प्रासादमभ्रङ्कष-माससाद' ॥१॥

हस्ते लीलाकमलमलके[१] बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः[२]।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते[३] च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्॥२॥

अन्वयः—यत्र वधूनां हस्ते लीलाकमलम्, अलके बालकुन्दानुविद्धम्, आनने लोध्र-प्रसव-रजसा पाण्डुतां नीता श्रीः, चूडापाशे नवकुरबकम्, कर्णे चारु शिरीषम्, सीमन्ते च त्वदुपगमजं नीपम् (अस्ति)।

पदार्थः—लीलाकमलम्—खेलने के लिए कमल है। अलके—बालों में। बालकुन्दानुविद्धम्—ताजे कुन्द (चमेली) के फूलों का गंफन–गुंथाव—है।

१—अलकं–सर० ती०, वि०, सारो०, म० सि०। २—आननश्रीः का० पा०। ३—सीमन्तेऽपि वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आनने—मुख पर। लोध्रप्रसव-रजसा—(शीतकाल में खिलने वाले) लोध्र पुष्पों की धूलि से। पाण्डुतां नीता—सफेद बनाई हुई। श्रीः—कान्ति है। चूडा-पाशे—केशपाश—बालों की गुंथी हुई चोटी—में। नवकुरवकम्—ताजे (वसन्त में खिलने वाले) कुरबक के फूल हैं। कर्णे—कानों में। चारु—सुन्दर। शिरीषम्—ग्रीष्म में खिलने वाला इस नाम का फूल है। सीमन्ते—माँग (parting line of hair) में। त्वदुपगमजम्—तेरे आने पर खिलने वाला। नीपम्—(वर्षा-काल में विकसित होने वाला) कदम्ब का पुष्प है।

भाषानुवादः—जहाँ (अलका में) वधुओं के हाथों में क्रीडा के लिए कमल है, बालों में ताजे कुन्द के फूल गुंथे हुए हैं, मुख पर लोध्र-पुष्प की धूलि से गौर वर्ण बनी हुई कान्ति है, केशपाश (जूड़े) में ताजे कुरबक के फूल हैं, कानों में सुन्दर शिरीषपुष्प है और माँग में तुम्हारे आने पर खिलने वाला नीप (कदम्ब) का फूल है।

व्याकरणम्—लीलाकमलम्—लीलायै कमलम् (चतुर्थी तत्पु०) अलके—अलकेषु, जातावेकवचनम्। यहाँ बहु० के स्थान पर एक वचन प्रयुक्त हुआ है। बालकुन्दानुविद्धम्—बालकुन्दानाम् अनुविद्धम्। अनुविद्धम्—अनु+√विध् तुदा० (बींधना)+त (क्त) 'नपुंसके भावे क्तः' इससे नपुंसक लिंग। यहाँ अनुविद्ध का संज्ञा के रूप में प्रयोग हुआ है; अर्थात् अनुवि-द्धम्—अनुवेधः, ग्रन्थनम्। लोध्रप्रसवरजसा—लोध्रप्रसवानां रजसा (ष० तत्पु०)। प्रसूयते इति प्रसवः—प्र—√सू,अदा० आ० (पैदा करना)+अ। नवकुरबकम्—नवं च तत् कुरबकम् (कर्मधा०)। सीमन्ते—सीमायाः सीम्नः वा अन्ते—सीमन्+अन्त। यहाँ 'माँग' के अर्थ में 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इस वार्त्तिक (नियम) से दीर्घ नहीं हुआ। 'सीमन्त' शकन्ध्वादि गण का शब्द है। 'माँग' से भिन्न अर्थ में 'सीमन्त' न होकर 'सीमान्त' हो जायगा। त्वदुपगमजम्—तव+उप+√गम्+अ+√जन्+अ (ड) तव उपगमः तस्मात् जातम् (कर्तरि)।

विशेषः—इस पद्य में भिन्न-भिन्न ऋतुओं में खिलने वाले फूलों का वर्णन है; जैसे—कमल, कुन्द, लोध्र, कुरवक, शिरीष, और कदम्ब—ये पुष्प क्रमशः शरद् (Autumn), हेमन्त (Winter), शिशिर (Cold), वसन्त (Spring), ग्रीष्म (Summer) और वर्षा (Rains)—इन भिन्न-भिन्न ऋतुओं में खिलते हैं, अतः अलका में छः ऋतुएँ सदा रहती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लीलाकमलम्—देखिये–कुमार० VI. ८४ 'लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती'। और देखिए–रघु० VI. १३ 'कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालं··लीलारविन्दं भ्रमयांचकार।'

अलके बालकुन्दानुविद्धम्—'अलके' के स्थान में पाठान्तर 'अलकं' है। इस अवस्था में 'बालकुन्दानुविद्धम्' 'अलकं' का विशेषण होकर इस प्रकार अर्थ होगा—'बाल ताजे कुन्द (चमेली) के फूलों से गुंथे हुए हैं'। इसके विपरीत 'अलके' पाठ होने पर 'अनविद्धम्' विशेष्य पद है। हमें 'अलके' वाला पाठ ही अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि हस्त, चूडापाश आदि सब शब्द सप्तम्यन्त ही हैं, 'अलकम्' प्रथमान्त शब्द रखकर 'प्रक्रमभंग' दोष हो जाता है।

लोध्रप्रसवरजसा—लोध्रपुष्प की धूलि मुख पर लगाने के लिए चूर्ण का काम देती थी, देखिए–कुमा० VII. ९। इससे पता चलता है कि कालिदास के समय में भी स्त्रियों में मुख पर 'पाउडर' लगाने का रिवाज था। होठों में लाली भी लगाई जाती थी, देखिए कुमार० V—'विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः।' लोगों की यह धारणा कि भारतीय नारियों में 'पाउडर' और लिपस्टिक' का प्रयोग पश्चिम की नकल है सर्वथा गलत है।

आनने श्रीः—इसका पाठान्तर 'आननश्रीः' है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—'मुख की कान्ति लोध्र पुष्प की धूलि से सफेद बनाई हुई है', किन्तु 'आनने श्रीः' वाला सप्तम्यन्त पाठ ही क्रमप्राप्त होने से उपयुक्त है। देखिए–विक्रमो० I. प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रियः।'

चूडापाशे—केश-वाचक के साथ प्रयुक्त 'पाश' शब्द का अर्थ 'गुंथा हुआ बालों का समूह, होता है। देखिए अमरकोश–'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे'।

नवकुरबकम्—कुरबक वसन्त में खिलने वाला गुलाबी रंग का पुष्प है, देखिए विक्रमो० 'अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरबकं श्यामं द्वयोः भागयोः,' और देखिए—माल० III. ५ 'प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामावदातारुणम्।'

कर्णे शिरीषम्—शिरीषपुष्प कानों में डाले जाते हैं, देखिए अभि० शा० I. ४—'अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि'। यह पुष्प सुकुमारता के लिए प्रसिद्ध है ॥२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः [2]पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
[3]नित्यज्योत्स्नाप्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥३॥

अन्वयः—यत्र पादपाः नित्यपुष्पाः (अत एव) उन्मत्त-भ्रमर-मुखराः, नलिन्यः नित्यपद्माः (अत एव) हंसश्रेणी-रचित-रशनाः, भवनशिखिनः नित्यभास्वत्कलापाः (अत एव) केकोत्कण्ठाः, प्रदोषाः नित्यज्योत्स्नाप्रतिहततमोवृत्तिरम्याः (च सन्ति) ।

पदार्थः—पादपाः—वृक्ष । नित्यपुष्पाः—सदा फूलों से युक्त । उन्मत्त··· मुखराः = मस्त भौरों से गुंजायमान । नलिन्यः—कमल-लतायें (या बावलियाँ) । नित्यपद्माः—सदा कमलों वाली । हँसश्रेणी-रचित-रसनाः—हंसों की पंक्तियों की मेखला वाँधे अर्थात् हँसों की पंक्तियों से घिरी हुई । भवन-शिखिनः—पालतू मोर । नित्यभास्वत्कलापाः—सदा चमकते हुए पंखों वाले । केकोत्कण्ठाः—शब्द करते समय ऊपर गर्दन किये हुए । प्रदोषाः—साँझ, रातें । नित्यज्योत्स्नाः—सदा चाँदनीवाली । प्रतिहततमोवृत्ति रम्याः—अन्धकार के प्रसार के दूर हो जाने के कारण सुन्दर ।

भाषानुवादः—जहाँ (अलका में) वृक्ष सदा पुष्पों से युक्त (अतएव) मतवाले भौरों से गुंजायमान हैं, कमल-लतायें (या बावलियाँ) नित्य कमलों वाली (अतएव) हंसों की पंक्तियों की मेखला (तागड़ी) बाँधे हुए हैं; चमकते हुए पंखोंवाले पालतू मोर शब्द करते समय गर्दन ऊपर उठाये रहते हैं, और रातें अन्धकार के दूर होने के कारण छिटकी हुई चाँदनी वाली (अतएव) परम सुहावनी रहती हैं ।

व्याकरणम्—पादपाः—पादैः पिबन्ति इति वृक्षाः । नित्यपुष्पाः—नित्यानि पुष्पाणि येषां ते (ब० व्री०) । उन्मत्तभ्रमरमुखराः—उन्मत्तैः भ्रमरैः मुखराः (तृ०तत्पु०) मुखर-मुख+र (मत्वर्थ) निन्दितं मुखमस्य, मुखशब्दोऽत्र लक्षणया वचनपरः' कोलाहलयुक्त वाचाल, गुंजायमान । नलिन्यः—नल+ इन्+ई, प्र० बहु० । नित्यपद्माः—नित्यानि पद्मानि यासां ताः (ब० व्री०) हंसश्रेणीरचितरशनाः हंसानां श्रेणीभिः रचिताः रशना यासां ताः (ब० व्री०) ।

१—यस्यां मत्त० सारो० । २—निकराः का० बा० पाठक । ३—०नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहत० मल्लि०, सु० वि०, म० सि०, स० ती० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवनशिखिन: भवने भवा: शिखिन: (मध्यमपदलोपीकर्म०)। नित्यंभास्वत्कलापा: —नित्यं भास्वन्त: कलापा: (बर्हाणि) येषां ते (ब० व्री०) । केकोत्कण्ठा:— केकासु उत् ऊर्ध्वं कण्ठा येषां ते—उद्ग्रीवा: (ब० व्री०) प्रदोषा:—प्रकृष्टा: दोषा: आसु (रातें, रात्रि का प्रारम्भ) । नित्यज्योत्स्ना:—नित्या: ज्योत्स्ना: येषां ते (ब० व्री०) । प्रतिहततमोवृत्तिरम्या:—प्रतिहता तमसां वृत्ति: (प्रम ॰:) येषु ते (ब० व्री०), ते च रम्या: च (कर्मधा०) ।

विशेष:—उन्मत्तभ्रमरमुखरा:—भावसाम्य के लिए देखिए रघु० IX १९–'विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषका:। मधुलिहां मधुदान-विशारदा: कुरबका स्वकारणतां ययु: ॥' इसका पाठान्तर '०भ्रमरनिकरा:' है। यह पाठ अच्छा नहीं, क्योंकि इस अवस्था में व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हो जाता है (उन्मत्तभ्रमराणां निकरा येषु) ।

नित्यभास्वत्कलापा:—इससे अलका के मोरों का सदैव प्रसन्न- युवावस्था में रहना प्रकट होता है।

हंसश्रेणीरचितरशना: —यहाँ नलिनियों में नायिकात्व गम्य है, किन्तु उनको घेरे हुए हंसों की पंक्ति में रशनात्व (तागड़ी) का आरोप वाच्य है, इसलिए इसमें एकदेशविवर्ति रूपक अलंकार है। देखिए—विक्र० IV, २४ 'तरंग-भ्रूभंगा क्षुभितविहगश्रेणिरशना' ; पूर्वमेघ २८ 'विहग-श्रेणि-काञ्चीगुणाया:' और ऋतु० III. २४.

नित्यज्योत्स्ना:—शिव जी सिर पर चाँद की कला धारण किए हुए अलका के उद्यान में रहते हैं, अत: वहाँ रातें सदा चाँदनी होती हैं । देखिए–पूर्वमेघ– 'गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिका-धौतहर्म्या ।'

प्रतिहततमोवृत्तिरम्या:—इससे यह विदित होता है कि अलका में रात्रि को सर्वदा प्रकाश ही रहता है। इसलिए वहाँ कृष्णपक्ष और अमावस्या होते ही नहीं, सदा शुक्लपक्ष ही रहता है ॥३॥

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्ताप: कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।
[1]नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद् विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु[2]वयो यौवनादन्यदस्ति ॥४॥

१—नाप्यन्यत्र, का० बा० पाठक । २—न खलु च, का० वा० पाठक ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—यत्र वित्तेशानाम् नयन-सलिलम् आनन्दोत्थम् (अस्ति) अन्यैः निमित्तैः न, इष्ट-संयोगसाध्यात् कुसुमशरजात् (तापात्) अन्यः तापः न (अस्ति); प्रणयकलहात् अन्यस्मात् विप्रयोगोपपत्तिः अपि न (अस्ति)। यौवनात् अन्यत् वयः खलु न अस्ति।

पदार्थः—वित्तेशानाम्=यक्षों का। नयनसलिलम्=आँसू। आनन्दोत्थम्=आनन्द से पैदा हुए। इष्ट-संयोग-साध्यात्=प्रियजनों के समागम से दूर हो जाने—मिटाए जानेवाले। कुसुमशरजात्=कामदेव से उत्पन्न हुए (ताप से) प्रणय-कलहात् अन्यस्मात्=प्रणय-कलह (Love quarrel) से अतिरिक्त। विप्रयोगोपपत्तिः—विरह की प्राप्ति। यौवनात् अन्यत्=यौवन (जवानी) से भिन्न दूसरी। वयः+अवस्था (age)। अर्थात् वृद्धावस्था।

भाषानुवादः—जहाँ (अलका में) यक्षों के आँसू आनन्द के कारण गिरते हैं, और कारण से नहीं, प्रिय-जन के समागम से मिट जानेवाले काम के ताप के अतिरिक्त अन्य कोई ताप (क्लेश) नहीं; प्रणय-कलह (love quarrel) के सिवाय विरह-प्राप्ति का अन्य कोई कारण नहीं, और यौवन में भिन्न (जीवन की) कोई अवस्था नहीं।

व्याकरणम्—वित्तेशानम्=वित्तस्य ईशः (ष० तत्पु०) वित्तेशः तेषाम् (यक्षों का) 'वित्ताधिपः कुबेरः स्यात्प्रभौ धनिकयक्षयोः' इति शब्दार्णवः। आनन्दोत्थम्=आनन्दादुत्तिष्ठतीति—आनन्द+उद्+√स्था=क (कर्तरि) उपपद-तत्पु०. नयनसलिलम्—नयनयोः सलिलम् (ष० तत्पु०)। इष्टसंयोग-साध्यात्=इष्टेन संयोगः इष्टसंयोगः (तृ० तत्पु०) (तेन साध्यः) (तृ० तत्पु०) तस्मात्। कुसुमशरजात्=कुसुमानि एव शराः (क० धा०) यस्य सः कुसुमशरः (ब० व्री०) कामदेवः तस्मात् जातः कुसुमशरजः कुसुमशर+√जन्+डः (कर्तरि भूते) प्रणयकलहात्=प्रणयस्य कलहः (ष० तत्पु०) तस्मात्। विप्रयो-गोपपत्तिः=विप्रयोगस्य उपपत्तिः (प्राप्तिः) (ष० तत्पु०)। यौवनात्=यूनः भावः तस्मात्, युवन्+अण्। वयः=वयस् (नपुं०) प्र० एक०।

विशेषः—आनन्दोत्थम्=आँसू न केवल दुःख के कारण ही, प्रत्युत आनन्द के कारण भी गिरते हैं। कहने का भाव यह है कि अलका में रहने वाले व्यक्तियों की आँखों में आँसू दिखलाई देते थे तो आनन्द के ही कारण, न कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दुख के कारण, क्योंकि दुख नाम की तो वहाँ कोई वस्तु ही नहीं होती। वहाँ सदा सुख का ही साम्राज्य है।

इष्ट-संयोग-साध्यात् कुसुमशर०—अलका-निवासियों ने कभी ताप (ज्वर, दुख) जाना ही नहीं, परन्तु यदि यह कभी होता भी है, तो उसका कारण काम ही होता है, अन्य नहीं। साथ ही इसका इलाज भी हो जाता है और वह है प्रेमिकाओं का प्रिय-जन से समागम-मेल। कामदेव के धनुष की डण्डी तो गन्ने से बनी होती है, और डोरी काले-काले भौरों की श्रेणी से। धनुष पर रखकर छोड़े जाने वाले बाण फूलों के होते हैं जिनके नाम ये हैं—'अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः। इसीलिए कामदेव को 'पञ्चबाण' या कुसुमेषु भी कहते हैं। कामदेव के बाणों की मार के लिए देखिए—अ० शाकु० III. ३. भगवन्कुसुमायुध.........तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु। विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमबाणान्वज्रसारीकरोषि ॥'

विप्रयोगोपपत्तिः—विरह की प्राप्ति। विप्रयोग के लिए देखिए—पू० मेघ० ९ 'सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।'

इस पद्य में वर्णित अलका के उत्कृष्ट जीवन की तुलना कुमार० IV. ४४ से देखिए—'यौवनान्तं वयो यस्मिन्नान्तकः कुसुमायुधात्। रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा संज्ञाविपर्ययः ॥'

इस पद्य में 'परिसंख्या' अलंकार है। परिसंख्या उसे कहते हैं, जहाँ किसी बात को बताकर वैसे-जैसे अन्य का प्रतिषेध किया जाय, जैसे यहाँ आनन्द के आँसुओं का वर्णन करके वैसे-जैसे दुख के आँसुओं का प्रतिषेध किया गया है। प्रतिषेध-शव्द होने के कारण ऐसी परिसंख्या शाब्दी परिसंख्या कहलाती है ॥४॥

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचि[1]तान्युत्तमस्त्रीसहायाः।
आसेवन्ते मधु रतिफलं[2]कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु[3]शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥५॥

१—रचनानि—का० बा० पाठक। २—रतिरसं-विल्स०। ३—मधुरं का० बा० पाठक०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—यस्यां यक्षाः उत्तमस्त्रीसहायाः (सन्तः) सितमणिमयानि, ज्योतिश्छाया-कुसुम-रचितानि हर्म्यस्थलानि एत्य त्वद्गम्भीर-ध्वनिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु (सत्सु) कल्पवृक्षप्रसूतं रतिफलं मधु आसेवन्ते।

पदार्थः—उत्तमस्त्रीसहायाः=सुन्दर रमणियों के साथ। सितमणिमयानि सफेद मणियों-स्फटिकों-वाले। ज्योतिश्छाया-कुसुम-रचितानि=तारों के प्रति-विम्ब-रूपी-फूलों से विभूषित। हर्म्यस्थलानि=महलों की अटारियों में। एत्य=आकर। त्वद्गम्भीरध्वनिषु=तुम्हारे जैसे गम्भीर शब्द वाले। पुष्करेषु =नगाड़ों के। शनकैः=धीमे-धीमे। आहतेषु=बजाए जाने पर। कल्पवृक्ष-प्रसूतम्=कल्पवृक्ष से उत्पन्न हुई। रतिफलं मधु=रतिफल (नाम की) मदिरा का। आसेवन्ते=सेवन करते हैं।

भाषानुवादः—जिस (अलका) में यक्ष सुन्दर रमणियों के साथ सफेद मणियों स्फटिकों-के बने तथा तारों के प्रतिबिम्बों-रूपी फूलों से विभूषित हुए महलों की अटारियों में जाकर तुम्हारे-जैसे गम्भीर शब्दवाले मृदंगों (नगाड़ों) के धीमे-धीमे बजने पर, कल्पवृक्ष से निकली हुई 'रतिफल' नाम की (कामोद्-दीपक) मदिरा का सेवन करते हैं।

व्याकरणम्—उत्तम-स्त्रीसहायाः=उत्तमाः स्त्रियः सहायाः येषां ते (ब० व्री०)। सितमणिमयानि=सितमणयः एव सित० सितमणि (स्फटिकमणिः चन्द्रकान्तमणिः वा)+मयट् स्वरूपार्थे द्वि० बहु०। यह 'हर्म्यस्थलानि' का विशेषण है। ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि=ज्योतिषां (तारकाणां) छायाः (प्रतिविम्वानि) एव कुसुमानि (क० धा०) तैः रचितानि (परिष्कृतानि) तृ० तत्पु०। हर्म्यस्थलानि=हर्म्याणां स्थलानि (ष० तत्पु०) एत्य=आ√इ, अदा० प०, (जाना)+ल्यप्। त्वद्गम्भीरध्वनिषु=तव गम्भीरध्वनिः इव ध्वनिः येषां (ब० व्री०) तेषु। शनकैः—मन्दम् (अव्यय)। आहतेषु=आ+√हन् अदा० प० (मारना)+त (क्त), स० बहु० (सत् सप्तमी०)। कल्पवृक्षप्रसूतम् =कल्पवृक्षात् प्रसूतम्। प्रसूतम्—प्र०+√सू (पैदा होना) अदा० दिवा० आ०+त (क्त। रतिफलम्=रतिः फलं (परिणामः) यस्य तत् (ब० व्री०)। आसेवन्ते=आ+सेव्, भ्वा० आ० (सेवन करना, लट् प्र० पु० बहु०)।

विशेषः—सितमणिमयानि-सितमणि का अर्थ सफेद मणि होता है। इससे या तो स्फटिक (crystal) लिया जा सकता है अथवा चन्द्रकान्त। पहले अर्थ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अनुसार 'हर्म्यस्थल' स्फटिकमणि (बिल्लौर) के बने हुए थे और दूसरे अर्थ के अनुसार वे चन्द्रकान्तमणि (moonstone-gem)से निर्मित थे। देखिए— कुमार० VI–४२ 'यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु। ज्योतिषां प्रतिबिम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम् ॥'

ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि—स्फटिकमणि अथवा चन्द्रकान्तमणि से बने हुए महलों की अटारियों में प्रतिबिम्बित हुए तारा-गण विकसित फूलों के समान प्रतीत होते थे। 'रचितानि' का अर्थ मल्लि० के अनुसार 'परिष्कृतानि' है। इसका पाठान्तर 'रचनानि' है जिसका अर्थ 'जहाँ तारों के प्रतिबिम्बों से फूलों की रचना हो रखी है'।

हर्म्यस्थलानि—यहाँ 'स्थल' के भी दो अर्थ किये जा सकते हैं। १.(महलों के) भूमि-भाग, फर्श अथवा २ (महलों की) अटारियाँ (terraces)। इनमें से दूसरा अर्थ ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि ऊँची-ऊँची अटारियों पर ही तारागण का प्रतिबिम्ब पड़ना स्वाभाविक है।

त्वद्गम्भीरध्वनिषु पुष्करेषु आहतेषु—यहाँ पुष्कर शब्द नृत्य और गीत का भी उपलक्षक है अर्थात् अटारियों में संगीत के साथ पानोत्सव भी मनाया जाता है।

शनकैः—यह साभिप्राय शब्द है। एक टीकाकार ने इसका अभिप्राय यह कहा है—'शृङ्गाराङ्गत्वात् पानगोष्ठ्यां कठोरवादित्वं नोपयुज्यते' इति भावः अर्थात् पानगोष्ठी (drinking symposium) के समय गीत और नृत्य के साथ-साथ मृदंग या तबला भी धीमे-धीमे बजाया जाता है, क्योंकि शृंगार रस कोमल भावों में गिना जाता है। इसमें गीत और वाद्य की कठोरता नहीं होनी चाहिए, अन्यथा इसकी कोमलता नष्ट हो जाती है। पानगोष्ठी में 'पुष्कर' इसी कारण वहाँ 'शनकैः' बजाए जाते हैं।

कल्पवृक्षप्रसूतम्—कल्पवृक्ष एक स्वर्गीय वृक्ष है, जिससे जो चाहो प्राप्त हो जाता है। देखिए—उत्तरमेघ १४ 'एकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।'

रतिफलम्—यह एक विशेष प्रकार की मदिरा का नाम है, जो कामोद्दीपक होती है। इसका पाठान्तर 'रतिरस' हैं, इसका अर्थ है—रति (काल) में जिससे रस-स्वाद-आता है, (रतौ रसो यस्मात्) ॥५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
मन्दाराणामनुतटरुहां[1] छायया वारितोष्णाः ।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥६॥

अन्वयः—यत्र अमर-प्रार्थिताः कन्याः मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः मरुद्भिः सेव्यमानाः, अनुतटरुहां मन्दाराणां छायया वारितोष्णाः (सत्यः), कनकसिकता-मुष्टि-निक्षेपगूढैः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते ।

पदार्थः—अमरप्रार्थिताः=देवताओं द्वारा (विवाहार्थ) चाही जानेवाली । मन्दाकिन्याः=गंगा के । सलिलशिशिरैः=जल से शीतल बने हुए । मरुद्भिः= पवनों से । सेव्यमानाः=सेवा की गई, सेवित । अनुतटरुहाम्=किनारों पर स्थित । मन्दाराणाम्=मन्दार वृक्षों की । छायया=छाया से । वारितोष्णाः= जिनकी धूप रोक दी गई है । कनकसिकता-मुष्टि-निक्षेपगूढैः=सुनहरी रेत में मुट्ठी रखकर छिपाई गई । अन्वेष्टव्यैः=खोजे जाने योग्य । मणिभिः संक्रीडन्ते =मणियों से खेलती हैं ।

भाषानुवाद:—जहाँ (अलका में) गंगा के जल से शीतल (बने) पवन द्वारा सेवित तथा देवताओं द्वारा (विवाहार्थ) चाही जाने वाली कन्याएँ—जिन पर धूप किनारों पर स्थित मन्दार वृक्षों की छाया से रोकी रहती है—सुनहरी रेत में मुट्ठी रखकर छिपायी (तथा पीछे) खोज कर निकाले जानेवाली मणियों द्वारा खेलती हैं ।

व्याकरणम्—अमर-प्रार्थिताः=अमरैः प्रार्थिताः । प्रार्थित—प्र+√अर्थ्, चुरा० आ० (मांगना)+अ (क्त) । मन्दाकिन्याः=मन्दम् अङ्कितुं (बहना) शीलमस्याः । सलिलशिशिरैः—सलिलेन शिशिरैः (तृ० तत्पु०) । सेव्यमानाः— √सेव्, भ्वा० आ० (सेवा करना)+मान (शानच् कर्मवाच्य) । अनुतटरुहाम् =तटेषु इति अनुतटम्; अनुतटं रोहन्ति इति अनुतटरुहः, अनु+तट+√रुह् +क्विप् । वारितोष्णाः=वारितः उष्णः यासां ताः (ब०व्री०) । कनकसिकता-मुष्टि०=कनकस्य सिकतासु मुष्टिभिः निक्षेपेण गूढैः । अन्वेष्टव्यैः=अनु+√ इष् तुदा० प० (जाना)+तव्य (विधि कृ०) । संक्रीडन्ते=सम्+√क्रीड्,

---

१—तटवनरुहां–का० बा० पाठक ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भ्वा०) प० (खेलना) लट्, प्र० पु० बहु०। सम् उपसर्ग के योग में √क्रीड् आत्मनेपद हुआ।

विशेषः—अमरप्रार्थिताः—देवताओं द्वारा विवाहार्थ चाही हुई। इससे यह ध्वनि निकलती है कि यक्ष कन्यायें इतनी सुन्दर हुआ करती हैं कि देवता तक उनसे विवाह के लिए तरसते हैं।

मन्दाकिन्याः सलिल०—देखिए, विक्रमो० VI तत्र खलु मन्दाकिन्याः पुलिनेषु गता सिकतापर्वत-केलीभिः क्रीडन्ती विद्याधरदारिका उदयवती नाम तेन राजर्षिणा निदिध्यासितेति कुपितोर्वशो।' मन्दाकिनी—यह गंगा का नाम है। गंगा की उस धारा का नाम मन्दाकिनी है, जो केदारनाथ में से होकर बहती है। बुन्देलखण्ड में चित्रकूट पर्वत के पास राम और सीता का निवास-स्थान था वहाँ बहनेवाली नदी भी मन्दाकिनी कहलाती है। गंगा को जाह्नवी, जह्नु तनया, भी कहते हैं। देखिए—पूर्वमेघ० ५२ का 'विशेष' भाग।

अनुतटरुहाम्—इसका पाठान्तर 'तटवनरुहाम्' है जिसका अर्थ 'मन्दाकिनी के किनारों के वनों में स्थित' है। दोनों पाठों में कोई 'विशेष' अर्थ-भेद नहीं है।

मन्दाराणाम्—मन्दार पाँच प्रकार के वृक्षों में से एक वृक्ष है। अमरकोश में इनके नाम ये हैं—पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्॥' देखिए—कुमार० VI ५ 'आप्लुतास्तीरमन्दार-कुसुमोत्कीरवीचिषु।'

कनक-सिकता-मुष्टि०—इसमें उस दैशिक खेल का वर्णन है, जिसमें कुछ यक्ष-कन्याएँ तो सुनहरी रेत के ढेर बनाकर उनमें से किसी एक ढेर में रत्नों या मणियों को मुट्ठी में रखकर छिपा देती हैं और दूसरी यक्ष-कन्याएँ छिपाए गए रत्नों या मणियों को ढूंढ निकालती हैं। इसे 'गूढमणि' या 'गुप्तमणि' भी कहते हैं। यह एक दैशिक क्रीडा है। मणि के स्थान में अन्य वस्तु को भी छिपाया जा सकता है। देखिए शब्दार्णव—'रत्नादिभिर्वालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्मभिः। कुमारीभिः कृता क्रीडा नाम्ना गुप्तमणिः स्मृता॥ रासक्रीडा गूढमणिर्गुप्तकेलिः पलायनम्। पिच्छकन्दुकदण्डाद्यैःस्मृता दैशिक-केलयः।' 'कनकसिकता' का अभिप्राय उस रेत से है, जिसमें सोने की कणिकायें हैं। देखिए—कुमार० 'मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिम-पुत्रकैश्च'। 'सिकता' शब्द बहु० में ही प्रयुक्त होता है॥६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां[१]
क्षौमं [२]रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि[३] प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥७॥

अन्वयः—यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवी-बन्धोच्छ्वसित-शिथिलं क्षौमं रागात् आक्षिपत्सु (सत्सु) ह्रीमूढानां बिम्बाधराणां चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुङ्गान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखं प्राप्य अपि विफलप्रेरणा भवति ।

पदार्थः—अनिभृतकरेषु = चंचल–शरारती–हाथों वाले । प्रियेषु = प्रियतमों द्वारा । नीवीबन्धोच्छ्वसित-शिथिलम् = गाँठ खोल देने से ढीले पड़े हुए । क्षौमम् = रेशमी वस्त्र (साड़ी) के । रागात् = प्रेम के कारण । आक्षिपत्सु = हटाने पर । ह्रीमूढानाम् = लज्जा से मरी-सी, अत्यन्त लज्जित । बिम्बाधराणाम् = बिम्ब फल के समान होठोंवाली सुन्दरियों की । चूर्णमुष्टिः—चूर्ण (powder) की मुट्ठी । अर्चिस्तुङ्गान् = ऊँची किरणों वाले । रत्न-प्रदीपान् प्राप्य अपि = रत्नों के दीपकों को पहुँच कर भी । विफलप्रेरणा भवति = निष्फल–बेकार-चली जाती है ।

भाषानुवादः—जहाँ (अलका में) चंचल हाथों वाले प्रियतमों द्वारा काम-वश गाँठ खोल देने से ढीले पड़े हुए रेशमी वसन हटाने पर लज्जा से मरी जाती हुई, बिम्ब-फल-से होठों वाली सुन्दरियों द्वारा (बुझाने के लिए) फेंकी गई चूर्ण (powder) की मुट्ठी ऊपर को उठती हुई किरणों वाले रत्नों के दीपकों तक पहुँच कर भी बेकार चली जाती है ।

व्याकरणम्—अनिभृतकरेषु = निभृत—नि + √भृ, भ्वा० उभ० + त (क्त), न निभृताः कराः येषां ते अनिभृत०; (ब०व्री०) नीवीबन्धोच्छ्वसित०—नीवी एव बन्धः (कर्मधा०) अथवा नीव्याः बन्धः (ष० तत्पु०) तस्य उच्छ्वसितेन शिथिलम् । क्षौमम् = क्षुमायाः (अलसी का) विकारः क्षौमम्, क्षुमा + अण् । आक्षिपत्सु आ + √क्षिप्, तुदा० उभ० (फेंकना) + अत् (कृदन्त) स० बहु० । ह्रीमूढानाम् = ह्रिया मूढानाम् (तृ० तत्पु०) । मूढ—√मुह, दिवा० प० (बेहोश होना) + त (क्त) । बिम्बाधराणाम् = बिम्बमिवाधरो यासां तासाम्

१-यक्षाङ्गनानाम्—वल्ल०, वि० सा०, म० सिं, सु० वि० । २—वासः कामात्—वि०' स० ती० । ३—अभिमुखगतान्—वि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ब० व्री०) स्त्रीविशेषाणाम् 'विशेषाः कामिनीकान्ताभीरुबिम्बाधराङ्गनाः' इति शब्दार्णवः । चूर्णमुष्टिः = चूर्णस्य मुष्टिः (ष० तत्पु०) । अर्चिस्तुङ्गान् = अर्चिभिः तुङ्गान् (तृ० तत्पु०) । इसकी सारो० में इस प्रकार यों व्याख्या की गई है— महाद्युतीन् । अर्चिषा तेजसा तुङ्गान् महीयसः ।' रत्नप्रदीपान् = रत्नान्येव प्रदीपाः तान् (कर्म धा०) । अभिमुखम् = मुखं प्रति (अव्य० स०) । विफल-प्रेरणा = विफला प्रेरणा यस्याः तथाभूता (ब० व्री०) ।

विशेषः—नीवीबन्ध०—नीवी स्त्रियों के कटि-वस्त्र की बन्धन-गांठ को कहते हैं । बन्ध का अर्थ भी बन्धन = गाँठ होता है । अतः दोनों का एक ही अर्थ होने से पुनरुक्ति दोष का निवारण मल्लि० ने इस प्रकार किया है—'नीवीति बन्धो नीवीबन्धः । आम्रवृक्षवदपौनरुक्त्यम् । अर्थात् जिस प्रकार आम्र का अर्थ आम्रवृक्ष होने पर भी वृक्ष शब्द जोड़ देने से आम्र रूपी वृक्ष का बोध होता है उसी प्रकार यहां भी नीवी-रूपी बन्धन अर्थ होने से पुनरुक्ति नहीं होती है । विशेष बन्धन पर सामान्य वन्धनत्वारोप दोषावह नहीं होता । कालिदास के इस प्रकार के प्रयोगों के लिए देखिए—पूर्वमेघ पद्य २ में 'परिणत-गज-प्रेक्षणीयम्' तथा पद्य ५८ में 'अनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः' पर 'विशेष' स्तम्भ ।

क्षौमं रागात्—इसके स्थान पर 'वासः कामात्' पाठान्तर है । 'वास': का अर्थ वस्त्र है । इस पाठ से अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता है ।

ह्रीमूढानां भवति०—रत्नप्रदीपों के प्रकाश को देखकर प्रेमिकाएँ अपने प्रियतमों के सामने नग्नावस्था में होने से लज्जा के मारे मरी-सी जाती हैं, अतः बुझा देने के विचार से वे उन प्रदीपों पर मुट्ठी भरकर 'पाउडर' फेंकती है । किन्तु वे तेल के दीपक तो हैं नहीं जो वुझ जायें । वे तो रत्न हैं, जो हमेशा प्रकाशित ही रहते हैं । बेचारी स्त्रियो का उन प्रदीपों पर चूर्ण (पाउडर) फेंकना बेकार ही चला जाता है । इसमें 'विम्बाधरात्र्यों' का 'मुग्धात्व' व्यङ्ग्य होता है । वे मुग्धा भोली-भाली नायिकायें हैं, जो प्रिय-सहवास से लजाती हैं ।

विम्बाधराणाम्—स्त्रियों के होंठो की विम्व फल से उपमा के लिए देखिए—उत्तरमेघ०२२ 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी'; और कुमार III ६७ 'उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि' । इसका पाठान्तर 'यक्षाङ्गनानां' है, जिसमें कोई विशेष अर्थ-भेद नहीं होता ।।७।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेत्रा नीताः सततगतिना [1]यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां [2]नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः ।
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा [3]जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥८॥

अन्वयः—(हे मेघ !) नेत्रा सततगतिना यद्विमानाग्रभूमीः नीताः त्वादृशाः जलमुचः आलेख्यानां नवजलकणैः दोषम् उत्पाद्य शङ्कास्पृष्टा इव धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः सद्यः जर्जराः (सन्तः) जालमार्गैः निष्पतन्ति ।

पदार्थः—नेत्रा=प्रेरक, ले जाने वाले । सततगतिना=पवन से । यद्विमानाग्रभूमीः=जिसके सात-मंजले महलों के उपरले भागों—अटारियों—में । नीताः=ले जाये गये । त्वादृशाः=तुम्हारे-जैसे । जलमुचः=बादल, मेघ । आलेख्यानाम्=चित्रों को । नवजलकणैः=नयी जल-कणिकाओं से दोषमुत्पाद्य=खराब करके । शंकास्पृष्टाः=डरे हुए । इव—मानो । धूमोद्गारानुकृति०=धूएँ निकालने का अनुकरण करने में चतुर । सद्यः=शीघ्र ही । जर्जराः—टुकड़े-टुकड़े हो कर । जालमार्गैः=खिड़कियों में से । निष्पतन्ति=निकल भागते हैं ।

भाषानुवाद:—ले जाने वाले पवन द्वारा सात मंजले महलों के उपरले भागों में ले जाए गए, नयी-नयी जलकणिकाओं द्वारा सुन्दर तस्वीरों को खराब करके डरे हुए-से, धूएं के निकलने का अनुकरण करने में चतुर बने हुए तुम्हारे-जैसे मेघ बिखर-बिखर के जल्दी-जल्दी खिड़कियों से निकल भागते हैं ।

व्याकरणम्—नेत्रा=√नी, भ्वा, उभ० (ले जाना)+तृच्, तृ० एक० सततगतिना=सतता सततं वा गतिः यस्य सः (ब० व्री०), पवनः । सतत=सम्+√तन्, तना० उभ० (ले जाना)+त (क्त) । सम् के 'म्' को तत या हित के पूर्व विकल्प से लोप हो जाता है । विमानाग्रभूमीः=विमानानाम् अग्र-भूमीः (उपरिभूमिकाः) द्वि० बहु० । विमान–वि+√मा+अन (ल्युट्) विशिष्टं मानमस्य । नीताः=√नी, भ्वा० उभ०+त (क्त), प्र० बहु० । यह 'जलमुचः' का विशेषण है । त्वादृशाः—त्वामिव पश्यन्ति यान् ते त्वादृशाः । युष्मत्+√दृश्+अ(कञ्)—उपपद समास । जलमुचः=जलं मुञ्चन्ति इति जलमुचः

१–या—वि० । २–सलिलकणिका०–वल्ल०, सारो०, स० ती०, म० सिं०, सजलकणिकाः—वि० । ३–यत्र जालैः—का० बा० पाठक । यन्त्रकालैः सु० वि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(उपपद स०) । सलिलकणिका-दोषम्=सलिलस्य कणिकाः, ताभिः दोषम् । उत्पाद्य=उत्+√पद्, दिवा० आ०, णिच्+ल्यप् । शङ्कास्पृष्टाः=शङ्कया स्पृष्टाः (तृ० तत्पु०) धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः=धूमस्य उद्गारः, तस्य अनुकृतौ निपुणाः । जर्जराः—√जर्ज्, भ्वा० प० (टूटना)+अर ।

विशेषः–सलिलकणिकादोष०-'सलिलकणिका' का पाठान्तर 'स्वजलकणिका' है । इसका अर्थ 'अपने जल की बूंदों से है ।' दोनों के अर्थ में कोई विशेष भेद नहीं । मल्लि० ने 'दोषम्' का अर्थ 'स्फोटन' अर्थात् चित्र के कागज का जल की बूंदों के पड़ने से 'फूलकर खराब होना' दिया है ।

शङ्कास्पृष्टाः—यहाँ 'शंका' का अर्थ 'भय' है । भय मेघों को अपराध करने पर हुआ । तसवीरों का जल की बूंदों द्वारा खराब किया जाना ही उनका अपराध है और इसी भय से वे झरोखों या खिड़कियों में से जर्जर हो–बिखर-बिखर कर—निकल भागते हैं ।

जालमार्गैः—इसका पाठान्तर 'यत्र जालैः' व 'यन्त्रजालैः' है । 'यन्त्रजालैः' पर सुमति वि० ने इस प्रकार टीका की है—'यन्त्राणि—अनेकसंचारचतुरकृत्रिम-पुत्तलिकादीनि तैरुपलक्षितानि जालानि गवाक्षाणि तैः' । जालमार्ग के लिए देखिए—उत्तरमेघ० ३० का विशेष भाग (पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्ग-प्रविष्टान्) ।

मल्लि० के अनुसार इस पद्य में यह ध्वनि निकलती है—"जिस प्रकार अन्तःपुर के दूत द्वारा छिपाकर एकान्त स्थान में लाए हुए जार स्त्रियों से व्यभिचार करके अपराध के डर से वेश बदल कर शीघ्र ही चोर-दरवाजों से खिसक जाते हैं, उसी प्रकार मेघ भी कहते हैं । वास्तव में प्रस्तुत वायु, मेघ चित्र आदि में अप्रस्तुत दूत, जार, नायिका आदि का व्यवहार-समारोप होने के कारण यहाँ समासोक्ति अलंकार है, किन्तु नायिका-स्थानीय 'आलेख्य' पद स्त्रीलिंग होना चाहिए था ।' 'शङ्कास्पृष्टा' में उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥८॥

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गिताना-[1]
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे[2]
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः[3] ॥९॥

१—भुजालिङ्गनोच्छ्वासितानां—वल्ल,० म० सिं०, सारो० सु० वि० । २–इन्दुपादैर्निशीथे—का० बा० पाठक । ३–द्योतिताश्चन्द्रपादैः स०ती०, वल्ल०। प्रेरिताश्चन्द्रपादाः—वि०, सारो० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः–यत्र निशीथे त्वत्संरोधापगम-विशदैः चन्द्रपादैः स्फुटजललवस्यन्दिनः तन्तुजालावलम्बाः चन्द्रकान्ताः प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानां स्त्रीणां सुरत-जनिताम् अङ्गग्लानिं व्यालुम्पन्ति ।

पदार्थः–निशीथे=आधी रात के समय । त्वत्संरोधापगमविशदैः=तुम्हारी रुकावट हट जाने से निर्मल । चन्द्रपादैः=चान्द की किरणों द्वारा । स्फुटजललवस्यन्दिनः=साफ जल के किरणों को टपकानेवाली । तन्तुजालावलम्बाः=झालरों से लटकती हुई । चन्द्रकान्ताः=चन्द्रकान्तमणियाँ । प्रियतम-भुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्=प्रियतमों की भुजाओं से ढीले पड़े आलिंगनोंवाली । स्त्रीणाम्=स्त्रियों की । सुरत-जनिताम्=संभोग से पैदा हुई । अङ्गग्लानिम्=अङ्गों की थकावट को । व्यालुम्पन्ति=दूर करती हैं ।

भाषानुवाद—जहाँ (अलका में) तुम्हारी रुकावट हट जाने से निर्मल (बने) चाँद की किरणों (के सम्पर्क) से स्वच्छ जल की कणिकाओं को टपकाने वाली, झालरों से लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियाँ आधी रात के समय, प्रियतमों की भुजाओं से ढीले पड़े आलिगनोंवाली स्त्रियों की अंगों में संभोग से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करती हैं ।

व्याकरणम्—त्वत्संरोधापगम०=तव संरोधस्य (आवरणस्य) अपगमेन विशदैः (निर्मलैः) चन्द्रपादैः=चन्द्रस्य पादैः (किरणैः) । स्फुटजललवस्यन्दिनः =स्फुटाश्च ते जल-लवाः स्फुटजल-लवाः,(कर्मधा०)तान् स्यन्दन्ते इति(उपपद तत्पु०) तन्तुजालावलम्बाः=तन्तूनां जालेन अवलम्बन्ते इति तन्तु० (उपपद तत्पु०) । प्रियतमभुजोच्छ्वा०=प्रियतमानां भुजैः उच्छ्वासितानि आलिङ्गितानि यासाम् तासाम् (ब० व्री०) आलिङ्गितम्=आलिङ्गनम् (भावे क्त) । सुरतजनिताम्=सुरतेन जनिताम् (तृ० तत्पु०) । अङ्गग्लानिम्=अङ्गानां ग्लानिः ताम् (ष० तत्पु०) । ग्लानिम्=√ग्लै, भ्वा० प० (थकना) +नि (क्ति) भावे । व्यालुम्पन्ति=वि+आ√लुप्, तुदा० उभ० नाश करना लट् ।

विशेषः—तन्तुजाला०—'तन्तुजाल' का अर्थ तन्तुवितान (झालर) है । चन्द्रकान्त मणियाँ इन झालरों से लटकी रहती हैं । सारो० में इसका पाठान्तर 'यन्त्रजालावलम्बा' दिया गया है, जिसकी व्याख्या इस प्रकार है—यन्त्राणि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुत्तलिकाप्रभृतीनि तद्युक्तेषु जालेषु==वातायनेषु अवलम्बन्ते ये यथोक्ताः। अर्थात् पुत्तलियों वाले गवाक्षों पर लटकनेवाली चन्द्रकान्त मणियाँ। चन्द्र-किरणों के सम्पर्क से चन्द्रकान्त द्रवित (पिघले) हो जाया करते हैं। देखिए—शिशु० III ४४ 'कान्तेन्दुकान्तोपलकुट्टिमेषु प्रतिक्षणं हर्म्यतलेषु यत्र। उच्चै-रधःपातिपयोमुचोऽपि समूहमूहुः पयसां प्रणाल्यः। उत्तर० च० VI. १२ द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः'।

प्रियतमभुजोच्छ्वा०—उच्छ्वासित का अर्थ 'मुक्त किए गए, ढीले किए गए' है। इस अर्थ के लिए देखिए—पिछला पद्य 'नीवीबन्धोच्छ्वासित०'। इसका पाठान्तर 'प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम्' है, जिसका अर्थ "प्रियतमों की भुजाओं से (घने) आलिंगनों के कारण उसाँसे लेती हुई—उत्पीडित—" है।

त्वत्संरोधापगम०—इस वाक्यांश में चन्द्र की किरणों के निर्मल होने का कारण दिया गया है और वह चाँद से मेघ का हट जाना ही है।

चन्द्रपादैर्निशीथे—इसके दो पाठान्तर हैं—१. 'द्योतिताश्चन्द्रपादैः' और २. 'प्रेरिताश्चन्द्रपादैः'। पहले का अर्थ—'चाँद की किरणों से प्रकाशित' और दूसरे का अर्थ—चाँद की किरणों से प्रेरित' है। दोनों पाठों में कोई विशेष अर्थ-भेद प्रतीत नहीं होता।

इस पद्य में 'काव्यलिङ्ग' अलंकार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते'। जहाँ वाक्यार्थ अथवा पदार्थ कारण बना हुआ हो, वह काव्यलिङ्ग है। प्रकृत में चन्द्रकान्तों का कार्य अङ्गग्लानि दूर करना है जिसका कारण चन्द्रकिरणों के सम्पर्क से चन्द्रकान्तों का टपकना बताया गया है ॥९॥

[1]अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥१०॥

अन्वयः—यत्र अक्षय्यान्तर्भवन-निधयः विबुधवनिता-वारमुख्या-सहायाः, बद्धालापाः कामिनः, प्रत्यहं रक्तकण्ठैः धनपतियशः उद्गायद्भिः किन्नरैः सार्धं, वैभ्राजाख्यं बहिरुपवनं निर्विशन्ति।

१—अक्षीणान्तर्भुवन—वल्ल०, स० ती०, सारो०, म० सिं०, सु० वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—अक्षय्यान्तर्भवन-निधयः=जिनके घरों के भीतर अनन्त निधियाँ पड़ी हुई रहती हैं। विबुध-वनिता-वारमुख्या-सहायाः=अप्सरारूपी गणिकाओं को साथ लिए। बद्धालापाः=वार्तालाप करते हुए। कामिनः=कामी जन। प्रत्यहम्=प्रतिदिन। रक्तकण्ठैः=रागभरी मधुर ध्वनि से। धनपतियशः=कुबेर के यश को। उद्गायद्भिः=ऊँचे स्वर में गाते हुए। वैभ्राजाख्यम्='वैभ्राज' नाम के। बहिरुपवनम्=बाह्य उद्यान का। निर्विशन्ति=आनन्द लेते हैं, अर्थात् उद्यान में आमोद-प्रमोद से रहते हैं।

भाषानुवादः—जहाँ (अलका में) अप्सरा-रूपी वेश्याओं को साथ लिए हुए (तथा उनसे) बातें करते-करते कामी जन—जिनके घरों के भीतर अनन्त निधियाँ पड़ी रहती हैं, ऊँचे स्वर में कुबेर का यश गान करते हुए किन्नरों के साथ 'वैभ्राज' नाम के बाह्य उद्यान का आनन्द लेते रहते हैं।

व्याकरणम्—अक्षय्यान्तर्भवन०=क्षेतुं शक्याः क्षय्याः न क्षय्याः अक्षय्याः (नञ् तत्पु०), +√क्षि, भ्वा० प० (नाश होना)+य। 'क्षि' की 'इ' को 'अय्' हो जाता है। भवनानाम् अन्तः अन्तर्भवनम् (अव्य० भाव० स०), अक्षय्याः अन्तर्भवनं निधयो येषां ते (ब० व्री०), विबुधवनिताः=विबुधानां वनिताः ताः एव वारमुख्यः (वेश्याः) ता एव सहायाः येषां ते (ब० व्री०)। वारमुख्याः=वारे (वेश्यावृन्दे) मुख्याः। बद्धालापाः=बद्धाः आलापाः यैः ते (ब० ब्री०)। कामिनः=कामयन्ते इति कामिभिः√कम्+णिच्+इन् (इनि) प्र० बहु०। अथवा अतिशयेन कामः अस्ति एषाम् काम+इन् (मतुबर्थीय) प्रत्यहम्=अहन्यहनि (अव्ययीभाव)। रक्तकण्ठैः=रक्तः (मधुरः) कण्ठः (ध्वनिः) येषां ते रक्तकण्ठाः तैः (ब० व्री०)। धनपतियशः=धनपतेः (कुबेरस्य) यशः (ष० तत्पु०)। उद्गायद्भिः=उच्चैः गायन्तः उद्गायन्तः तैः। उत्+√गै, भ्वा० प० (गाना)+अत् (शत्रन्त), तृ० बहु०। किन्नरैः सार्धम्=साकं सार्धं, समं, सह के योग में तृतीया। वैभ्राजाख्यम्=विभ्राजस्येदं वैभ्राजम्। वैभ्राजमित्याख्या (नाम) यस्य तत् (ब० व्री०)। निर्विशन्ति=निर्+√विश्, तुदा० प० (प्रवेश करना), लट् प्र० पु० बहु०।

विशेषः—विबुधवनिता०—देवताओं की अंगनाएँ अप्सरा। 'वारमुख्या' गणिकाओं (वेश्याओं) को कहते हैं, जो बड़ी कलाकार होती हैं। उनका कार्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवालयों में नृत्यादि करना होता है, इसलिए वे समाज में आदर-पात्र हुआ करती हैं। देखिए अमरकोश—'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाऽथ सा जनैः। सत्कृता वारमुख्या स्यात्।'

बद्धालापाः—इसका पाठान्तर 'बद्धापानं' है जो 'उपवनं' का विशेषण है। इसका अर्थ है, वह उद्यान, जिसमें मदिरापान हो रहा है।

उद्गायद्भिः धनपतियशः—सार्धम्—इसके लिए देखिए, रघु० II १२ 'शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः।'

वैभ्राजख्यम्—विभ्राज शंकर का एक गण (सेवक) है, उसने उद्यान की रक्षा कर रखी है, अतएव उद्यान का नाम भी 'वैभ्राजम्' पड़ गया। देखिए शम्भुरहस्य—"विभ्राजेन गणेन्द्रेण त्रातं वैभ्राजमाख्यया।" वल्ल० कहता है—'वैभ्राजम् चैत्ररथम्'–वैभ्राज उद्यान का दूसरा नाम चैत्ररथ है। देखिए—रघु० V ६० 'एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्'।

निर्विशन्ति—इसके लिए देखिए—पूर्वमेघ० ६४, नानाचेष्टैः जलदललितै-र्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥१०॥

[1]गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
[2]पत्रच्छेदैः कनककमलैः [3]कर्णविभ्रंशिभिश्च।
[4]मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥११॥

अन्वयः—यत्र कामिनीनां नैशो मार्गः सवितुः उदये (सति) गत्युत्कम्पात् अलक-पतितैः मन्दारपुष्पैः, पत्रच्छेदैः, कर्णविभ्रंशिभिः कनककमलैः च (तथा) मुक्ताजालैः (एवं) स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः हारैः च सूच्यते।

१—गत्योत्कम्पात्—सु० वि०। २—क्लृप्तच्छेदैः—वि०, पत्रच्छेद्यैः—म० सिं०, सु० वि०, वल्ल० सारो०, नलिनैः। ३—विस्रंसिभिश्च सु० वि०, वल्ल०, सारो०, म० सिं०, स० ती०। ४—मुक्तालग्नस्तनपरिमलच्छिन्नसूत्रैः सु० वि०, म० सिं०, सारो०, मुक्ताजालैः स्तनपरिचित०—का० वा० पाठक। मुक्ताजालस्तन-परिचय०—म० सिं०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—कामिनीनाम्=अभिसरण करने वाली स्त्रियों का। नैशो मार्गः=रात्रि का मार्ग। सवितुः उदये (सति)=सूर्य के निकलने पर। गत्युत्कम्पात्=चलते समय हिल जाने के कारण। अलक-पतितैः=बालों से गिरे हुए। मन्दार-पुष्पैः=मन्दार (देवताओं का वृक्ष) के फूलों से। पत्रच्छेदैः=किसलयों—पत्तों के टुकड़ों से। कर्णविभ्रंशिभिः=कानों पर से गिरे पड़े हुए। कनक-कमलैः=सुनहरे कमलों से। मुक्ताजालैः=मोतियों की लड़ों से (जो कि केशपाशों में बंधी रहती हैं)। स्तनपरिसरच्छिन्न०=विस्तृत स्तनभाग पर टूटे हुए सूत्र वाली पुष्पमालाओं से। सूच्यते—सूचित=अनुमानित होता है।

भाषानुवादः—जहाँ (अलका में) कामिनियों का रात्रि का मार्ग, सूर्य के निकलने पर चलते समय हिलने-डुलने के कारण बालों से गिरे हुए मन्दार-पुष्पों से, किसलयों के टुकड़ों से, कानों पर गिरे हुए सुनहरे कमलों से, मोतियों की लड़ों से एवं विस्तृत स्तर-भाग पर टूटे हुए सूत्रवाली पुष्प-मालाओं से सूचित हो जाता है।

व्याकरणम्—सवितुः=सवितृ का ष० ए०। नैशः=निशि भवः। निशा+अ (सम्बन्ध-बोधक तद्धित-प्रत्यय)। गत्युत्कम्पात्=गत्या उत्कम्पः (चलनं) तस्माद् हेतोः। अलकपतितैः=अलकेभ्यः पतितैः (पं० तत्पु०)। पत्रच्छेदैः=पत्राणां (किसलयानां) छेदैः (खण्डैः)। कर्णविभ्रंशिभिः— कर्णेभ्यः विभ्रश्यन्ति इति कर्णविभ्रंशीनि तैः (उपपद तत्पु०) भ्रंश्+इन् कनककमलैः=कनकस्य कमलैः (ष० तत्पु०)। मुक्ताजालैः=मुक्तानां जालैः (मालाभिः)। स्तन-परिसरच्छिन्नसूत्रैः=स्तनयोः परिसरः (विस्तारः) तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैः (ब० व्री०)। सूच्यते=√सूच्, चुरा० उभ० (प्रकट होना), कर्मणि लट् प्र० पु० एक०।

विशेषः—कामिनीनाम्—अतिशयेन कामः विद्यते आसामिति कामिन्यः, तासाम्। इसका अर्थ यहाँ अभिसारिकायें है। सा० द० में अभिसारिका की इस प्रकार व्याख्या की गई है—'अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशङ्गता। स्वयं वाऽभिसरत्येषा धीरैरुक्ताऽभिसारिका' अर्थात् जो कामपीड़ित हुई स्त्री प्रेमी को अपने पास बुलाती है, अथवा जो स्वयं उसके पास जाये, वह अभिसारिका कहलाती है।

अभिसरण में शीघ्रगतिवाली कामिनी से नदी की तुलना के लिए देखिए-ऋतु० II ७ 'निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान्प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः। स्त्रियः प्रकामा इव जातविभ्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् ॥'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गत्युत्कम्पात्–रात्रि के समय में जब अभिसारिकाएँ अपने प्रेमिश्रों का अभिसरण करती हैं तब उनकी चाल में शीघ्रता रहती है। कारण कि एक तो रात का भय, फिर यह भय कि किसी को पता चल जाय कि वह रात को अकेली कहाँ गई है, इसलिए जल्दी-जल्दी चलने के कारण उनके केशपाश खूब हिलते-डुलते हैं और उनपर लगे हुए पुष्प जमीन पर गिर पड़ते हैं।

पत्रच्छेदैः—मल्लि० इसका पत्राणां—पत्रलतानां छेदैः खण्डैः अर्थ करता है। एक टीकाकार ने इसका 'नागवल्लीदलशकलैः' अर्थ किया है। सारो० में इसे 'कनक-कमलैः' का विशेषण माना गया है और इस प्रकार व्याख्या की गई है—"पत्रलतादिपत्राणां छेदाः भङ्गा येषु तानि तैः" अर्थात् जिन कमलों पर पत्तों के टुकड़े भी थे। जिन व्याख्याकारों ने इसके स्थान में 'पत्रच्छेद्यैः' पाठ माना है, वे इस प्रकार व्याख्या करते हैं—'पत्राणां दलानां छेदं खण्डनमर्हन्तीति पत्रच्छेद्यानि तैः' अर्थात् ऐसे स्वर्णकमल जिनकी पंखुड़ियाँ छेदी (बींधी) जाने योग्य हैं।

कनककमलैः—इसका विग्रह 'कनकमयानि कमलानि' इस प्रकार होना चाहिए किन्तु मल्लि० इस सम्बन्ध में कहते हैं कि षष्ठी से (कनकस्य कमलैः) विवक्षित अर्थ की प्रतीति हो जाने पर 'मय' प्रत्यय के बीच के लाने से 'अध्याहार' (छूटे हुए शब्द का आक्षेप) दोष हो जाता है। संभवतः अलका की झीलों में स्वर्ण-कमल रहते हैं। हिमालय और मानसरोवर हेम-पद्मों के घर हैं ही। देखिए—रघु०—'सप्तर्षिहस्तावचितहेमपद्मम्'।

मुक्ताजालैः स्तनपरिसर०–एक व्याख्याकार ने इसका पाठान्तर मुक्ताजाल-स्तनपरिचयच्छिन्न०' दिया है और इस प्रकार व्याख्या की है—'मुक्तानां जालानि मुक्ताफलसमूहास्तेषां स्तनपरिचयः कठिनकुचसंमर्दस्तैः छिन्नानि त्रुटितानि सूत्राणि येषां तैः।' अर्थात् मोतियों के समूहों के कठोर कुचों के साथ टकरा जाने से टूटे हुए सूत्र वाले हारों से। अन्य पाठों में 'परिसर' के स्थान में 'परिचय' या 'परिचित' पाठ पाया जाता है। इन दोनों का 'संपर्क' (मेल) अर्थ है। कुछ टीकाकारों ने 'मुक्ताजालैः स्तन···' के स्थान पर 'मुक्तालग्नस्तनपरिमल-च्छिन्नसूत्रैः' पाठ दिया है, जिसका अर्थ है—'मोतियों के साथ सटे हुए कुचद्वय की सुगन्धि से जिन हारों के सूत्र टूट गए हैं।' इस पाठ में 'सुगन्धि से सूत्र का टूट जाना' अनुपपन्न-सा है ।।११।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां [1]विकल्पान् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च [2]यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥१२॥

अन्वयः—यस्याम् एकः कल्पवृक्षः (एव) चित्रं वासः, नयनयोः विभ्रम-देशदक्षं मधु, किसलयैः सह पुष्पोद्भेदं, भूषणानां विकल्पान्, चरण-कमल-न्यास-योग्यं लाक्षारागं च सकलम् अबलामण्डनं सूते ।

पदार्थः—यस्यां = जिस (अलका) में । एकः कल्पवृक्षः = अकेला कल्पवृक्ष । चित्रम् = अनेक रंग के । वासः = वस्त्र । नयनयोः विभ्रमादेशदक्षम् = आँखों को (विविध) विलासों की शिक्षा देनेवाली । मधु = मदिरा । किसलयैः सह = कोंपलों सहित । पुष्पोद्भेदम् = फूलों का विकास अर्थात् विकसित फूल । भूषणानां विकल्पान् = आभूषणों के विविध प्रकार । चरण-कमलन्यासयोग्यम् = कमल-जैसे चरणों में लगाए जाने योग्य । लाक्षारागम् = महावर, मेंहदी । अबलामण्डनम् = स्त्रियों की वेषा-भूषा को = शृङ्गारसामग्री को । सूते = पैदा करता है ।

भाषानुवादः—जिस (अलका) में अकेला कल्पवृक्ष (ही) रंग-रंग के वस्त्र नेत्रों को (विविध) विलास सिखाने वाली मदिरा, कोंपलों-सहित खिले हुए फूल, आभूषणों के विविध प्रकार तथा कमल-जैसे चरणों में लगाए जाने योग्य महा-वर आदि स्त्रियों की सब शृंगार-सामग्री दे देता है ।

व्याकरणम्—वासः मधु, पुष्पोद्भेदं, भूषणानां विकल्पान्, लाक्षारागं—ये सब 'सूते' क्रिया के कर्म हैं और 'कल्पवृक्षः' इस क्रिया का कर्त्ता है । विभ्रमादेश-दक्षम्—विभ्रमाणाम् आदेशे (उपदेशे) दक्षम् अथवा विभ्रमे य आदेशः (आज्ञा) तस्मिन् दक्षम् । मधु = (मदिरा) नपुं० द्वि० एक० । पुष्पोद्भेदम् = पुष्पाणाम् उद्भेदः (विकासः) तम् । चरण-कमलन्यासयोग्यम् = चरणौ कमले इव (उपमितसमास) तयोः न्यासस्य योग्यम् । लाक्षारागः—लाक्षा एव रागः (कर्मधा०) तम् ।

विशेषः—मधु नयनयोः विभ्रमादेशदक्षम्—मदिरा से आंखों में खुमारी आ

१—विकल्पम्—का० बा० पाठक । २—यस्मिन्—का० बा० पाठक ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाती है, तब वे विविध विलास करने लग जाती हैं, इसलिए मदिरा को यहां विलासों की शिक्षिका बताया है। देखिए—कुमार० IV १२ "नयनान्यरुणानि घूर्णयन् वचनानि स्खलयन्पदे पदे। असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना'। 'आदेश' इस शब्द साम्य के लिए देखिए—रघु० IV ६८ 'कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्।'

सकलमबलामण्डनम्—मण्डनम्-मण्डयते अनेन इति मण्डनम् (करणे ल्युट्)। अर्थात् सज्जासाधन—शृंगार-सामग्री। भाव यह है कि अकेला कल्पवृक्ष ही तरुणियों को शरीर की प्रसाधन-सामग्री प्रस्तुत कर देता है। जैसे—चित्रं वासः =(परिधेय) पुष्पोद्भेदम् =(कचधार्य), मधु तथा भूषणानां विकल्पान् =(देहधार्य), लाक्षारागम् =(विलेपन)। इस तरह स्त्रियों के ४ प्रकार के मण्डन हुआ करते हैं—परिधेय, कचधार्य, देहधार्य और विलेपन। इसके लिए देखिये रसाकर—'कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम्। चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च दैशिकम्॥' मधु के लिए देखिए=उत्तरमेघ ५ 'आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतम्।'

एकः कल्पवृक्षः (एव) सूते—वृक्षों द्वारा अबलाओं को मण्डन सामग्री प्रस्तुत करने के लिए देखिए—अभि० शा० IV ४ 'क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्..' ॥१२॥

[1]शष्पश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः [2]प्रभेदात्।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः॥१३॥

अन्वयः—यत्र वाहाः शष्पश्यामाः (अत एव) दिनकर-हयस्पर्धिनः (तथा) शैलोदग्राः करिणः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः, योधाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखं तस्थिवांसः (अत एव) चन्द्रहास-व्रणाङ्कैः प्रत्यादिष्टाभरण-रुचयः (सन्ति)।

पदार्थः—वाहाः=घोड़े। शष्पश्यामाः=तृण के समान हरे। दिनकर-पय-स्पर्धिनः=सूर्य के घोड़ों से स्पर्धा करने वाले। शैलोदग्राः=पर्वतों के समान ऊँचे। करिणः=हाथी। प्रभेदात्=मद के बहने के कारण। त्वम् इव=तुम्हारे

१—पत्रश्यामा—मल्लि०। सस्यश्यामा—सारो०। २—पयोदाः—वल्ल०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समान। वृष्टिमन्तः=बरसने वाले। योधाग्रण्यः=उच्च कोटि के योधा। संयुगे=युद्ध में। प्रतिदशमुखम्=रावण के विरुद्ध। तस्थिवांसः=जो खड़े हुए थे। चन्द्रहास-व्रणाङ्कैः='चन्द्रहास' तलवार द्वारा किए हुए घावों के चिह्नों द्वारा। प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः=भूषण की शोभा को पछाड़ देने वाले हैं।

भाषानुवादः—जहां (अलका में) घोड़े तृण जैसे हरे रंग के (अत एव) सूर्य के घोड़ों से स्पर्धा करने वाले हैं, पर्वतों के समान ऊँचे हाथी, मद के बहने के कारण, तुम्हारे समान बरसने वाले हैं; युद्ध में रावण से भिड़नेवाले (शब्दार्थ जो रावण के सामने डट गये थे ऐसे) बड़े-बड़े योधा 'चन्द्रहास' (रावण की तलवार) द्वारा किये गये (प्रहारों के) चिह्नों द्वारा आभूषणों की शोभा को पछाड़ देने वाले हैं।

व्याकरणम्—वाहाः=वहन्ति इति√वह्, भ्वा० प० (ले जाना)+अ। शष्पश्यामाः=शष्पम् इव श्यामाः (क० धा०)। दिनकर-हयस्पर्धिनः=करोति इति करः दिनस्य करः (सूर्यः) तस्य ये हयाः (अश्वाः) तैः स्पर्धन्ते इति। शैलोदग्राः=शैलवद् उदग्राः (उन्नताः)। करिणः=कर+इन् (मतुवर्थ)। प्रभेदात्=प्रकृष्टो भेदः (स्रावः) तस्मात् हेतोः। वृष्टिमन्तः=वृष्टि+मत् (मतुप्) प्र० बहु०। यह 'करिणः' का विशेषण है। योधाग्रण्यः=योधानामग्रण्यः अग्रे-नयन्ति इति (अग्रण्यः) अग्र+√नी, भ्वा० उभ० (ले जाना)+क्विप्। तस्थि-वांसः=√स्था, भ्वा० प०+क्वसु (Perfect Participle) प्र० बहु०, यह 'योधाग्रण्यः' का विशेषण है। चन्द्रहासव्रणाङ्कैः=चन्द्रहासस्य व्रणाः एव अङ्काः तैः। (कर्म० धा०)। प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः=प्रत्यादिष्टाः आभरणानां कान्तयः यैः (व्रणैः)—ब० व्री०। प्रति+आ+√दिश्+त (क्त) ॥१३॥

विशेषः—मल्लि०, स० ती० म० सिं० इस पद्य को पूर्वमेघ में स्थान देते हैं और वहां इसकी क्रमशः ३५, ३७, ३३वीं संख्या रखते हैं। विल्सन द्वारा सम्पादित मेघदूत में यह पद्य नहीं है। मल्लि० इसे प्रक्षिप्त मानकर पूर्वमेघ के उज्जयिनी वर्णन में देते हैं, किन्तु उज्जयिनी के सैनिकों का रावण से युद्ध करना असंगत-सा है। जिनसेन के अनुसार इसमें अलका, विशेषकर 'वैभ्राज' (चैत्ररथ) उद्यान का वर्णन है। इस पद्य में आए हुए रावण-युद्ध प्रसंग को ध्यान में रखते हुए इसे उत्तरमेघ के अलका-वर्णन करने वाले पद्यों में ही सम्मिलित करने में संगति बैठ जाती है, क्योंकि अलका में ही रावण और शिवगणों का संघर्ष हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था। यही कारण है कि पार्श्वा०, सारो०, सु०, वि० तथा बल्लभ ने इसे अलका वर्णन में स्थान दिया है, उज्जयिनी-वर्णन में नहीं। मल्लिनाथ की इसे प्रक्षिप्त मानने की बात भी मान्य नहीं है, क्योंकि यह पार्श्वाभ्युदय में आया हुआ है और कालिदास की शैली का है, साथ ही अलकापुरी की अतिमानुष विभूति के वर्णन में यह भी उचित ही है कि वहाँ के घोड़े, हाथी तथा वीरों का भी वर्णन किया जाय। इस कारण प्रस्तुत पद्य को भी मौलिक ही समझना चाहिए।

दिनकरहयस्पर्धिनः—सूर्य के घोड़े से चाल या रंग में स्पर्धा करने वाले। सूर्य के रथ में सात घोड़े होते हैं और अरुण उसके रथ का सारथी है। हरे रंग के वे घोड़े चलने में बड़े तेज होते हैं।

प्रभेदात्—स० ती० ने इसको 'कटस्थलभेदात्'—गण्डस्थल से मद-स्राव के कारण—इस प्रकार व्याख्या की है। इसी कारण हाथियों की मेघ से समता बताई गई है, क्योंकि हाथी मेघ के समान काले, बृहदाकार तथा (मद–) जल बरसाने वाले हैं।

चन्द्रहासव्रणाङ्कः—'चन्द्रहास' रावण की तलवार का नाम था और वह इसलिए कि उसकी तलवार चन्द्र का उपहास किया करती थी, अर्थात् चन्द्र से भी अधिक चमकने वाली थी।

प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः—यह 'योधाग्रण्यः' का विशेषण है। इस पंक्ति का भाव यह है कि जब रावण ने अलका पर आक्रमण किया, तो वहाँ के सुभटों ने उसका डटकर मुकाबला किया। उनके हाथों पर चन्द्रहास के व्रणों के चिह्न मौजूद हैं; परन्तु वे आभूषणों से भी कई गुना बढ़-चढ़ कर हैं। मल्लि० के शब्दों में—"शस्त्रप्रहारा एव वीराणां भूषणम्"—अर्थात् वीर पुरुषों के भूषण तो शस्त्र-प्रहारों के चिह्न ही हुआ करते हैं, जो सोने-चाँदी के भूषणों की शोभा पर लात मारते हैं। प्रत्यादेश के लिए देखिए–विक्र० प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रियः।'

इस पद्य में 'पत्रश्यामाः' 'हास्यस्पर्धिनः', 'शैलोदग्राः', 'त्वमिव वृष्टिमन्तः' स्थलों में उपमाओं की संसृष्टि है; अन्तिम दो पादों में रावण और अलका के वीरभटों के मध्य हुआ अतीत का युद्ध 'प्रत्यक्षायमाण' होने से 'भाविक' अलंकार है। भाविक के लक्षण के लिए पूर्वमेघ ३२ देखिए ॥१३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
सभ्रूभङ्गं [1]प्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव [2]सिद्धः ॥१४॥

अन्वयः—यत्र मन्मथः धनपतिसखं देवं साक्षात् वसन्तं मत्वा भयात् षट्पदज्यं चापं प्रायः न वहति । तस्य आरम्भः सभ्रूभङ्गं प्रहितनयनैः कामिलक्ष्येषु अमोघैः चतुर-वनिता–विभ्रमैः एव सिद्धः ।

पदार्थः—मन्मथः=कामदेव । धनपतिसखम्=धनपति (कुबेर) के मित्र, देवम्=महादेव को । साक्षात्=शरीर-रूप-से । वसन्तं मत्वा=रहते हुए जानकर । षट्पदज्यम्=भौंरों की डोरी वाले । चापम्=धनुष को । प्रायः न वहति=प्रायः धारण नहीं करता । तस्य आरम्भः=उसका कार्य । सभ्रूभङ्गम्=भौहें टेढ़ी करके—तिरछी भौंहों के साथ । प्रहितनयनैः=डाली गई चितवनोंवाले । कामिलक्ष्येषु=लक्ष्य-रूप प्रेमियों पर या कामीजन-रूपी लक्ष्यों-निशानों पर । अमोघैः=वृथा न जाने वाले । चतुर-वनिता-विभ्रमैः=चतुर स्त्रियों के विलासों से । सिद्धः (भवति)=पूरा हो जाता है—पूरा चल जाता है ।

भाषानुवादः—जहां (अलका में) कामदेव, कुबेर के मित्र महादेव को साक्षात् रहते हुए जानकर भय के कारण भौंरों की डोरी वाले (अपने) धनुष को प्रायः धारण करता नहीं । उसका काम टेढ़ी भौंहों के साथ डाली गई चितवनोंवाले कामीजन-रूपी निशानों पर अचूक, चतुर स्त्रियों के विलासों—हाव-भावों—से ही चल जाता है ।

व्याकरणम्—मन्मथः=मनः मथ्नाति इति (कामदेवः) पृषोदरादित्वात्साधुः । धनपतिसखम्=धनस्य पतिः धनपतिः तस्य सखा (ष० तत्पु०) तम् । 'राजाहः-सखिभ्यष्टच्' इससे टच् प्रत्यय होकर समासान्त वाला 'सखि' शब्द राम के समान चलता है । साक्षात्=अक्षेण सह साक्षः तमततीति साक्षात् । वसन्तम्=√वस्, भ्वा० वस् + अत्, द्वि० एक० । 'देवं' का विशेषण । षट्पदज्यम्=षट् पदानि येषां ते षट्पदाः, ते एव ज्या यस्य (ब० व्री०) सभ्रूभङ्गम्=भ्रुवोः भङ्गेन सह (ब० व्री०) । प्रहितनयनैः=प्रहितानि

१ सभ्रूभंगप्रहित—मल्लि०, वल्ल०, म०, सिं०, सारो० । २—चटुल-वनिता०—वि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रयुक्तानि) नयनानि येषु तैः (ब० ब्री०) । कामिलक्ष्येषु=कामिनः एव लक्ष्याणि तेषु (कर्मधा०) । लक्ष्यते इति लक्ष्यम्—√लक्ष्, भ्वा० आ० (देखना)+य । अमोघैः=न मोघैः अमोघैः (नञ् तत्पु०) । चतुर-वनिता-विभ्रमैः=चतुराश्च ताः वनिताश्च(कर्मधा०)तासां विभ्रमैः । सिद्धः =√सिध्, दिवा० प० (पूरा होना)+त (क्त) ।

विशेषः——मत्वा देवं..........इस पद्य में अलका के वाह्य उद्यान की ओर संकेत है, जिसमें महादेव विराजते हैं। देखिए—पूर्वमेघ पद्य ७ 'गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ।'

षट्पदज्यम्—कामदेव के धनुष की डोरी काले-काले भौंरों की पंक्ति से बनी है । देखिए—कुमा० IV १५ 'अलिपंक्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता । विरुतैः करुणस्वनैरियं गुरुशोकामनुरोदितीव माम् ।।' भ्रमरों को षट्पद इसलिए कहते हैं कि वे छः पैरों वाले होते हैं ।

चापम्—उत्तरमेघ ९ चौथे पद्य के 'विशेष' स्तम्भ में बताया जा चुका है कि कामदेव के धनुष की डंडी गन्ने से बनी है और उसकी डोरी भौंरों की श्रेणी से ।

भयात्—कामदेव को शिवजी ने भस्म कर दिया था । पुनर्जन्म होने पर भी उसे अपने पिछले जन्म की मृत्यु की दुर्घटना भूली नहीं । इसलिए अलका में महादेव की उपस्थिति से उसको भय होता है कि वे कहीं फिर भस्म न कर दें । देखिए—कुमा०III ७२-७३ "**तपःपरामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य । स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात । क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति । तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ।।**'

अमोघैः—मोघ—असफल—न होने वाले । देखिए पूर्वमेघ० ६—'याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा' ।

चतुरवनिताविभ्रमैः—कुछ व्याख्याकार 'चतुर' के स्थान पर चटुल पाठ देते हैं और इस शब्द को 'विभ्रमैः' के साथ जोड़ते हैं अर्थात् 'चटुला ये वनितानां विभ्रमाः तैः' इस विग्रह में इसका अर्थ 'स्त्रियों के चञ्चल विलासों से' होगा । यहां 'वनिता' शब्द साभिप्राय है—देखिए—सुभाषित 'सा कविता, सा बनिता यस्याः श्रवणेन दर्शनेनापि । कविहृदयं विटहृदयं सरलं तरलं च सत्वरं भवति ।'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वनिता के लिए देखिए—रघु० II 'आवर्तमानं वनिता वनान्तात्'। 'विभ्रम' शब्द यहाँ व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इससे काम-प्रभाव से पैदा होने-वाली मद, हर्ष, राग आदि सब शारीरिक चेष्टायें (हावभाव) ली जाती हैं। देखिये—'चित्तवृत्त्यनवस्थानं शृङ्गाराद्विभ्रमो मतः'। ये सब कामदेव के वाणों का काम करते हैं ॥१४॥

[1]तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं [2]सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
[3]यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया[4] वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥१५॥

अन्वयः—तत्र धनपति-गृहान् उत्तरेण सुरपति–धनुश्चारुणा तोरणेन दूरात् लक्ष्यम् अस्मदीयम् आगारम् (अस्ति)। यस्य उपान्ते मे कान्तया वर्धितः कृतक-तनयः हस्त-प्राप्य-स्तवक-नमितः वालमन्दार-वृक्षः [अस्ति]।

पदार्थः—धनपतिगृहान्=कुवेर के घर के। उत्तरेण=उत्तर में पास ही। सुरपतिधनुश्चारुणा=इन्द्रधनुष के समान सुन्दर। तोरणेन=वहिर्द्वार से। दूरात् लक्ष्यम्=दूर से ही दिखाई देने वाला। अस्मदीयम्=हमारा। आगारम्=घर। यस्योपान्ते=जिसके पास। मे कान्तया वर्धितः=मेरी प्रिया द्वारा पाल कर बड़ा किया हुआ। कृतकतनयः=दत्तक पुत्र। हस्त-प्राप्य-स्तवक-नमितः=हाथों से छुए जाने योग्य गुच्छों से झुका हुआ, बाल-मन्दारवृक्षः=छोटा-सा मन्दार का वृक्ष।

भाषानुवादः—वहाँ (अलका में) कुबेर के घर के उत्तर में पास ही इन्द्र-धनुष के समान सुन्दर वहिर्द्वार—फाटक—द्वारा दूर से ही दिखाई देनेवाला मेरा घर है, जिसके बाड़े में मेरी प्रिया-द्वारा पाल-पोस कर बड़ा किया गया दत्तक-पुत्र (जैसा), हाथों से छुए जाने योग्य गुच्छों से झुका हुआ एक छोटा-सा मन्दार का वृक्ष है।

व्याकरणम्—धनपतिगृहान्=धनपतेः गृहाः (ष० तत्पु०) तान्। उत्तरेण=इस शब्द में "एनबन्यतरस्यामदूरे पञ्चम्याः" इससे दिशा निर्देश के अर्थ में

१—अत्रागार—वि०। गृहाद्—का०वा० पाठक। २—त्वदमरधनु०—का० वा० पाठक। ३—यस्योद्याने—का० बा० पाठक। ४—वर्धितः कान्तयाः मे—का० बा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'एनप्' प्रत्यय हुआ और "एनपा द्वितीया" इससे द्वितीया विभक्ति हुई। यदि 'उत्तरेण' को तृतीयान्त पद माना जाय तो वह 'तोरणेन' का विशेषण है, किन्तु ऐसी (स्थिति) में 'गृहान्' के स्थान में पञ्चम्यन्त 'गृहात्' वाला पाठ ही उपादेय होगा। अस्मदीयम्—अस्माकमिदम्। अस्मद्+ईय। तत्रागारम्—यहाँ 'अगार' व 'आगार' (घर) दोनों शब्द युक्त हैं। 'विद्यादगारमागारम्' इति द्विरूपकोशः। सुरपतिधनुः=सुरपतेः धनुः (ष० तत्पु०)। वर्धितः=√वृध्, भ्वा० आ० (बढ़ना) णिच्+त (क्त)। कृतक-तनयः=कृतः एव कृतकः (') स्वार्थे कः कृतकश्चासौ तनयश्च (कर्मधा०)। हस्तप्राप्य-स्तबक-नमितः=हस्तेन प्राप्यैः स्तबकैः नमितः (तृ० तत्पु०)। नमितः=√नम्, भ्वा० प० (झुकना)+ णिच्+त (क्त)। बालश्चासौ मन्दारवृक्षश्च (कर्मधा०)।

विशेषः–तत्रागारं धनपति-गृहानुत्तरेण—गृहशब्द पुंल्लिग में केवल बहुवचन में प्रयुक्त होता है जब उससे गृह तथा उसकी पार्श्ववर्ती भूमि भी विवक्षित हो, अन्यथा नपुंसक में इसका कोई भी वचन हो सकता है। 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इत्यमरः। देखिए—मुद्रा० I 'इमे नो गृहाः' और देखिए—नैषध० II ७४ 'स्फटिकोपलविग्रहा गृहाः शशभृद्भित्तनिपद्यभित्तयः'। दिशानिर्देश में 'एनप्' अन्त वाले 'उत्तरेण', 'दक्षिणेन' इत्यादि शब्द 'उत्तरस्मिन् अदूरे' (उत्तर दिशा में पास ही) आदि अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और जिनसे दिशा का सम्बन्ध बताया जाता है, उन्हें षष्ठी अथवा द्वितीया विभक्ति होती है–जैसे प्रकृत पद्य में 'गृहानुत्तरेण' इसका पाठान्तर 'गृहादुत्तरेण' है।

सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन—तोरण का अर्थ बहिर्द्वार—फाटक है। यक्ष के गृह का बाहरी द्वार अर्धमण्डलाकार में बहुत ऊँचा तथा विविध रंगों की मणियों से जटित था। इसी कारण उसकी उपमा इन्द्रधनुष से की गई है।

यस्योपान्ते—उपान्त का अर्थ आस-पास की भूमि है। मल्लि० ने इसका अर्थ 'प्राकारान्तःपार्श्वदेशे' अथवा बाड़ा किया है। इसका पाठान्तर 'यस्योद्याने' है। इससे स्पष्ट है कि यक्ष के वास भवन के साथ एक उद्यान भी था और उस उद्यान में एक छोटा-सा मन्दार वृक्ष था। दोनों पाठों में कोई विशेष अर्थ-भेद नहीं है।

कृतकतनयः—यह कर्मधारय समास है। कृतः एव कृतकः (स्वार्थे कः) 'कृतकश्चासौ तनयश्च' कर्मधा० में 'कृतक' शब्द पूर्व-पद अथवा उत्तर-पद दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूपों में व्यवहृत होता है। उत्तरपद बने 'कृतक' के लिए देखिए—अभि० शा० VI '१४ सोऽयं न पुत्र-कृतकः पदवीं मृगस्ते (जहाति)'। विकल्प से यह पूर्व-निपात "वाऽऽहिताग्न्यादिषु" इस पाणिनि-सूत्र II २. ३७ से होता है (जैसे आहिताग्निः अथवा अग्न्याहितः)। वृक्षों के पुत्रीकरण के लिए देखिए—रघु० II ३६ 'अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।' तथा रघु० V ६ 'संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्'। विल्सन महोदय के शब्दों में—"प्राकृतिक पदार्थों—वृक्ष जीवों—के प्रति कोमल भावना हिन्दुओं की काव्य-रचनाओं की एक बहुत ही रमणीय विशेषता है। इसका साहित्य में बहुत अधिक प्रयोग मिलता है। शकुन्तला नाटक में जब शकुन्तला कण्व के आश्रम से पति-गृह को जाती है, तो वह अपने द्वारा पाले गये वृक्षों तथा मृग-शिशु से विदा लेती है" ॥१५॥

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना[1] [2]विकचकमलैः [3]स्निग्धवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य[4] हंसाः ॥१६॥

अन्वयः—अस्मिन् (अगारे) मरकत-शिला-बद्ध-सोपान-मार्गा स्निग्ध-वैदूर्यनालैः हैमैः विकचकमलैः छन्ना वापी च (अस्ति), यस्याः तोये कृतवसतयः हंसाः त्वां प्रेक्ष्य अपि व्यपगतशुचः (सन्तः) सन्निकृष्टं मानसं न अध्यास्यन्ति।

पदार्थः—अस्मिन्=इस (मेरे घर) में। मरकतशिला-बद्ध-सोपानमार्गाः=मरकत मणि की शिलाओं से बनी हुई सीढ़ियों वाली। स्निग्ध-वैदूर्य-नालैः=चिकने वैदूर्य मणि के नालवाले। हैमैः स्वर्णमय, सुनहले। विकच-कमलैः=खिले हुए कमलों से। छन्ना=ढकी हुई, व्याप्त। वापी=बावड़ी। कृतवसतयः=रहने वाले। त्वां प्रेक्ष्य=तुझे देखकर। अपि=भी। व्यपगतशुचः=शोकरहित (होते हुए)। सन्निकृष्टं मानसम्=पास में स्थित मानस सरोवर के प्रति। न अध्यास्यन्ति=उत्कण्ठा नहीं करेंगे।

भाषानुवादः—उस (मेरे घर) में मरकतमणि (पन्ना) की शिलाओं से बनी हुई सीढ़ियों वाली एक बावड़ी है, जो चिकने वैदूर्यमणि की नालवाले खिले हुए

१—स्फीता—का० बा० पाठक; स्यूता—वल्ल० इत्यादि। २—कमलमुकुलैः—वि०। ३—दीर्घवैदूर्य०—का० बा० पाठक। ४—प्राप्य—का० बा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वर्णकमलों से व्याप्त है तथा जिसके जल में रहने वाले हंस तुझे देखकर भी दुःखरहित हुए पास ही में स्थित मानस सरोवर के प्रति उत्कण्ठा नहीं करेंगे।

व्याकरणम्—मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा=मरकतस्य शिलाभिः बद्धः सोपानानां मार्गो यस्याः सा (व० व्री०)। सोपान—स+उप+आन (सह विद्यमानः उप=उपरि आनः=गमनम् अनेन)। स्निग्धवैदूर्यनालैः=विदूरे भवाः वैदूर्याः+विदूर+य (ञ्य) वैदूर्याणां विकारा वैदूर्याणि=वैदूर्य+अण् (विकारार्थे) स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तैः (ब० व्री०)। हैमैः=हेम्न इमानि हैमानि तैः। विकचकमलैः-विकचैः च तैः कमलैः (कर्मधा०)। छन्ना=√छद्, चुरा० उभ० (ढकना)+न (क्त)। वापी=उप्यते पद्मादि अस्याम् √वप् उणादि इ+ई भ्वा० प० (रहना) (स्त्री प्रत्यय)। कृतवसतयः=कृता वसतिः यैः ते (व० व्री०) √वस्+क्तिन् (भावे)। प्रेक्ष्य=प्र+√ईक्ष्, भ्वा० आ० (देखना)√ल्यप्। व्यपगतशुचः=व्यपगता शुक् (दुःखं) येषां ते (ब० व्री०)। व्यपगत—वि०+अप+√गम्, भ्वा० प० (जाना)+त (क्त) शुचः=√शुच् भ्वा० प० (शोक करना)+क्विप् (भावे)। प्र० वहु०। संनिकृष्टम्=सम्+नि+कृष्, भ्वा० प० (खींचना)+त (क्त)। अध्यास्यन्ति=आ+√ध्यै, भ्वा० प० (सोचना)+लृट्, आध्यानम्=उत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम् इति काशिका।

विशेषः—स्निग्ध-वैदूर्य-नालैः—यहाँ 'स्निग्ध' का अर्थ 'चिकने, चमकते हुए' है। वैदूर्य या वैडूर्य—'विदुर' या 'विडूर' शब्द से बना है। क्योंकि विदूर अथवा विडूर मणि विदूर या विडूर पर्वत से प्राप्त होती है, इसलिए इसका नाम वैदूर्य (वैडूर्य) पड़ गया। विदुर नाम का पर्वत लंका-द्वीप में बताया जाता है। क्षीरस्वामी ने 'विदूर' या 'विडूर' का पर्यायवाची शब्द 'वालवायज' दिया है। वालवायज विदूर पर्वत का नामान्तर प्रतीत होता है। देखिए—कुमा० सं० I २४ 'विदूरभूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयैव।' ऋतु० सं० में भी 'विदूर' शब्द का प्रयोग हुआ है।

हैमैश्छन्ना—इसका पाठान्तर 'हैमैः स्फीता' है, जिसका शब्दार्थ 'सुनहरे कमलों' से भरी अथवा 'परिपूर्ण' है। देखिए—उत्तरमेघ पद्य ११ 'कनक-कमलैः' वल्ल० ने 'हैमैः स्यूता' पाठ दिया है और इस 'स्यूता' की 'प्रोता=संवद्धा' व्याख्या की है। इन पाठों में कोई विशेष अर्थ भेद नहीं होता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यपगतशुचः—वर्षा के प्रारम्भ में हंसों का मानस सरोवर में चले जाना स्वाभाविक ही है, क्योंकि उस समय और सब स्थानों का जल गंदला हो जाता है, परन्तु अलका में यक्ष के घर की बावली बहुत ही रमणीय है और उसका जल सदा स्वच्छ ही रहता है। इसी कारण हंस वहाँ प्रसन्न रहते हैं और उन्हें मानस सरोवर जाने की चिन्ता ही नहीं रहती। देखिए—पूर्वमेघ० ११.

मानसम्—इसके लिए देखिए पूर्वमेघ० ११ का विशेष स्तम्भ।

इस पद्य में 'विशेषोक्ति' अलंकार है। 'विशेषोक्ति' में कारण के होते हुए भी कार्य का न होना बताया जाता है। देखिए—साहित्यदर्पण—सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्निगद्यते।' प्रकृत में मानससरोवर जाने का कारण वर्षा ऋतु होने पर भी हंस वहाँ नहीं जाते हैं ॥१६॥

[1]तस्यास्तीरे [2]रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः[3] ।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे ! चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं[4] त्वां तमेव स्मरामि ॥१७॥

अन्वयः—**तस्याः तीरे पेशलैः इन्द्रनीलैः रचित-शिखरैः कनक-कदली-वेष्टन-प्रेक्षणीयः क्रीडाशैलः (अस्ति)। हे सखे ! उपान्तस्फुरित-तडितं त्वां प्रेक्ष्य (सादृश्यात् तथा) मद्गेहिन्याः प्रियः इति (हेतोः) कातरेण चेतसा तं (क्रीडाशैलम्) एव स्मरामि।**

पदार्थः—पेशलैः—सुन्दर। इन्द्रनीलैः=इन्द्रनील मणियों–नीलमों (Sapphires)–से। रचित-शिखरः=बने हुए शिखर (चोटी) वाला। कनक-कदली-वेष्टन-प्रेक्षणीयः=सुनहले केले के वृक्षों की वाड़ से दर्शनीय (सुन्दर)। क्रीडाशैलः=क्रीड़ापर्वत। सखे !=हे मित्र ! उपान्तस्फुरित-तडितम्=किनारों में बिजली से

१–यस्यास्तीरे—वल्ल०, वि०; २–विहितशिखरः—मल्लि०, वि० आदि। ३– कदलीवेष्टनः वि०, कदलीवेष्टित—सु० वि०, मल्लि०। ४–स्फुटिततडितं —का० बा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चमचमाते हुए । त्वां प्रेक्ष्य=तुझे देख कर । कातरेण चेतसा=अधीर मन से । तम् एव—उसी (क्रीडापर्वत) को स्मरामि=स्मरण करता हूँ ।

भाषानुवादः—उसी (बावड़ी) के किनारे सुन्दर इन्द्रनील मणियों (नीलमों) से बनी हुई चोटी वाला, एक क्रीड़ा-पर्वत है, जो सुनहले केले के वृक्षों की बाड़ के कारण देखते ही बनता है । हे मित्र ! बिजली से चमकते हुए किनारों वाले तुझे देख कर तथा वह मेरी घरवाली को प्यारा है—इस कारण मैं अधीर मन से, उस (क्रीडा-पर्वत) का स्मरण कर रहा हूँ ।

व्याकरणम्—रचितशिखरः=रचितं शिखरं यस्य सः (ब० व्री०) । कनक-कदली-वेष्टन-प्रेक्षणीयः=कनकस्य कदलीनां वेष्टनेन (परिधिना) प्रेक्षणीयः (दर्शनीयः) । क्रीडाशैलः=क्रीडार्थं शैलः (च० तत्पु०) । सखे='सखि' शब्द का सम्बो० एक० । उपान्तस्फुरिततडितम्=उपान्तेषु (प्रान्तभागेषु) स्फुरिताः तडितो यस्य तम् (ब्र० व्री०) । प्रेक्ष्य=प्र+√ईक्ष्, भ्वा० आ० (देखना) +य (ल्यप्) । मद्गेहिन्याः—मम गेहिनी मद्गेहिनी तस्याः (ष० तत्पु०) गेहिनी=गेहम् अस्याः अस्तीति, गेह+इन् (मत्वर्थीय)+ङीप् स्त्रीप्रत्यय । चेतसा—चेतस् (नपुं०) तृ० एक० ।

विशेषः–पेशलैः । पेशल का अर्थ सुन्दर है । देखिए—अमरकोश 'चारौ दक्षे च पेशलः' । कालिदास ने 'पेशल' शब्द को सुन्दर के अर्थ में प्रयुक्त किया है । यह शब्द ग्राम्य होता हुआ भी सम्भवतः उसके काल में प्रयुक्त होता था ।

इन्द्रनीलैः—यह एक बहुमूल्य पत्थर है, जो नीले रंग का होता है। इसे नील या नीलम (Sapphire) भी कहते हैं। देखिए—नैषध० II १०५ 'वैदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरादुत्थितैरंशुदर्भैः ।'

कनक-कदली०—क्योंकि अलका में सुनहले कमल होते हैं, एवं वहाँ पर सुनहले केले के वृक्ष भी बहुलता से पाए जाते हैं इसलिए शिखर पर नीलमों तथा चारों ओर सुनहले केले के वृक्षों के बाड़ के कारण क्रीड़ा-पर्वत देखते ही बनता है । इसका पाठान्तर 'कनककदलीवेष्टनः' है, जिसका अर्थ 'सुनहले केले के वृक्षों की बाड़ वाला' है । इस अवस्था में 'प्रेक्षणीयः' 'क्रीडाशैलः' का विशेषण है और प्रेक्षणीयता–सुन्दरता–के दो कारण हैं—शिखर पर नीलम और चारों ओर कनककदलियों का बाड़ा । दोनों पाठों में भेद इतना ही है कि पुस्तक में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिए गए पाठ के अनुसार पर्वत की दर्शनीयता का कारण 'बाड़' ही है। 'नीलम-वाला' स्वतन्त्र विशेषण है। 'कनककदलीवेष्टित०' एक ओौर पाठ है, जिसका अर्थ सुनहले केले के वृक्ष से घिरा हुआ अतएव दर्शनीय है।

उपान्तस्फुरित-तडितम्—किनारों पर चमकती हुई बिजली वाले। मेघ का यह विशेषण क्रीड़ापर्वत पर केले के वृक्षों की बाड़ से साम्य बताने के लिए है। मेघ तो क्रीड़ा-शैल-सा है और तदन्तर्गत किनारों पर चमकती हुई बिजली क्रीड़ा शैलपर लगे हुए कदली वृक्षों की वाड़-सी है।

तमेव स्मरामि—विद्युद्गर्भ मेघ को देखकर यक्ष को अपने वास-गृह के क्रीड़ाशैल का स्मरण हो जाना स्वाभाविक ही है, क्योंकि क्रीड़ा-शैल ऊँचा और मेघ भी ऊँचा; क्रीड़ा-शैल नीलमों से काला और मेघ अपने स्वाभाविक रंग से काला तथा क्रीड़ा-शैल कनक कदलियों से चमचमाता है तो मेघ भी तडिच्छटा (बिजली के प्रकाश) से स्फुरित है। इस तरह क्रीड़ा-शैल जैसी वस्तु मेघ के अनुभव से क्रीड़ा-शैल की याद आ जाने पर यहाँ 'स्मरणालंकार' है। स्मरणा-लंकार वहाँ होता है जहाँ समान वस्तु के देखने से इष्ट पदार्थ की स्मृति हो जाय। देखिए लक्षण—'सदृशानुभवादन्यस्मृतिः स्मरणमुच्यते'।

निरुक्तकार (जो यास्क से भिन्न मेघदूत का एक टीकाकार है) मेघ में शैलत्व का आरोप करके इसमें 'रूपकालंकार' मानता है। वह 'त्वां तमेव स्मरामि इस प्रकार शब्दान्वय करके 'मैं तुम्हें वही शैल (पर्वत) स्मरण करता हूँ, यह अर्थ करता है, किन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि मेघ प्रत्यक्ष है और उस पर शैलत्वा-रोप करने से मेघ-रूपी शैल का प्रत्यक्ष हो जाने पर 'स्मरामि' बन ही नहीं सकता। स्मरण उसी वस्तु का होता है जो प्रत्यक्ष न हो। 'स्मरामि' से कल्पना करता हूँ—यह अर्थ भी नहीं हो सकता है, क्योंकि कल्पना स्मृति हो ही नहीं सकती ॥१७॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र[1] कान्तः
प्रत्यासन्नौ[2] कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां [3]दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥१८॥

१—तत्र कान्तः=वि०। २—प्रत्यासन्नः—वि०। ३—दौहृद०—का वा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—अत्र (क्रीडाशैले) कुरबकवृतेः माधवीमण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलयः रक्ताशोकः, कान्तः केसरः च (स्तः)। एकः (अशोकः) मया सह तव सख्याः वामपादाभिलाषी, अन्यः (केसरः) दोहदच्छद्मना वदनमदिरां काङ्क्षति।

पदार्थः—अत्र=यहाँ (क्रीडापर्वत पर)। कुरबक-वृतेः=कुरबक की बाड़ वाले। माधवीमण्डपस्य=माधवी (अतिमुक्त) लतागृह के। प्रत्यासन्नौ=समीपवर्ती। चलकिसलयः=हिलते हुए पत्तों वाला। रक्ताशोकः=लाल अशोक वृक्ष। कान्तः=सुन्दर। केसरः=बकुल का वृक्ष। एकः=एक (अर्थात् अशोक)। तव सख्याः=तेरी सखी (मेरी पत्नी) के। वामपादाभिलाषी=बाएँ पैर (के प्रहार) का इच्छुक है। अन्यः=दूसरा (अर्थात् केसर=बकुल का वृक्ष)। दोहदच्छद्मना=दोहद (फूलों को पैदा करने के साधनभूत द्रव्य) के बहाने। वदनमदिराम्=(मेरी पत्नी के) मुख की मदिरा को। काङ्क्षति=चाहता है।

भाषानुवादः—यहाँ (क्रीडापर्वत पर) कुरबक की बाड़ वाले, माधवी (अतिमुक्त) लतागृह के समीप हिलते हुए पत्तों वाला लाल अशोक और सुन्दर बकुल वृक्ष है। एक (अर्थात्—अशोक) मेरे साथ तेरी सखी (मेरी पत्नी) के बाएँ पैर (के प्रहार) का इच्छुक है, तो दूसरा (अर्थात्—बकुल) दोहद (फूलों को पैदा करने के साधनभूत द्रव्य) के बहाने उसके मुख की (मुख से चुल्ली की गई) मदिरा को चाहता है।

व्याकरणम्—कुरबकवृतेः=कुरबकाः एव वृतिः (वेष्टनं) यस्य (ब० व्री०)। माधवीमण्डपस्य=मधौ (वसन्ते) भवाः माधव्यः (अतिमुक्ताः) तासां मण्डपः (लतागृहं) तस्य। 'अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवीलता' इत्यमरः। प्रत्यासन्नौ=प्रति+आ+√सद्, तुदा० प० (जाना)+न (क्त)। चलकिसलयः=चलानि (चञ्चलानि) किसलयानि यस्य (ब० व्री०)। रक्ताशोकः=रक्तश्चासौ अशोकश्च (कर्मधा०)। कान्तः=√कम् भ्वा० आ० (चाहना)+त (क्त)। वामपादाभिलाषी=वामश्चासौ पादः वामपादः तम् अभिलषति इति (उपपद तत्पु०) अभिलाषी=अभि+√लष्, भ्वा० उभ० और दिवा० उभ० (चाहना)+इन्। दोहदच्छद्मना=दोहदस्य छद्मना (ष० तत्पु०); दोहदः=दोहम् आकर्षं ददाति इति—अर्थात् जो अत्युग्र अभिलाषा पैदा करता है। इसी कारण गर्भवती स्त्री की अभिलाषा को दोहद कहते हैं। अधिक परिचय के लिए इस पद्य का विशेष-स्तम्भ देखिए। वदनमदिराम्=वदनगतां मदिराम्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(मध्यमपदलोपी कर्म०) । काङ्क्षति=काङ्क्ष्, भ्वा० प० (चाहना), लट्, प्र० पु० एक० ।

विशेषः—कुरबकवृतेः–कुरबक वसन्त में खिलने वाला गुलाबी रंग का पुष्प है। देखिए—उत्तरमेघ २ 'चूडापाशे नवकुरबकम्' और देखिए—विक्रमो० 'अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरबकं श्यामं द्वयोर्भागयोः'।

माधवीमण्डपस्य—अतिमुक्त-लतागृह कुरबक पुष्प की बाड़ से घिरा हुआ है। अतिमुक्तलता को माधवी इसलिए कहते हैं क्योंकि यह मधु (वसन्त) में पुष्पित होती है।

रक्ताशोकः केसरः च—अशोक वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक वह, जिसमें सफेद फूल लगते हैं और दूसरा वह जिसमें लाल फूल होते हैं। देखिए—'प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा। बहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः ।।' प्रकृत में रक्ताशोक साभिप्राय है, क्योंकि लाल रंग के कारण वह कामोद्दीपक होता है, अतः प्रेमी लोग अपने घरों में लाल रंग के अशोक वृक्ष लगाते हैं। इसी प्रकार कवियों ने केसर (बकुल=मौलसरी) वृक्ष को भी काम-क्रीड़ा में कामोद्दीपक बताया है। इसके फूलों की गन्ध उत्कृष्ट होती है और ये देखने में सुन्दर भी लगते हैं। इन वृक्षों के दोहद के लिए देखिए मल्लि० की उक्ति—'अशोकबकुलयोः स्त्रीपादताडनं गण्डूषमदिरा च दोहदः इति प्रसिद्धिः।'

वामपादाभिलाषी—वाम-पाद से यहाँ वामपाद का प्रहार अभिप्रेत है। 'किसी सुन्दरी के बाँए पैर के प्रहार से अशोक वृक्ष में फूल निकल पड़ते हैं' यह एक परम्परागत धारणा है। देखिए–कुमार० III २६ 'असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि । पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमाशिञ्जित-नूपरेण ।।' और देखिए—मालवि० III १२ 'अकुसुमितमशोकं दोहदापेक्षया वा प्रणिहितशिरसं वा कान्तमार्द्रापराधम् ।।' इसी नाटक के तृतीय अंक में देखिए—"विदूषकः—भवति! न युक्तं नामात्रभवतः प्रियवयस्यस्याशोको वामपादेन ताडयितुम् ··· ।" यक्ष की ओर 'वामपादाभिलाषी' पद से अपनी पत्नी के वाम-पद-संवाहन की इच्छा व्यङ्ग्य होती है। इसके लिए देखिए—अभि० शा० III 'अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।।' इसी तरह अशोक और यक्ष दोनों वामपादाभिलाषी हैं।

अन्यो वदनमदिरां काङ्क्षति—बकुल वृक्ष में प्राचीन धारणा के अनुसार युवतियों के मुख से उगली हुई मदिरा के सिञ्चन से फूल निकलते हैं। देखिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—रत्ना० १८ 'मूले गण्डूषसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या ।' और देखिए—काद० पृष्ठ २२२ (काले द्वारा सम्पादित संस्करण) 'मदकलितकामिनी-गण्डूषसीधुसेकपुलकितबकुलेषु' ।

दोहदच्छद्मना—दोहनं दोहः [√दुह+घञ् (भावे)] । दोहम्=आकर्ष ददाति इति दोहदः (दोह+√दा+क (कर्तरि)=गर्भिणी स्त्री की इच्छा । भानुजी के शब्दों में—'अयं (दोहदः) इच्छामात्रवाची अपि विशेषेण गर्भिणी-च्छायां प्रयुज्यते ।' पार्श्वाभ्युदय तथा कुछ अन्य प्रतियों में 'दोहद' के स्थान में 'दौहृद' पाठ है, जिससे यह कल्पना की जा सकती है कि 'दोहद' शब्द 'दौहृद' का ही अपभ्रंश है । 'दौहृद' की व्युत्पत्ति द्वि+हृद (हृदय)–दो हृदयवाली–से हुई है । गर्भवती स्त्री में दो हृदय होते हैं—एक अपना और दूसरा गर्भस्थ बच्चे का, इसलिए दौहृद से मुख्यतया गर्भावस्था और तब गर्भावस्थावाली स्त्री की इच्छा—अर्थ निकलता है, तथा गौण रूप से किसी भी पदार्थ—वृक्षादि—की इच्छा अर्थ निकलता है । प्रकृत पद्य में 'दोहद' का अर्थ 'प्रसव-कारण संस्कार द्रव्य' है । देखिए शब्दार्णव—'तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् । पुष्पाद्युत्पादनं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया' ॥

संस्कृत के कवियों ने प्रचलित परम्परा के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्षों में फूल उत्पन्न करने के लिए विभिन्न दोहदों का वर्णन किया है । इसके लिए देखिए—'पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः शोकं जहाति बकुलो मुखसीधु-सिक्तः । आलोकनात्कुरवकः कुरुते विकासमालिङ्गितस्तिलक उत्कलिको विभाति' ॥१८॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।
तालैः [1]शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः[2] कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥१९॥

अन्वयः—च (किं च) तन्मध्ये अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः मूले बद्धा, स्फटिक-फलका काञ्चनी वासयष्टिः (अस्ति), याम् शिञ्जावलयसुभगैः तालैः मे कान्तया नर्तितः वः सुहृद् नीलकण्ठः दिवसविगमे अध्यास्ते ।

१—शिञ्जद्वलय०—का० बा० पाठक । सभ्रूभङ्गं करतललयैः for तालैः शिञ्जावलयसुभगैः···। २—नर्तितैः । ३—कान्तया नर्तितो—का० बा० पाठक—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—तन्मध्ये=उन (दोनों वृक्षों) के बीच। अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः=कोमल बाँसों की कान्ति वाले। मणिभिः=पन्नों से। मूले बद्धा=जिसका निचला भाग (वेदिका) बना हुआ है। स्फटिकफलका=स्फटिक-मणि (बल्लोर) के फट्टे—तख्ते—वाली। काञ्चनी=सोने की वासयष्टिः=निवासदण्ड (पक्षियों के बैठने का अड्डा—perch)। याम्=जिस पर। शिञ्जावलय-सुभगैः=कंगनों की झन-झनाहट से मनोहर। तालैः=तालियों द्वारा। मे कान्तया नर्तितः—मेरी प्रियतमा से नचाया गया। वः सुहृत्=तुम्हारा मित्र। नीलकण्ठः=मोर। दिवसविगमे=दिन के ढलने पर। अध्यास्ते=आ बैठता है।

भाषानुवादः—उन (दोनों वृक्षों) के बीच बिल्लोर के फट्टेवाली एक सोने की वास-यष्टि (बैठने का अड्डा) है, जिसका निचला भाग कोमल बांसों की कान्ति वाले पन्नों से बना हुआ है। उस पर कंगनों की झन-झनाहट से मनोहर तालियों द्वारा मेरी प्रियतमा से नचाया जाने वाला तुम्हारा मित्र मोर दिन के ढलने पर आ बैठता है।

व्याकरणम्—तन्मध्ये=तयोर्वृक्षयोर्मध्ये। अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः=न अति-प्रौढानां वंशानां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तैः (ब० व्री०)। बद्धा=√बन्ध् क्र्या० उभ० (बाँधना)+त (क्त) स्त्री०। काञ्चनी=काञ्चनस्य विकारः (कञ्चन+अ। काञ्चन+ई (स्त्री०)। वासयष्टिः=वासाय यष्टिः (च० तत्पु०)। शिञ्जावलयसुभगैः=शिञ्जा=भूषणध्वनिः; तत्प्रधानानि वलयानि शिञ्जावल-यानि (मध्यमपदलोपी कर्म०) तैः सुभगाः (रम्याः) तैः। नर्तितः=√नृत्, दि० प० (नाचना)+णिच्+त। नीलकण्ठः=नीलः कण्ठः यस्य (ब० व्री०)। दिवस-विगमे=दिवसस्य विगमे (ष० तत्पु०) विगम—वि+√गम्+अ। अध्यास्ते=अधि+√आस्, अदा० आ० (बैठना (+लट्।) 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इस सूत्र से 'याम्' में कर्मता होने से द्वितीया हो गई है।

विशेषः—अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः—'प्रौढ' का अर्थ बड़ा है; एवं 'अनतिप्रौढ' का अर्थ जो बहुत बड़ा न हुआ हो। अतिप्रौढ बाँस के वृक्ष पीले पड़ जाते हैं और अनतिप्रौढ बांस कोमल एवं हरे रंग के होते हैं। 'प्रकाश' का अर्थ द्युति=कान्ति है। जिन मणियों से वास-यष्टि की वेदिका बनी हुई थी, वे ऐसे हरे थे जैसे कोमल बाँस होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्फटिक-फलका—यह 'वास-यष्टिः' का विशेषण है अर्थात् ऐसी यष्टि, (डंडा), जिस पर बैठने का फट्टा बिल्लोर का बना हुआ था।

वासयष्टिः—पक्षियों के बैठने का डंडा—अड्डा—होता है। देखिए—हंस-दूत० ४७ 'अलिन्दे यस्यास्ते मरकतमयी यष्टिरमला शयालुर्या रात्रौ मदकल-कलापी कलयति ॥'

शिञ्जावलयसुभगैः–यह 'तालैः' का विशेषण है। 'शिञ्जा' भूषणों की ध्वनि (झनझनाहट) को कहते हैं; देखिए अमरकोश—'भूषणानान्तु शिञ्जितम्'। तथा विक्रमो० IV १४—'नेदं नूपुरशिञ्जितम्'। इसके पाठान्तर 'शिञ्जद्वलय-सुभगैः या 'सिञ्जद्वलय०' हैं। श्री मोरेश्वरे काले 'शिञ्जद्वलयसुभगैः' इस पाठ में शिञ्ज् धातु बताते हैं, किन्तु यह अदा० की आत्मने प० धातु है, अतएव व्याकरणानुसार इसका शत्रन्त 'शिञ्जत्' न होकर शानजन्त 'शिञ्जान' होना चाहिए था। सम्भवतः इसी कठिनता से बचने के लिए मल्लि० ने 'शिञ्जावलय-सुभगैः' पाठ दिया है। वल्ल० जो मल्लि० से प्राचीनतर है, कहता है—'शिञ्जेरात्मनेपदित्वाच्छिञ्जदिति प्रयोगः प्रमादजः। अनित्यो वानुदात्तेन आत्मने-पदविधिः'। सारोद्धा० में शिञ्जद्वलयसुभगैः इस पाठ के सम्बन्ध में ऐसा विवे-चन किया गया है—'शिञ्जतेरात्मनेपदित्वात् शानचा भवितव्यम्। अतः शिञ्ज-दित्यसाधुपदम्। अत्र समाधीयते।√शिजि अव्यक्ते शब्दे। अतएव शिङ्क्ते। पचादित्वादच् (शिञ्जः)। स इवाचरतीति। क्विब्लोपे सति परस्मैपदम्। शिञ्जदिति वर्तमाने शतृ।' श्री वसन्तरामचन्द्र नेरुरकर भी 'शिञ्जत्' और 'सिञ्जत्' को शिञ्ज और सिञ्ज (झनझनाहट) इन शब्दों से नाम-धातु (शिञ्ज इवाचरति) बनाकर उसका शत्रन्त रूप देते हैं।

तालैः शिञ्जावलयसुभगैः—इसका पाठान्तर 'सभ्रूभङ्गं करतललयैः' मोरे-श्वर काले ने दिया है। 'सभ्रूभङ्गम्' के लिए देखिए—पूर्वमेघ पद्य २४ 'सभ्रू-भङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि। 'सभ्रूभङ्गम्' का अर्थ है—तेवड़ी चढ़े हुए, इसका यहाँ क्रियाविशेषण के रूप में प्रयोग हुआ है। 'करतललयैः' में 'लयैः' का अर्थ है—गीतवाद्यपादन्यासानां क्रियाकालयोः साम्यम्' अर्थात्—संगीत में गीत, बाजे तथा पैरों का क्रिया और समय की दृष्टि से चमत्कारपूर्ण साम्य–समन्वय, एवं 'करतललयैः' का अर्थ हुआ 'तालियों द्वारा क्रिया और काल की दृष्टि से साम्य।'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तालैः मे कान्तया नर्तितः—इसके लिए देखिए—उत्तर रा० III १९ 'भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्ति चक्षुः प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या । करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि ॥'

नीलकण्ठः सुहृद्वः—जैसा कि हम उ० मेघ० श्लो० १५ में बता आए हैं—प्राकृतिक पदार्थों–वृक्ष जीवादि–से सम्बन्ध स्थापित करना कालिदास के प्रकृति वर्णन की विशेषता है । देखिए –पूर्वमेघ० १२ 'आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलम् ।'

मल्लि० ने उत्तरमेघ के पद्य १५ (तत्रागारं······) से लेकर पद्य १९ तन्मध्ये च···) तक उदात्त अलङ्कार बताया है, जिसका लक्षण इस प्रकार है —'तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते' अर्थात् जहाँ किसी समृद्ध वस्तु का वर्णन किया जाता है वहाँ उदात्तालङ्कार होता है । उपरोक्त पाँचों पद्यों में 'मरकतमणियों की सीढ़ियाँ, सोने की कंदलियों की बाड़, मणियों की वेदी पर स्फटिक के पट्टेवाली सोने की 'वासयष्टि' आदि अलौकिक समृद्धि का वर्णन है । यहाँ स्वभावोक्ति अथवा भाविक अलंकार नहीं हो सकता है, क्योंकि इनमें लौकिक—वास्तविक—पदार्थों का ही वर्णन होता है, लोकसीमातीत पदार्थों का नहीं । प्रकृत में कवि-प्रतिभा द्वारा अलौकिक ऐश्वर्य की कल्पना की गई है, अतः उदात्तालंकार ही है । अलंकारसर्वस्व में भी इन अलंकारों में परस्पर यही भेद बताया गया है ॥१९॥

एभिः साधो ! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा[1]
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा ।
[2]क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥२०॥

अन्वयः—(हे) साधो ! हृदय-निहितैः एभिः लक्षणैः (तथा) द्वारोपान्ते लिखित-वपुषौ शंखपद्मौ दृष्ट्वा च नूनम् अधुना मद्वियोगेन क्षामच्छायं भवनं लक्षयेथाः । सूर्यापाये (सति) कमलं स्वाम् अभिख्यां न पुष्यति खलु ।

पदार्थः—साधो=हे भद्र, हृदयनिहितैः=हृदय में रखे हुए । एभिः लक्षणैः =इन (१५ वें पद्य से १९ वें पद्य तक वर्णित) चिह्नों से (तथा) । द्वारोपान्ते= (गृह) द्वार के दोनों ओर । लिखित-वपुषौ=चित्रित आकारवाले, चित्रात्मक ।

१—लक्षणीयं—काले (Bombay edn.) । २—मन्दच्छाय—वि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शङ्खपद्मौ=शङ्ख और पद्म निधियों को। दृष्ट्वा=देखकर। नूनम्=निश्चय से। अधुना=अब। मद्वियोगेन= मेरे विरह के कारण। भवनम्=(मेरे) घर को। क्षामच्छायम्=शोभा-विहीन। लक्षयेथाः=तुम पहिचान लेना। सूर्यापाये =सूर्य के चले जाने पर। कमलं=कमल। स्वाम् अभिख्याम्=अपनी शोभा को। न पुष्यति=नहीं धारण करता। खलु=निश्चय से।

भाषानुवादः—हे भद्रे ! हृदय में रखे इन चिह्नों से तथा द्वार के दोनों ओर चित्रित शङ्ख और पद्म निधियों को देखकर तुम अब मेरे वियोग के कारण शोभा-विहीन बने मेरे घर को अवश्य पहचान लोगे। सूर्य के चले जाने पर कमल अपनी शोभा धारण करता ही नहीं, यह निश्चित वात है।

व्याकरणम्—साधो=साधु का सम्बो० एकवचन। 'साधु' का अर्थ भद्र-पुरुष है। हृदयनिहितैः=हृदये निहितैः (स० तत्पु०); निहित=नि+√धा, जुहो० उभ० (धारण करना)+त (क्त)। द्वारोपान्ते=द्वारयोः उपान्ते (ष० तत्पु०)। लिखित-वपुषौ=लिखिते (चित्रिते) वपुषी (आकृती) ययोः तौ (ब० व्री०); लिखित+√लिख् तु० प०+त (क्त)। शङ्खपद्मौ= शङ्खश्च पद्मश्च (इतरे० द्वन्द्व)। दृष्ट्वा=√दृश्, भ्वा० प०। देखना+त्वा। मद्वियोगेन=मम नियोगेन (ष० तत्पु०)। क्षामच्छायम्=क्षामा छाया यस्य तत् (ब० व्री०); लक्षयेथाः=√लक्ष्. चुरा० उभ० (देखना) वि० लिङ् म० पु० एक०। क्षाम=√क्षै, भ्वा० प० (दुर्बल होना)+क्तः (क्षायो मः इस नियम से 'त' को 'न' हो जाता है)। सूर्यापाये=सूर्यस्य अपाये (ष० तत्पु०)। पुष्यति+√पुष्, दिवा० प० (पुष्टि करना, बढ़ाना) लट् प्र० पु० एक०।

विशेषः—शङ्खपद्मौ–कुबेर की नौ निधियों में से दो निधियाँ। इन निधियों के नाम ये हैं—महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खौ कमठकच्छपौ। मुकुन्दनीलाः खर्वश्च कुबेरनिधयो नव॥ शब्दार्णव में ये नौ निधियाँ वर्णित हैं, परन्तु इसमें इस पद्य के पहले पाद के स्थान में यह पाठ-भेद है–'पद्मोऽस्त्रियाँ महापद्मः' इत्यादि। कुछ विद्वान् 'कुन्द' के स्थान में 'नन्द' पढ़ते हैं। यक्ष-पत्नी ने दरवाजे के दोनों ओर इन दो निधियों को पुरुषाकार में चित्रित कर रखा था, क्योंकि ये माङ्गलिक होते हैं और इनको चित्रित करके वह बेचारी अपने पति के आगमन-दिवस की प्रतीक्षा कर रही थी। देखिए—सारो० "तौ हि अधोभागे पुरुषरूपौ गृहद्वारशाखासु मङ्गलार्थमालिख्येते।" "तान्त्रिक सिद्धान्तानुसार निधियाँ व्यक्तित्वसम्पन्न बनाई जाती हैं और विशेप विशेष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवसरों पर धन-सम्पत्ति की मूर्ति भगवती लक्ष्मी की तरह भक्ति-भाव के साथ पूजी जाती हैं।"—विल्सन।

क्षामच्छायम्—इसके स्थान में 'मन्दच्छायं' पाठान्तर है, जिसका अर्थ—'कम हुई शोभा वाले' है। अभिख्यां न पुष्यति–देखिए, रघु० I. ४६ 'काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः'। और देखिए—कुमार० 'कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलाधरोष्ठः। सु० वि० 'पुष्यति' का अर्थ 'धारयति' करता है। देखिए—वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभाम्।'

इस पद्य में 'प्रतिवस्तूपमा' अलंकार है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—'प्रतिवस्तूपमा सा स्याद् वाक्ययोर्गम्यमानयोः। एकोऽपि धर्मः सामान्यः यत्र निर्दिश्यते पृथक् ॥' अर्थात् जहाँ उपमेय और उपमान के पृथक् पृथक् वाचक हों, सादृश्य वाच्य न होकर गम्य हो और सामान्यधर्म एक होता हुआ भी पृथक् पृथक् शब्दों के द्वारा निर्दिष्ट हो, वहाँ 'प्रतिवस्तूपमा' होती है। प्रकृत (प्रस्तुत) में 'मद्वियोगेन भवनं' 'क्षामच्छायं' उपमेय वाक्य है और 'कमलं 'सूर्यापाये स्वाम् अभिख्यां न पुष्यति' उपमान वाक्य हैं। सादृश्य-वाचक शब्द कोई भी नहीं है। सामान्यधर्म 'क्षामच्छायत्व' और 'स्वाभिख्यायाः न पोषणम्' वस्तुतः एक ही है, किन्तु पर्याय-शब्दों से पृथक्-पृथक् बताया गया है।

इस पद्य का सारांश मल्लि० ने इस प्रकार दिया है–'सूर्यविरहितं पद्ममिव पतिविरहितं गृहं न शोभते' ॥२०॥

गत्वा सद्यः कलभतनुतां [1]शीघ्रसम्पातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसित[2]निभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥२१॥

अन्वयः—(हे मेघ!) **शीघ्रसंपातहेतोः सद्यः कलभतनुतां गत्वा प्रथमकथिते रम्यसानौ क्रीडाशैले निषण्णः (सन्) अल्पाल्पभासं खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् अन्तर्भवन-पतितां कर्तुम् अर्हसि।**

पदार्थः—शीघ्रसम्पातहेतोः=जल्दी-जल्दी प्रवेश करने के निमित्त। सद्यः—तत्काल। कलभतनुताम्=हाथी के बच्चे के शरीर के आकार को। गत्वा=प्राप्त (धारण) कर। प्रथम-कथिते=पूर्व-वर्णित। रम्यसानौ=सुन्दर चोटी

१—तत्परित्राण०—वि०। २–विलसन,–मो० काले।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाले; क्रीडाशैले=क्रीडा-पर्वत पर। निषण्णः=बैठा हुआ। अल्पाल्पभासम्=मन्द-मन्द-सा प्रकाश वाली। खद्योतालीविलसितनिभाम्=जुगनुओं की पंक्ति की टिमटिमाहट के समान। विद्युदुन्मेष-दृष्टिम्=बिजली की चमक की निगाह को, विद्युच्छटा-रूपी दृष्टि को। अन्तर्भवन-पतितां कर्तुम्=घर के अन्दर डालने के। अर्हसि=योग्य हो।

भाषानुवादः—(घर में) शीघ्र प्रवेश करने के निमित्त तत्काल हाथी के बच्चे का सा (छोटा) आकार धारण करके, पूर्वोक्त सुन्दर शिखरवाले क्रीड़ा-पर्वत पर बैठे हुए तुम मन्द-मन्द प्रकाशवाली जुगुनुओं की पंक्ति की टिमटिमाहट के समान अपनी विद्युच्छटा-रूपी दृष्टि घर के अन्दर डालना।

व्याकरणम्—शीघ्रसम्पातहेतोः=शीघ्रं यथा स्यात् तथा यः सम्पातः (प्रवेशः) स एव हेतुः तस्य। 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति 'षष्ठी'। 'सम्पातः पतने वेगे प्रवेशे वेद-संविदे' इति शब्दार्णवः। सद्यः=अव्यय। कलभतनुताम्=कलभस्य (हस्तिशावकस्य) तनुः इव तनुर्यस्य (ब० व्री०) तस्य भावः तत्ता ताम्। कलभ+तनु+ता (तल्) भावे। प्रथमकथिते=प्रथमं कथिते। यह 'क्रीडाशैले' का विशेषण है। रम्यसानौ—रम्यः सानुः यस्य सः तस्मिन्, (ब० व्री०)। क्रीडाशैले=क्रीडायाः शैलः क्रीडाशैलः (च० तत्पु०) तस्मिन्। निषण्णः=नि+√सद्, तुदा० प० (बैठना)+न (क्त); नि उपसर्ग के योग में सद् के 'स' को 'ष' और 'न' को ण। अल्पाल्पभासम्=अल्पा अल्पा (अल्पप्रकारा) भाः (प्रकाशः) यस्याः ताम् (ब० व्री०)। 'प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्विरुक्तिः अथवा अल्पात् अल्पा (अल्पाल्पा) भाः यस्याः ताम्। खद्योतालीविलसित०—खे (आकाशे) द्योतते असौ खद्योतः; ख+√द्युत्, भ्वा० आ० (चमकना)+अ (अच्) कर्तरि, अथवा खं द्योतयन्ति (अण्) खद्योताः तेषाम् आली (पंक्तिः) तस्या विलसित (स्फुरित) निभां सदृशीम्। विद्युदुन्मेष-दृष्टिम्=विद्युतः उन्मेषः (प्रकाशः) ष० तत्पु० स एव दृष्टिः (कर्मधा०) ताम्। अन्तर्भवन-पतिताम्=भवने इति अन्तर्भवनम् (विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः), अथवा अन्तः स्थितं भवनम् अन्तर्भवनम् (मध्यमपदलोपी स०) अथवा भवनस्य अन्तः इति अन्तर्भवनम्। (अव्ययी० स०) अर्हसि=√अर्ह्, भ्वा० प० (योग्य होना), लट् म० पु० एक०।

विशेषः—शीघ्रसम्पातहेतोः—मल्लि० 'सम्पात' का 'प्रवेश' अर्थ करता है—'शीघ्रप्रवेशार्थमित्यर्थः', परन्तु शब्दार्णव के अनुसार मोरेश्वर काले इसको

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'पतन' (उतरना) के अर्थ में लेकर इस वाक्यांश का अर्थ 'जल्दी उतर जाने के निमित्त' करता है। यह एक स्वाभाविक बात है कि जब कोई पदार्थ दब कर अपेक्षाकृत छोटे आकार में परिणत हो जाता है, तब वह ज्यादा ठोस बन जाता है और पूर्वापेक्षया और जल्दी गिरता है। इसलिए बृहद् मेघ का हाथी के बच्चे-के से छोटे ठोस आकार का बन जाने पर शीघ्र उतर पड़ना युक्ति-युक्त ही है।

कलभतनुताम्—यहाँ कलभ (हाथी के बच्चे) को उपमान बनाया गया है, क्योंकि दोनों में ऊँचाई और श्यामवर्णता में समानता है। मेघ इच्छानुसार कई प्रकार की आकृतियों को धारण कर लेता है। अतः पूर्वमेघ० में उसे 'कामरूपं' कहा गया है। 'तनुताम्' में 'तनु' का अर्थ यहाँ 'शरीर' न करके 'लघु' भी किया जा सकता है, अर्थात्—हाथी के बच्चे की सी लघुता—छोटेपन—को। 'प्रथम-कथिते क्रीडाशैले'—देखिए, उत्तरमेघ १७ 'तस्यास्तीरे रचितशिखर…'

अल्पाल्पभासम्—यहां प्रकारार्थ में द्विरुक्ति है। अर्थात् मन्द-मन्द प्रकार की 'भाः' (चमक)। अतिशय अर्थ में भी द्विरुक्ति हो सकती है, अर्थात् अतिमन्द।

खद्योतालीविलसितनिभाम्—निभ, संकाश, नीकाश आदि शब्द जब समास में उत्तर-पद हों, तो उनका अर्थ 'सदृश या समान' होता है। देखिए—अमर०—स्युरुत्तरपदे त्वमी। निभसंकाशनीकाश-प्रतीकाशोपमादयः।' इसका विग्रह 'विलसितेन सदृशी इति० विलसितनिभा (नित्यसमास)' होगा। यहाँ विलसित के स्थान में 'विलसन' पाठान्तर भी है, जिससे अर्थ में कोई भेद नहीं।

यहाँ पर 'विल्सन' महोदय ने यह विचार प्रकट किया है–"झाड़ियों की घनी छाया के वैपरीत्य में जुगुनुओं की कोमल तथा टिमटिमाती चमक का बहुत ही रमणीय दृश्य ईस्ट और वेस्ट इण्डीज में सर्व-साधारण रहता है ॥२१॥

तन्वी श्यामा [1]शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी[2]
मध्ये [3]क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र[4] स्याद्युवतिविषये[5] सृष्टिराद्येव[6] धातुः ॥२२॥

१—शिखरदशना—वि०, सारी, सु० वि०, श्यामा शिखरदशना–सारो०। २–धरौष्ठी मो० काले। ३–क्षीणा–मो० काले। ४–आस्ते–म० सि०। ५–युवतिविषया—जा० बा० पाठक। ६–आद्यैव—म० सि०, वल्ल०, वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—तन्वी, श्यामा, शिखरिदशना, पक्व-बिम्बाधरोष्ठी मध्ये क्षामा, चकित-हरिणीप्रेक्षणा, निम्ननाभिः श्रोणीभारात् अलसगमना, स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा युवतिविषये धातुः आद्या सृष्टिः इव या तत्र स्यात् (ताम् परिमितकथां जानीथाः इत्युत्तरपद्येन सम्बन्धः) ।

पदार्थः—तन्वी=दुबली । श्यामा—युवति । शिखरिदशना=नुकीले (तीखे) दांतों वाली । पक्वबिम्बाधरोष्ठी=पके हुए बिम्ब (फल) के समान निचले होंठ वाली । मध्ये क्षामा=कमर में पतली, पतली कमर वाली । चकित हरिणीप्रेक्षणा=भयभीत हरिणी के समान नयनों वाली । निम्ननाभिः=गहरी नाभि वाली । श्रोणीभारादलसगमना=नितम्ब-भार के कारण मन्द-मन्द=धीरे धीरे चलने वाली । स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा=स्तनों से कुछ झुकी-सी । युवतिविषये=युवतियों के विषय में —अर्थात् स्त्रियों में । धातुः=ब्रह्मा की । आद्या सृष्टिः इव=सब से पहली रचना-सी । या तत्र स्यात्=जो वहां हो—(उसे···) ।

भाषानुवादः—दुबली-पतली, युवावस्था को प्राप्त नुकीले, (तीखे) दांत, पके हुए बिम्ब (फल) के समान निचले होंठ, पतली कमर, भयभीत हरिणी के समान नयन, गहरी नाभि, एवं नितम्ब-भार से मन्द-मन्द गतिवाली, स्तनों से कुछ झुकी-सी तथा युवतियों में ब्रह्मा की प्रथम रचना सी जो (स्त्री) वहां (घर में) हो, (उसे··अगले पद्य से सम्बन्ध है अर्थात् उसे मेरी पत्नी समझना) ।

व्याकरणम्–तन्वी=तनु+ङीष् । 'वोतो गुणवचनात्' इति ङीष् । शिखरिदशना–शिखराण्येषां सन्तीति शिखरिणः । शिखर+इन् (मत्वर्थे) तथाभूताः दन्ताः यस्याः सा (ब० व्री०) । पक्वबिम्बाधरोष्ठी=पक्वबिम्बफलमिव (कर्मधा०) अधरोष्ठः यस्याः सा (ब० व्री०), अथवा बिम्बफलाधरोष्ठी इति बिम्बाधरोष्ठी (मध्यमपदलोपी स०) । √अधरोष्ठः=अधरश्चासौ ओष्ठश्च (कर्मधा०) चकितहरिणीप्रेक्षणा=चकिता हरिणी चकितहरिणी (कर्मधा०) चकितहरिण्या इव प्रेक्षणानि (दृष्टयो) यस्याः सा (ब० व्री०) । श्रोणीभारात्=श्रोण्याः (नितम्बस्य) भारः तस्मात् । अलसगमना=अलसं गमनं (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) । स्तोकनम्रा=स्तोकं नम्रा । यहां स्तोकम् अव्यय है । युवतिविषये=युवतयः एव विषयः तस्मिन् (कर्मधा०) धातुः=दधाति इति धाता तस्य (√धा, जुहो० उभ० (धारण करना)+तृच्), ष० एक० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः—इस पद्य पर विल्सन कहते हैं—"अब हम इस सुन्दर लघु काव्य (मेघदूत) के सबसे अधिक आनन्दप्रद भाग अर्थात् यक्षपत्नी के वर्णन की ओर अग्रसर होते हैं। संभवतः लोग मुझे भी उन आलोचकों में गिनें जो श्री पिंकरटन-जैसे लेखक की अनुदार तथा अभिमान-भरी आलोचना के अनुसार यह सिद्ध करते हैं कि "भारत की जलवायु जहां कल्पना-शक्ति को स्फूर्ति देने वाली है वहां विचार-शक्ति को कुण्ठित कर देती है" किन्तु ऐसे काव्य-निन्दकों की जरा भी पर्वाह न करके मेरा अपना मत यह है कि हमारे पास क्या तो श्रेण्य (Classical) कविता और क्या आधुनिक (Modern) कविता—कहीं भी ऐसे नमूने नहीं मिलेंगे जिनमें इससे अधिक कोमलता अथवा सुकुमार भावना है।"

श्यामा—मल्लि० के अनुसार श्यामा 'युवति' को कहते हैं, देखिए उत्पलमाला—"श्यामा यौवनमध्यस्था"। कुछ व्याख्याकार 'श्यामा' से विशेष प्रकार की स्त्री को लेते हैं। इस सम्बन्ध में भट्टिकाव्य का व्याख्याकार (V१८) निम्न श्लोक उद्धृत करता है-'शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे या सुखशीतला। तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते॥' मोरेश्वर काले ने श्यामा का अर्थ—'अप्रसूता' (वह स्त्री जिसके अभी बच्चा नहीं हुआ) दिया है। इसके लिए देखिए—भवेत् श्यामा तन्वी च नवयौवना' अथवा—'अप्रसूता भवेच्छयामा श्यामा षोडशवार्षिकी। श्यामा च श्यामवर्णा च श्यामा मधुरभाषिणी॥'

शिखरिदशना—सारो० में इसका पाठान्तर 'अशिखरिदशना' है, जिसकी व्याख्या इस प्रकार की है—"अविषमदशना (अर्थात् एक-समान दांतों वाली) इत्यर्थः" शिखरिदशना पाठ पर सारो० ने "अथ च शिखरं पक्वदाडिमबीजाकारं माणिक्यं तद्वदुज्ज्वलतया दर्शनाः दन्ता यस्याः सा इत्यधरौष्ठरागित्वम्" यह अर्थ दिया है। मल्लि० ने 'शिखरिदशना' पर टीका करते हुए सामुद्रिक शास्त्र के दो पद्य उद्धृत किए हैं—'स्निग्धाः समानरूपाः सुपङ्क्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः। दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम्॥' 'ताम्बूलरसरक्तेऽपि स्फुटभासः समोदयाः। दन्ताः शिखरिणो यस्या दीर्घं जीवति तत्प्रियः॥' इससे यह निश्चित है कि नुकीले दांतों वाली स्त्री भाग्यवती होती है और उसका पति चिरायु होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पक्वबिम्बाधरोष्ठी—देखिए—अभि० शा० VI ३० 'बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर प्रियायाः त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्।' और देखिए कुमा० III ६७ 'उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।' उत्तरमेघ ७ में भी बिम्बाधरी स्त्रियों का वर्णन है—'नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणाम्'। आंग्लभाषा में भी होंठ की सुन्दरता बताने के लिए Cherrylip इस प्रकार कहा जाता है। इसकी उपमा 'चैरी' (Cherry)—एक प्रकार के पहाड़ी वृक्ष के फल से, जो लाल लाल होता है, दी जाती है।

मध्ये क्षामा—इसका अर्थ 'कृशोदरी' है। देखिए मालवि० I 'मध्यः पाणिमितः'।

चकितहरिणीप्रेक्षणा—मुग्धा नायिका की आँखें प्रायः डरी हुई हरिणी के समान होती हैं। देखिए—उत्तर० III २८—'त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः'। मल्लि० इस पद्य पर टीका करता हुआ लिखता है—'एतेनास्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते' और 'रतिरहस्य' की यह पंक्ति उद्धृत की है—'चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे' इति। पद्मिनी का लक्षण इस प्रकार है—'भवति कमलनेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा अविरलकुचयुग्मा चारुकेशी कृशाङ्गी। मुदुवचनसुशीला गीतवाद्यानुरक्ता सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा॥' चार प्रकार की स्त्रियों—पद्मिनी, हस्तिनी, शङ्खिनी और चित्रिणी—में पद्मिनी प्रथम जाति की स्त्री होती है।

निम्ननाभिः—गहरी नाभिवाली। इससे स्त्रियों में "नारीणां नाभिगाम्भीर्यात् मदनातिरेकः" इस कामसूत्रानुसार कामवासना का आधिक्य पाया जाता है। देखिए—दशकुमार पूर्व पी० प्र० उच्छ्वास—'गङ्गावर्तसनाभिर्नाभिः।'

श्रोणीभारादलसगमना—मन्द-मन्द चलने का कारण नितम्ब-भार है, न कि कोई शारीरिक दोष। देखिए— अभि० शा० II २ 'यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।' और देखिए—अमरुश० ३४, 'सा कान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयम्।' कुमार० I में भी इसी प्रकार का वर्णन है—'न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः।'

स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा—स्तन-भार के कारण कृशोदरी के लिए किंचिन्मात्र झुक जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। संस्कृत साहित्य में यह प्रायः सौंदर्य का चिह्न माना जाता है। देखिए—कुमार० III ५४. 'आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्याम्'। और देखिए—रत्ना० I १. 'मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रताम्'।

युवतिविषये सृष्टिराद्येव—युवतियों के विषय में वह (मेरी पत्नी) मानो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विधाता (ब्रह्मा) की सर्व प्रथम रचना हो। शिल्पियों (Artists) में प्राय: देखा जाता है कि वे अपने पहले निर्माण में विशेष प्रयत्न के कारण अच्छा सौन्दर्य लाते हैं, इसलिए सौन्दर्य में वह प्रथम सृष्टि-सी लगती है। यहां 'युवतिविषया' पाठान्तर मिलता है, जिसका विग्रह 'युवतयः विषयः यस्याः सा (ब० व्री०)' करके उसे सृष्टि का विशेषण बनाया गया है; अर्थ में कोई भेद नहीं पड़ता। 'इव' शब्द यहाँ उत्प्रेक्षा का वाचक है। अतः इस पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है। देखिए—अभि० शा० I १ 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या' (शकुन्तला) तथा II ९ 'स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।' और देखिए मालवि० II ३। नैषध० VII १५ भी 'पुराकृतिस्त्रैण-मिमां विधातुमभूद्विधातुः खलु हस्तलेखः'। विल्सन महोदय ने इस विषय में मिल्टन के Paradise Lost IX 896 की यह पंक्ति उद्धृत की है—"O Fairest of creation! last and best of all God's works" ॥२२॥

तां [1]जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
[2]गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२३॥

अन्वयः—सहचरे मयि दूरीभूते (सति) चक्रवाकीम् इव एकाम् परिमित-कथाम् तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः। गाढोत्कण्ठां बालाम् एषु गुरुषु दिवसेषु गच्छत्सु (सत्सु) शिशिर-मथितां पद्मिनीं वा अन्यरूपां जातां मन्ये।

पदार्थः—सहचरे मयि=मुझ साथी के। दूरीभूते (सति)=दूर होने पर। चक्रवाकीम् इव एकाम्=चकवई के समान अकेली। परिमितकथाम्=कम बोलने वाली। ताम्=उसको। मे द्वितीयं जीवितम्=मेरा दूसरा जीवन (प्राण)। जानीथाः=जानना। गाढोत्कण्ठाम्=अत्यधिक उत्सुकता—प्रबल मानसिक विरह-वेदना वाली। बालाम्=बालिका को। एषु=इन। गच्छत्सु गुरुषु दिव-

१—जानीथाः-का० बा० पाठक। २—गाढोत्कण्ठागुरुषु—मोरे० माले०। गाढोत्कण्ठा··बाला जाता· शिशिरमथिता पद्मिनीवान्यरूपा—का० बा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेषु=(विरह के कारण) बीतते—गुजरते हुए भारी दिनों में। शिशिरमथिताम्=शीत से पीडित, पाले की मारी हुई। पद्मिनीं वा=कमलिनी के समान। अन्यरूपां जाताम्=कुछ और ही हुई, कुछ की कुछ बनी हुई। मन्ये=अनुमान करता हूँ।

भाषानुवादः—मुझ सहचर के दूर होने पर चकवी के समान अकेली (अत एव) बहुत कम बोलने वाली उसे तुम मेरा दूसरा जीवित—मेरी प्राण-प्रियतमा —समझना। मैं अनुमान करता हूँ कि अत्यधिक मानसिक विरह-व्यथा वाली लड़की बीतते हुए (विरह के कारण) भारी (हुए) इन दिनों में पाले से मारी हुई कमिलिनी के समान कुछ की कुछ हो गई होगी।

व्याकरणम्—सहचरे=सह चरतीति सहचरः सह+√चर् (भ्वा० प०) +अच् (कर्त्तरि। दूरीभूते=अदूरः दूरः सम्पद्यमानः भूतः इति दूर+च्वि+√भू+त (क्त), सप्त० एक० (सत् सप्तमी)। परिमितकथाम्=परिमिता कथा वाक् यस्याः सा ताम् (ब० व्री०); परिमित=परि√मा ब्रचा० आ०+ +त। जानीथाः=√ज्ञा क्र्या० उभ० (जानना)' विधिलिङ् आत्मने० मध्य० पु० एक०। गाढोत्कण्ठाम्=गाढा उत्कण्ठा यस्याः सा ताम् (ब० व्री०)। एषु दिवसेषु गच्छत्सु (सत् सप्तमी)। गच्छत्सु=√गम् (गच्छ्) भ्वा० प० (जानना) +अत् सप्त० बहु०। शिशिरमथिताम्=शिशिरेण मथिताम्। मथित=√मन्थ् क्र्या० प० (विलोडन करना)+त (क्त)। पद्मिनीम्=पद्म+इन् (मतुवर्थ)+ई (ङीप् स्त्रियाम्) द्वि० एक०। अन्यरूपाम्=अन्यत्-रूपम् अथवा अन्यस्याः इव रूपं यस्याः सा अन्यरूपा ताम् (ब० व्री०)। जाताम्=√जन्, दिवा० आ० (पैदा होना)+त (क्त)+आ (स्त्रियाम्) द्वि० एक०। मन्ये= दिवा० आ० (मानना), लट् उत्त० पु० एक०।

विशेषः—चक्रवाकीम्—प्रसिद्ध है कि चकवा और चकवी का जोड़ा दिन के समय तो साथ-साथ रहता है, किन्तु रात होने पर वे दोनों एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। दोनों रात के समय किसी नदी या अन्य जलाशय के आर-पार तटों पर स्थित होकर एक दूसरे को आवाज देते रहते हैं। रात के समय इनके वियोग का कारण किसी मुनि का शाप बताया जाता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार इन्होंने सीता के वियोग में रोते हुए रामचन्द्र का उपहास किया था। देखिए—काद० पृ० ४६ (मोरेश्वरकाले द्वारा सम्पादित) 'रामशापग्रस्तानीव चक्रनाम्नां मिथुनानि'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साहित्य में इनका स्थिर दाम्पत्य-प्रेम आदर्श माना जाता है। देखिए—विक्रमो० IV २० 'सरसि नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहां ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुकः।' और देखिए—रघु० III २४ 'रथाङ्गनाम्नोरिव भाव-बन्धनम्। 'अभि० शाकु० III 'चक्रवाकवधूके! आमन्त्रयस्व सहचरम्। 'उप-स्थिता रजनी' पुनः अभि० शाकु० IV १६ 'एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाद-दीर्घतराम्।'

परिमितकथम्—पति के वियोग में पतिव्रता स्त्री को सामाजिक सम्पर्क छोड़ देना पड़ता है; फलतः उसे किसी से बोलने चालने का अवसर बहुत कम रहता है। साथ ही ऐसी अवस्था में उसे आभूषण तथा चटकीले-भड़कीले या उजले वस्त्र त्याग देने पड़ते हैं एवं शारीरिक शृंगार भी छोड़ देना होता है। देखिए—याज्ञ० स्मृ० 'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं पर-गृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका॥' इस सम्बन्ध में यक्षपत्नी भी एक पतिव्रता और कालिदास की अन्य नायिकाओं के ही समकक्ष है। कवि ने उत्तर मेघ के पद्य २३ से ३३ तक उसका बड़ा मार्मिक चित्रण किया है एवं उसके लिए 'साध्वी' शब्द का प्रयोग किया है। देखिए—उत्तरमेघ० २८ "मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे।"

मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः—देखि ए—उत्तररामचरित १६ III 'त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्' और मालवि० III ७ 'नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति।'

गाढोत्कण्ठाम्—प्रबल विरह-वेदना वाली। उत्कण्ठा में प्रिय अथवा प्रिया से मिलने की उत्कट इच्छा और न मिलने के कारण उत्कट वेदना का सम्मि-श्रण रहता है। 'उत्कण्ठा' का इस प्रकार लक्षण करते हैं:—रागेष्वलब्ध-विषयेषु वेदना महती तु या। संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः॥ अर्थात् जिससे प्रेम हो, उसके न मिलने पर मन में ऐसी वेदना होने लगती है कि जिससे शरीर सूख जाता है; देखिए—मालती मा० I १५ "गाढोत्कण्ठा ललितलुलितैरङ्गकैस्ताम्यतीव"। विरह-वेदना में दिन का बड़ा अनुभव होना स्वाभाविक ही है; देखिए—विक्रमो० 'विरहदीर्घव्रतं बिभर्ति।' अभि० शा० IV 'गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।'

'गाढोत्कण्ठां गुरुषु' का पाठान्तर 'गाढोत्कण्ठागुरुषु' है। इसमें यह 'बाला' का विशेषण बनकर 'दिवसेषु' का विशेषण बनेगा, जिसका अर्थ 'अत्यधिक उत्कण्ठा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के कारण भारी हुए' है। यह पाठ अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि इससे दिवसों के 'गुरु' होने का कारण अभिहित हो जाता है अन्यथा वह गम्य ही रहेगा।

शिशिरमथिताम्—यहाँ 'शिशिर' के दो अर्थ सम्भव हैं, शीतऋतु और हिम (पाला)। मल्लि० 'शिशिर' का अर्थ शीत ऋतु लेता है, परन्तु इसका यहाँ पाला अर्थ भी लिया जा सकता है, क्योंकि पाला कमलों को मार देता है; देखिए–सुभाषित–वचन 'पद्मानां शिशिरो भयम्'। यहाँ शिशिर का अर्थ-'शीत' है। हिम व तुहिन के अर्थ के लिए निम्न उदाहरण देखिए–'हिमसेक-विपत्तिरत्र में नलिनी पूर्वनिदर्शनं गता' रघु० VIII ४५। 'विभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपराजये' रघु० XVI। 'हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसन-परम्परया निपीडयमाना। सहचररहितेन चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना॥' वा० रामा० सुन्दर० १६–३०।

पद्मिनी वा—कमलिनी के समान। यहाँ 'वा' का अर्थ 'इव' (समान) है। 'वा' अव्यय शब्द है जो निम्न अर्थों में प्रयुक्त होता है—(१) समुच्चय (और, अन्य) (२) उपमा (समान) (३) विकल्प (या, अथवा)। देखिए–वानर शब्द जो 'वा (इव) नरः' इन दो शब्दों के योग से बना है। बन्दर को वानर इसलिए कहते हैं क्योंकि वह मनुष्य के समान होता है। 'उपमायां विकल्पे वा' इत्यमरः।

इस पद्य में उपमाओं की संसृष्टि है॥२३॥

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया[1]
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
[2]हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं [3]त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति॥२४॥

अन्वयः—प्रबल-रुदितोच्छून-नेत्रं, निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्नवर्णा-धरोष्ठं हस्तन्यस्तं, लम्बालकत्वात् असकल-व्यक्ति तस्याः प्रियायाः मुखम् त्वदनुसरणक्लिष्ट-कान्तेः इन्दोः दैन्यं बिभर्ति नूनम्।

पदार्थः—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्=अत्यधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला। निःश्वासानाम् अशिशिरतया=साँसों के गरम-गरम होने के कारण। भिन्नवर्णा-

---

१—बहूनां—का० बा० पाठक। २–हस्ते न्यस्तं—वि०। ३–त्वदुपगमन० स० ती०। त्वदुपसरण०–वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धरोष्ठम्=फीके पड़े रंग का निचले होंठ वाला । हस्तन्यस्तम्=हाथ पर रखा हुआ । लम्बालकत्वात्=लटकती लटों के कारण । असकलव्यक्ति=संपूर्ण (रूप से) न दिखाई देने वाला । तस्याः प्रियायाः मुखम्=उस प्रियतमा का मुख । त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः=तेरा पीछा करने से हत-प्रभ–फीकी–पड़ी कान्तिवाले । इन्दोः=चाँद की । दैन्यम्=दीनदशा को । नूनम्=निश्चय से । विभर्ति=धारण करता है ।

भाषानुवादः—अत्यधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों एवं साँसों के गरम-गरम होने के कारण फीके पड़े हुए रंग का निचले होंठवाला, हाथ पर रखा हुआ, (तथा) लटकती लटों के कारण पूरा-पूरा न दिखाई देने वाला, उस प्रियतमा का मुखड़ा तेरा पीछा करने—ढँक देने—से हत-प्रभ हुए चाँद की दीन दशा को धारण कर रहा होगा—यह पक्का निश्चय है ।

व्याकरणम्—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्=प्रबलं यत् रुदितं तेन उच्छूने नेत्रे (यस्मिन्) तत् (ब० व्री०) । उच्छून=उद्+√श्वि, भ्वा० प० (बढ़ना) +न (क्त, कर्त्तरि) न से पूर्व 'श्वि' के व् को 'उ सम्प्रसारण होकर दीर्घ ऊ' हुआ । अशिशिरतया=शिशिरस्य भावः शिशिरता न शिशिरता अशिशिरता (नञ् तत्पु०) तया । भिन्नवर्णाधरोष्ठम्=भिन्नः वर्णो यस्य सः (ब० व्री०) भिन्नवर्णः अधरोष्ठः यस्मिन् तत् (ब० व्री०) हस्तन्यस्तम्=हस्ते न्यस्तम् (स० तत्पु०) । नि+√अस्, दिवा० प०+त । लम्बालकत्वात्=लम्बाः अलकाः यस्मिन् तत् (ब० व्री०) तस्य भावः तत्त्वम् तस्मात् । असकलव्यक्ति=न सकला व्यक्तिः यस्य तत् (ब० व्री०) । त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः=तव अनुसरणेन (अनुगमनेन) क्लिष्टा कान्तिः (शोभा) यस्य तथाभूतस्य (ब० व्री) । दैन्यम्—दीनस्य भावः दैन्यम् दीन+य(भावे) । विभर्ति=√भृ, जुहो० उभ० (धारण करना) लट् प्र० पु० एक० । नूनम्=अव्यय । 'नूनं तर्केऽर्थनिश्चये' इत्यमरः ।

विशेषः—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्—व्याकरणस्तंभ में यह बताया जा चुका है कि 'उच्छून' शब्द उद् उपसर्ग-पूर्वक श्वि धातु का क्तान्त रूप है, जिसमें 'श्वि' के व् को 'उ' सम्प्रसारण होकर पुनः दीर्घ हुआ । इस पर मल्लि० कहता है—यह व्युत्पत्ति 'प्रामादिकी होने के कारण त्याज्य है, क्योंकि 'वचिस्वपियजादीनां किति' सूत्र के अनुसार 'व्' अन्त्य होना चाहिए, परन्तु 'श्वि' धातु में 'इ' अन्त्य है । अतः इस अवस्था में यह सूत्र लागू नहीं होता । एवं 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस सूत्र से 'ऊठ्' आदेश करके रूपसिद्धि करता है। भाव-साम्य के लिए देखिए —दशकु० VI 'अनवरतरुदितोच्छूनताम्रदृष्टिः' और देखिए—स्वप्नवा० I १४ 'सततरुदितक्षामनयनः'।

निःश्वासानाम् अशिशिरतया—वियोगावस्था में निश्वास या श्वास का गरम होना स्वाभाविक ही है। शेक्सपीयर ने 'As You Like It' नाटक में विरही प्रेमी का वर्णन 'Sighing like a furnace' अर्थात् 'भट्टी के समान आहें भरता हुआ' किया है।

अशिशिरः—इसका अर्थ 'अ-शीत' अर्थात्–'गरम' है इस शब्द में निषेधीय 'नञ्' विरोधार्थ का अभिधायक है। इसी प्रकार असित आदि में भी समझना। 'सित' का अर्थ श्वेत और 'असित' का सित का विरोधी 'काला' है।

भिन्नवर्णाधरोष्ठम्—गरम आहों के कारण निचले होंठ की लाली जाती रही थी। इसके लिए देखिए अभि० शाकु० VI-६ 'श्वासोपरक्ताधरः' और उत्तरमेघ ३१ 'निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना'।

हस्तन्यस्तम्—मुख को हाथ पर रखना दुःख तथा चिन्ता को प्रकट करता है। उदासी में स्त्रियों की ऐसे बैठने की आदत होती है। देखिए— अभि० शा० VI 'अनसूये, पश्य तावत् वामहस्तोपहितवदना लिखितेव प्रिय-सखी भर्तृगतया चिन्तयाऽऽत्मानमपि नैषा विभावयति।'

लम्बालकत्वात् असकलव्यक्ति—क्योंकि यक्ष-पत्नी 'प्रोषितभर्तृका' है, अतः वह अपने बालों को नही संवारती; वे खुले ही लटकते रहते हैं। 'प्रोषित-भर्तृका' वह स्त्री होती है, जिसका पति किसी कारण-वश घर छोड़कर प्रवास में गया हुआ हो। इस सम्बन्ध में याज्ञ० स्मृ० का यह पद्य देखिए—'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका॥' बालों में कंघी न की जाने से अथवा उनमें तेल न लगाने से वे बिखरे रहते हैं और मुख पूरा-पूरा नहीं दीखता। ठीक यही अवस्था यक्ष-पत्नी की थी। देखिए—उत्तरमेघ ३२ आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।

त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः—'क्लिष्टकान्तेः' का अर्थ है—जिसकी शोभा पीड़ित—आवृत—हो गई थी, अर्थात् जाती रही थी। 'अनुसरण' का अर्थ है मेघ द्वारा चन्द्रमा का पीछा करना। चन्द्रमा पर मेघ का आवरण आ जाने से इसकी सारी शोभा जाती रहती है। बालों के मुख पर आ पड़ने से यक्ष-पत्नी के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुख की शोभा ढक गई थी। यहाँ उसके मुख की चांद से और उसके बालों की बादलों से समता की गई है। देखिए—मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी। और देखिए—कुमार० II १९—'हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषीव मुखानि वः।।' 'त्वदनुसरणक्लिष्ट०' का पाठान्तर 'त्वदुपसरणक्लिष्ट०' है; जिसमें अपसरण का अर्थ 'पास' में आ जाना है। अर्थभेद कोई नहीं होता।

इस पद्य में 'निदर्शना अलंकार' है, क्योंकि चन्द्रमा का 'दैन्य' चन्द्रमा ही रख सकता है, मुख नहीं। इसलिए मुख चन्द्रमा के दैन्य की तरह दैन्य रखता है। इस तरह यहाँ बिम्वप्रतिबिम्ब-भाव है। निदर्शना-लक्षण के लिए देखिए—पूर्वमेघ० १८ का विशेष-स्तम्भ ।।२४।।

आलोके ते निपतति [1]पुरा सा बलि-व्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु[2]वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां[3] सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि [4]रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति ।।२५।।

अन्वयः—(हे मेघ!) बलिव्याकुला वा, विरहतनु भावगम्यं मत्सादृश्यं लिखन्ती वा, 'रसिके! भर्तुः स्मरसि कच्चित्, हि त्वं तस्य प्रिया' इति मधुरवचनां पञ्जरस्थां सारिकां पृच्छन्ती वा सा ते आलोके पुरा निपतति।

पदार्थः—सा=वह (मेरी प्रियतमा)। बलिव्याकुला वा=या तो देवताओं की पूजा में लगी हुई। वा विरहतनु=या विरह से दुवली। भावगम्यम्=अनुमान द्वारा जानी जाने वाली, अनुमानिक। मत्सादृश्यम्=मेरी आकृति=तसवीर को। लिखन्ती=खींचती हुई। रसिके=हे रसीली! भर्तुः स्मरसि कच्चित्=तुझे स्वामी की याद आती है क्या? हि=क्योंकि। त्वं तस्य प्रिया=तू उनकी प्यारी है। इति=इस प्रकार। मधुरवचनाम्=मीठा बोलने वाली। पञ्जरस्थाम्=पिंजरे में बन्द। सारिकाम्=मैना को। पृच्छन्ती=पूछती हुई। पुरा=निकट भविष्य में। ते आलोके निपतति=तुझे दिखाई देगी।

भाषानुवादः—(हे मेघ!) या तो देवताओं की पूजा में लगी हुई, या अनु-

---

१. पुरे—वि०। २—विरहतनुता०—मोरे० काले। ३—वचनं—का० बा० पाठक। ४—निभृते—वि०, बल्ल०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मान द्वारा जानी जानेवाली, विरह से दुबली मेरी आकृति का चित्र खींचती हुई, या 'हे रसीली! क्या तुझे कभी (अपने) स्वामी की याद आती है? क्योंकि तू उनकी प्यारी है।' इस तरह मीठा बोलने वाली पिंजरे में बन्द मैना को पूछती हुई, (वह मेरी प्रियतमा) तुझे जल्दी ही दिखाई पड़ेगी।

व्याकरणम्—बलिव्याकुल=बलिषु (देवताराधनेषु) व्याकुला। विरह-तनु=विरहेण तनु कृशं (तृ० तत्पु०)। भावगम्यम्=भावेन गम्यम् (तृ० तत्पु०); गम्य=√गम् भ्वा० प० (जाना)+य+(विधि कृ०)। मत्सा-दृश्यम्=मम सादृश्यम्; सदृशस्य भावः सादृश्यम्। लिखन्ती=√लिख्, तुदा० प० (लिखना, अङ्कित करना)+अत् (शतृ)+ई (स्त्रियाम्)। मधुर-वचनाम्=मधुराणि वचनानि यस्याः सा मधुरवचना ताम् (ब० व्री०)। पञ्जरस्थाम्=पञ्जरे तिष्ठति इति पञ्जरस्था ताम् (उपपदसमास), पञ्जर+√स्था+क (कर्तरि)। रसिके=रसः अस्ति अस्याम् इति रसिका तत्सम्बोधने। रस+इक (ठन्) मत्वर्थीय+स्त्रियाम्। भर्तुः=भर्तृ का ष० एक; भरति इति भर्ता तस्य 'अधीगर्थदयेशानां कर्मणि (II ३.५२) इस सूत्र से कर्म को षष्ठी हुई। स्मरसि=√स्मृ, भ्वा० प० (याद करना), लट् म० पु० एक०। कच्चित् =प्रश्नवाचक अव्यय; 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः। पृच्छन्ती=√प्रच्छ्, तुदा० प० (पूछना)+अत् (शतृ)+ई (स्त्रियाम्) प्रिया=प्रीणाति इति √प्रीञ्+क (कर्तरि)। आलोके=आ+√लोक्, भ्वा० आ० (देखना) +अ (भावे घञ्)। पुरा=अव्यय—'स्यात्प्रबन्धे पुराऽतीते निकटागामिके पुरा' इत्यमरः। निपतति—यहाँ 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इस सूत्र से 'यावत्' और 'पुरा' निपातों के योग में लृट् के स्थान में लट् का प्रयोग हुआ है।

विशेष—बलिव्याकुला—'बलि' का अर्थ है देवताओं के आराधन के लिए पूजा का उपहार। यह दो प्रकार की होती है। १. नित्य (अनिवार्य जैसे तुलसी-पादप-पूजन), २. नैमित्तिक—किसी इष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये की गई पूजा।

भावगम्यम्—यक्ष-पत्नी विरह में अपने पति की शारीरिक दुर्बलता को देख तो नहीं सकती थी, अतः वह उसका अनुमान करके ही चित्र खींचा करती थी। संस्कृत के साहित्यकार विरह में विनोद के चार साधनों का वर्णन करते हैं—१. सदृश वस्तु का अनुभव, २. चित्रकर्म, ३. स्वप्नदर्शन और ४. प्रिय द्वारा छुए गए पदार्थों का स्पर्श। देखिए गुणपताका—वियोगे योगे वा प्रियतमसदृक्षानु-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवनं ततश्चित्रं कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि । तदङ्गस्पृष्टानामुपगतवतां स्पर्शनमपि प्रतीकारोऽनङ्गव्यथितमनसां कोऽपि गदितः ॥'; इस सम्बन्ध में देखिए—उत्तर-मेघ ४५—'त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्' और देखिए—अभि० शा० VI २२ "बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ।'

मधुरवचनां पञ्जरस्थां सारिकाम्—प्राचीन काल में विरहिणी स्त्रियाँ अपने अकेलेपन को भुलाने के लिए मैना अथवा तोते को पालती थीं और उनसे वार्तालाप करके विरह-काल में मनोविनोद किया करती थीं। यह बात 'शुक-सप्तति' या 'तोता-मैना के किस्से' से स्पष्ट है। सारिका (मैना) स्त्रियों का प्रातिनिध्य करती है तो शुक पुरुषों का। सारिका पुरुषों के दोष और शुक स्त्रियों के दोष का उद्भावन करते रहते हैं। विल्सन महोदय के शब्दों में—"स्त्रियाँ पालतू जानवरों को रखने के लिए हमेशा प्रसिद्ध ही हैं और यह बात क्या पूर्व और क्या पश्चिम, क्या प्राचीन और क्या वर्तमान—सर्वत्र ही प्रचलित है।" इस सम्बन्ध में देखिए—रघु० V 'अनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक् पञ्जरस्थः' ।

रसिके—स० ती० ने इसका अर्थ—'करुणारसोपस्कृतचित्ते'—दयार्द्रभाव से युक्त चित्त वाली—दिया है और महि० सिं० ने 'गुणानुरागिणि'—गुणों से प्रेम करनेवाली–लिया है। वल्लभ ने इसका पाठान्तर 'निभृते' दिया है, जिसका अर्थ–'लजीली' और 'बहुत न बोलने वाली'—है।

कच्चित्—यह शब्द प्रश्नार्थ में प्रयुक्त होता है, जिसका उत्तर 'अंगीकरण' में लिया जा सकता है। इसमें आशा का सम्मिश्रण भी होता है। देखिए—रघु० V ८ 'शुभानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्' । और देखिए, रघु० V 'कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ।'

सारोद्धारिणी के अनुसार इस पद्य में 'दीपक' अलंकार है। दीपक के लक्षण के लिए देखिए सा० द० X ६७ 'अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् (दीपकम्)", अर्थात् अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो। प्रकृत में 'लिखन्ती' और 'पृच्छन्ती' क्रियाओं का कर्त्ता 'सा' एक ही है ॥२५॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य ! निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
[1]तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्
भूयो भूयः स्वयमपि[2]कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥२६॥

१–तन्त्रीरार्द्रा–का० बा० पाठक। २–स्वयमधिकृतां—का० बा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—हे सौम्य ! मलिनवसने उत्सङ्गे वीणां निक्षिप्य मद्गोत्राङ्कम् (यथा स्यात् तथा) विरचितपदं गेयम् उद्गातुकामा (वा) नयनसलिलैः आर्द्रां तन्त्रीं कथञ्चित् सारयित्वा भूयो भूयः स्वयं कृताम् अपि मूर्च्छनां विस्मरन्ती (सा ते आलोके पुरा निपतति) ।

पदार्थः—सौम्य !—हे भद्र ! मलिनवसने उत्सङ्गे=मैले कपड़ों वाली गोद में । वीणां निक्षिप्य=वीणा को धर कर । मद्गोत्राङ्कम्=मेरे नाम से अंकित करके । विरचितपदम्=रचे गए पदों वाली । गेयम्=गीतिका को । उद्गातु-कामा=गाना चाहती हुई । नयनसलिलैः=आंखों के जल=आंसुओं से । आर्द्राम्=गीली । तन्त्रीम्=तारों को । कथंचित्=किसी तरह । सारयित्वा=ठीक करके । भूयो भूयः=बार-बार । स्वयं कृताम् अपि=अपने आप बनाये । मूर्च्छनाम्=स्वरों के आरोह-अवरोह-क्रम को । विस्मरन्ती=भूलती हुई ।

भाषानुवादः—हे भद्र ! अथवा मैले कपड़ोंवाली गोद में वीणा को धरकर मेरे नाम के चिह्न को (लक्ष्य) रख कर रचे गए पदों वाली गीतिका को ऊँचे स्वर में गाना चाहती हुई वह आँसुओं से भीगी हुई तारों को ठीक-ठीक कर बार-बार स्वयं रचे स्वरों के आरोह-अवरोह-क्रम को भी भूल जाती हुई (तुझे दिखाई पड़ेगी) ।

व्याकरणम्—मलिनवसने=मलिनं वसनं यस्मिन् तस्मिन् (ब० व्री०) । निक्षिप्य=नि√क्षिप्, तुदा० प० (फेंकना)+य (ल्यप्) । मद्गोत्राङ्कम्=मम गोत्रस्य अङ्कः (ष० तत्पु०) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा । विरचित-पदम्=विरचितानि पदानि (शब्दाः) यस्य तत् । गेयम्=√गै, भ्वा० प०+य (विधि० कृ०) । उद्गातुकामा=उच्चैः गातुं कामः (इच्छा) यस्याः सा । 'तुं काममनसोरपि' इति मकारलोपः । नयनसलिलैः=नयनयोः सलिलानि तैः । सारयित्वा=√सृ, भ्वा० प० (चलना)+णिच्+त्वा । विस्मरन्ती=वि+√स्मृ, भ्वा० प० (याद करना)+अत् (शत्रन्त)+ई (स्त्रीप्रत्यय) ।

विशेषः—मलिनवसने—यह साभिप्राय विशेषण है; इससे विरहिणी यक्षपत्नी का पातिव्रत्य-धर्म अभिव्यक्त होता है । इस सम्बन्ध में उत्तरमेघ०२३ की 'परमितकथां' पर लिखी टिप्पणी विशेष स्तम्भ में देखिए ।

मद्गोत्राङ्कम्—मेरे नाम के चिह्न को (लक्ष्य) रखकर अर्थात् मेरा नाम अंकित करके । इसे 'विरचितपदं में 'विरचित' क्रिया या विशेषण लिया गया है । इसे गेय का विशेषण भी बनाया जा सकता है, अर्थात् 'ऐसी गीति का जिसमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेरा नाम अंकित हो।' देखिए—कुमार० IV ८ 'स्मरसि स्मर मेखलागुणैरुत गोत्रस्खलितेषु बन्धनम्।' और अभि० शा० VI ५ 'गोत्रे संस्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम्।'

तन्त्रीमार्द्राम्—यहाँ बहु० के स्थान पर एक० का प्रयोग हुआ है (जाताबेकवचनम्)। इसका पाठान्तर 'तन्त्रीरार्द्राः' जिसमें बहु० अभिहित है। इसलिए यह पाठ अच्छा है।

सारयित्वा—इस पर मल्लि० लिखता है—'आर्द्रत्वापहरणाय करेण प्रमृज्य अन्यथा क्वणनासम्भवादिति भावः' अर्थात् तारों के गीलेपन को दूर करने के लिए उनको पोंछकर। वल्लभ ने इसका अर्थ, 'योजयित्वा' ठीक-ठीक करके—किया है। लक्ष्मीनिवास भी वल्लभ के अर्थ का अनुसरण करते हैं। मोरेश्वर काले 'कथंचित्' शब्द का आश्रय लेकर 'सारयित्वा का अर्थ—'ठीक-ठीक करके' ही उचित समझते हैं।

स्वयमपि कृतां मूर्च्छनाम्—इसका पाठान्तर 'स्वयमधिकृतां' है जिसका अर्थ—'अपने द्वारा अपनाई गई' है। यह अर्थ यहाँ दिये गये पाठ के अर्थ से भिन्न नहीं—मूर्च्छनाम्—स्वरों के उतार-चढ़ाव के क्रम को कहते हैं। देखिए—'क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्। मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च'। मूर्च्छना २१ हैं; देखिए—'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः' नारदीयशिक्षा।

इस पद्य में विरहिणी यक्षपत्नी का गीति द्वारा दूसरा मनोविनोद-साधन बताया गया है, किन्तु मनःसङ्ग द्वारा यह—'सादृश्य-दर्शन' के भीतर ही आता है॥२६॥

[१]शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा[२]
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया [३]देहलीदत्तपुष्पैः।
[४]संभोगं वा [५]हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती[६]
प्रायेणैते रमणविरहे[७]ष्वङ्गनानां विनोदाः॥२७॥

१—गमनदिवस०—वि०, वल्ल०, सारो, स० ती०, रु० वि०, म० सिं०। २—प्रस्थितस्य। ३—मुक्त—का०बा० पाठक। ४—मत्सङ्गम्, सत्संभोग०, संयोगं वा—वि०, सारो०, स० ती०, सु० वि०, म० सिं०। मत्संयोगं—वल्ल०। ५—०रचिता०। विहिता०। ६—आसादयन्ती—म० सिं०, वि०। ७—विरहेहि०—वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—(अथवा) विरह-दिवस-स्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहलीदत्त-पुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती वा, (यद्वा) हृदयनिहितारम्भं सम्भोगम् आस्वादयन्ती वा (ते आलोके पुरा निपतति)। प्रायेण अङ्गनानां रमण-विरहेषु एते विनोदा (भवन्ति)।

पदार्थः—विरहदिवसस्थापितस्य अवधेः=विरह-दिवस से रखे हुए अवधि के। शेषान् मासान्=शेष महीनों को। देहलीदत्तपुष्पैः गणनया=देहली (दहलीज) पर रखे हुए फूलों द्वारा गिन-गिन कर। भुवि विन्यस्यन्ती=पृथ्वी पर रखती हुई। हृदयनिहितारम्भं सम्भोगम्=मन में कल्पना द्वारा प्राप्त सहवास का। आस्वादयन्ती=आस्वाद लेती हुई। प्रायेण=प्रायः। अङ्गनानाम्=स्त्रियों के। रमणविरहेषु=प्रियतम के विरह में। एते विनोदाः (भवन्ति)=ये मनोविनोद हुआ करते हैं।

भाषानुवादः—अथवा विरह-दिवस से रखे हुए अवधि के शेष महीनों को देहली (दहलीज) पर रखे हुए फूलों से गिन-गिन कर जमीन पर रखती हुई, अथवा मन में कल्पना द्वारा प्राप्त (मेरे) सहवास का स्वाद लेती हुई (वह तुझे दिखाई देगी)। स्त्रियों के प्रियतम के विरह में प्रायः ये (ही) मनोविनोद हुआ करते हैं।

व्याकरणम्—विरहदि वसस्थापितस्य=विरहस्य दिवसः विरहदिवसः तस्मात् स्थापितस्य। स्थापित—√स्था, भ्वा० प०+णिच्+त (क्त)। देहलीदत्तपुष्पैः =देहल्यां दत्तानि पुष्पाणि देहलीदत्तपुष्पाणि तैः। विन्यस्यन्ती=वि+√न्यस्, दिवा० प० (छोड़ना)+अत् (शतृ)+ई (स्त्रियाम्)। हृदयनिहिता-रम्भम्=हृदये निहितः आरम्भः यस्य तम्, अथवा हृदये निहिता आरम्भाः (व्यापारः) यस्मिन् तम् (ब० व्री०)। निहित—नि+√धा, जुहो० उभ० (रखना)+त (क्त)। सम्भोगम्=सम्+भुज्, रुधा० आ० (आनन्द करना) +अ (भावे घञ्)। आस्वादयन्ती=आ+स्वद्, भ्वा० आ० (स्वाद लेना) +णिच्+अत् (शतृ)+ई (स्त्रियाम्)। अङ्गनानाम्=प्रशस्तानि अङ्गानि यासां ताः अङ्गनाः, तासाम्। रमणविरहेषु+रमणेभ्यः विरहाः रमणविरहाः (पञ्च० तत्पु०) तेषु।

विशेषः—विरहदिवसस्थापितस्य=जब से यक्ष को शाप मिला था, उसी दिन से उसकी पत्नी शाप की अवधि के महीनों को गिनने लगी थी। कई एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याख्याकार 'विरहदिवस' के स्थान पर 'गमन-दिवस' पाठ देते हैं, जिसका अर्थ भी पुस्तक में दिए गए पाठ के समान है।

देहलीदत्तपुष्पैः—यक्ष-पत्नी दहलीज पर पड़े हुए फूलों में से एक-एक फूल को उठाती थी और उसे भूमि पर रखकर एक, दो तीन—इस प्रकार विरह के शेष महीनों को गिनती जाती थी। बहुत से टीकाकारों के मतानुसार घर की देहली (दहलीज) साधारणतः 'उदुम्बर' लकड़ी की बनी होती थी। इसका पाठान्तर 'देहलीमुक्तपुष्पैः' है, जिसमें कोई विशेष अर्थभेद नहीं होता।

हृदयनिहतारम्भः— यक्ष-पत्नी अपने मन में पति के कल्पित सहवास-सुख के प्रारम्भ का स्वाद लेकर मन बहलाया करती थी, अथवा मल्लि० के अनुसार यहाँ 'आरम्भ' का अर्थ कार्य भी लिया जा सकता है, जिसका अभिप्राय यह है कि वह अपने पति के साथ चुम्बन, आलिङ्गन आदि कार्य वाले रति-सुख का स्वाद ले रही थी। इसमें कवि ने दश काम-दशाओं में से तीसरी कामदशा सङ्कल्पावस्था का उल्लेख किया है। संकल्प के लिए देखिए—"सङ्कल्पो नाथविषयो मनोरथ उदाहृतः" अर्थात् मन में पतिविषयक कल्पना को सङ्कल्प कहते हैं। काम की दशाएं ये हैं—'दृङ्मनःसङ्गसङ्कल्पा जागरः कृशताऽरतिः। ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश॥'

रमणविरहेष्वङ्गनानाम्—इसका पाठान्तर 'रमणविरहे ह्यङ्गनानां' है। यह दूसरा पाठ अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि 'विरह' शब्द का प्रयोग प्रायः एकवचन में होता है।

२५ से २७ तक तीनों पद्य अर्थ की दृष्टि से इकट्ठे हैं। इस प्रकार एक ही वाक्य के तीन पद्यों में चलते रहने से इसे 'विशेषक' कहते हैं। देखिए—'द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकभ्। कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम्॥'

इन तीनों पद्यों में प्रतिपादित विशेष बातों का "प्रायेणैते········ विनोदाः" इस सामान्य बात से समर्थन किये जाने से 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है। अङ्गी अलंकार तीनों में 'दीपक' है, अतः 'दीपक' और 'अर्थान्तरन्यास' का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है॥२७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सव्यापारामहनि न तथा [1]पीडयेद्विप्रयोगः[2]
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते ।
मत्सन्देशैः सुखयितुमलं[3] पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां[4] [5]सौधवातायनस्थः ॥२८॥

अन्वयः—(हे सखे) विप्रयोगः अहनि सव्यापारां ते सखीं तथा न पीडयेत् (यथा रात्रौ)। रात्रौ निर्विनोदां (ते सखीं) गुरुतरशुचं शङ्के ।(अतः) निशीथे उन्निद्राम् अवनिशयनां साध्वीं तां मत्सन्देशैः अलं सुखयितुं सौधवातायनस्थः (सन्) पश्य ।

पदार्थः—विप्रयोगः=(मेरा) वियोग । अहनि=दिन में । सव्यापाराम्=काम में लगी हुई । ते सखीम्=तेरी सखी को। (अर्थात् मेरी प्रियतमा को) । तथा न पीडयेत्=उस तरह पीड़ित नहीं करता—नहीं सताता होगा । (यथा रात्रौ, इति शेषः=जिस तरह कि रात में) । रात्रौ—रात में । निर्विनोदाम्=बिना मनोविनोद के । गुरुतरशुचं शङ्के=उसे और भी भारी दुःख होता होगा —ऐसा मेरा अनुमान है । निशीथे=आधी रात के समय । उन्निद्राम्=उनींदी (जागती हुई) । अवनिशयनाम्=भूमि पर लेटी हुई । तां साध्वीम्=उस पति-व्रता को । मत्सन्देशैः=मेरे समाचारों से । अलं सुखयितुम्=पर्याप्त सुख पहुँचाने के लिए । सौधवातायनस्थः (सन्)=महल की खिड़की पर बैठा हुआ । पश्य=देखना ।

भाषानुवादः—(मेरा) वियोग काम में लगी हुई तुम्हारी सखी (मेरी प्रियतमा) को दिन में उतना नहीं पीड़ित करता होगा (जितना कि रात को)। रात को बिना मनोविनोद के उसे और भी बड़ा भारी दुख होता होगा—(ऐसा) मेरा अनुमान है, (इसलिए) आधी रात के समय उनींदी, भूमि पर लेटी हुई उस पतिव्रता को तुम मेरे समाचारों से पर्याप्त सुख पहुँचाने के निमित्त महल की खिड़की पर स्थित हो कर देखना ।

व्याकरणम्—अहनि=अहन् (नपुं०) स० एक० । 'अह्नि' यह स० एक० का दूसरा रूप है । सव्यापाराम्=व्यापारेण सह वर्तमाना सव्यापारा तां सव्या-

१—खेदयेत् । २—मद्वियोगः—वि०, वल्ल०, स० ती, म० सिं०, सारो०, सु०-वि० । ३—अतः—का०, वा० पाठक । ४—शयनासन्न—सु० वि०, सारो०, वि० । ५—सद्मवातायन० वि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पाराम् (ब० व्री०)। विप्रयोगः=वि+प्र+√युज्, रुधा० प० (जोड़ना)+अ (भावे)। तथा=तत्+थाल् (प्रकारवचने थाल्)। निर्विनोदाम्=निर्गतः विनोदः यस्याः सा निर्विनोदा ताम् (ब० व्री०)। गुरुतरशुचम्=गुरुतरा शुक् (शोकः) यस्याः सा तथाभूता तां (ब० व्री), अतिशयेन गुर्वी इति गुरुतरा गुरु+तरप्; √शुच् भ्वा० प० (शोक करना)+क्विप् (भावे)। उन्निद्राम्=उद्‌गता निद्रा यस्याः सा उन्निद्रा ताम् (ब० व्री०) अथवा निद्राया उत्क्रान्ता इति उन्निद्रा तां (प्रादितत्पु०)। अवनिशयनाम्=अवनिः एव शयनं (शय्या) यस्याः ताम्। (ब० व्री०) साध्वीम्=साधु+ई (स्त्रियाम्)। मत्सन्देशैः=मम सन्देशैः (ष० तत्पु०)। सन्देश=सम्+√दिश् तुदा० उभ० (इशारा करना)+अ (भावे) सुखयितुम्=सुख+णिच् (करोत्यर्थे नामधातुः)+तुम्। सौधवातायनस्थः=सौधस्य वातायने (ष० तत्पु०) तिष्ठति इति (उपपदतत्पु०)। सौधम्=सुधया निर्मितम्, सुधा+अण्। वातायनम्=वातस्य अयनम्। अयनम्=एति अनेन इति√इण्, अदा० प० (जाना)+ल्युट् (करणे) तत्र तिष्ठतीति स्थः=√स्था, भ्वा० प०+अ (कर्तरि)।

विशेषः—सव्यापाराम्०—विरहिणी यक्षपत्नी दिन में तो कुछ न कुछ काम कर ही लेती थी, इस कारण दिन के समय उसको विरह उतना नहीं सताता था जितना कि रात को क्योंकि रात को उसके पास मनोविनोद के लिए, करने को कोई काम नहीं होता था। दिन में किए जाने वाले कार्यों के लिए उत्तर-मेघ के २५ से २७ तक के पद्य देखिए। भाव-साम्य के लिए देखिए—विक्र० III. ४ 'कार्यान्तरितोत्कण्ठं दिनं मया नीतमतिकृच्छ्रेण। अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या॥' और देखिए—शाकु० IV. १५—'एषाऽपि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।'

सुखयितुमलम्—इसका 'सुखी करने में समर्थ हो' यह अर्थ भी हो सकता है, अर्थात् रात में तड़पती हुई प्रियतमा को तुम खिड़की पर बैठ कर मेरी कुशल-वार्ता सुना कर आश्वासन दे सकते हो। 'अलं' का पाठान्तर 'अतः' है। क्योंकि यह श्लोकान्तर्गत दो वाक्यों का संयोजक है, इसलिए यह पाठ भी अच्छा प्रतीत होता है।

साध्वीम्—यक्ष-पत्नी एक आदर्श पतिव्रता नारी थी, अतः मेघ को आधी रात के समय भी देखने में किसी प्रकार की शंका का कोई स्थान नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस सम्बन्ध में मल्लि० कहता है—'अतो नान्यथा शङ्कितव्यमिति भावः। रात का दुरुपयोग करने वाली पुंश्चलियाँ ही हुआ करती हैं, पतिव्रताएँ नहीं।

मत्सन्देशैः—यहाँ एकवचन के स्थान में वहुवचन का प्रयोग हुआ समझना चाहिए। देखिए—पूर्वमेघ० ७—सन्देशं मे हर।' ग्रौर देखिए उत्तरमेघ ४०—'कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात्किञ्चिदूनः।'

उन्निद्राम्—इसका अर्थ मल्लि० ने 'उत्सृष्टनिद्राम्' किया है विरहियों का विह्वलता के कारण उनींदा (जागते) रहना स्वाभाविक ही है। देखिए—अभि० शा० VI. ५—'शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः'। शैक्सपीयर ने As You Like It में प्रेमी की अवस्था ऐसी ही बताई है–(Sighing like furnace at Midnight pillow')

ग्रवनिशयनाम्=विरहिणी के लिए पृथ्वी पर सोना या तो पातिव्रत्य के नियमानुसार हो सकता है जैसे मल्लिनाथ ने कहा है या विरहजन्य अत्यधिक क्लेश के कारण—'अवनौ (भूमि पर) शयनं विरहसन्तापाद् व्रताद्वा भूशयनम्।' कुमा० सर्ग V. में महादेव के वियोग में 'नियमस्था पार्वती' भी 'स्थण्डिल-शायिनी'='पृथ्वी तल पर सोनेवाली' थी।

सौधवातायनस्थः—इसके कई पाठान्तर हैं। १—सद्मवातायन०-सद्म का अर्थ घर–भवन–है ग्रौर सौध का अर्थ चूने से बना भवन है। विशेष अर्थभेद कोई नहीं है। २—ग्रवनिशयनासन्नवातायन०—यहाँ 'ग्रासन्न' का अर्थ 'पास' है। सारे का अर्थ 'पृथ्वी की शय्या के पास की खिड़की पर बैठा हुग्रा' है। ३—'अवनिशयनां सन्नवातायनस्थः—यहाँ 'सन्न' का अर्थ 'पास के' है। 'सन्न' शब्द का 'निकटवर्ती' ग्रर्थ में साधारण प्रयोग बहुत कम मिलता है; 'आसन्न' ही ग्रधिक प्रयुक्त होता है। 'सन्न' शब्द की अप्रयुक्तता के कारण ही कुछ व्याख्याकारों ने 'ग्रवनिशयनासन्नवातायनस्थः' पाठ दिया है, किन्तु इससे भाव ग्रच्छी तरह स्पष्ट नहीं होता है। एक व्याख्याकार 'सन्न' का अर्थ 'भग्न' (टूटा हुग्रा) लेता है ग्रौर कहता है—इससे प्रकट होता है कि यक्ष का घर उसके वियोग में टूट-फूट गया था, अच्छी हालत में नहीं था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेघ का यक्ष-पत्नी को आश्वासन देना उचित ही है, क्योंकि वह यक्ष का दूत है। देखिए—रत्नाकर "सख्यो धात्री च पितरौ चित्रदूतसुखादयः। सुखयन्तीष्टकथनमुखोपायैर्वियोगिनीम्" ॥२८॥

इस पद्य में कवि ने चौथी 'कामदशा' (जागरावस्था) बतलाई है—

स्निग्धाः सख्यः कथमपि दिवा तां न मोक्ष्यन्ति तन्वी-
मेकप्रख्या भवति हि जगत्यङ्गनानां प्रवृत्तिः।
स त्वं रात्रौ जलद ! शयनासन्नवातायनस्थः
कान्तां सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः ॥२८क॥

अन्वयः—**दिवा स्निग्धाः सख्यः तां तन्वीं कथमपि न मोक्ष्यन्ति ; जगति हि अङ्गनानाम् प्रवृत्तिः एकप्रख्या भवति। जलद ! स त्वं शयनासन्नवातायनस्थः (सन्) परजने सुप्ते सति वीतनिद्रां कान्ताम् उपेयाः।**

पदार्थः—दिवा=दिन में। स्निग्धाः सख्यः=प्यारी सहेलियाँ। तां तन्वीम्=उस कृशाङ्गी को। कथमपि=किसी तरह भी। न मोक्ष्यन्ति=नहीं छोड़ेंगी। अङ्गनानाम्=स्त्रियों का। प्रवृत्तिः=स्वभाव। एकप्रख्या=एक जैसे प्रकार का। भवति=होता है। हि=क्योंकि जगति=संसार में। शयनासन्नवातायनस्थः=शय्या के पास वाली खिड़की में बैठा हुआ। उपेयाः=पहुँचना।

भाषानुवादः— दिन में प्रिय सखियाँ उस दुर्बलाङ्गी को क़िसी तरह भी न छोड़ सकेंगी ; क्योंकि (इस) संसार में स्त्रियों का स्वभाव एक-जैसे प्रकार का हुआ करता है। इसलिए हे मेघ ! सेज के पास वाली खिड़की पर बैठा हुआ तू दास-दासियों के सो जाने पर ही उनींदी मेरी प्रियतमा के पास पहुंचना।

व्याकरणम्—दिवा=(अव्यय) दिन में। मोक्ष्यन्ति=√मुच्, तुदा० प० (छोड़ना) लृट् प्र० पु० बहु०। एकप्रख्या=एका प्रख्या (प्रकारः) यस्याः सा (ब० व्री०)। शयनासन्न··स्थ=शयनस्य (शय्यायाः) आसन्ने यत् वातायनं तत्र तिष्ठति इति। परिजने सुप्ते सति—भावे (सति) सप्तमी। वीतनिद्राम्=वीता निद्रा यस्याः सा ताम् (ब० व्री०)।

विशेषः—इस पद्य का भाव उत्तरमेघ २८ पद्य से मिलता ही है। व्याख्याकारों ने इस पद्य पर कोई व्याख्या नहीं दी, अतः यह पद्य मौलिक न होकर प्रक्षिप्त ही सिद्ध होता है।॥२८क॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
[१]तत्पर्यन्त [२]प्रगलितलवैश्छिन्नहारैरिवास्रैः ।
भूयो भूयः कठिनविषमां सारयन्तीं कपोला-
दामोक्तव्यामयमितनखेनैकवेणीं करेण ॥२८ख॥

अन्वयः—अवनिशयने संनिकीर्णैकपार्श्वां तत्पर्यन्तप्रगलितलवैः छिन्नहारैः इव अस्रैः अन्वेष्टव्याम् अयमितनखेन करेण कठिनविषमाम् आमोक्तव्याम् एक-वेणीं कपोलात् भूयो भूयः सारयन्तीम् (उपेयाः) ।

पदार्थः—अवनिशयने=भूतल की शय्या पर । सन्निकीर्णैकपार्श्वाम्=एक पार्श्व–करवट–से पड़ी । तत्पर्यन्तप्रगलितलवैः=उसके आस-पास बिखरे हुए टुकड़ों वाली । छिन्नहारैः इव=टूटी हुई मोतियों की लड़ियों-जैसे । अस्रैः=आँसुओं से । अन्वेष्टव्याम्=पता लगाये जाने योग्य । अयमितनखेन करेण बिना काटे नखों वाले हाथ से । कठिनविषमाम्=कठोर और खुरदरी । आमोक्तव्याम्=खोली जाने वाली । वेणीम्=बालों की चोटी को । सार-यन्तीम्=परे हटाती हुई ।

भाषानुवादः—पृथ्वी तल की शय्या पर एक पार्श्व—करवट—से पड़ी हुई, आस-पास बिखरे हुए टुकड़ों वाली मोतियों की लड़ियों-जैसे आंसुओं से पता लगाये जाने योग्य तथा अपने बिना कटे नखों वाले हाथ से (मेरे द्वारा) खोली जाने वाली कठोर तथा खुरदरी एक चोटी को कपोलों पर से बार-बार परे हटाती हुई (प्रिया के पास जाना) ।

व्याकरणम्—अवनिशयने=अवनिः एव शयनं तस्मिन् (कर्मधा०) सन्नि-कीर्णैकपार्श्वाम्=[सम्+√कृ, तुदा० प० (बखेरना)] सन्निकीर्णः=एक पार्श्वः (भागः) यस्याः सा ताम् (ब० व्री०) । तत्पर्यन्तप्रगलितलवैः=तस्याः पर्यन्ते प्रगलितः लवाः येषां तैः (ब० व्री०) । छिन्नहारैः=छिन्नाश्च ते हाराः तैः (कर्मधा०) । अन्वेष्टव्याम्=अनु+इष्, दिवा० प० (जाना)+तव्य +आ (स्त्रियाम्) । अयमितनखेन=न यमिताः (√यम्+णिच्+क्त) नखाः यस्मिन् तथाभूतेन (ब० व्री०) । कठिनविषमाम्=कठिना च सा विषमा च ताम् (कर्मधा०) । आमोक्तव्याम्=आ+√मुच् तुदा० प० (छोड़ना)+

२—तत्पर्यङ्क० । २—प्रगलितनवै० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तव्य+आ (स्त्रियाम्) । सारयन्तीम्=√सृ, भ्वा० प० (णिच्+अत् (शतृ) +ई (स्त्रियाम्) ।

विशेषः—अवनिशयने—देखिए उत्तरमेघ २८ 'अवनिशयनाम्'। सन्निकीर्णैकपार्श्वाम्—यक्ष-पत्नी अपने पति के वियोग में बहुत ही दुबली हो गई थी। करवट क्योंकर बदलती। आस-पास पड़े आँसुओं की बूँदों से ही पता लग सकता था कि उधर भी कोई जीव है, अन्यथा वह एक जड़ पदार्थ-सी बनी हुई रहती थी। देखिए उत्तरमेघ० २९ 'आधिक्षामां विरहशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वाम् ।'

तत्पर्यन्तप्रगलितलवैः—'लवैः' का अर्थ 'भाग व टुकड़े' हैं यह विशेषण 'छिन्नहारैः' तथा 'अस्रैः' दोनों के साथ लग सकता है, किन्तु इसे 'छिन्नहारैः' के साथ लेना अच्छा है। इसका पाठान्तर 'तत्पर्यङ्कप्रगलितलवैः' है, किन्तु 'पर्यन्त'=आस-पास के स्थान में पर्यङ्क=पलंग प्रकरण-विरुद्ध है, क्योंकि विरहिणी यक्षपत्नी भूमि पर ही सोया करती थी न कि पलंग पर।

भूयो भूयः······करेण—इस पद्य का तीसरा और चौथा पाद उत्तर मेघ के ३२ पद्य से बहुत मिलता है—देखिए—'स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं, गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण। क्योंकि पद्य २८ (ख) का भाव तथा शब्दों की एकरूपता उत्तरमेघ के पद्य २८, २९ और ३२ में पाए जाते हैं, अतः यह भी वास्तव में प्रक्षिप्त ही है। कालिदास की कृतियों में ऐसा पुनरुक्ति-दोष क्यों होता? ॥२८ख॥

आधिक्षामां विरहशयने [1]संनिषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रिः [2]क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णै[3]र्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥२९॥

अन्वयः—आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां प्राचीमूले कलामात्रशेषां हिमांशोः तनुम् इव (स्थिताम्) (तथा) या रात्रिः मया सार्धम् इच्छा-

---

१—सन्निकीर्णैकपार्श्वां—वि०। २—क्षणमिव—का० बा० पाठक। ३—विरहजनितैः वि०, म० सि० ती० सारो०; विरहपतितैः० सु० वि० व०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रतैः क्षण इव नीता विरहमहतीं ताम् एव (रात्रिं) उष्णैः अश्रुभिः यापयन्तीम् (साध्वीं पश्य) ।

पदार्थ:—आधिक्षामाम्=मानसिक व्यथा से क्षीण (दुबली) । विरह-शयने=विरह के बिस्तर पर । संनिषण्णैकपार्श्वाम्=एक (ही) करवट पड़ी हुई । प्राचीमूले=पूर्व दिशा के मूल—प्रारम्भिक कोण—में । कलामात्रशेषाम् =कला (सोलहवाँ भाग) मात्र बची हुई । हिमांशोः तनुम् इव=चन्द्रमा की मूर्ति के समान । या रात्रिः=जिन रातों को (बहुवचन के स्थान पर एकवचन) । मया सार्धम्=मेरे साथ । इच्छारतैः=इच्छानुसार रति-क्रीड़ाओं से । क्षण इव नीता=मिनटों के समान व्यतीत किया था । विरहमहतीम्=वियोग से भारी बनी हुई । ताम् एव—उन्हीं रातों को (बहु० के स्थान पर एक०) । उष्णैः अश्रुभिः=गरम-गरम आँसुओं से । यापयन्तीम्=व्यतीत करती हुई ।

भाषानुवादः—मानसिक व्यथा से क्षीण हुई, विरह की सेज पर एक (ही) पार्श्व–करवट—से पड़ी (अत एव) पूर्व दिशा के कोने में कलामात्र शेष रही चन्द्रमा की कला की तरह (स्थित उसे देखना) तथा जिन रातों को उसने मेरे साथ मनचाही रतिक्रीड़ाओं द्वारा क्षणों जैसे व्यतीत किया था, विरह से भारी बनी हुई उन्हीं रातों को गरम-गरम आँसुओं से काटती हुई—(उसे देखना) ।

व्याकरणम्—आधिक्षामाम्=आधिना क्षामा आधिक्षामा (तृ० तत्पु०) ताम् । आधिः=आ+√धा+कि (कर्मणि) । क्षामा=√क्षै, भ्वा० प० । (दुर्बल होना)+त (क्त)+आ (स्त्रियाम्) । यहां 'क्षायो मः' इस सूत्र से तकार को मकार । विरहशयने=विरहस्य शयनम् (ष० तत्पु०), अथवा विरहानुकूलं शयनं तस्मिन् (मध्यमपदलोपीकर्म०)। सन्निषण्णैकपार्श्वाम्=सन्नि-षण्णम् एकं पार्श्वं यस्याः ताम् (ब० व्री०) । सन्निषण्णम्—सम्यक् निषण्णम् (प्रादितत्पु०) । निषण्णम्—नि+√सद्, तुदा० प० (निराश हो बैठना)+न (क्त) । प्राचीमूले=प्राच्याः मूलम् (Eastern horizon) तस्मिन् (ष० तत्पु०) । प्राची—प्राञ्चति इति, प्र+√अञ्च्, भ्वा० प० (जाना)+क्विप् (कर्तरि)+ई (स्त्रियाम्) । कलामात्रशेषाम्=कला एव कलामात्रं (मयूरव्यंसकादित्वात् तत्पु०)तदेव शेषो यस्याः सा(ब० व्री०) । इच्छारतैः= इच्छाकृतानि रतानि इच्छारतानि (मध्य० लोपी कर्म०) तैः । रतम्—√रम्,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भ्वा० आ० (क्रीड़ा करना)+क्त (भावे)। नीता=√नी, भ्वा० उभ० (ले जाना)+त (क्त)+आ (स्त्रियाम्)। विरहमहतीम्=विरहेण महतीं ताम् (तृ० तत्पु०)। यापयन्तीम्=√या, अदा० प० (जाना)+णिच्+अत् (शतृ)+ई (स्त्रियाम्) आकारान्तत्वात् णिचि पुगागमः (प्)।

विशेष:—आधिक्षामाम्—आधि का अर्थ है—मानसी व्यथा। 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः। यह शब्द 'व्याधि' का विपरीत शब्द है, जिसका अर्थ 'शारीरिक व्यथा' है; देखिए भर्तृ०—'आधिः-व्याधिशतैः सहस्रगुणितैरारोग्यमुन्मूल्यते।'

संनिषण्णैकपार्श्वाम्—विरह में दुबली-पतली हुई बेचारी यक्षपत्नी बिस्तर पर एक ही पार्श्व (करवट) से पड़ी रहती थी; पति की चिन्ता में लीन रहने से उसे करवट तक बदलने का ध्यान नहीं रहता था, अथवा वह इतनी दुबली हो गई थी कि करवट भी नहीं बदल सकती थी (क्षामत्वात् परिवर्तितुमसमर्थेति भावः)। देखिए—उत्तरमेघ २८ (ख) 'अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वाम्।'

प्राचीमूले···तनुमिव हिमांशोः—इस पर म० सिं० का यह कथन है—'कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रौ शेषकलामात्रस्य चन्द्रस्य दिङ्मुखे सम्भवः।' अर्थात् कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को चन्द्रमा पूर्व क्षितिज में एक ही कला के रूप में रह जाता है। मूल का अर्थ जड़—प्रारम्भिक भाग—है। 'प्राचीमूल' पूर्व दिशा का मुख है अर्थात् यह उदयाचल का प्रान्त हुआ। इस पंक्ति में पूर्णोपमा अलंकार है। यक्ष-पत्नी की सेज की पूर्व दिशा के क्षितिज (मूल भाग) से और यक्षपत्नी की कलामात्र शेष चाँद की आकृति से तुलना की गई है, अर्थात् विरह में पीली और दुबली-पतली होकर सेज पर एक ही करवट से पड़ी हुई यक्ष-पत्नी प्राची के मूल में एक ओर स्थित, हतप्रभ, कृष्णपक्ष की क्षीण चन्द्र-कला के समान प्रतीत होती थी। चन्द्र-कला तथा यक्ष-पत्नी में यहाँ 'प्राचीमूले' 'बिरहशयने' आदि धर्म भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु विम्ब-प्रतिविम्ब भाव होने से उनका सादृश्य में पर्यवसान हो जाता है। उपमा में होनेवाले विभिन्न धर्म के लिए देखिए साहित्य द० X. ३४ 'एकरूपः क्वचित् क्वापि भिन्नः साधारणो गुणः। भिन्ने बिम्बानुबिम्बत्वं शब्दमात्रेण वा भिदा॥"

क्षण इव—कई टीकाकार इसके स्थान पर 'क्षणमिव' पाठ देते हैं और इस सम्बन्ध में कहते हैं कि 'क्षण' का कभी-कभी नपुं० में भी प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो जाता है । जैसे—'क्षणमिव गमितो वासरो वासवेन ।' मल्लि० ने 'क्षण इव यह सप्तम्यन्त पाठ दिया है । अर्थ में विशेष भेद कोई नहीं होता । इस अंश में उत्प्रेक्षालंकार है । भाव-साम्य के लिए देखिए—उत्तर० च० I २७—'किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगात्……अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ।।'

विरहमहतीम्—वियोग के कारण रात्रि का अत्यधिक लम्बी प्रतीत होना स्वाभाविक ही है । देखिए—विक्र० III ४ 'अविनोददीर्घयामा' और इसी नाटक का II २२—'अनुपगतमनोरथस्य पूर्वं शतगुणितेव गता मम त्रियामा', 'रात्रिः क्षणमिव नीता' 'विरहमहतीं तामेव (रात्रिम्)' विरोधाभास है; संयोग और वियोग उसका समाधान हैं ।

उष्णैः अश्रुभिः—विरह में आंसू भी स्वभावतः गरम होते हैं, देखिए—शा० III १२ 'इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्ग-प्रसारिभिरश्रुभिः' और उत्तरमेघ ४६ 'मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति' ।।२९।।

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव ।
[1]चक्षुः खेदात्सलिल-[2]गुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ।।३०।।

अन्वयः—जलमार्गप्रविष्टान् अमृतशिशिरान् इन्दोः पादान् अभिमुखं पूर्व-प्रीत्या गतं तथैव सन्निवृत्तं चक्षुः खेदात् सलिल-गुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्तीम् (अतएव) साभ्रे अह्नि न प्रबुद्धां न सुप्तां स्थलकमलिनीम् इव (तां पश्य) ।

पदार्थः—जालमार्ग-प्रविष्टान्=झंझरियों (खिड़कियों) में से प्रवेश करती हुई । अमृतशिशिरान्=अमृत सी शीतल । इन्दोः पादान् अभिमुखं=चन्द्रमा की किरणों की ओर । पूर्वप्रीत्या=पहिले स्नेह के कारण । गतम्=गई (और) । तथैव=उसी समय, तत्क्षण ही । संनिवृत्तम्=लौटी हुई । चक्षुः= आंख को । खेदात्=दुःख के कारण । सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिः=आंसुओं से भारी हुए पलकों द्वारा । छादयन्तीम्=बन्द करती हुई (अतएव) । साभ्रे अह्नि=मेघाच्छन्न बादलों से घिरे दिन में । न प्रबुद्धाम्=न जागी हुई, अर्थात् न तो विकसित (और) न सुप्ताम्=न सोई हुई, अर्थात् न ही अवि-कसित । स्थलकमलिनीम् इव=स्थल की कमलिनी के समान ।।३०।।

१—खेदाच्चक्षुः—का बा० पाठक । २—सजल—मो० काले ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाषानुवादः—झंझरियों (खिड़कियों) में से प्रवेश करती हुई अमृत-सी शीतल चांद की किरणों की ओर पहले के स्नेह के कारण गई (और) वैसे ही लौटी हुई आँख को दुःख के कारण आँसुओं से भारी बनी पलकों द्वारा बन्द करती हुई (अत एव) मेघाच्छन्न दिन में न तो खिली और न ही अनखिली स्थल-कमलिनी के समान (तुम) न जागी और न सोई (उस पतिव्रता को देखोगे) ।

व्याकरणम्—जालमार्गप्रविष्टान्=जालः एव मार्गः तेन प्रविष्टान् (तृ० तत्पु०) अमृतशिशिरान्=अमृतेन शिशिराः अमृतशिशिराः तान् (तृ० तत्पु०) अथवा अमृतमिव शिशिराः अमृतशिशिराः तान् (उपमान-कर्मधा०) । अभिमुखम्+मुखम्+अभि (अव्ययी०) क्रि० वि० । पूर्वप्रीत्या=पूर्वा चासौ प्रीतिः पूर्वप्रीतिः (कर्मधा०) तया । गतम्=√गम् भ्वा० प०+त (क्त) कर्तरि । संनिवृत्तम्=सम्+नि+वृत् भ्वा० आ०+त (क्त) । सलिलगुरुभिः=सलिलेन गुरूणि सलिलगुरूणि तैः (तृ० तत्पु०) । छादयन्तीम्=√छद् चुरा० उभ० (छिपाना)+अत् (शतृ)+ई (स्त्रियाम्) । साभ्रे=अभ्रेण (मेघेन) सह वर्तते साभ्रम् तस्मिन् (ब० व्री०) । न प्रबुद्धाम्,=प्र+√बुध् भ्वा० प० (जानना)+ (कर्तरि)+आ (स्त्रियाम्) । सुप्ताम्=√स्वप्, अदा० प० (खोना)+त+आ (स्त्रियाम्) ।

विशेषः—**जालमार्गप्रविष्टान्**—मल्लि० ने इसका अर्थ—'गवाक्षविवरगतान्' किया है । गवाक्ष का अर्थ रोशनदान या गोल खिड़की है । जालमार्ग से जाली या झंझारी (झरोखा) भी लिया जाता है । देखिए—उत्तरमेघ ८—'शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गैर्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ।' और देखिए—विक्रमो० 'धूमैर्जालविनिःसृतैर्वलभयः सन्दिग्धपारावताः ।'

अमृतशिशिरान्—इसके दो प्रकार के विग्रह के लिए इस पद्य का व्याकारण-स्तम्भ देखिए । चाँद के शीतल होने का कारण उसमें अमृत का होना है । चन्द्रमा को अमृत का भाण्डार समझा जाता है और वह इसे देवताओं और पितरों को देता है । देखिए—विक्रमो० 'रविमाविशते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते पितॄन् सुरांश्च (चन्द्रः)' ।

पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव—पति के सहवास के समय चाँद की किरणें यक्ष-पत्नी को बड़ा आनन्द देती थीं । उसी पुराने अनुभव के आधार पर वियोग में भी ज्यों ही उसने चन्द्र-किरणों की ओर नजर डाली कि वे ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किरणें उसके तन को जलाने लगीं, इसलिए उसे उनकी ओर से अपनी नजर उसी क्षण मोड़ लेनी पड़ी। विचार-साम्य के लिए देखिए—अभि० शा० III ३ 'विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः' तथा काव्यप्रकाश—'यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य। यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिन-दीधितिस्तस्य'।

साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्—का० बा० पाठक और मो० काले 'न प्रबुद्धां न सुप्ताम्' इनको समस्त पद लेते हैं (नप्रबुद्धां नसुप्ताम्)। ऐसी अवस्था में ये दोनों पद 'नञ् तत्पुरुष' समझे जा सकते हैं। इन्हें नञ् तत्पुरुष माना जाय, तो 'अप्रबुद्धाम्, असुप्ताम्' के साथ-साथ नप्रबुद्धाम् नसुप्ताम् प्रयोग भी बन जाते हैं। इस पद्य में भूतल पर लेटी हुई यक्ष-पत्नी की उपमा स्थलकमलिनी से दी गई है। यक्ष-पत्नी की पूर्वाभ्यस्त आँखें चन्द्र-किरणों को देखने के लिए ज्यों ही उधर गईं कि तत्काल उन्हें आग उगलती पाकर बन्द हो जाया करतीं थीं, इसलिए वे इस तरह प्रतीत होती थीं जिस तरह कि मेघाच्छन्न दिवस में स्थलकमलिनी के कमल, जो पूरा खिल नहीं सकते, क्योंकि मेघों ने सूर्य की किरणों को ढक रखा है और पूरा बन्द भी नहीं हो सकते हैं, क्योंकि वास्तव में उस समय दिन होता है, रात नहीं। इस कारण यहां पूर्णोपमालंकार हुआ। 'न प्रबुद्धाम् न सुप्ताम्' इन वाक्यांशों में श्लेषालंकार है। यक्ष-पत्नी के पक्ष में इसका अर्थ—'न तो जागी हुई ही और न सोई हुई ही' है, तथा स्थलकमलिनी के पक्ष में 'न तो खिली हुई ही' और 'न अन-खिली हुई ही' है। इसलिए यह श्लेषानुप्राणित उपमा हुई। चांद की किरणों के सुखकारक और दुःख-कारक होने में यहां 'विरोधाभास' भी है जिसका संयोगावस्था और वियोगावस्था से परिहार हो जाता है ॥३०॥

[1]निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।[2]
[3]मत्सम्भोगः [4]कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥३१॥

१—विश्वासेन। २—आगण्डलम्बि—स० ती०, सारो०, वल्ल०, म० सि०, सु० वि०। ३—मत्संयोगः—का० बा० पाठक। ४—सुखमुपनमेत—वल्ल०, सारो०, सु० वि०; कथमपि भवेत्—स० ती०; क्षणमपि भवेत्—विल्सन; उपनयेत्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्वयः—शुद्धस्नानात् परुषम् आगण्डलम्बम् अलकम् अधर-किसलय-क्लेशिना निःश्वासेन नूनं विक्षिपन्तीम्, (तथा) 'स्वप्नजः अपि मत्संभोगः कथम् उपनमेत्' इति नयन-सलिलोत्पीड-रुद्धावकाशां निद्राम् आकाङ्क्षन्तीम् (तां साध्वीं पश्य) ।

पदार्थः—शुद्धस्नानात्=शुद्ध स्नान के कारण (तैलादि के प्रयोग से रहित स्नान को शुद्ध स्थान कहते हैं)। परुषम्=खरखरे। आगण्डलम्बम्=गालों तक लटकते हुए। अलकम्=बालों (लटों) को। अधर-किसलयक्लेशिना=कोपलों जैसे कोमल होठों को झुलसा देने वाली (गर्म-गर्म)। निःश्वासेन=आहों से। विक्षिपन्तीम्=इधर उधर हिलाती हुई (tossing about)। स्वप्नजः अपि=कमसे कम सपने में ही होने वाला। मत्संभोगः=मेरे साथ रति-सुख। उपनमेत्=प्राप्त हो जाय। नयन-सलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्=नेत्रों के जल (आँसुओं) के प्रवाह से रुकी पड़ी। निद्राम्=नींद को। आकाङ्क्षन्तीम्=चाहती हुई (उसे देखोगे)।

भाषानुवादः—तैलादि से रहित स्नान के कारण गालों पर लटकती खरखरी लटों (बालों) को कोपलों-जैसे कोमल होठों को झुलस देनेवाली आहों द्वारा सचमुच इधर-उधर हिलाती हुई तथा 'कम से कम सपने में ही किस प्रकार मेरे साथ संभोग प्राप्त हो सके ?' इस विचार से आँसुओं के भारी प्रवाह द्वारा रोकी गई नींद को चाहती हुई (उस पतिव्रता को तुम देखोगे)।

व्याकरणम्—शुद्धस्नानात्=शुद्धं च तत् स्नानं शुद्धस्नानं तस्मात् (कर्मधा०) आगण्डलम्बम्=आ=समन्तात् गण्डाभ्याम् इति आगण्डम् (अव्ययी०) आगण्डं लम्बते इति√लम्ब् (भ्वा० प०) अच् (कर्तरि)। अलकम्=√अल्, भ्वा० उभ० (सजाना)+अक। जातावेकवचनम्। अर्थात् 'अलकम्' एक होता हुआ बहु० की तरह प्रयुक्त हुआ है। अधरकिसलयक्लेशिना=अधरः किसलय इव (उपमितसमासः) अधरकिसलयं तत् क्लेशयति क्लिश्नाति इति वा तेन। ताच्छील्ये णिनिः। विक्षिपन्तीम्=वि+√क्षिप्, तुदा० प० (फैंकना)+अत् (शतृ)+ई(स्त्री०)। स्वप्नजः=स्वप्ने जायते इति स्वप्नजः। (उपपद-तत्पु०) उपनमेत्=उप+√नम् भ्वा० प० (झुकना) विधि लि० प्र० पु० एक०। नयन०=नयनयोः सलिलं नयनसलिलं तस्य य उत्पीडः तेन रुद्धः अवकाशो यस्याः सा ताम् (बहुव्री०)। आकाङ्क्षन्तीम्=आ+√काङ्क्ष् भ्वा० पर० (चाहना)+अत् (शतृ)+ई स्त्रियाम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः—शुद्धस्नानात्=केवल जल से किया गया स्नान शुद्ध-स्नान होता है। यक्ष-पत्नी के स्नान में साधारणतया सुगन्धित तैल, उबटन, पाउडर तथा अन्यान्य शरीरसंस्करण-द्रव्यों का प्रयोग नहीं होता था, क्योंकि प्रोषितभर्तृका स्त्री के लिए केवल 'शुद्धस्नान'–का विधान है। देखिए—याज्ञ० स्मृ० I. ८४ 'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषित-भर्तृका ॥' अथवा इस पद्य में आगे 'मत्संभोग' पाठ की उपपत्ति के लिए यहाँ 'शुद्धस्नान' से ऋतुकालानन्तरीय स्नान लेना चाहिए, क्योंकि 'ऋतुस्नाता' के लिए पति-संभोग का विधान है।

अधरकिसलयक्लेशिना निःश्वासेन—अधरों की किसलयों (कोंपलों) से समानता बताई जाती है। देखिए अभि० शा० I. २१—'अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।' इस अंश में लुप्तोपमा है। निःश्वास-वायु की गरमी से होठों के कुम्हलाने के लिए देखिए उत्तरमेघ २४—'निःश्वासाना-मशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।' और अभि० शा० VI. ६—'श्वासोपर-क्ताधरः।'

मत्संभोगः—इसका पाठान्तर 'मत्संयोगः' है। यह पाठ पार्श्वा० तथा अन्य टीकाकारों ने भी दिया है। यह पाठ 'मत्संभोगः' से इस अंश में अच्छा है कि पहले-पहल पति-पत्नी का समागम ही अपेक्षित है; संभोग तो समागम के वाद की अवस्था होती है। जब समागम ही नहीं, तो सम्भोग कहाँ। कालिदास ने अपनी अन्य कृतियों में भी स्वप्न में समागम ही वताया है। देखिए अभि० शा० VI. २२—प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः।' और विक्रमो० II १०—'कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम्'

उपनमेत्—इसका पाठान्तर 'उपनयेत्' है इस पाठ को स्वीकार करने से पूर्व हमें√नी को अकर्मक क्रिया के समान प्रयुक्त हुआ समझना होगा, क्योंकि उप+√नी का अर्थ यहाँ होना है और इस प्रकार धातु के अर्थान्तर में चले जाने से 'धातोरर्थान्तरे 'वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ॥' इस नियम से इसका अकर्मक हो जाना स्वाभाविक ही है।

नयनसलिलोत्पीड०—'नयनसलिल' का अर्थ 'आँसू' और 'उत्पीड' का अर्थ 'ऊपर तक भर आना' है। देखिए पूर्वमेघ ३९—'तस्मिन्काले नयनसलिलं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योषितां खण्डितानाम् ।' तथा उत्तर० च०—'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।' 'अवकाश' का अर्थ स्थान है। आँख नींद का स्थान है। देखिए रघु० V. ६०—'निद्रा चिरेण नयनाभिमुखीबभूव ।' बेचारी यक्ष-पत्नी की रातें आँखों में ही बीतती थीं और वह रोती ही जाती थी। इससे मल्लि० के शब्दों में 'उसका लज्जात्याग व्यङ्ग्य है' ॥३१॥

आद्ये बद्धा विरह-दिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा [1]तां मयोद्वेष्टनीयाम्[2] ।
स्पर्शक्लिष्टा[3]-मयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
[4]गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं[5] करेण ॥३२॥

अन्वयः—आद्ये विरह-दिवसे दाम हित्वा या शिखा बद्धा, शापस्य अन्ते विगलितशुचा मया उद्वेष्टनीयां स्पर्शक्लिष्टां कठिनविषमाम् एकवेणीं ताम् अयमित-नखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत् सारयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य) ।

पदार्थः—आद्ये विरह-दिवसे=विरह के पहले दिन। दाम=पुष्प-माला को हित्वा=त्याग कर या शिखा—जो बालों की चोटी। बद्धा=गूंथी थी। शापस्यान्ते=शाप के अन्त में। विगलितशुचा=शोक रहित होकर। मया उद्वेष्टनीयाम्=मुझ से खोले जाने वाले। स्पर्शक्लिष्टाम्=छूने से क्लेशदायक। कठिनविषमाम्=कठोर और खरखरी। एकवेणीं ताम्=एक गुत्त के रूप में बँधी उस (चोटी) को। अयमितनखेन=बिना काटे नाखूनों वाले। करेण=हाथ से। गण्डाभोगात्=विस्तृत गालों पर से। असकृत=बार-बार। सारयन्तीम्=परे हटाती हुई।

भाषानुवादः—विरह के पहले दिन पुष्प-माला को छोड़ कर जो बालों की चोटी गूंथी थी; जो शोक-रहित होकर शाप के अन्त में मुझ से खोले जाने वाली है, छूने में क्लेश-दायक, कठोर और खरखरे (खुरदरे) तथा एक गुत्त के रूप में स्थित है, उस (चोटी) को बिना कटे नाखूनों वाले हाथ से विस्तृत कपोलों पर से बार-बार परे हटाती हुई (उस पतिव्रता को तुम देखोगे) ।

१—या मयो०—स० ती०, वा०, म० सिं०, सारो०; २—या मयोद्वेष्टनीया—वि०, व०; या मयोन्मोचनीया। ३—अपर्ष्मित०। ४—गल्ला०। ५—कठिनविषमात्—व०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—विरहदिवसे =विरहस्य दिवसः विरहदिवसः तस्मिन् । दाम= दामन् (नपुं०) का द्वि० एक० । हित्वा=√हा, जुहो० प० (छोड़ना)+त्वा (क्त्वा) । बद्धा=बन्ध् क्र्या० उभ० (बाँधना, गूंथना) + त (क्त) + आ (स्त्रियाम्) । विगलितशुचा= विगलिता शुक् यस्य सः विगलितशुक् (ब० व्री०) तेन । उद्वेष्टनीयाम्=उन्मुक्तं वेष्टनं यस्याः सा (ब० व्री०) । उद्वेष्टना— जिसकी गाँठ खोल दी गई है । उद्वेष्टनां करोति इति उद्वेष्टयति (अर्थात् खोलता है) । उद्वेष्टना से उद्वेष्टयति बनाते समय 'आख्यातात् कृतः तदाचष्टे कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम्' इस वार्त्तिक से णिच् परे रहते कृत् (अन्) का लोप हो जाता है । फिर उद्वेष्ट (नामधातु)+अनीय (कर्मणि)+आ (स्त्रियाम्) होकर 'उद्वेष्टनीयाम्' बना । उत्√+वेष्ट् से भी 'अनीयर्' जोड़कर 'उद्वेष्टनीयाम्' बन सकता है, किन्तु उसका अर्थ 'ऊपर लपेटे जाने योग्य' होगा, खोले जाने योग्य नहीं, जो प्रकृत में विवक्षित है । इसलिए पूर्वोक्त व्युत्पत्ति-प्रकार ही ठीक है । स्पर्शक्लिष्टाम्=स्पर्शे क्लिष्टा स्पर्शक्लिष्टा (स० तत्पु०) ताम् । कठिनविषमाम्=कठिना च सा विषमा च ताम् । इसमें 'खञ्ज-कुब्जादिवत्' किसी एक विशेषण को दूसरे विशेषण के प्रति प्राधान्य मानकर 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इस सूत्र से कर्मधारय समास हुआ—ऐसा मल्लि० का कहना है । वास्तव में विशेष्य तो 'शिखाम्' है और उसका विशेषण 'कठिनविषमाम्' है, इसलिए 'कठिन' और 'विषम' दोनों ही गुणीभूत हैं, इनमें कोई भी प्रधान नहीं, फिर भी विशेषण-विशेषणों का समास कर्मधारय के अन्तर्गत ही माना जाता है। एकवेणीम्=एका वेणी एकवेणी ताम् । अयमितनखेन=न यमिताः नखाः यस्य सः अयमितनखः तेन (ब० व्री०) यमित=√यम् भ्वा० प० (वश में करना)+त (क्त), णिच् । गण्डाभोगात्= गण्डस्य आभोगः गण्डाभोगः तस्मात् (ष० तत्पु०) । असकृत्=न सकृत् (नञ् तत्पु०) सारयन्तीम्=√सृ, भ्वा० प०, णिच्+अत् (शतृ)+ई स्त्रियाम्) ।

विशेषः—शिखा—इसका अर्थ केश, लटें व बालों की चोटी है ।

दामं हित्वा—पुष्पों या पुष्पमालाओं का जूड़े में पिरोना या लगाना बालों का भूषण समझा जाता है । देखिए उत्तरमेघ. २—'अलके बालकुन्दानुविद्धम् ।' विरहिणी होने के कारण यक्ष-पत्नी के लिए बालों में पुष्पों या पुष्पमालाओं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का पिरोना निषिद्ध है । देखिए हारीत स्मृ०—'न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न च वेणीं प्रमोचयेत् ।' विचार-साम्य के लिए देखिए शिशु०, XIV. 'तत्र नित्यविहितोपहूतिषु प्रोषितेषु पतिषु द्युयोषिताम् । गुम्फिताः शिरसि वेणयोऽभवन् न प्रफुल्लसुरपादपस्रजः ॥'

मयोद्वेष्टनीयाम्—प्राचीन काल में यह प्रथा प्रचलित थी कि वियुक्त होने के अवसर पर पति स्वयं पत्नी के बालों को 'एक-वेणी' में गूँथता था और विरह के अनन्तर वही उसे खोला भी करता था। देखिए रघु० VII. ६—'उद्वेष्टनवान्तमाल्यः' और देखिए उत्तरमेघ. ३९—'यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां, मद्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरवलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥'

स्पर्शक्लिष्टाम्—जब कोई सहेली यक्ष-पत्नी की 'एकवेणी जटा' को छूती थी, तो उसे बालों की जड़ों में बड़ी वेदना हुआ करती थी, क्योंकि सब बाल एक ही वेणी के रूप में थे, इसलिए कहीं से भी छूते ही वे खींचे-से जाकर पीड़ा देते थे। कुछ व्याख्याकार 'स्पर्शेन क्लिष्टाम्' इस प्रकार विग्रह कर इसमें तृ० तत्पु० बताते हैं। इससे यह अर्थ निकलता है कि बार-बार मुख पर से सरकाने व छूते रहने से बाल क्लिष्ट हो गये थे, अर्थात् दब-से गए थे, एवं दृढ़ हो गये थे। इस प्रकार अर्थ करने से 'कठिन-विषमाम्' विशेषण भी ठीक बैठ जाता है। हमें यह तृतीयातत्पु० वाला अर्थ अधिक अच्छा लगता है।

अयमितनखेन—विरहिणी के लिए विरहकाल में नाखूनों का काटना निषिद्ध है। देखिए हारीतस्मृ०—'न प्रोषिते तु संकुर्यान्न च वेणीं प्रमोचयेत् ।'

एकवेणीम्—एक वेणी वाली चोटी को, क्योंकि विरह-काल में बालों में कंघी का लगाना एवं केश-संस्कार निषिद्ध है। उत्तरमेघ० २८ (ख)—जो प्रक्षिप्त है—के तीसरे चौथे पाद इस पद्य से बहुत मिलते हैं। देखिए उक्त पद्य का विशेष स्तम्भ। मल्लि० के अनुसार प्रकृत श्लोक में मुख पर से बार-बार बालों के वेणी को हटाते रहने से यक्षपत्नी की 'चित्तविभ्रमदशा' सूचित होती है ॥३२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सा संन्यस्ताभरणमबला [1]पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम् ।
[2]त्वामप्यस्रं [3]नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥३३॥

अन्वयः—अबला, संन्यस्ताभरणम् असकृत् दुःखदुःखेन शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं गात्रं धारयन्ती सा त्वामपि नवजलमयम् अस्रम् अवश्यं मोचयिष्यति । प्रायः आर्द्रान्तरात्मा सर्वः करुणा-वृत्तिः भवति ।

पदार्थः—अबला=दुर्बल, कृश । संन्यस्ताभरणम्=आभूषणों से रहित । असकृत्=बार-बार । दुःखदुःखेन=अत्यधिक दुःख से, बड़ी कठिनाई से । शय्योत्सङ्गे निहितम्= सेज पर रखे हुए । पेशलम्=कोमल । गात्रम्=शरीर को । धारयन्ती=धारण करती हुई । सा=वह (मेरी पत्नी) । त्वामपि= तुझसे भी । नवजलमयम् अस्रम्=नवीन जलरूपी-आँसुओं को । अवश्यं मोचयिष्यति—अवश्य गिरवायेगी । प्रायः=विशेषकर । आर्द्रान्तरात्मा=कोमल अन्तर-हृदय-वाले । सर्वः=सारे । करुणावृत्तिः भवति–दयालु स्वभाव के हुआ करते हैं ।

भाषानुवादः—दुर्बल बनी, आभूषणों से विहीन, बार-बार बड़ी कठिनाई से सेज पर रखे हुए कोमल शरीर को धारण करती हुई वह (मेरी पत्नी) तुझसे भी नवीन जल-रूपी आँसू अवश्य गिरवाएगी । प्रायः कोमल अन्तरात्मा वाले सब दयालु स्वभाव के हुआ करते हैं ।

व्याकरणम्—अबला=न बलं यस्याः सा (ब० व्री०) । संन्यस्ताभरणम्= सन्यस्तानि आभरणानि यस्मात् तत् (ब० व्री०) । असकृत्=न सकृत् असकृत् (नञ् तत्पु०) । दुःखदुःखेन=दुःखप्रकारेण 'प्रकारे गुणवचनस्य' अथवा वीप्सायां द्विरुक्तिः । देखिए 'मन्दं मन्दं' पूर्वमेघ० १० का 'व्याकरण-भाग' । शय्योत्सङ्गे= शय्यायाः उत्सङ्गः तस्मिन् । निहितम्=नि+√धा, जुहो० उ० (रखना) +त (क्त) । धारयन्ती=√धृ, चुरा० उभ० (धारण करना)+अत् (शतृ) +ई (स्त्री० प्रत्य०) नवजलमयम्+नवं च तत् जलं नवजलं नवजलम् एव नवजलमयम् नवजल+मयट् (स्वरूपार्थे) । मोचयिष्यति=√मुच्, तुदा० प० (छोड़ना)+णिच्, लृट् प्र० पु० एक० । 'द्विकर्मसु पचादीनामुपसंख्यानम्' इससे

१—पेलवं—का० वा० पा० । कोमलं—वि० म० सिं० । २–अश्रु–वि०, [०] वि० । ३—जललवमयं—वि० । जलकलमयं—म० सिं० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुच् धातु द्विकर्मक हुई (मल्लि०), किन्तु सिद्धान्त-कौमुदी अथवा काशिका में गिनाए हुए पचादि द्विकर्मक धातुओं में 'मुच्' नहीं आता है। संभवतः मल्लि० की 'पचादित्वात् द्विकर्मकत्वम्' इस उक्ति का आधार सुधाकर का यह वचन हो—"जायतेः कर्षतेर्मन्थेर्मुषेर्दण्डयतेः पचेः। तारेर्ग्रहिस्तथा मोचेस्त्याजेर्दीपेश्च संग्रहः ॥' वास्तव में 'मुच् को यहाँ द्विकर्मक मानने की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि मुच् धातु को ण्यन्त बनाने में अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्त में 'गति-बुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ,' इस सूत्र से कर्मता हो ही जाती है। जैसे—त्वं जलमयम् अस्त्रं मोक्ष्यसि' का ण्यन्त में त्वां जलमयम् अस्त्रं मोचयिष्यति'। मुच् धातु एक प्रकार की गति का बोधक होने से गत्यर्थक है। दूसरी बात यह है कि अण्यन्तावस्था में द्विकर्मक मानने से 'मोक्ष्यति' रूप बनना चाहिए था, 'मोचयिष्यति' नहीं।

विशेषः—अबला—यद्यपि अबला शब्द स्त्री-मात्र का वाचक है, तथापि प्रकृत में यह विशेषण है, जिसका अर्थ 'दुर्बल, कृश' है।

संन्यस्ताभरणम्—इस विषय में मल्लि० ने लिखा है—'कृशत्वात्परित्यक्ता-भरणम्' अर्थात् यक्ष-पत्नी ने दुर्बलता के कारण आभूषण उतार दिये थे। वास्तव में विरहिणी होने के कारण उसके लिए आभूषण पहनना निषिद्ध था, अतः उसने आभूषणों को त्याग दिया था।

पेशलम्—इसका पाठान्तर 'पेलवं' तथा 'कोमलं' है। तीनों का एक ही अर्थ है। यहाँ 'पेशल' का अर्थ सुन्दर न होकर कोमल है। देखिए पूर्वमेघ० १७ का विशेष-स्तम्भ।

नवजलमयम्—देखिए पूर्वमेघ० २६—'सिञ्चन् उद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।' और उत्तरमेघ० ८ 'आलेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः।' इसके पाठान्तर 'जललवमयं' और 'जलकणमयं' हैं। इन दोनों पाठों से अर्थ में विशेष विभिन्नता नहीं आती है, किन्तु इनसे वर्षाकाल के प्रारम्भिक जलवर्षण का अर्थ प्रकट नहीं होता, अतः 'नवजलमयम्' ही अच्छा है।

इस पद्य में 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है। यहाँ विशेष का सामान्य से समर्थन है, अर्थात् 'मेरी पत्नी अपनी दयनीय दशा से तुझे भी रुला देगी'। इस विशेष बात को 'कोमलचित्त वाले सभी पिघल ही जाते हैं' इस सामान्य बात से समर्थन मिलता है।

कवि ने उत्तरमेघ के पद्य २५-३३ में काम की उन दस अवस्थाओं में से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आठ अवस्थाओं का वर्णन किया है, जिनमें से प्रेमी-जन विरह-काल में गुजरते हैं। ये दश अवस्थाएँ हैं —"दृङ् मनःसङ्गसंकल्पा जागरः कृशताऽरतिः। ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश ॥" इन दश अवस्थाओं में से दृक्संग (आँखें मिलाना) और अन्त (मृत्यु) इन दो प्रथम और अन्तिम दशाओं को छोड़ दिया गया है क्योंकि 'दृक्संग' तो संयोग से पहिले ही हुआ करता है और यक्ष तथा यक्ष-पत्नी वियोग से पहले संयुक्त ही थे और अन्त अर्थात् मृत्यु का यहाँ स्थान ही नहीं है, यद्यपि ३३ वें पद्य में इस ओर थोड़ा-सा संकेत अवश्य किया हुआ मिलता है। २५-२६ श्लोक में 'मनःसंग' (उत्कण्ठा) २७वें पद्य में 'संकल्प' (पति तथा पतिसमागम के विचार); पद्य २८ में 'जागर' (नींद न आना, उनींदापन), पद्य २९ में 'कृशता' (दुर्बलता), पद्य ३० में 'अरतिः' (आमोद-प्रमोद में रुचि न होना), पद्य ३१ में 'ह्रीत्यागः' (स्त्रियोंचित लज्जा का न होना), पद्य ३२ में 'उन्मादः' (पागलपन) और पद्य ३३ में 'मूर्च्छा' (चेतना-रहित होकर लेट जाना) ॥३३॥

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
दित्थम्भूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।
वाचालं मां न खलु [1]सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते [2]निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ॥३४॥

अन्वयः—(हे मेघ !) तव सख्याः मनः मयि संभृतस्नेहं जाने अस्मात् प्रथमविरहे ताम् इत्थंभूताम् अहं तर्कयामि। सुभगम्मन्यभावः मां वाचालं न करोति खलु। हे भ्रातः! यत् मया उक्तं (तत्) निखिलम् अचिरात् ते प्रत्यक्षं (भविष्यति)।

पदार्थः—तव सख्याः मनः=तेरी सखी का मन। मयि संभृतस्नेहम्=मेरे प्रति अनुराग से भरा हुआ है। (इति) जाने=यह मैं जानता हूँ। अस्मात्=इसलिए। प्रथमविरहे=पहले वियोग में। ताम्=उसे। इत्थंभूताम्=इस प्रकार की हुई। अहं=मैं। तर्कयामि=अनुमान करता हूँ। खलु=वास्तव में सुभगम्मन्यभावः=अपने को सौभाग्यवान् समझने का अभिमान। मां वाचालं न करोति=मुझे अधिक बोलने वाला नहीं बना रहा है। हे भ्रातः! यत् मया उक्तम्=हे भाई! जो मैंने कहा है। (तत्) निखिलम्= (वह) सब

१—सुभगंमन्युभावम् ०मत्समानः। २—सकलम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुछ। अचिरात्=शीघ्र ही। ते प्रत्यक्षं (भविष्यति)=तेरी आंखों के सामने आ जायगा।

भाषानुवादः—(हे मेघ!) तेरी सहेली (मेरी पत्नी) का मन मेरे प्रति अनुराग से भरा हुआ है—(यह) मैं जानता हूँ, अतएव प्रथम वियोगमें मैं उसे ऐसी बनी हुई अनुमान करता हूँ। वास्तव में अपने आपको सौभाग्यवान् (वड़-भागी) समझने का विचार मुझे (इस प्रकार) वाचाल—अधिक बोलने वाला-बना रहा है। हे भाई! जो कुछ मैंने कहा है, वह सब शीघ्र ही तुम्हारी आँखों के आगे आ जाएगा।

व्याकरणम्—संभृतस्नेहम्=संभृतः (सम्+√भृ भ्वा० प०+त) स्नेहो यस्मिन् तत् (ब० व्री०) जाने=√ज्ञा, क्र्या० उभ० (जानना) लट् उ० पु० एक०। प्रथमविरहे=प्रथमश्चासौ विरहः तस्मिन् (कर्मधा०)। इत्थंभूताम्=इत्थम् भूता इति ताम् इत्थम्=इदम्+थमु (प्रकारवचने)=एवंप्रकारम्। तर्कयामि=√तर्क्, चुरा० उभ० (अनुमान करना) लट् उत्त० पु० एक०। सुभगंमन्यभावः=सुभगमात्मानं मन्यते इति सुभगंमन्यः। 'आत्ममाने खश्च' इससे खश् (अ) प्रत्यय, 'अरुर्द्विषत्—' इस सूत्र से मुम्' आगम। तस्य भावः। 'आत्ममाने'—(जब कोई अपने को कुछ समझता हो) अर्थ में खश् (अ) या इन् प्रत्यय का आगम होता है, जैसे—पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितंमन्यः या पण्डितमानी। वाचालम्=वच्+आल। वाच् के आगे 'आल' और 'आट्' प्रत्यय विना प्रयोजन वहुत बोलने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। प्रत्यक्षम्=अक्षि प्रति गतम् (अव्य० भा०), प्रति+अक्षि+टच् समासान्त; प्रत्यक्षम् अस्ति अस्य इति प्रत्यक्ष+अश् (मतुवर्थीय) 'तत्' का विशेषण। जव प्रत्यक्षादि शब्द अव्यय न रह कर विशेषण बन जाते हैं, तव 'अर्शआदिभ्योऽच्' का सहारा लेना पड़ता है; इसके लिए देखिए, भट्टोजिदीक्षित—'परोक्षा क्रिया इत्यादिषु अर्शआद्यचि'।

विशेषः—इत्थंभूताम्=यक्षपत्नी की अवस्था उत्तरमेघ पद्य २९ से ३३ तक वर्णित है।

संभृतस्नेहम्—यह 'मनः' का विशेषण है। यक्ष-पत्नी पतिव्रता स्त्री है, तो यक्ष भी उसके लिए आदर्शपति है। यदि यक्ष-पत्नी स्वाधीन-पतिका है, तो यक्ष 'अनन्यासक्त-पति' है। अतः यक्ष और उसकी पत्नी जैसे पति-पत्नियों का परस्पर दृढानुराग होना स्वाभाविक ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अचिरात्—इसके लिए उत्तरमेघ० २५ का प्रथम पाद देखिए—'आलोके ते निपतति पुरा सा······' । इससे मेघ का यक्ष-पत्नी को शीघ्र ही मिलना सम्भावित है ॥३४॥

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि[1] शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति[2] ॥३५॥

अन्वयः—अलकैः रुद्धापाङ्गप्रसरम् अञ्जन-स्नेहशून्यम्, अपि च मधुनः प्रत्यादेशात् विस्मृत-भ्रूविलासं, त्वयि आसन्ने (सति) उपरिस्पन्दि मृगाक्ष्याः (वामं) नयनं मीनक्षोभात् चल-कुवलय-श्रीतुलाम् एष्यति इति शङ्के ।

पदार्थः—अलकैः=लटों (बालों) से । रुद्धापाङ्गप्रसरम्=जिसकी कनखियों तक की गति रोक दी गई है । अञ्जन-स्नेह-शून्यम्=सुरमे की चिकनाहट से रहित । अपि च=और । मधुनः=मदिरा के । प्रत्यादेशात्=परित्याग से । विस्मृतभ्रूविलासम्=जो भौहों की क्रीड़ा को भूल गया है । त्वयि आसन्ने (सति) =तेरे पास आने पर । उपरिस्पन्दि=ऊपर के भाग में फड़कता हुआ । मृगाक्ष्याः =मृगनयनी का । नयनम्=नेत्र । मीनक्षोभात्=मछली के हिलने-डुलने से । चल-कुवलयश्रीतुलाम् एष्यति=चंचल बने नील कमल की शोभा से समता प्राप्त करेगा । इति शङ्के=ऐसा विचार करता हूँ ।

भाषानुवादः—उस मृगनयनी का (बांयाँ) नेत्र, जिसकी कनखियों तक की गति बालों ने रोक रखी होगी, जो सुरमे की चिकनाहट से शून्य होगा तथा मदिरा के परित्याग के कारण भौहों की क्रीड़ा को भूल गया होगा, तेरे पास आने पर ऊपर की ओर फड़कता हुआ, मछली के हिलने-डुलने से चंचल बने नील—कमल की शोभा से समता प्राप्त करेगा—ऐसा मेरा विचार है ।

व्याकरणम्—रुद्धापाङ्गप्रसरम्=रुद्धं (√रुन्ध्, रुधा० उभ० (रोकना) +त) अपाङ्गयोः प्रसरः यस्य तत् (ब० व्री०) । अञ्जनस्नेहशून्यम्=अञ्जनेन जनितः स्नेहः तेन शून्यम् (मध्यम० लोपी) । मधुनः=मधु नपुं० ष० एक० । प्रत्यादेशात्=प्रति+आ+√दिश्, तुदा० उभ० (बताना)+घञ् (भावे) ।

१—०स्यन्दि । २—०क्षोभाकुल०=वि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विस्मृतभ्रूविलासम् = विस्मृतो भ्रुवोः विलासो येन तत् (ब० व्री०)। त्वयि आसन्ने (सति) = भावे या सत् सप्तमी। आसन्ने—आ+√सद्, तुदा० प० (जाना) +त। उपरिस्पन्दि = उपरि (ऊर्ध्वभागे) स्पन्दते इति√स्पन्द्, भ्वा० आ०+ णिनि (कर्तरि)। मृगाक्ष्याः = मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी (नेत्रे) यस्याः सा मृगाक्षी (ब० व्री०) तस्याः। मीनक्षोभात् = मीनेन क्षोभात् (तृ० तत्पु०)। क्षोभः = √क्षुभ् = घञ् (भावे)। चलकुवलयश्रीतुलाम् = चलस्य कुवलयस्य (नीलकमलस्य) (कर्मधा०) श्रियाः (शोभायाः) तुलां (ष० तत्पु०) (सादृश्यम्)। एष्यति = √इ, अदा० प० (जाना), लृट् प्र० पु० एक०। शङ्के = √शङ्क् भ्वा० आ० (शंका करना), लट् उत्तम पु० एक०।

विशेषः—अलकैः रुद्धापाङ्गप्रसरम्—भाव यह है कि यक्ष-पत्नी की चोटी से निकलते हुए बाल उसके मुख पर आ पड़ते थे, इसलिए उसकी आँखें अपाङ्गों (प्रान्तभागों—कनखियों) तक नहीं फैल सकती थीं, अर्थात् उसकी चितवन पूरा काम न कर अधूरी ही रह जाती थी।

अञ्जनस्नेहशून्यम्—इसमें स्नेह शब्द का 'चिकनाहट' के अतिरिक्त 'मैत्री' अर्थ भी ले सकते हैं, अर्थात् जिन आँखों ने सुरमे से मैत्री छोड़ दी थी या जो बिना सुरमे के रहा करती थीं। प्रोषित-पतिका स्त्री के लिए विरहकाल में सुरमे का प्रयोग निषिद्ध है। देखिए—हारीत स्मृ० 'न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न च वेणीं प्रमोचयेत्' और देखिए—याज्ञ० स्मृ० I ८४ 'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥' विचार-साम्य के लिए देखिए स्वप्नवा०—'नेत्रविप्रोषिताञ्जनं चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम्।'

मधुनः प्रत्यादेशात्—यक्षपत्नी ने विरहकाल में मदिरा-पान छोड़ दिया था। मदिरा-सेवन की प्रथा कालिदास के समय में भी प्रचलित थी। देखिए पूर्वमेघ० ५१—'हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां' और देखिए रघु० IV ६१—'यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः'।

विस्मृतभ्रूविलासम्—यक्षपत्नी की आँखें विरहकाल में भौहों के विलास को भूल-सा गयी थीं, क्योंकि वह सती साध्वी वियोगावस्था में थी। इसके विपरीत भाव के लिए देखिए पूर्वमेघ० ४९—'परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां······· पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्'।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपरिस्पन्दि नयनम्—नयन से यहाँ वाम नयन विवक्षित है, क्योंकि स्त्री की बाईं आँख का फड़कना अच्छा शकुन माना गया है। देखिये—'वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः। दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलङ्करणेऽपि च ॥' इस सम्बन्ध में मल्लि० ने 'निमित्त-निदान' से 'निम्न श्लोक उद्घृत किया है—'स्पन्दान्मूर्ध्नि च्छत्रलाभं ललाटे पट्टमंशुकम्। इष्टप्राप्ति दृशोरूर्ध्वमपाङ्गे हानिमादिशेत्'। वामक्षिस्पन्दन के लिए देखिए अभि० शा०—'वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा।'

मीनक्षोभात् चलकुवलयश्रीतुलाम्—'मीनक्षोभात्' के स्थान पर विल्सन का 'मीनक्षोभाकुल०' पाठ एक समास होने से अच्छा है, क्योंकि 'मीनक्षोभ' का समास आवश्यक ही है। अन्यथा 'चलकुवलयश्रीतुलाम्' असमर्थ समास हो जायेगा। कारण कि चलकुवलय० वाले समस्त पद में 'चल' शब्द 'मीन-क्षोभात्' के साथ सापेक्ष है अर्थात् कुवलय इस लिए हिलता है कि उसके आस-पास मछली के दौड़ने से जल क्षुब्ध हो रहा है, इसलिए 'मीनक्षोभाकुल-कुवलय' एक ही समस्त पद होने पर यह आपत्ति ही नहीं ठहरती। साथ ही इसमें अनुप्रास भी बन जाता है।

श्रीतुलाम्—मल्लि० ने यहाँ 'श्रिया तुलाम्' तृ० तत्पु० माना है और तृतीया-विधायक 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' इस सूत्र से अतुलो-पमाभ्याम्='तुला और उपमा शब्द को छोड़कर' इस प्रतिषेध के सम्बन्ध में "सदृश-पर्यायस्य तुलाशब्दस्य प्रतिषेधादत्र च सादृश्यवाचित्वात् तद्योगेऽपि तृतीया"—अर्थात् 'सदृश' के वाचक 'तुला' शब्द के लिए ही तृतीया निषिद्ध है किन्तु यहाँ तुला का सादृश्य अर्थ होने से उक्त प्रतिषेध चरितार्थ नहीं होता' यह तर्क दिया है। वास्तव में 'तुला' और 'उपमा' इन दोनों का सदृश अर्थ होता ही नहीं, 'सादृश्य' अर्थ होता है। नागेश ने भी 'तुला' और उपमा दोनों शब्दों को सादृश्यार्थक ही माना है, सदृशार्थक नहीं; इसलिए मल्लि० का 'उक्त प्रतिषेध चरितार्थ नहीं होता' वाला तर्क गिर जाता है। इस तरह तुला शब्द के साथ तृतीया का निषेध हो जाने से 'शेषे षष्ठी' इस सूत्र से षष्ठी ही होती है और 'श्रीतुलाम्' का विग्रह जैसा कि हमने किया है 'श्रियाः तुलाम्' ही होना चाहिए। मल्लि० ने महाकाव्य I ४ की टीका में भी "सदृशपर्याययोः तुलो-पमाशब्दयोः—'अतुलोपमाभ्याम्' इति निषेधात् सादृश्य-वाचित्वे तृतीया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्याहुः' कहकर वही मत प्रकट किया है, जैसा कि यहाँ। कुछ सम्पादकों ने मल्लि० की टीका में 'श्रियाः शोभायाः' पाठ दिया है, किन्तु वे गलती में हैं, क्योंकि मल्लि० ने स्वयं टीका में तृतीया का ही उपपादन कर रखा है।

भावसाम्य के लिए देखिए—रामा० सुन्द० XXIX २ 'तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्मराजीवृतं कृष्णविशालशुक्लम्। प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥'

इस पद्य में उपमालंकार है ॥३५॥

[1]वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं[2]चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां[3]
यास्यत्यूरुः [4]सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥३६॥

अन्वयः—मदीयैः कररुह-पदैः मुच्यमानः, दैवगत्या चिरपरिचितं मुक्ताजालं त्याजितः, सम्भोगान्ते मम हस्त-संवाहनानां समुचितः, सरस-कदली-स्तम्भगौरः अस्याः वामः ऊरुः चलत्वं यास्यति।

पदार्थः—मदीयैः=मेरे। कररुहपदैः=नाखूनों के चिह्नों से। मुच्यमानः =मुक्त होती हुई। दैवगत्या=भाग्यवश। चिरपरिचितम्=देर से अभ्यस्त। मुक्ताजालं त्याजितः=मोतियों की लड़ी (वाली करधनी) से निर्मुक्त। संभोगान्ते=रति-क्रीड़ा के बाद। मम हस्तसंवाहनानां समुचितः=मेरे हाथों से दबाए जाने योग्य। सरसकदलीस्तम्भगौरः=गीले-गीले केले के तने के समान गोरी। अस्याः इस (प्रियतमा) की वामः ऊरुः=बायीं जांघ। चलत्वं यास्यति=फड़क उठेगी।

भाषानुवादः—मेरे नाखूनों के चिह्नों से मुक्त हुई, भाग्यवश चिर परिचित मोतियों की लड़ी (वाली करधनी) को छोड़े हुए, रति-क्रीड़ा के बाद मेरे हाथों से दबाये जाने योग्य तथा गीले-गीले केले के तने के समान गोरी-इस (प्रियतमा) की बाईं जाँघ (तेरे दिखलाई देने पर) फड़क उठेगी।

१—वामो वास्याः—व०। २—चिरपरिचित—वि०; नवपरिचितं। ३—संवाहनस्य। ४—कनक०—वि०, व०, सरसकदलीगर्भ०—का० वा० पाठकः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—करुहपदैः=करे रोहन्ति इति करुहाः तेषां पदानि (चिह्नानि) तैः मुच्यमानः=√मुच् तुदा० प० (छोड़ना)+मान (शानच्) कर्मणि । चिरपरिचितम्=चिरं परिचितम् । परि+√चि स्वा० उभ०+त (क्त) । मुक्ताजालम्=मुक्तानां जालम् (ष० तत्पु०) त्याजितः=√त्यज् भ्वा० प० (छोड़ना)+णिच्+त (क्त) । त्यज्, मुच् आदि धातुओं को पच् धातु के समान द्विकर्मक माना जाता है। इसपर अधिक विवेचन के लिए देखिए उत्तरमेघ पद्य ३३ में 'मोचयिष्यति' पर व्याकरण-स्तम्भ । सम्भोगान्ते=सम्भोगस्य अन्ते (ष० तत्पु०) । हस्तसंवाहनानाम्=हस्तेन संवाहनानाम् । सम्+√वह्+णिच्+अन (ल्युट्) सरसकदलीस्तम्भगौरः=रसेन सहितः सरसः यः कदल्याः स्तम्भः तद्वत् गौरः (कर्मधा०) । चलत्वम्=चलतीति चलः तस्य भावः तत्त्वम्√चल्, भ्वा० प०+अ+त्व (भावे) । यास्यति =√या, अदा० प० (जाना),लृट् प्र० पु० एक० व० ।

विशेषः—मुक्ताजालं त्याजितः, देखिए—रघु० IV ३३—'त्याजितैः फलमुत्खातैः' । इस पर मल्लि० ने 'ग्रहित्यज्योर्ण्यन्तयोर्द्विकर्मकत्वम्' यह भाष्य दिया है । कैयट मल्लि० से इस विषय पर सहमत नहीं। वह 'अकथितं च' पर व्याख्या करता हुआ कहता है—गवा पयस्त्याजयति ।

हस्तसंवाहनानां—देखिए अभि० शा० III १८—अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।

सरसकदलीस्तम्भगौरः—इसका पाठान्तर '०कदलीगर्भगौरः' है। यह पाठ साधुतर प्रतीत होता है, क्योंकि केले के स्तम्भ (तने) का अन्दर का भाग बाहरी भाग से श्वेततर होता है। पण्डित ईश्वरचन्द्र इस में दिए गए पाठ (०कदलीस्तम्भगौरः) का समर्थन करते हुए कहते हैं—"अयमेव पाठः साधीयान् । कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः इत्यत्र अलकायां कनककदलीनां बाहुल्य-दर्शनादुपमितिकाले तासामेव बुद्धिस्थत्वात् ।" भाव-साम्य के लिए देखिए—दशकुमार०, पूर्वपी० प्रथम उच्छ्वास 'विघ्नितयतिजनारम्भे रम्भे चोरुयुगम् ।' कुमार० I ३० पार्वती का वर्णन करते हुए कवि कालिदास ने हाथी सूंड तथा कदली को उसकी जाँघ (ऊरु) का उपमान नहीं समझा—'नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषः । लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वामः ऊरुः चलत्वं यास्यति—यहां वाम (बाँयें) ऊरु के फड़कने का उल्लेख इसलिए किया है कि स्त्रियों के शरीर का वाम तथा मनुष्यों का दक्षिण भाग श्रेष्ठ माना गया है। देखिए—'वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः। दाने देवादिपूजायां स्पन्दोऽलङ्करणेऽपि च॥ और देखिए निमित्तनिदान—ऊरोः स्पन्दाद्रतिं विद्यादूर्वोः प्राप्ति सुवाससः॥'

इस श्लोक में उपमालंकार है ॥३६॥

तस्मिन्काले जलद ! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
[1]दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं [2]सहस्व।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि[3] स्वप्नलब्धे कथञ्चित्
सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्॥ ३७॥

अन्वयः—हे जलद! तस्मिन् काले यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्यात्, एनाम् अन्वास्य स्तनित-विमुखः याममात्रं सहस्व। अस्याः प्रणयिनि मयि कथञ्चित् स्वप्नलब्धे (सति) गाढोपगूढं सद्यः कण्ठ-च्युत-भुजलता-ग्रन्थि मा भूत्।

पदार्थः—जलद !=हे मेघ। तस्मिन् काले=उस समय। सा=वह (प्रियतमा)। लब्धनिद्रासुखा स्यात्=मीठी-मीठी नींद ले रही हो तो। स्तनितविमुखः=बिना गर्जन के। याममात्रम्=एक पहर भर। एनामन्वास्य=इसके पीछे बैठकर। सहस्व=प्रतीक्षा करना। अस्याः प्रणयिनि मयि=इसके प्रियतम मेरे। कथञ्चित् स्वप्नलब्धे (सति)=किसी तरह सुपने से प्राप्त हो जाने पर। गाढोपगूढम्=गाढ आलिगन। सद्यः-कण्ठ-च्युत-भुज-लता-ग्रन्थि मा भूत्=एकाएक गले में लता-जैसी (लम्बी-लम्बी) भुजाओं के बन्धन से रहित न हो जाय।

भाषानुवादः—हे मेघ ! उस समय यदि मेरी प्रियतमा मीठी नींद ले रही हो, तो तू बिना गर्जन के प्रहर भर इसके पीछे बैठकर प्रतीक्षा करना। इसके प्रियतम मेरे किसी तरह स्वप्न में प्राप्त हो जाने पर (हमारा) गाढ़ आलिगन एकाएक गले में लता-जैसी भुजाओं के बन्धन से रहित न हो जाय।

१—अन्वासीनः, तत्रासीनः—वि०, व०, स० ती०, सारो०, म० सिं०
२—सहेथाः वि; क्षमस्व। ३—जने का० बा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—लब्धनिद्रासुखा=लब्धं निद्रायाः सुखं यया सा (ब० व्री०) एनाम्=एतद् शब्द का द्वि० एक० (स्त्रीलिङ्ग)। यह वैकल्पिक रूप अन्वादेश में है। अन्वास्य=अनु+√आस्, अदा० आ०+ल्यप्। याममात्रम्=यामम् एव याममात्रम्। काल के अत्यन्त-संयोग में द्वितीया। सहस्व=√सह्, भ्वा० आ०, लोट् म० पु० एक०। स्वप्नलब्धे=स्वप्ने लब्धः स्वप्नलब्धः तस्मिन् (स० तत्पु०)। गाढोपगूढम्=गाढं च तत् उपगूढम्। उप+√गुह्, भ्वा० उभ० (छिपना)+क्त (भावे)। सद्यः-कण्ठ-च्युत-भुजलताग्रन्थि=सद्यः (तत्क्षणं) कण्ठात् च्युतः (स्रस्तः) भुजयोः लतयोः इव ग्रन्थिः (बन्धः) यस्य तत् (ब० व्री०)। मा भूत्=मा—निषेधसूचक अव्यय, 'माङि लुङ्' माङ् (मा) के योग में लुङ्। 'न माङ् योगे' माङ् के योग में लुङ् के 'अट्' का निषेध हुआ। इस प्रकार के प्रयोग के लिए देखिए—पूर्वमेघ० २७. 'सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।' और ३९. 'तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः'।

विशेषः—अन्वास्य=पास में बैठ कर। आस् उपवेशने धातु अकर्मक होने पर भी 'अनु' के योग से सकर्मक बन जाती है। इसलिए 'एनाम्' यह द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ।' देखिए रघु० II. २४—'तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।'

याममात्रम्—'याम' (प्रहर) तीन घण्टे के बराबर का काल-परिणाम होता है। म० सिं० के अनुसार यक्ष ने मेघ को 'एक याम भर' प्रतीक्षा करने को जो कहा है, उसका कारण यह है कि यक्ष-पत्नी पद्मिनी स्त्री थी और 'पद्मिनी' की नींद एक याम-भर की होती है और इस सम्बन्ध में प्रमाण के लिए यह श्लोक प्रस्तुत किया है—'पद्मिनी यामनिद्रा च द्विप्रहरा च चित्रिणी। हस्तिनी यामत्रितया घोरनिद्रा च शङ्खिनी॥' किन्तु मल्लि० और ही कारण देता है—'शक्तयोरेकवारं सुरतस्य यामावधिकत्वात् स्वप्नेऽपि तथा भवितव्यम्—इत्यभिप्रायः, तथा च रतिसर्वस्वे—'एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः। चण्डशक्तिमतोर्यूनोरुद्भटक्रमवर्तिनोः॥' इति अर्थात् सशक्त पति-पत्नी का सम्भोग एक प्रहर तक चलता रहता है, इसलिए स्वप्न में भी वैसा ही होना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सहस्व——इसका पाठान्तर 'सहेथाः' है। 'सहस्व' लोट् और 'सहेथाः' विधिलिङ् है। विधिलिङ् का प्रयोग साधुतर है, क्योंकि इसमें नम्र प्रार्थना है, न कि लोट् की तरह आज्ञा।

कथञ्चित्—यह साभिप्राय शब्द है, क्योंकि यक्ष आशा करता है कि उसकी 'प्रियतमा' ने संभवतः बड़ी कठिनाई से मुझे सपने में प्राप्त किया हो। यहाँ 'निद्रोक्ति' का उत्तरमेघ २८ 'तामुन्निद्राम्' से प्रतिपादित सातवीं कामदशा 'प्रजागर' से कोई विरोध नहीं पड़ता, क्योंकि प्रस्तुत पद्य में आंशिक निद्रा की संभावनामात्र बताई गई है, नींद नहीं।

गाढोपगूढम्—यहाँ भाव में 'क्त' प्रत्यय है और वह नपुं० होता है। उपगूहन 'आलिङ्गन' को कहते हैं। देखिए—'अयि विजहीहि दृढोपगूहनं त्यज नवसङ्गमभीरु वल्लभम्।'

इस पद्य में 'काव्यलिङ्ग' अलंकार है, क्योंकि यहाँ द्वितीयश्लोकार्ध-गत वाक्य को प्रतीक्षा का कारण बताया गया है ॥३७॥

[1]तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
[2]विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः [3]स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥३८॥

अन्वयः—तां स्वजल-कणिका-शीतलेन अनिलेन उत्थाप्य अभिनवैः मालतीनां जालकैः समं प्रत्याश्वस्तां त्वत्सनाथे गवाक्षे स्तिमितनयनां मानिनीं विद्युद्गर्भः धीरः (च सन्) स्तनित-वचनैः वक्तुं प्रक्रमेथाः।

पदार्थः——ताम्=उसे (प्रियतमा को)। स्वजल-कणिका-शीतलेन=अपने जल-कणों से शीतल। अनिलेन=वायु से। उत्थाप्य=जगाकर। अभिनवैः= ताजी। मालतीनाम्=मालती (चमेली, जाई) के। जालकैः समम्=कलियों के साथ-साथ। प्रत्याश्वस्ताम्=स्वस्थ (विकसित, दूसरा अर्थ मालती के पक्ष में) हुई। त्वत्सनाथे गवाक्षे=तुझसे घिरी हुई, तुझसे युक्त खिड़की की ओर। स्तिमितनयनाम्=आँखें गाड़े हुए। मानिनीम्=मानिनी को। विद्युद्गर्भः विजली को (अपने) अन्दर छिपाए। धीरः=धीरता ग्रहण किए।

१——प्रोत्थाप्यैनां—का० बा० पाठक। २——विद्युद्गर्भैः—का० बा० पाठक, विद्युत्कम्प० वि०। ३—धीरस्तनितवचनै—व०, वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तनितवचनैः=गर्जनरूपी वचनों से । वक्तुं प्रक्रमेथाः=बोलना प्रारम्भ करना ।

भाषानुवादः--उसे (मेरी प्रियतमा को) अपने जलकणों से शीतल बने समीर द्वारा जगाकर ताजी चमेली की कलियों के साथ-साथ (स्वयं भी) ताजी बनी, (तथा) तुझसे घेरी हुई खिड़की की ओर आँखें गाड़े हुए (उस) मानिनी के साथ, बिजली को (अपने) भीतर छिपाए, एवं धीरता धारण किए हुए गर्जन रूपी बचनों से बोलना प्रारम्भ करना ।

व्याकरणम्--स्वजलकणिकाशीतलेन = स्वस्य जलस्य कणिकाभिः (बिन्दुभिः) शीतलेन (तृ० तत्पु०) । उत्थाप्य=उत्+√स्था, भ्वा० प० (णिच्)+ल्यप् । प्रत्याश्वस्ताम्=प्रति+आ+√श्वस्, अदा० प० (सांस लेना)+त+आ (स्त्रियाम्); 'आदितश्च' से इट् का प्रतिषेध । गवाक्षे=गवांमक्षीव, गो+अक्षि (गवाक्ष) । अक्षि के पूर्व गो को सन्धि में 'गव' आदेश और अक्षि को समासान्त 'अ' हो जाता है । सम्भवतः प्राचीन काल में खिड़कियाँ गाय की आँख की तरह गोलाकार हुआ करती होंगी । गोल-गोल रोशनदान तो आजकल भी कहीं-कहीं होते हैं । उनको भी गवाक्ष ही कहते हैं । त्वत्सनाथे=त्वया सनाथे (तृ० तत्पु०) । सनाथः=नाथेन सह वर्तमानः (ब० व्री०) स्तिमितनयनाम्=स्तिमिते नयने यस्याः सा स्तिमितनयना ताम् (ब० व्री०) । मानिनीम्=मानः अस्या अस्तीति मानिनी ताम् । मान+इन् (मतुबर्थे)+ई (स्त्रियाम्) । मानः=√मन् दि० आ०,+घञ् (भावे) । अथवा मन्यते इति मानिनी ।√मन्=णिनि+ई (स्त्रियाम्) । विद्युद्गर्भः=विद्युद् गर्भे (अन्तः) यस्य सः (ब० व्री०) । स्तनितवचनैः=स्तनितान्येव वचनानि तैः (कर्मधा०) । वक्तुम्=√ब्रू, अदा० उभ० (कहना)+तुम् (तुमुन्) । प्रक्रमेथाः······प्र+√क्रम् भ्वा० उभ० (चलना) वि० लिङ्, म० पु० एक । 'प्र' और 'उप' के योग में क्रम् धातु प्रारम्भ करने के अर्थ में आत्मनेपद है । 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्'—अन्यथा, प्रक्रामति (वह जाता है); उपक्रामति (वह आता है) ।

विशेषः—स्वजलकणिका०············अनिलेन उत्थाप्य—इससे प्रकट होता है कि यक्ष-पत्नी कोई सामान्य स्त्री नहीं थी, किन्तु वह एक राजकुमारी थी, इसलिए उसको राजसी ठाट-वाट से ही जगाना उचित था । देखिए भोजराज की सम्मति—'मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलैर्व्यजनैःस्तनौ ।

श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम् ॥' देखिए किराता० I—'विबोध्यमानो मङ्गलतूर्यनिःस्वनैः ।' प्रकृत में मेघ को पंखा हिलाकर उठाने को कहा गया है।

स्तिमितनयनाम्—'हमारे घर आज खिड़की से यह कौन आ गया है'—इस विस्मय के कारण यक्ष-पत्नी की आँखें खिड़की पर गड़ सी गई रहेंगी अथवा सहसा जागने में ऐसा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि प्रायः देखने में आता है कि अकस्मात् नींद खुलने पर आँखे निश्चल होकर एकटक देखने लगती हैं।

विद्युद्गर्भः—सारो० तथा अन्य टीकाकारों के अनुसार 'विद्युद्गर्भः= स्त्रीसहायः' से यह भाव निकलता है कि मेघ वहाँ बिजली-रूपी स्त्री को साथ लेकर ही जाए, क्योंकि मेघ के लिए पर-नारी के साथ अकेले ही वार्तालाप करना उचित नहीं (परनारीसंभाषणमेकोकिनो नोचितम्)। मल्लि० के अनुसार बिजली को अपने मध्य में छिपाकर रखने का प्रयोजन यह है कि कहीं यक्ष-पत्नी की आँखें बिजली की चमक से चुंधिया गईं, तो वह मेघ का मुख देख न पायेगी, इसलिए उसे बिजली नहीं चमकानी चाहिए। 'विद्युद्गर्भे' वाले पाठ में वह 'गवाक्ष' का विशेषण है, अर्थात् खिड़की पर जिसके भीतर बिजली थी। गवाक्ष का विशेषण न बनाकर मेघ का विशेषण बनाने में ही अधिक स्वारस्य है।

धीरः स्तनितवचनैः—पार्श्वा० ने इसका पाठान्तर 'धीरस्तनितवचनैः' दिया है। इस समस्त पद का विग्रह इस प्रकार है—'धीराणि स्तनितानि (र्गजितानि) एव वचनानि तैः (गम्भीर गर्जनरूपी वचनों से)। दूसरे पाठान्तर में धीर पद को पृथक् रखा गया है। इसमें और मूल में दिए गये पाठ में कोई विशेष अर्थभेद नहीं है। एक और पाठ 'धीरस्तनितवचनं' अथवा 'धीरस्तनित-वचनः' है। इस अवस्था में सम्पूर्ण पूर्व वाक्य को 'वक्तुं प्रक्रमेथाः' का क्रिया-विशेषण जानकर निम्न अर्थ किया जा सकता है—'इस ढंग से बोलना आरम्भ करना जिसमें तुम्हारे गर्जनरूपी शब्द गम्भीर हों।' धीरस्तनितवचनः वाले पाठ से यह मेघ का विशेषण है।

प्रक्रमेथाः—इस प्रकार के आत्म० के प्रयोग के लिए देखिए—कुमार० III ३ 'वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम्' और उद्धवसन्देश १२०—'दूत्यं स्वस्य प्रणयहृदयस्त्वं निवेद्यानवद्यं धीमन् सद्यो मम कथयितुं वाचिकं प्रक्रमेथाः' ॥३८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे ![1] विद्धि मामम्बुवाहं
[2]तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
[3]मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥३६॥

अन्वयः—हे अविधवे ! मां भर्तुः प्रियं मित्रं हृदयनिहितैः तत्सन्देशैः त्वत्समीपम् आगतम् अम्बुवाहं विद्धि, यः मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि पथि श्राम्यतां प्रोषितानां वृन्दानि त्वरयति ।

पदार्थः—अविधवे ! = हे सौभाग्यवति ! माम् अम्बुवाहं = मुझ मेघ को । भर्तुः प्रियं मित्रम् = (अपने) पति का प्यारा मित्र (एवं) हृदयनिहितैः = हृदय में रखे हुए । तत्सन्देशैः = उसके (तुम्हारे पति के) सन्देशों सहित । त्वत्समीपं = तुम्हारे पास । आगतम् = आया हुआ । विद्धि = जान । यः = जो (मेघ) । मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः = गंभीर तथा मधुर गर्जनों से । अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि = अबलाजनों की वेणियों (चोटियों) को खोलने के लिए लालायित हुए । पथि = मार्ग में । श्राम्यतां प्रोषितानां वृन्दानि = थके मांदे विरही-गणों को । त्वरयति = (घर) आने की शीघ्रता करवाता है ।

भाषानुवादः—सुहागिन ! हृदय में रखे हुए तुम्हारे पति के सन्देशों को लिए तुम्हारे पास आए हुए मुझे तुम उसका प्रिय मित्र मेघ जानो, जो (अपनी) गंभीर तथा मनोहर गर्जन से मार्ग में थके-माँदे विरही-गणों को जो अबलाजनों की वेणियों (चोटियों) को खोलने के लिए लालायित हैं; (घर) आने की शीघ्रता करवाता है ।

व्याकरणम्—अविधवे = न विधवा अविधवा (नञ् तत्पु०) सम्बोधन में अविधवे । विधवः विगतः धवः पतिः यस्याः सा विधवा (ब० व्री०), राँड । अम्बुवाहम् = अम्बु जलं वहतीति अम्बुवाहः अम्बु = √वह् + अण् (कर्तरि) । हृदयनिहितैः = हृदये निहितैः (स० तत्पु०) निहित = नि + √धा, जुहो० उ० + त (क्त) । सन्देशैः = सन्दिश्यन्ते इति सन्देशाः, सम् + √दिश्, भ्वा० प० + अण् (कर्मणि) । विद्धि = √ विद् अदा० प० (जानना), लोट् म० पु०

१—अभिदधे—का० वा० पाठक । २—तत्सन्देशान्मनसि निहितात्—वि० ; त्वत्सन्देशान्मनसि निहितात् ; तत्सन्देशाद्धृदयनिहितात् । ३—मन्त्रस्निग्धैः; सान्द्रस्निग्धैः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक० । मन्द्रस्निग्धैः=मन्द्रैः स्निग्धैः च, समास के लिए देखिए उत्तरमेघ ३२ में 'कठिनविषमाम्' पर नोट। अवलावेणिमोक्षोत्सुकानि=अवलानां (स्त्रीणां) वेणयः (ष० तत्पु०)तासां मोक्षे (मोचने) उत्सुकानि (स० तत्पु०) । श्राम्यताम्=√श्रम्, दिवा० प०+अत् (शतृ), ष० बहु०; यह 'प्रोषितानाम्' का विशेषण है । प्रोषितानाम्=प्र√वस् (व को उ सम्प्रसारण+इट् तथा स् को ष्), भ्वा० प०+त (क्त) । त्वरयति=त्वरां करोति इति। त्वरा से नामधातु (denominative) त्वरा+णिच्, लट्। अथवा√त्वर् भ्वा०+ णिच्, त्वर् घटादिगण होने से 'घटादयो मितः' और "मितां ह्रस्वः") त्वरयति ।

विशेषः—अविधवे—यह पद साभिप्राय है । इससे सर्वप्रथम यक्षपत्नी को विश्वास दिलाया गया है कि वह सौभाग्यवती है, अर्थात् उसका पति जीवित है । पतिव्रता के लिए इससे बढ़कर और कौन-सा शुभ समाचार हो सकता है, जिसके लिए वह हमेशा आतुर बनी रहती है। इससे यक्षपत्नी को अपने पति के विषय में कुशल-प्रश्न करने की आवश्यकता ही नहीं रहती । इसी बात को कवि ने उत्तरमेघ के ४१वें पद्य में 'अव्यापन्नः कुशलमवले पृच्छति त्वां वियुक्तः' कहकर और भी स्पष्ट कर दिया है । जिस प्रकार यक्ष अपने आपको अव्यापन्नः' कह कर अपनी प्रिया को ढाढस देता है, उसी तरह वह पूर्वमेघ० ९ में अपनी पत्नी को 'अव्यापन्नाम्' समझता है और उसकी आशा-लतिका को हरी-भरी रखने के लिए विरह-काल में मेघ द्वारा अपना कुशल समाचार भेजता है। भास ने अपने स्वप्न० नाटक अंक II में 'अविधवा' शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है, जबकि वत्सराज उदयन के साथ पद्मावती के शुभ विवाह का वर्णन करता है ।

भर्तुर्मित्रं······मामम्बुवाहः—इस पंक्ति में दूत बना हुआ मेघ यक्षपत्नी को अपना परिचय देता है, जिससे वह मेघ को देखकर पर पुरुष के भय से किसी प्रकार शंकित न होने पाए। इसी पंक्ति में अपना परिचय देने के साथ-साथ मेघ यक्षपत्नी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है ।

यो वृन्दानि···प्रोषितानाम्—वर्षा के आगमन पर प्रवासी लोग अपने-अपने घर लौट आने की उतावली करते हैं और जो किसी कारणवश घर नहीं आ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सकते, वे अपना कुशल-समाचार अपनी-अपनी प्रियाओं के प्रति भेजते हैं, जैसा कि यक्ष ने किया।

अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि—पहिले समय में प्रोषितपतियों में प्रथा चली आई थी कि वे ही प्रवास से लौटकर अपनी सहधर्मिणियों की वेणी (चोटी) को, जो बिछुड़ते समय गूँथीं गई थी, खोला करते थे। देखिए उत्तरमेघ० ३२—आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्ट-नीयाम्'। जब कभी स्त्रियों को बलात् अपने पतियों से बिछुड़ना पड़ता था, उस समय भी यही कुछ होता था। देखिए रघु० X ४७—'मोक्षध्वे सुरबन्दीनां वेणिबन्धानदूषितान्।'

इस पद्य में अपने को पथिकों का उपकारक बताकर मेघ यक्षपत्नी के हृदय में यह बात बिठाना चाहता है कि जब मैं पथिक-मात्र की भलाई करता रहता हूँ, तब अपने मित्रयक्ष का तो कहना ही क्या? इससे इस पद्य में अर्थापत्ति अलंकार व्यंग्य है। अर्थापत्ति उसे कहते हैं जहाँ कोई बात बिना कहे ही निकल जाती है।।३९।।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य[1]सम्भाव्य[2]चैव।
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता[3] सौम्य! सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः[4] सुहृदुपनतः सङ्गमात्किञ्चिदूनः।।४०।।

अन्वयः—**इति आख्याते (सति) उन्मुखी सा उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया (सती) मैथिली पवनतनयम् इव त्वां वीक्ष्य सम्भाव्य च अस्मात् परम् अवहिता (सती) श्रोष्यति एव। (हे) सौम्य, सीमन्तिनीनां सुहृदुपनतः कान्तोदन्तः सङ्गमात् किञ्चिदूनः (भवति)।**

पदार्थः—इति आख्याते (सति) = (तुम्हारे) ऐसा कहने पर। उंन्मुखी सा = ऊपर मुख किए वह (मेरी प्रियतमा)। उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया = उत्सुकता से उछलते हुए हृदयवाली (बनी)। मैथिली पवनतनयम् इव त्वां वीक्ष्य सम्भाव्य च = तुम्हें ऐसे निहार और (तुम्हारा) ऐसा सम्मान करके जिस तरह सीता

१—संभाष्य—वि०, व०, म० सि०। २—चैवं—सारो०, व० वि०। ३—परमवहितं का० बा० पाठक; परमपिहितं। ४—कान्तोपान्तात्सुहृदुपगमः—का० बा० पाठक; कान्तोपान्तात्सुहृदुपगतः—मल्लि०, वि०; कान्तोपान्तात्सुहृदुपहृतः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने हनुमानजी को (निहारा और उनका सम्मान किया था)। अस्मात् परम्= इसके बाद की सब बातों को। अवहिता=चौकन्नी (हुई)। श्रोष्यति एव= अवश्य सुनेगी। (हे) सौम्य=हे भद्र! सीमन्तिनीनाम्=स्त्रियों को। सुहृदुपनतः =मित्रों द्वारा प्राप्त हुआ। कान्तोदन्तः=(अपने) पतियों का समाचार सङ्गमात्=(उनकी) साक्षात् भेंट से। किञ्चिदूनः=कुछ ही कम होता है।

भाषानुवादः—(तुम्हारे) इस प्रकार कहने पर, ऊपर मुख किये हुए, वह (मेरी प्रियतमा) तुम्हें उत्सुकता के कारण उछलते हुए हृदय से ऐसे निहार और (तुम्हारा) ऐसा सम्मान करके जैसे कि सीता ने हनुमानजी को निहारा और उनका सम्मान किया था, तुम्हारी इसके बाद की सब बातों को सावधान होकर अवश्य सुनेगी। हे भद्र! स्त्रियों को मित्रों द्वारा प्राप्त हुआ (अपने) पतियों का समाचार उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क-भेंट-से कुछ ही कम होता है।

व्याकरणम्—आख्याते=आ+√ख्या, अदा० प० (कहना)+त (क्त) (सत् सप्तमी)। पवन-तनयम्=पवनस्य तनयः (ष० तत्पु०) तम्। मैथिली= मैथिलस्य राज्ञः अपत्यं स्त्री, मैथिल+(अण्)+ई (स्त्रियाम्)। उन्मुखी= उद्गतं मुखं यस्याः सा (ब० व्री०)। उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया=उत्कण्ठया उच्छ्वसितं (उत्+√श्वस्+त) हृदयं 'यस्याः' सा, तथाभूताम् (ब० व्री०)। वीक्ष्य =वि+√ईक्ष् भ्वा० आ० (देखना)+य, (ल्यप्) सम्भाव्य=सम् भू० भ्वा० प० (होना) णिच्+य (ल्यप्)। अवहिता=अव+√धा, जुहो० उभय० (धारण करना)+त (भावे); अवहितम् अस्ति यस्याः इति अवहिता, अवहित +अच् (मत्वर्थीय अर्श आदि से) आ० (स्त्रियाम्) अव+√धा में कर्म की अविवक्षा करके अकर्मक बनाकर कर्तरि क्त करने का प्रकार ठीक नहीं है, क्योंकि भट्टोजिदीक्षित ने मनोरमा में इसका विरोध किया है। अथवा 'अवहिता' का 'अवहित-चित्ता' अर्थ है, जैसे 'पीता गावः' में 'पीता' का 'पीतदुग्धाः' अर्थ होता है। श्रोष्यति=√श्रु, तना० प० (सुनना), लृट् प्र० पु० एक०। सीमन्तिनीनाम्=सीमन्त+इनि (णिनि)+ई (स्त्रियाम्); ष० बहु०। सीमन्त पर नोट के लिए देखिए उत्तरमेघ० २—सुहृदुपनतः—सुहृदा उपनतः (तृ० तत्पु०); उपनत=उप+नम्, भ्वा० प+त (क्त)। कान्तोदन्तः= कान्तानाम् उदन्तः (ष० तत्पु०)।

विशेषः—पवनतनयम्—हनुमान को पवन (वायु) का सुत होने से 'मारुति' भी कहते हैं। हनुमान वानरों की सेना के सेनापति थे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और उन्होंने सीता को ढूंढने में राम की बहुत सहायता की थी। यह हनुमान् का ही कार्य था कि राक्षसों से भरी लङ्का में प्रवेश करके सीता को राम का सन्देश पहुँचाया। यक्ष-पत्नी मेघ को उसी चाह से निहारेगी जिस चाह से राम के विरह में दुःखित हुई सीता ने हनुमान की ओर आशा-भरे नयनों से निहारा था। देखिए रघु० XII ६१-६२—दृष्टा विचिन्वता तेन लङ्कायां राक्षसीवृता। जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः ।। तस्यै भर्तुरभिज्ञानमङ्गुलीयं ददौ कपिः। प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः ।।

मैथिली—मिथिला के राजा जनक की पुत्री सीता। मिथिला विदेह राज्य की राजधानी थी। यह आजकल उत्तरपूर्वी बिहार में है और गण्डकी तथा कौशिकी (कोसी) नदियों के बीच तिरहुत और पूर्नियां जिलों में स्थित है। प्राचीन काल में यह राजा जनक का देश था। जनक के नाम पर इस देश की राजधानी को जनकपुर कहते हैं, जो मधुबनी के उत्तर में है और इसी को पहिले मिथिला भी कहा करते थे।

मैथिली इव उन्मुखी—जब हनुमान् ने रामनाम की मुद्रिका वृक्ष के ऊपर से गिराई, तब उनको देखने के लिए सीता ने अपना मुख ऊपर किया। यक्ष-पत्नी भी मेघ को देखने के लिए उसी तरह अपना मुख ऊपर खिड़की की ओर उठाएगी, देखिए—'ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम्। उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपादन्ववैक्षत ।।' रामा० सुन्दर० ३१-१६। अपनी पत्नी की सीता के साथ तुलना करके यक्ष मेघ को यह बताना चाहता है कि उसकी पत्नी उसी तरह पतिव्रता है जैसी सीता थी; साथ ही मेघ की भी हनुमान से उपमा देकर यक्ष मेघ के हृदय में यह बात बिठाना चाहता है कि मैं तुमको परमविश्वासपात्र दूत समझता हूं, जिसमें कर्तव्य-पालन के पूरे-पूरे गुण विद्यमान हैं। दूत के गुणों के लिए देखिए—'ब्रह्मचारी बली धीरोऽमायावी मानवर्जितः। धीमानुदारो निःशङ्को वक्ता दूतः स्त्रियां भवेत् ।।'

सम्भाव्य—प्रारम्भ में जब हनुमान् जी सीता के पास पहुँचे, तो सीता ने उनको वेश बदलकर आया हुआ रावण ही समझा। जब हनुमान जी ने सीता को अपना पूरा-पूरा परिचय दिया और अपने आपको रामचन्द्र जी का दूत बतलाया, तो कहीं उसे उनपर विश्वास हुआ और फिर उसने उनका स्वागत किया। 'देखिए रामायण सुन्दरकाण्ड ३६। ९-१० "न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ। यस्य ते नास्ति संवासो राघवादपि संभ्रमः ।। अर्हते च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् ।......" संभाव्य का पाठान्तर 'संभाप्य' भी है। यह पाठ भी ठीक मालूम होता है।

सीमन्तिनीनाम्—सीमन्+ अन्त+इन् (णिनि)+ई (स्त्रियाम्), ष० बहु० व०। सीमन् के 'अन्' और 'अन्त' के अ में पररूप सन्धि हुई, अर्थात् अन् और अ अनियमित रूप से 'अ' में मिल गए। सीमन्त का अर्थ मांग है। देखिए उत्तरमेघ० २—'सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्' और मनुस्मृ०—'निरुत्साहं निरानन्दं निर्वीर्यमरिनन्दनम्। मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम्।'

पूर्वमेघ० १ पर टीका करते हुए मल्लि० ने कहा है—'सीतां प्रति रामस्य हनूमत्सन्देशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कविः कृतवानित्याहुः।' इस पद्य में हुए सीता और हनुमान् के उल्लेख के आधार पर कुछ आलोचक वाल्मीकि रामायण को मेघदूत का स्रोत मानते हैं। निस्सन्देह इस पद्य के पूर्वार्ध को पढ़कर हमें इस बात का भान होता है कि मेघदूत का सन्देश रामायण में वर्णित रामचन्द्र जी द्वारा सीता के प्रति हनुमान् जी के हाथ भेजे गए सन्देश के समान है। फिर भी हम यही कहेंगे कि कालिदास कालिदास ही है। इस विषय पर अधिक विवेचन के लिए भूमिका देखिए।

इस पद्य के अन्त में 'अर्थान्तिरन्यास' अलंकार है, जिसके लक्षण के लिए देखिए उत्तरमेघ० ३३। शेषभाग में अर्थान्तर से परिपुष्ट हुई पूर्णोपमा है॥४०॥

तामायुष्मन्[1] मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
[2]ब्रूया एवं[3] तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।
अव्यापन्नः कुशलमबले! पृच्छति त्वां [4]वियुक्तः
[5]पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव॥४१॥

अन्वयः—**हे आयुष्मन्! मम वचनाद् च आत्मनः उपकर्तुं च एवं ब्रूयाः—'हे अबले! वियुक्तः तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः (तथा) अव्यापन्नः (सन्) त्वां कुशलं पृच्छति।' सुलभविपदां प्राणिनाम् एतद् एव पूर्वाभाष्यम्।**

पदार्थः—(हे) आयुष्मन्! = हे चिरजीविन्! मम वचनात् = मेरी ओर

१—आयुष्मान्। २—ब्रूयादेवं—का० बा० पाठक। ३—एकं ४—वियुक्तां—वि; नियुक्तां—का० बा० पाठक। ५—पूर्वाशास्यं—का बा० पाठक। पूर्वाश्वास्यं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से। आत्मनः च उपकर्तुम्= तथा अपने को उपकृत करने के लिए, अपनी परोपकार-भावना से। ताम्= उस (मेरी प्रियतमा) को। एवं ब्रूयाः=इस प्रकार कहना। हे अबले=हे दुर्बल शरीरवाली! वियुक्तः तव सहचरः=बिछुड़ा हुआ तुम्हारा साथी। रामगिर्याश्रमस्थः=रामगिरि के आश्रमों में डेरा डाले हुए। अव्यापन्नः=न मरा हुआ अर्थात् कुशलपूर्वक। त्वां कुशलं पृच्छति=तुम्हारा कुशल पूछता है। (तथाहि=क्योंकि) सुलभविपदाम्=सहज ही विपत्तियों में फँस जाने वाले। प्राणिनाम्=प्राणियों के सम्बन्ध में। एतदेव=यही (कुशल-प्रश्न)। पूर्वाभाष्यम्=प्रारम्भ में पूछने के लिए आवश्यक बात हुआ करती है।

भाषानुवादः—"हे चिरजीविन्! मेरी ओर से तथा अपने को उपकृत करने के लिए तुम उसे (मेरी प्रियतमा को) इस प्रकार कहना–'हे अबले! बिछुड़ा हुआ तुम्हारा साथी रामगिरि पर्वत के आश्रमों में डेरा डाले हुए कुशलपूर्वक है और तुम्हारी कुशलवार्ता पूछता है,' क्योंकि सहज ही विपत्तियों में फँस जाने वाले प्राणियों के सम्बन्ध में यही (कुशल-प्रश्न) आरम्भ में पूछने के लिए आवश्यक बात हुआ करती है।"

व्याकरणम्—आयुष्मन्=आयुस् (नपुं)+मत् (मतुप्) सं० एक०। आत्मनः=आत्मन् का ष० एक०। यहाँ द्वितीया के स्थान में सम्बन्ध की विवक्षा करने से षष्ठी का प्रयोग हुआ है। उपकर्तुम्=उप+कृ, तना० उभ० (करना)+तुम्। ब्रूयाः=√ब्रू, अदा० उभ० (कहना), विधिलिङ् म० पु० एक०। अबले=न बलं यस्याः सा अबला (ब० व्री०), सम्बो० एक०। वियुक्तः=वि+√युज् रुधा० उभ० (जोड़ना)+(क्त)। सहचर=सह चरतीति सहचरः (साथी)। रामगिर्याश्रमस्थः=रामगिरेः आश्रमेषु तिष्ठतीति (उपपदतत्पु०)। अव्यापन्ना=न व्यापन्नः अव्यापन्नः (नञ् तत्पु०)-व्यापन्न-वि+आ+√पद् दिवा० आ० (जाना)+न (क्त)। पृच्छति यह धातु तुदा० गण की है तथा द्विकर्मक भी है। इसके 'त्वां' और 'कुशलं' ये दो कर्म हैं। सुलभ-विपदाम्=सुलभा विपद् येषां तेषां (ब० व्री०)। सुलभ–'सु' सुखेन लभ्यते इति सुलभम् सु+√लभ् भ्वा० आ०+खल् (कर्मणि)। प्राणिनाम्=प्र+√अन् अदा० प० (सांस लेना)+इन् (णिच्) ष० बहु०, अथवा प्राणाः एषां सन्तीति प्राणिनः, तेषाम् प्राण+इन् (मतुबर्थे)। पूर्वाभाष्यम् पूर्वम् आभाषितुम् आवश्यकम् इति पूर्व०+आ+√भाष्, भ्वा० आ० (बोलना)+य (ण्यत्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आवश्यकार्थे) अथवा आभाषितुं योग्यम् ।

विशेषः—'आयुष्मन् !—हे चिरजीविन्! इससे यक्ष मेघ को आशीष देता है। उत्तरमेघ० ३४ में वह मेघ को 'भ्रातः' कहकर सम्बोधित करता है और अपनी पत्नी को उसकी 'भ्रातृजाया' कहता है। देखिए पूर्वमेघ० १—क्योंकि मेघ यक्ष का छोटा भाई है, इसलिए बड़े भाई का छोटे भाई को आशीर्वाद देना स्वाभाविक ही है। मल्लि० 'आयुष्मान्' में मतुप् को तद्वान् अर्थ में न लेकर प्रशंसार्थ में लेता है, अर्थात् हे प्रशस्त आयु—जीवन-वाले ! मेघ रात-दिन परोपकार में लगा रहता है, इसलिए उसका जीवन श्लाघनीय है, प्रशंसा के योग्य है।

आत्मनश्चोपकर्तुम्—परोपकार द्वारा अपने को कृतार्थ करने के लिए अर्थात् मेरा उपकार करके तुम अपना भी श्रेय करोगे, क्योंकि परोपकार में स्वभावतः आत्मश्रेय निहित है। यहाँ 'उपकर्तुं' के साथ 'आत्मनः' में सम्बन्ध-विवक्षा करने से द्वितीया के स्थान में षष्ठी का प्रयोग हुआ है। इस सम्बन्ध में भारवि तथा श्रीहर्ष के उदाहरण भी देखिए—किरात VII. २८ 'सा लक्ष्मी-रुपकुरुते यया परेषाम्', 'साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम् । न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम् ॥' माघ ने भी ऐसा प्रयोग किया है, देखिए शिशु० XX ७४—'उपकृत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं न हि कुर्वते महान्तः।'

रामगिर्याश्रमस्थः—इस सम्बन्ध में देखिए पूर्वमेघ० १—'यक्षश्चक्रे··· वसतिं रामगिर्याश्रमेषु' और रामगिरि के सम्ब्रन्ध में उल्लिखित पूर्वमेघ के पद्य का विशेष स्तम्भ ।

अव्यापन्नः—कवि ने यही विशेषण पूर्वमेघ पद्य १० में यक्ष-पत्नी के लिए प्रयुक्त किया है—'अव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्'। यहाँ 'कुशली' वा 'सुखी' न कहकर 'अव्यापन्न' कहना अभिप्राय है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि यक्ष बड़ी कठिनाई से अपने जीवन को धारण किए हुए है; साथ ही उसके मन तथा शरीर की दुर्बलता भी अभिव्यक्त होती है।

वियुक्तः—इसके स्थान पर पार्श्वा० 'नियुक्तः' यह पाठ देता है। इसका अर्थ प्रो० का० बा० पाठक ने सेवा-बद्ध किया है। इसका एक पाठान्तर वियुक्ताम् है, जो त्वाम् (यक्ष-पत्नी) का विशेषण है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्वाभाष्यम्—सबसे पहले पूछी जाने योग्य आवश्यक बात। इसके स्थान पर 'पूर्वाशास्यं' पाठान्तर है। इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है—पूर्वं प्रथमम् आकाङ्क्षणीयं यत्स्वास्थ्यं नाम (जिसके विषय में पूछने की सबसे पहिले चाहना होनी चाहिए—अर्थात् स्वास्थ्य)। इसलिए किसी के स्वास्थ्य के विषय में पूछना शिष्टाचार का प्रधान अङ्ग माना जाता है। देखिए मनुस्मृ०—ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्।

सुलभविपदाम्—इससे स्पष्ट है कि न चाहने पर भी प्राणियों पर संकट तथा दुःख स्वयं ही आ जाते हैं। इनको खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये जीवन पर अनुस्यूत हैं। इसका मूल-सिद्धान्त संसार दुःखों का मूल है, से मिलता है। हमारे शास्त्र भी यही कहते हैं। देखिए विष्णु—'सर्वं दुःखमयं जगत्।' कई टीकाकार प्रस्तुत चतुर्थ पाद के स्थान पर यह पाठ पढ़ते हैं···'भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्।'—अर्थात् प्राणियों के शरीरों के नाशवान् होने पर यही सर्वप्रथम आश्वासन की बात होती है।

इस पद्य में भी अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इसमें सामान्य से विशेष का समर्थन किया गया है। अर्थान्तरन्यास के लक्षण के लिए देखिए पूर्वमेघ ७ ॥४१॥

अङ्गेनाङ्गं [1]प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
[2]सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
[3]उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
सङ्कल्पैस्तैर्विशति[4] विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥४२॥

अन्वयः—वैरिणा विधिना रुद्धमार्गः दूरवर्ती (ते सहचरः) तनुना, गाढतप्तेन, सास्रेण, उत्कण्ठितेन, समधिकतरोच्छ्वासिना (स्वकीयेन) अङ्गेन प्रतनु तप्तम्, अश्रुद्रुतम्, अविरतोत्कण्ठम्, उष्णोच्छ्वासं (त्वदीयम्) अङ्गं तैः सङ्कल्पैः विशति।

पदार्थः—वैरिणा विधिना=विपरीत दैव से, दौर्भाग्य के द्वारा। रुद्धमार्गः=रोके गए मार्ग वाला। दूरवर्ती=दूर पड़ा हुआ। तनुना=दुबले-पतले। गाढतप्तेन=अत्यधिक तपे हुए। सास्रेण=आँसुओं से युक्त। उत्कण्ठितेन=

१—सतनु; तनु च—का० बा० पाठक; सतनु—वि०। २—सास्रेणास्रद्रवम्—का० बा० पाठक। ३—दीर्घोच्छ्वासं—वि०, सारो०; सोष्णोच्छ्वासं—ब०। ४—ते० वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चाह भरे। समधिकतरोच्छ्वासिना=लम्बी लम्बी आहें छोड़ने वाले। अङ्गेन= शरीर से। प्रतनु=बहुत दुर्बल। तप्तम्=तपे हुए। अश्रुद्रुतम्=आँसुओं से गीले। अविरतोत्कण्ठम्=सतत उत्कण्ठा-भरे। उष्णोच्छ्वासम्= गरम-गरम आहों वाले। अङ्गम्=(तुम्हारे) शरीर में। तैः सङ्कल्पैः=उन मनोरथों–कल्पनाओं–के साथ। विशति=प्रवेश करता है, जा मिलता है।

भाषानुवादः—विपरीत दैव से रोके गये मार्ग वाला, दूर पड़ा हुआ (तुम्हारा सहचर) अपने दुबले-पतले, अत्यधिक तपे, आसुओं से युक्त, चाह भरे तथा लम्बी-लम्बी आहें छोड़ने वाले शरीर से (तुम्हारे) दुबले-पतले, तपे, आँसुओं से गीले, सतत उत्कण्ठा-भरे तथा गरम-गरम आहों वाले शरीर में उन कल्पनाओं के साथ जा मिलता है।

व्याकरणम्—दूरवर्ती=दूरे वर्तते इति दूरवर्ती। दूर√वृत्, भ्वा० आ० (होना)+इन् (णिनि)–उपपद तत्पु०। वैरिणा=वैरम् अस्यास्तीति वैरी तेन, वैर+इन् (मतुबर्थ), तृ० एक०। वैरम्=वीरस्य भावः कर्म वा वीर+अण् (भावे)। रुद्धमार्गः=रुद्धः मार्गः यस्य सः (ब० व्री०)। रुद्ध= √रुध्, रुधा० उभ० (रोकना)+क्त (कर्मणि)। गाढतप्तेन=गाढं तप्तं गाढतप्तं तेन; तप्त=√तप्, भ्वा० प०+क्त (कर्तरि)। सास्रेण=अस्रेण सह सास्रम् (ब० व्री०) तेन। उत्कण्ठितेन=उत्कण्ठा जाता अस्य इति उत्कण्ठितम् तेन—उत्कण्ठा+इतच् अथवा उत्+कण्ठ् भ्वा० आ०+क्त (कर्तरि)। अश्रुद्रुतम्=अश्रुभिः द्रुतम् (तृ० तत्पु०); द्रुत—√द्रु, भ्वा० प० (पिघलना, गीला करना)+क्त (कर्तरि)। अविरतोत्कण्ठम् =अविरता उत्कण्ठा यस्य तत् (ब० व्री०); अविरता—न विरता अविरता; विरता—वि+√रम्, भ्वा० आ०+त (क्त)+आ (स्त्रियाम्)। उष्णोच्छ्वासम्=उष्णः उच्छ्वासो यस्य तत् (ब० व्री०); उच्छ्वासः—उत्+√श्वस्, अदा० प०+घञ् (भावे)।

विशेषः—दूरवर्ती, वैरिणा रुद्धमार्गः=पूर्वमेघ १ में हमें स्पष्ट बताया गया है कि स्वामी के शाप से यक्ष अपनी प्रियतमा से साक्षात् तो मिल नहीं सकता था, क्योंकि विपरीत भाग्य ने उसका रास्ता रोक रखा था। बेचारा मेघ के हाथ सन्देश भेजने के अवसर पर कल्पना द्वारा ही प्रिया से मिल रहा है, वह अपने दुर्बल, सन्तप्त अश्रुपूर्ण, उत्कण्ठित एवं गरम-गरम आहों वाले शरीर से वैसे ही शरीर वाली अपनी प्रियतमा को गले लगाने की कल्पना कर रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतनु—प्र+तनु । यहाँ 'प्र' उपसर्ग तुलनात्मक अर्थ में है। यक्षपत्नी पहले ही 'तन्वी' थी (देखिए—उत्तरमेघ २२ 'तन्वी श्यामा···), परन्तु अब विरह के कारण वह और भी दुबली हो गई होगी—यह यक्ष की सम्भावना है। अथवा कवि ने 'प्र' का प्रयोग यक्ष के अपने शरीर की अपनी प्रियतमा के शरीर के साथ तुलना करने के अर्थ में किया हो—अर्थात् वह बेचारी शरीर में मुझसे भी दुर्बल हो गई होगी। यहाँ 'प्र' को तुलनात्मक न लेकर प्रकर्षाभिधायक भी ले सकते हैं।

गाढतप्तेन तप्तम्—यहाँ यक्ष ने पत्नी के 'तप्तम्' शरीर की अपेक्षा अपने शरीर को 'गाढतप्तेन' कहकर 'और भी अधिक तपा हुआ' बताया है। देखिए अभि० शा० III. १६—'तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।'

सास्रेण अश्रुद्रुतम्—आंसुओं से पूर्ण। तृतीयान्त 'सास्रेण' यक्ष के शरीर और द्वितीयान्त 'अश्रुद्रुतम्' यक्ष-पत्नी के शरीर का विशेषण है। इस सम्बन्ध में देखिए उत्तरमेघ ४५—'अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे' इससे विरह में यक्ष का अश्रुप्रवाह बताया गया है और उत्तरमेघ २४—'नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं'·········मुखं····इन्दोः दैन्यं बिभर्ति'। इससे यक्ष-पत्नी का विरह में अश्रुविमोचन भी स्पष्ट ही है। उत्तरमेघ, २६—'तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित्' से भी प्रकट है कि यक्ष-पत्नी की वीणा के तार उसके आँसुओं से बेसुरे हो जाते हैं।

समधिकतरोच्छ्वासिना, उष्णोच्छ्वासम्—इन दोनों विशेषणों में तुलना है। देखिए, उत्तरमेघ, २४—'निःश्वासानामशिशिरतया निम्नवर्णाधरोष्ठम्, इससे वियोग में यक्ष-पत्नी के उष्ण श्वासों का निकलना सुस्पष्ट है।

तैः सङ्कल्पैः—इसके सम्भवतः दो अर्थ हो सकते हैं। १—वे विशेष मनोरथ, जिनका यक्ष ने सहवास-काल में अनुभव कर रखा था और जो अब उसके हृदय में विरह के कारण उथल-पुथल मचाते हैं। 'तत्' सर्वनाम यहां पूर्वानुभव के अर्थ में है। २—वे मनोरथ, जो सामान्यतः विरह-काल में प्रेमियों के हृदय में स्वभावतः जागृत हुआ ही करते हैं, एक टीकाकार के अनुसार—चुम्बन-दर्शन-स्पर्शनादि व्यापार है। यहाँ विल्सन ने 'तैः' के स्थान में 'ते' पाठ दिया है। 'ते' को 'अंगम्' के साथ लेने पर पाठ सुबोध हो जाता है और पूर्वापर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकरण खोज कर 'ते' शब्द के अध्याहार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, अतः यह पाठ अच्छा है।

विशति—प्रवेश करता है, अर्थात् मल्लि० के अनुसार 'एकीभवति'। यक्ष का अभिप्राय अपने तथा अपनी प्रियतमा के शरीर के समान ही अवस्था बतलाना है। मनोरथ के समान रूप से दोनों के हृदयों में वे—वे हैं, जिनका संयोग-काल में उन्होंने खूब अनुभव कर रखा है, अतः हर एक बात में दोनों एक जैसे ही हैं।

इस पद्य में समान-समानों का योग बतलाने से समालंकार है। 'सम' अलंकार वहाँ होता है, जहाँ तुल्यों का मेल हो ॥४२॥

शब्दाख्येयं यदपि किल ते[1]यः सखीनां पुरस्ता-
त्कर्णे लोलः [2]कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं[3]लोचनाभ्यामदृश्य-[4]
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं[5] [6]मन्मुखेनेदमाह ॥४३॥

अन्वयः—(हे अबले!) यः ते (प्रियः) सखीनां पुरस्तात् यत् शब्दाख्येयम् (आसीत्) तत् (अपि) आनन-स्पर्श-लोभात् कर्णे कथयितुं लोलः अभूत् किल, श्रवण-विषयम् अतिक्रान्तः लोचनाभ्याम् अदृश्यः सः (ते प्रियः) उत्कण्ठा-विरचित-पदम् इदं मन्मुखेन त्वाम् आह।

पदार्थः—किल=निश्चय ही। यः ते (प्रियः)=जो तुम्हारा प्रेमी सखीनां पुरस्तात्=सखियों के सामने। यत्=जो बात। शब्दाख्येयम्=बोलकर (ही) कही जाने योग्य (होती) थी। तत् अपि=उसे भी। आननस्पर्श-लोभात्=(तुम्हारे) मुँह के स्पर्श की लालसा से। कर्णे कथयितुम्=कान में कहने के लिए। लोलः अभूत्=उत्सुक रहता था। श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः=कानों की पहुँच से दूर पड़ा। (तथा) लोचनाभ्याम् अदृश्यः=आँखों से ओझल हुआ। सः=वह (तुम्हारा प्रियतम)। उत्कण्ठाविरचितपदम्=उत्सुकता से रचित शब्दों वाला। इदम्=यह (सन्देश)। मन्मुखेन=मेरे द्वारा, मेरे मुख द्वारा। त्वाम्=तुम्हें। आह=कहता है।

भाषानुवादः—(हे देवी!) जो (तुम्हारा प्रेमी) सखियों के सामने बोलकर कहे जाने योग्य बात को भी (तुम्हारे) मुँह को छूने की लालसा से सच-

१—तत्सखीनां। २—अगात्। ३—लोचनानामदृष्टः। ४—अदृष्टः मल्लि०। ५—०विरहित०। ६—संमुखेन।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुच कान में कहने में उत्सुक रहता था, कानों की पहुँच से परे पड़ा (तथा) आँखों से ओझल हुआ वह तुम्हारा प्रियतम उत्सुकता से शब्दों को रचकर यह सन्देश मेरे द्वारा तुम्हें कहता है।

व्याकरणम्—पुरस्तात्=पुरस्+तात् (अग्रे)। शब्दाख्येयम्=शब्दैः आख्येयम् (तृ० तत्पु०)। आख्येयम्=आ+√ख्या, अदा० प० (कहना)+य—यत्(विधि कृदन्त)। आननस्पर्शलोभात्=आननस्य स्पर्शः (ष० तत्पु०) तस्मिन् लोभात्। कथयितुम्=√कथ्, चुरा० उभ० (कहना) +तुम्(तुमुन्) अभूत्=√भू, भ्वा० प० (होना), लङ् प्र० पु० एक०। किल—अव्यय। श्रवणविषयम्=श्रवणयोः विषयः तम् (ष० तत्पु०)। अतिक्रान्तः=अति+क्रान्तः (अति+√क्रम्) भ्वा० और दिवा० प०+त (क्त) कर्तरि। अदृश्यः =न दृश्यः (√दृश्, भ्वा० प०+य)—नञ् तत्पु०। उत्कण्ठाविरचितपदम् =उत्कण्ठया विरचितानि पदानि शब्दाः वाक्यानि वा यस्मिन् तत् (ब० व्री०); यह 'इदम्' का विशेषण है। उत्कण्ठा=उत्+कण्ठ्, भ्वा० आ० +अ (भावे) स्त्रियाम्। विरचित=वि+√रच्, चुरा० उभ+क्त। मन्मुखेन—मम मुखं तेन (ष० तत्पु०)। आह=√ब्रू, अदा० उभ० (कहना) लट् प्र० पु० एक०। 'ब्रू' धातु द्विकर्मक होने से—'त्वाम्' और 'इदम्'—दो कर्म रखती है।

विशेषः—आननस्पर्शलोभात्=पत्नी के स्पर्श-सुख की लालसा से। देखिए रघु० ३ 'तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ'। भाव यह है कि यक्ष को पत्नी से इतना अधिक प्रेम था कि वह उसके शरीर अथवा अंगों के स्पर्श के लिए बहाना ढूंढता ही रहता था। ऊँचा बोल कर सुनाने योग्य बातों को भी कानों में इस विचार से फुसफुसाता था कि उसे सम्भवतः उसके अंगों का स्पर्श करने का अवसर प्राप्त हो जाय।

मोरेश्वर काले 'ते यः' के स्थान में 'तद्यः' पाठ को मूल में दिए पाठ से अच्छा समझते हैं। उनके अनुसार इससे दो दोषों का निवारण हो जाता है। (i) 'यत्' के साथ सम्बन्ध बताने वाले 'तत्' का अध्याहार, (ii) 'ते' जो अनावश्यक शब्द है, उससे छुटकारा। 'ते' पद के हट जाने से तत्सम्बन्धी 'प्रियः' पद का अध्याहार भी रह जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्णे कथयितुं लोलः—'लोल:' के प्रयोग के लिए देखिए—उत्तर० III 'अग्रे लोल: करकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्······यत् कल्याणं वयसि प्रथमे भाजनं तस्य जातः ।' और देखिए—'अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।'

श्रवणविषयमतिक्रान्तः—विषय शब्द का अर्थ साधारणतः ज्ञानेन्द्रियों के पदार्थ—रूपरसगन्धस्पर्शादि—हैं, किन्तु यहाँ विषय से अभिप्राय—इन्द्रियों की पहुँच से है। यक्ष विरह-काल में 'रामगिर्याश्रम' में रहता था और उसकी पत्नी अलका में, इस तरह उन दोनों का एक दूसरे की कर्णेन्द्रिय तथा चक्षुरिन्द्रिय की पहुँच से दूर होना स्वाभाविक ही था।

मन्मुखेन—क्योंकि यक्ष दूर देश में स्थित था, अतः अपना सन्देश कहने के लिए उसे मेघ को अपना मुख बनाना पड़ा, अर्थात् मेघ द्वारा उसने अपना कुशल-समाचार कहलवाया। आगामी ९ पद्यों में अपनी विरहावस्था का वर्णन करता हुआ यक्ष अपनी प्रिया के प्रति अमर सन्देश भेजता है, जिस के कारण ही इस गीतिकाव्य का नाम मेघदूत पड़ा है और कवि की कृति भी अमर हो गई है। सारा का सारा पूर्वमेघ और इससे पहले के उत्तरमेघ के पद्य इसी अमर-सन्देश की पृष्ठभूमि बने हुए हैं ॥४३॥

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे[1] [2]दृष्टिपातं
[3]वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
[4]हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते [5]चण्डि ! सादृश्यमस्ति ॥४४॥

अन्वयः—**श्यामासु (तव) अङ्गं, चकित-हरिणी-प्रेक्षणे दृष्टिपातं, शशिनि वक्त्रच्छायां, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्, प्रतनुषु नदी-वीचिषु भ्रूविलासान् उत्पश्यामि । हन्त ! हे चण्डि ! क्वचिदपि एकस्मिन् (वस्तुनि) ते सादृश्यं न अस्ति ।**

१—प्रेक्षिते—का० बा० पाठक। २—दृष्टिपातान्—वि०, सारो०, स० ती०, व०, सु० वि० म० सिं०। ३—वक्त्रच्छायं; गण्डच्छायं वि०। ४—हन्तै-कस्थं—वि०। ५—म० सिं०, सु० वि०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पदार्थः—श्यामासु=प्रियंगु लताओं में। अंगम्=शरीर को। शशिनि=चाँद में। वक्त्रच्छायाम्=मुख की शोभा को। शिखिनाम्=मोरों के। बर्हभारेषु=पंखों के समूहों में। केशान्=बालों को। प्रतनुषु=बहुत छोटी-छोटी। नदीवीचिषु=नदी की तरंगों में। भ्रूविलासान्=भ्रू-भंगों को। उत्पश्यामि=देखता हूँ, कल्पना किया करता हूँ। हन्त=शोक है! हे चण्डि! =तेज स्वभाव वाली, रिस खाने वाली। क्वचिदपि एकस्मिन् (वस्तुनि)=किसी भी एक (वस्तु) में। सादृश्यं नास्ति=तुम्हारी समानता नहीं है।

भाषानुवादः—मैं प्रियङ्गु लताओं में (तुम्हारे) शरीर की, भयभीत हरिणी के नयनों में (तुम्हारी) चितवन की, चाँद में (तुम्हारी) मुख-शोभा की, मयूर-पंखों के समूह में (तुम्हारे) बालों की, नदी की छोटी-छोटी तरंगों में (तुम्हारे) भ्रू-भंगों की कल्पना किया करता हूँ, किन्तु हे तेज स्वभाववाली! खेद है कि किसी भी एक (वस्तु) में तुम्हारी समानता नहीं है।

व्याकरणम्—चकितहरिणीप्रेक्षणे=चकितानां हरिणीनां प्रेक्षणे (ष० तत्पु०); प्रेक्षणम्—प्र+√ईक्ष्, भ्वा०, आ०+ल्युट्। दृष्टिपातम्=दृष्टेः पातम् (ष० तत्पु०); दृष्टिः—√दृश्, भ्वा० प०+क्तिन् (भावे) पातः—√पत्+घञ् (भावे)। शशिनि=शश+इन् (मतुबर्थ), स० एक०। वक्त्रच्छायाम्=वक्त्रस्य (मुखस्य) छायाम् (ष० तत्पु०)। शिखिनाम्=शिखिन् का ष० बहु०; शिखिन्=शिखा+इन् (मतुबर्थ)। बर्हभारेषु=बर्हाणां भारेषु (ष० तत्पु०)। भ्रूविलासान्=भ्रुवोः विलासाः तान् (ष० तत्पु०)। चण्डि! चण्डी का सम्बो० एक०; चण्डते कुप्यति इति√चण्ड्+अच् (कर्तरि)+ङीप् (स्त्रियाम्)। मल्लि० ने गौरादित्वात् ङीष् कहा है। वास्तव में 'बह्वादित्वा०' से यहाँ होना चाहिए, क्योंकि 'चण्ड' शब्द बह्वादिगणीय है।

विशेषः—गुणपताका के अनुसार प्रेमीजन विरहावस्था में निम्नलिखित चार प्रकार के साधनों से मनोरञ्जन करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं—१—प्रियजनसदृशानुभवन—(प्रेमी अथवा प्रेमिका के सदृश वस्तु का दर्शन); २—प्रतिकृति (चित्र खींचना या मूर्ति बनाना) ३—स्वप्नदर्शन (सपने में देखना); ४—तदङ्गस्पृष्ट वस्तु-स्पर्श (एक दूसरे अङ्गों से छुई हुई वस्तुओं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का छूना) । इस सम्बन्ध में उत्तरमेघ का पद्य २५ देखिए । इस पद्य में पहली अवस्था अर्थात् प्रिय-जन सदृश वस्तु-दर्शन का उल्लेख है ।

श्यामासु अङ्गम्—यहाँ केवल पतलेपन का खयाल करके ही श्यामा लता (प्रियङ्गु) में यक्ष-पत्नी के शरीर की समानता बतलाई है, अन्यथा रंग में वह गौर (गोरी) थी, श्यामालता की तरह काली नहीं। विपरीत तुलना के लिए देखिए ऋतु० VI. १०—'प्रिये प्रियङ्गुः प्रियविप्रयुक्ता विपाण्डुतां याति विलासिनीव ।' कभी-कभी प्रेमी को भी 'श्यामाङ्ग' कहा जाता है। देखिए मा० मा० III. ९—प्रियङ्गुश्यामाङ्गप्रकृतिरपि···'। रघु० VI, ६५–'इन्दीवर-श्यामतनुर्नृपोऽसौ ।' 'अङ्गम्' का अर्थ भुजाएँ भी हो सकता है, देखिए मालवि० II. ६–'कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयं (हस्त)' और देखिए ऋतु० III 'श्यामालताः कुसुमभारनतप्रवालाः स्त्रीणां हरन्ति धृतभूषणबाहुकान्तिम्'।

चकितहरिणीप्रेक्षणे—यही वाक्यांश हमें उत्तरमेघ २२ में मिलता है-'चकित हरिणीप्रेक्षणा' इसकी विशद व्याख्या के लिए उक्त पद्य का 'विशेष स्तम्भ' देखिए—इस सम्बन्ध में रघु० XIII १८—'मार्गे मृगप्रेक्षिणी दृष्टिपातं कुरुष्व' और मृच्छ० I. १७—'व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि' भी देखिए ।

शिखिनां बर्हभारेषु केशान्–फूलों से गूँथे हुए स्त्रियों के केशों की उपमा प्रायः मोर के पंख से की जाती है। देखिए विक्र० IV. १०–'रतिविगलितबन्धे केशहस्ते सुकेश्याः यदि कुसुमसनाथे किं करोत्येष वर्हीं ।' और देखिए रघु० IX. ६७—'चित्रमाल्यानुकीर्णे केशपाशे प्रियायाः ।'

प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रू-विलासान्—स्त्री के भ्रू-भङ्ग की समानता नदी की छोटी-छोटी तरङ्गों में देखी जाती है। देखिए विक्र० IV. २८—तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभितविहगश्रेणिरशना ·····नदीभावेनेयं·····परिणता ।' और देखिए ऋतु० सं० III. ७७—'भ्रूविभ्रमाश्च रुचिरास्तनुभिस्तरङ्गैः ।' भ्रूविलासान् का पाठान्तर 'भ्रूपताकाः' है, जिसका विग्रह 'भ्रुवः पताका इव' उपमितसमास है और अर्थ 'झण्डी-जैसी भौंहों को' है। भौंहों का यह अप्रस्तुत-विधान अप्रसिद्ध सा है।

हन्त !—खेद है ! यह अव्यय हर्ष, वाक्यारम्भ और अनुकम्पा में भी प्रयुक्त होता है। 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः। देखिए—'हा, हन्त ! हन्त !! नलिनीं गज उज्जहार।'

चण्डि !—सम्भवतः इस पद का औचित्य यहाँ यह है—'तुम तेज स्वभाव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाली हो, अतएव तुम कुपित हो जाओगी, क्योंकि मैं तुम्हारे अङ्गों की समानता अन्य वस्तुओं में देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ, परन्तु तुम्हारी समानता उन वस्तुओं में से किसी में भी नहीं मिलती है, इसलिए तुम्हारे कुपित होने की कोई बात नहीं है। वास्तव में प्रत्येक स्त्री स्वभावतः अपने पति के हृदय पर अपना ऐकाधिपत्य चाहती है। किसी दूसरी स्त्री पर पति के झुकाव की तो बात ही क्या, वह तो अपने-जैसे रूपादि वाले पदार्थों—जैसे–चन्द्र, लता आदि की ओर भी पति की दृष्टि सहन नहीं कर सकती, इसलिए यक्ष-पत्नी का अपने पति द्वारा प्रियङ्गु लता आदि को प्रेम से देखना क्योंकर अच्छा। इससे वह अवश्य रूठेगी। 'चण्डि' यह सम्बोधन एक प्रेम के शब्द के रूप में भी लिया जा सकता है। चण्डी शब्द के प्रयोग के लिए देखिए माल०—'चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता माम्।' और देखिए विक्र० VI. २८ की अन्तिम पंक्ति में उर्वशी को 'असहना' कहा गया है, जो चण्डी का पर्याय-वाची है। 'नदीभावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता'। इस दृष्टि से उत्तरमेघ ४५ में 'प्रणयकुपिता' विशेषण साभिप्राय है। 'चण्डि' का पाठान्तर 'भीरु' है। इसका भाव यह है कि इस विचार पर कि मैं तुम्हारे अङ्गों की समता अन्य वस्तुओं में देखता हूँ तुम्हारे शङ्कित या भीत होने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि खोजने पर भी तुम्हारी पूरी समता किसी एक वस्तु में मिलती नहीं।

स्त्री के अङ्गों की समता वाले पदार्थों के सम्बन्ध में देखिए विक्रमो० IV. २८—तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभितविहगश्रेणिरशना विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम्। पदाविद्धं यान्ती स्खलितमभिसन्धाय बहुशो नदीभावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता॥' इसी तरह, 'यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं, मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी। येऽपि त्वद्गमनानुसारिगतयस्ते राजहंसा गतास्त्वत्सादृश्यविलोकमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते॥' भावसाम्य के लिए देखिए मालती मा० IX २७—'नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिर्दृशः कुरङ्गेषु गतं गजेषु। लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया मे॥' रघु० VIII ५९—'कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम्। पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूत-लतासु विभ्रमाः॥'

प्रकृत पद्य में यक्ष-पत्नी के अङ्गों की कहीं भी समता न मिलने से यह व्यङ्ग्य निकलता है कि उसका सौंदर्य अद्वितीय है ॥४४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥४५॥

अन्वयः—(हे प्रिये !) प्रणयकुपितां त्वां धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य यावत् आत्मानं ते चरणपतितं कर्तुम् इच्छामि तावत् मुहुः उपचितैः अस्त्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते । क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् (चित्रे) अपि नौ संगमं न सहते ।

पदार्थः—प्रणयकुपिताम्=प्रेम के कारण रूठी हुई । धातुरागैः=गेरू आदि धातुओं के रंगों से । शिलायाम्=पत्थर पर । आलिख्य=चित्र खींच कर । आत्मानम्=अपने आपको, अर्थात् चित्र में बनाई अपनी आकृति को । यावत् =ज्यों ही । ते=तुम्हारे, अर्थात् चित्र में बनी आकृति के । चरणपतितं कर्तुम् इच्छामि=पाओं पर गिरा हुआ बनाना चाहता हूँ । तावत्=त्यों ही । मुहुरुपचितैः बार-बार उमड़े हुए । अस्त्रैः=आँसुओं से । मे दृष्टिः=मेरी आँख । आलुप्यते=ढक जाती है, डब-डबा जाती है । क्रूरः=निर्दयी । कृतान्तः=दैव तस्मिन् अपि=उस चित्र में भी । नौ संगमम्=हम दोनों के मेल को । न सहते=नहीं सहता ।

भाषानुवादः—(हे प्रिये !) धातुओं के रंगों से पत्थर पर प्रेम के कारण रूठी हुई तुम्हारी तसवीर बनाकर ज्यों ही मैं अपने आपको तुम्हारे पैरों पर गिरा हुआ बनाना चाहता हूँ, त्यों ही बार-बार उमड़े हुए आँसुओं से मेरी आँखें भर आती हैं । निर्दयी दैव, उस (चित्र) में भी हमारे मिलन को नहीं सहता (वास्तविक मिलन की तो बात ही क्या !) ।

व्याकरणम्—प्रणयकुपिताम्=प्रणयेन कुपिताम् (तृ० तत्पु०); प्रणय—प्र+√नी, भ्वा० उभ०+अच् (भावे); कुपित—√कुप्, दिवा० प०, क्रोध करना+क्त (कर्तरि) । धातुरागैः=धातूनां रागैः (ष्वा० तत्पु०), अथवा धातवो रागाः धातुरागाः तैः (कर्मधा०) । आलिख्य=आ+√लिख्, तुदा० प० लिखना)+य(=ल्यप्) । चरण-पतितम्=चरणयोः पतितम्(स० तत्पु०); पतित—√पत् भ्वा० प०—गिरना+त (कर्तरि) । यावद् इच्छामि= 'यावत् पुरानिपातयोर्लट्' इससे 'यावत्' निपात के साथ लट् का प्रयोग हुआ । उपचितैः=उप+√चि तना० उभ० (इकट्ठा करना)+त (कर्तरि)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह, 'अस्रैः' का विशेषण है। दृष्टिः=√दृश्, भ्वा० प० (देखना)+क्तिन् (भावे)। आलुप्यते=आ+√लुप्, तुदा० उभ० (छीनना, छिपाना दबाना), लट् (कर्मणि)। कृतान्तः=कृतः अन्तो येन सः। 'कृतान्तो यम-सिद्धान्त-दैवा-कुशलकर्मसु' इत्यमरः। नौ=आवयोः, अस्मत् का ष० द्विवचन में वैकल्पिक रूप। यह रूप वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त नहीं होता। सङ्गमम्=सम्+√गम् भ्वा० प० (जाना)+अ (भावे)। सहते=√सह्, भ्वा० आ० (सहन करना), लट्।

विशेषः—प्रणयकुपिताम्—अत्यधिक प्रेम के कारण थोड़ी-सी बात पर भी नायिका का रूठ जाना स्वाभाविक-सी बात है, इसीलिए उत्तरमेघ० ४४ में 'हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।' कहकर 'चण्डि' शब्द से प्रणय-कोप ही प्रकट किया गया है।

धातुरागैः शिलायाम्—प्रिया का चित्र बनाने के लिए यक्ष के पास कोई सामग्री—जैसे रंग, कागज, कूची आदि तो थी ही नहीं, अतः उसने रामगिरि पर्वत में सुलभ गेरू आदि धातुओं (minerals) को ही रंग के स्थान पर प्रयुक्त करते हुए पत्थर को कागज बनाकर उस पर अपनी प्रिया का चित्र खींचा। तदनन्तर वह 'प्रणयकुपिता' प्रियतमा को मनाने के लिए अपने आपको उसके पैरों पर गिरा हुआ चित्रित करना ही चाहता था कि क्रूर भाग्य ने एकदम आँसुओं से उसकी दृष्टि ही रोक दी। बेचारा अकुलाता ही रह गया। सन्देश के इन पद्यों में विरह-व्यथित मानव-हृदय की ऐसी कठोर वेदना है कि भावुक पाठकों को विप्रलम्भ शृंगार एकदम करुण-रस के सीमा-क्षेत्र के आसपास मंडराता हुआ दिखाई देता है। वस्तुतः कालिदास द्वारा चित्रित करुणा अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गई है, जो भवभूति की करुणा के साथ प्रतियोगिता में किसी भी प्रकार पीछे नहीं है।

यक्ष के इस चित्र-चित्रण के उद्योग से हम कालिदास के समय की चित्र-कला का अनुमान लगा सकते हैं कि वह उस समय में भी विकसित थी। इस सम्बन्ध में भावसाम्य के लिए देखिए, विक्र० II १०—'न च सुवदनामालेख्ये-ऽपि प्रियामसमाप्य ताम्। मम नयनयोरुद्वाष्पत्वं सखे न भविष्यति॥' और अभि० शा० VI २२—'बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि।' उत्तरमेघ० २५—'मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।' भी देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रूरस्तस्मिन्नपि···कृतान्तः—इस सम्बन्ध में म० सि० ने दैव को दुरात्मा कहकर निम्न निर्दिष्ट पद्य उद्धृत किया है—'अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा । सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।।'

इस पद्य में 'हत भाग्य चित्र में भी प्रियतमा से मिलन नहीं होने देता है, प्रत्यक्ष मिलन की बात का तो कहना ही क्या' यह अर्थ है। प्रत्यक्ष मिलन वाली बात 'अर्थात्' निकली; यह वाच्य नहीं है, इसलिए यहाँ अर्थापत्तिन्याय से होने वाला अर्थापत्ति अलङ्कार है ।।४५।।

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य वाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चबाणः क्षिणोति ।
घर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयु-
र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि ।।४५क।।

अन्वयः—बाले ! पञ्चबाणः धारासिक्तस्थलसुरभिणः अस्य त्वन्मुखस्य दूरीभूतं प्रतनुम् अपि मां क्षिणोति । अस्मिन् घर्मान्ते दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्त-सूर्यातपानि वासराणि कथं व्रजेयुः (इति) विगणय ।

पदार्थः—बाले=बालिके । पञ्चवाणः=कामदेव । धारासिक्तस्थलसुर-भिणः=(मेघ की) जल-धाराओं से सीची गई भूमि की सुगन्धि वाले अस्य त्वन्मुखस्य=इस तेरे मुख से। दूरीभूतम्=वियुक्त हुए । प्रतनुम् अपि मां क्षिणोति=पहिले ही से दुवले होते हुए भी मुझे और भी दुबला बना रहा है। अस्मिन् घर्मान्ते=इस गरमी के अन्त में (या वर्षा-काल के प्रारम्भ में)। दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि=सब दिशाओं में फैले हुए सघन मेघों द्वारा रोकी गई धूप वाले । वासराणि=दिन। कथं=किस प्रकार। व्रजेयुः=व्यतीत होंगे। (इति) विगणय=(यह तो) विचारो ।

भाषानुवादः—हे बालिके ! कामदेव जल-धाराओं से सींची गई भूमि की सुगन्धि वाले, इस तुम्हारे मुख से दूर पड़े हुए मुझे, जो पहिले से ही दुबला हूँ, और भी दुबला बना रहा है। इस गर्मी के अन्त में (या वर्षा-काल के प्रारम्भ में) सब दिशाओं में फैले हुए सघन मेघों द्वारा धूप को रोक देने वाले दिन किस प्रकार व्यतीत होंगे—यह तो विचारो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—पञ्चबाणः=पञ्च बाणाः यस्य सः (ब० व्री०)। धारासिक्तस्थलसुरभिणः=(मेघजलस्येति शेषः) धाराभिः सिक्तं यत्स्थलं तद्वत् सुरभिणः (मुखस्य) सम्बन्धविवक्षा से पञ्चमी के स्थान में षष्ठी हुई। दूरीभूतम्=दूर+च्वि+√भू+त (क्त)। क्षिणोति=√क्षि, तना० उभ० (कम करना)। दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि=दिक्षु संसक्ताः प्रविततताश्च ये घनाः (मेघाः) तैः व्यस्तः दूरीकृतः सूर्यातपः (सूर्यस्य आतपः) येषु तानि (ब० व्री०)। वासराणि=वासर शब्द पुं० और नपुं० है। व्रजेयुः=व्रज् भ्वा० प० विधिलिङ्।

विशेषः—दूरीभूतम्=दूर-देशस्थ। उत्तरमेघ २३-'दूरीभूते मयि सहचरे' और देखिए उत्तरमेघ, ४२ में 'दूरवर्ती'।

पञ्चबाणः क्षिणोति—कामदेव को पञ्चबाण कहते हैं। पाँच वाण ये हैं—१. अरविन्द (गुलाबी कमल) २. अशोक ३. आम्र (आम), ४. नवमल्लिका (चमेली), और ५. नीलोत्पल (नीला कमल)। कामदेव को 'कुसुमशर' भी कहते हैं। देखिए उत्तरमेघ ४-'नान्यस्यापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यम्।' विक्रमो०—'इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारं···मनो मे पञ्चबाणः क्षिणोति।'

घर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयुः—गर्मी के बाद वर्षा के दिन, जब आकाश में मेघ मंडरा रहे हों, कामोद्दीपक हुआ करते हैं। वर्षा-काल में ऐसे दिनों का काटना विरहियों के लिए कठिनतम कार्य है। देखिए पूर्वमेघ ३-'मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः।'

इस पद्य की भाषा में प्रयास-साध्यता है, कालिदास की-सी स्वाभाविकता और प्रासादिकता नहीं, अतः प्रक्षिप्त है ॥४५क॥

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो–
र्लब्धायास्ते कथमपि [1]मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रु-लेशाः[2] पतन्ति ॥४६॥

अन्वयः—स्वप्नसन्दर्शनेषु मया कथम् अपि लब्धायाः ते (सम्बन्धे) निर्दयाश्लेषहेतोः आकाश-प्रणिहित-भुजं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्तास्थूलाः

१–निशि। २–लेखाः; पाताः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अश्रुलेशाः तरुकिसलयेषु बहुशः न खलु पतन्ति (इति) न (अपि तु पतन्ति एव)।

पदार्थः—स्वप्न-सन्दर्शनेषु=स्वप्न के साक्षात्कारों में। मया कथम् अपि लब्धायाः ते=मुझे किसी तरह प्राप्त हुए तुम्हारे। निर्दयाश्लेषहेतोः=गाढ़ आलिङ्गन के लिए। आकाशप्रणिहितभुजं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानाम्= आकाश में फैलाई हुई भुजाओं वाले मुझे देखते हुए वनदेवताओं के। मुक्ता-स्थूलाः अश्रुलेशाः=मोतियों जैसी मोटी-मोटी आँसुओं की बूंदें। तरुकिसल-येषु=वृक्षों की कोपलों पर। बहुशः=अनेक बार। न खलु पतन्ति=सचमुच नहीं गिरतीं। (इति) न=(ऐसा) नहीं।

भाषानुवादः—स्वप्न के साक्षात्कारों में किसी तरह प्राप्त हुए तुम्हारे प्रगाढ़ आलिङ्गन के लिए, आकाश में फैलाई हुई भुजाओं वाले मुझे देखते हुए वनदेवताओं के मोतियों-सी मोटी-मोटी आँसुओं की बूंदे वृक्षों की कोपलों पर कितनी ही बार सचमुच नहीं गिरतीं (सो बात) नहीं। (अर्थात् गिरती ही हैं)।

व्याकरणम्—स्वप्नसन्दर्शनेषु=सुप्तस्य विज्ञानं स्वप्नः तस्मिन् यानि सन्दर्शनानि (सम्+√दृश्, भ्वा० प०–देखना,+अन ल्युट् भावे) तेषु। लब्धायाः=√लभ्, भ्वा आ०+त (क्त)+आ (स्त्रियाम्)। ते=तव युष्मत् का ष० एक० का वैकल्पिक रूप, जो वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त नहीं होता। निर्दयाश्लेषहेतोः=निर्गता दया यस्मात् स निर्दयः (ब० व्री०) तथाभूतः य आश्लेषः (गाढालिङ्गनम्) स एव हेतुस्तस्य (कर्मधा०)। 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' से षष्ठी। आकाशप्रणिहितभुजम्=आकाशे प्रणिहितौ भुजौ येन सः तथाभूतम् ब०·व्री०) प्रणिहित=प्र+नि+√धा जु० उ०+क्त (कर्मणि)। पश्य-न्तीनाम्=√दृश्, भ्वा० प०+अत् (शतृ)+इ (स्त्रियाम्); स्थलीदेवतानाम् =स्थलीनां (वनस्थलीनां) देवताः स्थलीदेवताः (ष० तत्पु०) अथवा स्थल्य-धिष्ठात्र्यो देवता इति स्थली० (मध्यम पद लोपी) तासाम्। मुक्तास्थूलाः= मुक्ता इव स्थूलाः (कर्मधा०) अश्रुलेशाः=अश्रूणां लेशाः (ष० तत्पु०)। लेश का अर्थ 'बिन्दु' है। तरुकिसलयेषु=तरूणां किसलयाः तरुकिसलयाः तेषु। बहुशः=बहु+शः।

विशेषः—स्वप्तसन्दर्शनेषु–'स्वप्नः सुप्तस्य विज्ञानम्' इस विश्वकोश के प्रमाण से स्वप्न का अर्थ हआ सोते हुए पुरुष को होने वाला ज्ञान और सन्दर्शन का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थ भी—'दर्शनं समये शास्त्रे दृष्टौ स्वप्नेऽक्षिण संविदि' इस शब्दार्णव के अनुसार संविद्=ज्ञान है, इस तरह पुनरुक्ति-सी लगती है, किन्तु स्वप्न विशेष-ज्ञान और सन्दर्शन सामान्य-ज्ञान होने से 'आम्रवृक्ष' की तरह विशेष और सामान्य के साथ-साथ होने में कोई पुनरुक्ति नहीं होती। स्वप्नसन्दर्शन विरह-काल में मनोविनोद के चार साधनों में से तीसरा साधन है। देखिए उत्तरमेघ ४४ का विशेष स्तम्भ। भावार्थ यह है कि यक्ष सपने में अपनी प्रिया को देख पाता, तो प्रगाढ़ आलिङ्गन के लिए शून्य में निज बाहुओं को फैला देता। उस की दीन दयनीय दशा को देखकर वनदेवियाँ सहानुभूति में जो दो-चार आँसू बहा देतीं, वे सुबह पत्तों पर पड़े हुए प्रत्यक्ष दिखाई देते। यहाँ रात को पत्तों पर पड़ने वाली ओस की बूंदों को वन-देवियों के अश्रु-बिन्दु सिद्ध किया जा रहा है। अश्रुबिन्दुओं का भूमि पर न पड़कर पत्तों पर पड़ना साभिप्राय है, क्योंकि महात्मा-देवता आदि के आँसुओं का जमीन पर पड़ना अनिष्टकारक माना गया है। पत्तों पर गिरने के लिए देखिए शास्त्र क्या कहता है—'महात्म-गुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि। देशभ्रंशो महद् दुखं मरणं च भवेद् ध्रुवम्॥' इसलिए यक्ष का वियोग में मरणाभाव बतलाने के लिए ही आँसुओं का पत्तों पर पड़ना कहा है, न कि भूमि पर।

निर्दयाश्लेष०—इसके लिए देखिए उत्तरमेघ. २७—"मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धं कथञ्चित्सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्।"

अश्रुलेशाः—भाव-साम्य के लिए देखिए, रघु० VIII. ६८—"विलपन्निति कोसलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति। अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुत-शाखारसबाष्पदूषितान्॥"

बहुशः न खलु पतन्ति (इति) न—आंसुओं की बूँदें बार-बार नहीं गिरतीं (ऐसा) नहीं; अर्थात् गिरती ही हैं। नञ् विधि में दृढता बतलाते हैं। देखिए अभि० शा०—'नेयं न वक्ष्यति'। बहुशः क्रि० विशे० को कई टीका-कार 'पश्यन्तीनां' के साथ रखते हैं। सारो० में इसकी 'अनेकवारं' व्याख्या की गई है। मल्लि० के समान लक्ष्मीनिवास 'बहुशः' को 'पतन्ति' के साथ मिलाते हैं। 'बहुशः' को 'पतन्ति' के साथ ही लेना उचित प्रतीत होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह पद्य और इससे पूर्ववर्ती पद्य विरह-व्यथा के ऐसे सजीव वर्णन हैं कि जैसे ये कवि के आप-बीते अनुभव हों। सम्भवतः कवि को किसी कारण-वश अपनी प्रियतमा से बिछुड़ना पड़ा हो और ये वर्णन उसी विरह-व्यथा के उद्गार हों ॥४६॥

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये[1] तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति ! मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥४७॥

अन्वयः—देवदारु-द्रुमाणां किसलयपुटान् सद्यः भित्त्वा तत्क्षीर-स्रुति-सुरभयः ये तुषाराद्रिवाताः दक्षिणेन प्रवृत्ताः (हे) गुणवति ! 'एभिः यदि तव अङ्गं पूर्वं स्पृष्टं भवेत् किल' इति मया ते (वाताः) आलिङ्ग्यन्ते।

पदार्थः—देवदारुद्रुमाणां=देवदारु (देओदार या द्यार) वृक्षों की। किसलयपुटान्=कोपलों की तहों को। सद्यः=शीघ्र ही भित्त्वा=तोड़ कर, खोल कर। तत्क्षीर-स्रुति-सुरभयः=उनके बहते हुए दूध से सुगन्धित। ये तुषाराद्रि-वाताः=जो हिमालय की वायु। दक्षिणेन प्रवृत्ताः=दक्षिण की ओर चल रही है। गुणवति !=हे गुणवाली लड़की ! एभिः यदि तव अङ्गं स्पृष्टं भवेत्=इनसे सम्भवतः तुम्हारा शरीर अवश्य छुआ गया होगा। इति=इस विचार से। मया ते आलिङ्ग्यन्ते=मैं उन (पवनों) का आलिङ्गन करता रहता हूँ।

भाषानुवादः—देवदारु वृक्षों की कोपलों की तहों को तत्काल खोलकर उनके बहते हुए दूध से सुगन्धित हुई दक्षिण की ओर चलने वाली हिमालय पर्वत की वायु को हे गुणवति ! मैं इस विचार से आलिंगन करता रहता हूँ कि सम्भवतः इसने तुम्हारे शरीर को पहिले अवश्य छुआ होगा।

व्याकरणम्—देवदारुद्रुमाणां=देवदारोः द्रुमाः देवदारुद्रुमाः (ष० तत्पु०) तेषाम्। किसलयपुटान्=किसलयानां पुटाः (ष० तत्पु०), किसलयपुटाः अथवा किसलया एव पुटाः, तान्। भित्त्वा=√भिद्, रुधा० उभ० (तोड़ना, खोलना)+त्वा (क्त्वा)। तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः=तेषां क्षीरं तस्य स्रुतिः (स्रवणं), (ष० तत्पु०) तया सुरभयः (तृ० तत्पु०)। दक्षिणेन—'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से यहाँ तृतीया हुई, किन्तु महाभाष्यकार ने "तत्रापि करणत्वस्य

१—एतत्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतीयमानत्वात् 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इत्येव सिद्धम्" लिखकर यहाँ करणत्वेन ही तृतीया मानी है। प्रवृत्ताः=प्र+√वृत्, भ्वा० आ० (होना)+त(क्त)। गुणवति=गुण+मतुप्+ई (स्त्रियाम्), सम्बोधन एक०। तुषाराद्रिवाताः= तुषारस्य अद्रिः तस्य वाताः (ष० तत्पु०)। स्पृष्टम्=स्पृश्, तुदा प० (छूना)+त (क्त)। किल=सम्भावनायाम् अव्ययम्। आलिङ्ग्यन्ते=आ+√लिङ्ग्, भ्वा० प० (रचना)+कर्मणि लट्, 'मया' इसका कर्ता है।

विशेषः—किसलयपुटान्—दोनों के आकार की कोपलों को। देखिए, रघु० IX. ६८—'तस्य कर्कशविहारसंभवस्वेदमाननविलग्नजालकम्। आचचाम स तुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुटो घनानिलः॥' मालवि० III. ९—'वोढा कुरवक-रजसां किसलयपुटभेदसीकरानुगतः। अनिमित्तामुत्कण्ठामपि जनयति मलय-वातोऽयम्॥'

तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः—हिमालय पर्वत की वायु देवदारु वृक्षों से बहते हुए दूध की महक से खूब सुगन्धित हुई रहती है। देखिए कुमार० I. १५—भागी-रथीनिर्झरशीकराणां वोढा मुहुः कम्पित-देवदारुः·········यद्वायुः' और देखिए कुमार० I. ९—'यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि (सरलद्रुमाणां) गन्धः सुरभीकरोति।'

तुषाराद्रिवाताः······आलिङ्ग्यन्ते—इस पद्य में विरहकाल में समय व्यतीत करने का चौथा साधन अर्थात् 'तदङ्गस्पृष्टस्पर्शः' (एक दूसरे के अंगों द्वारा छुई हुई वस्तुओं का स्पर्श) बताया है। देखिए उत्तरमेघ. ४४ पर टीका और विशेष भाग। यक्ष का दक्षिण वायु को छूने से यही अभिप्राय है कि वह उसकी प्रियतमा के शरीर को छूकर आई होगी। देखिए माल० मा० I. ३८—'तामीपत्प्रचलविलोचनां नताङ्गीमालिङ्गन्पवन मम स्पृशाङ्गमङ्गम्' अभि० शा०, III. ५—शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम् अङ्गैरनङ्ग-तप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः॥' वाल्मी० रामा० कि० I, ५३—'वाहि वात यतः कान्तां तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश। वह्वेतत् कामयानस्य शक्यमेतेन जीवितुम्॥'

यक्ष द्वारा वायु के आलिङ्गन के सम्बन्ध में मेघदूत का टीकाकार निरु-क्तकार—"अत्र वायूनां स्पृश्यत्वेन अमूर्तत्वेन आलिङ्गनायोगात् 'आलिङ्ग्यन्ते' इत्यभिधानं यक्षस्य उन्मत्तत्वात् प्रलपितम् इत्यदोषः" यह लिखकर शङ्का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उठाता है कि वायु को हम छू तो सकते हैं किन्तु उसका आलिंगन नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वह एक अमूर्त पदार्थ है, इसलिए यक्ष का 'आलिङ्ग्यन्ते' यह कहना ठीक नहीं बनता। हाँ, यदि इसे पागलपन वा प्रलाप समझा जाये, तो कोई दोष नहीं। इस पर मल्लि०—'इति वदन् निरुक्तकारः स्वयमेव उन्मत्त-प्रलापी इत्युपेक्षणीयः' यह लिखकर इस प्रकार उत्तर देता है कि ऐसी शङ्का करने वाला निरुक्तकार ही स्वयं पागल है, जो ऐसी पागलों की सी बातें लिखता है। मल्लि० का तात्पर्य यह है कि जब वायु छुआ जा सकता है, तब उसका आलिंगन भी हो सकता है, क्योंकि (अंगों के) स्पर्श ही को तो आलिंगन कहते हैं।

यदि किल—'यदि' शब्द भी संभावनावाचक है और 'किल' शब्द भी संभावनावाचक है, इसलिए दो संभावनावाचक शब्दों से संभावना में दृढ़ता आ जाती है, अर्थात् 'संभवतः अवश्य प्रियतमा के शरीर को छू कर ही आई होगी'। देखिए सारो०—"यदि किलेति पदद्वयमपि सम्भावनार्थम्, एकार्थपदद्वयस्योपादानं सम्भावनातिशयं स्थापयति।'

इस पद्य में प्रियतमा के अङ्गस्पर्श को वायु के आलिङ्गन का कारण बताया है, इसलिए यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥४७॥

[1]संक्षिप्येत [2]क्षण इव [3]कथं दीर्घयामा[4] त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि [5]कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।
इत्थं चेतश्चटुलनयने! दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं [6]त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥४८॥

अन्वयः—दीर्घयामा त्रियामा कथं क्षण इव संक्षिप्येत। सर्वावस्थासु अहः अपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्। इत्थं (हे) चटुलनयने! दुर्लभ-प्रार्थनं मे चेतः गाढोष्माभिः त्वद्वियोगव्यथाभिः अशरणं कृतम्।

पदार्थः—दीर्घयामा= लम्बे लम्बे प्रहरों वाली। त्रियामा=रात। कथं= किस तरह। क्षण इव=पल के समान। संक्षिप्येत=छोटी कर दी जाय। अहः अपि=दिन भी। सर्वावस्थासु=सब दशाओं—ऋतुओं—में। कथम् मन्दमन्दातपं स्यात्=किस तरह बहुत कम सन्ताप वाला बन सके। इत्थम्=इस तरह।

१—संक्षिप्यैव; संक्षिप्यन्ते—सारो०, स०ती०, सु०वि०, म०सि०; संक्षिप्येरन्—व०। २—क्षणमिव—का० बा० पाठक। ३—मया। ४—दीर्घयामास्त्रियामाः-स० ती०, सारो०, व०, सु० वि०। ५—च मे। ६—तद्वियोग०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हे चटुलनयने ! =हे चञ्चल चितवन वाली ! दुर्लभ-प्रार्थनम् =कठिनता से प्राप्त होने वाली इच्छाओं वाला। मे चेतः=मेरा मन। गाढोष्माभिः=अत्यधिक दाह भरी। तद्वियोगव्यथाभिः=तुम्हारे वियोग की वेदनाओं से। अशरणम्=असहाय। कृतम्=बना दिया गया है।

भाषानुवाद:—लम्बे लम्बे पहरों वाली रात किस तरह पल के समान छोटी बनाई जाय; दिन भी सब अवस्थाओं—ऋतुओं में किस तरह मन्द सा ताप वाला बने? यों, हे चञ्चल चितवन वाली ! कठिनता से पूरी होने वाली इच्छावाले मेरे मन को अत्यधिक दाह-भरी, तुम्हारी विरह-वेदनाओं ने असहाय बना दिया है।

व्याकरणम्—दीर्घयामा=दीर्घाः यामाः (प्रहराः) यस्यां सा (ब० बी०)। त्रियामा=त्रयो यामाः यस्याः सा। संक्षिप्येत=सम्+√क्षिप्, तुदा० प० (फेंकना), कर्मणि—विधिलिङ्। अहः=अहन् (नपुं०) प्र० ए०। सर्वावस्थासु=सर्वासु अवस्थासु (अधिकरणे सप्त०)। मन्दमन्दातपम्=मन्दप्रकारः इति मन्दः मन्दः। 'प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्विरुक्तिः। देखिए—पूर्वमेघ० १०-'मन्दं मन्दं नुदति पवनः···' का व्याकरण भाग। मन्द-मन्द आतपो यस्मिन् तत् (ब० व्री०), चटुलनयने। चटुले (चञ्चले) नयने यस्याः सा चटुलनयना, तत्सम्बोधने, (ब० व्री०)। दुर्लभप्रार्थनम्=दुःखेन लभ्या प्रार्थना यस्य तत् (ब० व्री०)। गाढोष्माभिः—गाढः ऊष्मा यासाम् (ब० व्री०) ताभिः। त्वद्वियोगव्यथाभिः=तव वियोगः (ष० तत्पु०) तस्य या व्यथाः ताभिः; 'अनुक्ते कर्तरि तृतीया' अशरणम्=न शरणम् यस्य तत् (ब० व्री०)।

विशेषः—दीर्घयामा—याम प्रहर को कहते हैं। एक प्रहर तीन घण्टे का होता है। इस सम्बन्ध में देखिए उत्तरमेघ० ३७—'अन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।' और उसका विशेष भाग। क्योंकि यक्ष विरह में था, अतः उसको रात असाधारण रूप से लम्बी प्रतीत होती थी। प्रेम में समय के भारी होने के विषय में अंग्रेजी में भी उक्ति है—Time hangs heavily on lovers'। इससे विपरीत भाव० के लिए देखिए उत्तर० I—'अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।' और उत्तरमेघ २९—'नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या'।

त्रियामा—यह नाम रात्रि का है, क्योंकि इसके तीन याम=प्रहर अर्थात् नौ घण्टे होते हैं। पहले याम का पूर्वार्ध तो विगत दिवस का भाग तथा अन्तिम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

याम का उत्तरार्ध आने वाले दिन का भाग समझा जाता है, इसलिए एक याम दिन में जा मिलने से दिन पाँच यामों का होता है और रात तीन यामों की। देखिए—'क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा' गुप्त शिला लेख। वल्ल० आदि के 'संक्षिप्येरन्···त्रियामाः।' इस बहुवचनान्त पाठ की अपेक्षा मूल में दिया हुआ एकवचनान्त पाठ ही एकवचनान्त 'क्षण' और 'अहः' के साथ ठीक बैठता है।

सर्वावस्थासु—सब हालतों—ऋतुओं—में,—सारो० के अनुसार 'ग्रीष्म-मध्याह्नादिषु दशासु' अर्थात् ग्रीष्म-ऋतु के मध्याह्न आदि अवस्थाओं में। आदि पद से पूर्वाह्णे (प्रातः) तथा अपराह्णे (सायंकाल) ही लिये जा सकते हैं। दिन की ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। स्मरण रहे कि यक्ष ग्रीष्म के अवसान और वर्षा के आरम्भ में ही मेघ द्वारा अपनी प्रिया के प्रति सन्देश भेज रहा था। ग्रीष्म में तो दिन वैसे ही लम्बे होते हैं। विरह ने उन्हें और भी अधिक लम्बा और गर्म बना दिया था। ऐसी परिस्थिति में यक्ष का दिन को 'मन्दमन्दातप' चाहना स्वाभाविक ही था।

मन्दमन्दातपम्—कई टीकाकार इसकी 'मन्दान्मन्दः' अर्थात् अतिमन्दः आतपो यस्मिन् तत्—व्याख्या करते हैं। विरह-काल में विरहाग्नि तो प्रबल होती है, फिर दिन भी कहीं बड़े और प्रचण्ड हों, तो इसे 'क्षते क्षारं क्षिपति' ही कहेंगे।

कथं स्यात्—इस वाक्य को प्रतिषेध-परक मानते हुए मल्लि० ने इस पर 'न स्यादेव' ये शब्द लिखे हैं, क्योंकि वियोग में यह सम्भव नहीं।

चटुलनयने—इस पद्य में आए 'चटुलनयने' इस सम्बोधन-पद से तथा उत्तरमे० ४७ में आए 'गुणवति' इस सम्बोधन से यक्ष अपनी पत्नी के बाह्य तथा आन्तरिक—दोनों प्रकार के सौन्दर्य का वर्णन करता है और प्रिया के नयनों का स्मरण कर उसकी रातें बड़ी कठिनता से कटती हैं।

दुर्लभप्रार्थनम्—यह चेतः (नपुं) का विशेषण है। इसके लिए देखिए विक्र० II ६—'इदमसुलभवस्तु-प्रार्थना-दुर्निवारं, प्रथममपि मनो मे पञ्च-बाणः क्षिणोति'।

गाढोष्माभिः—गाढः ऊष्म ऊष्मा वा यासाम्=प्रगाढ-सन्ताप (वेदनाओं) वाली। क्योंकि यक्ष की विरह-व्यथा 'गाढ़'–गहरी—थी, इसलिए वह रात को क्षण के समान छोटी हुई चाहता था और क्योंकि विरह-व्यथा में 'ऊष्मा थी' इसलिए वह दिन को 'मन्दातप' हुआ चाहता था। देखिए उत्तर० २९—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्' ॥४८॥

[1]नन्वात्मानं बहु विगणय[2]न्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि ! त्वमपि [3]नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
[4]कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं[5] दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥४६॥

अन्वयः—**ननु बहु विगणयन् (अहम्) आत्मानम् आत्मना एव अवलम्बे तत् (तस्मात्) (हे) कल्याणि ! त्वमपि नितरां कातरत्वं मा गमः। कस्य अत्यन्तं सुखम् उपनतम् (भवति) एकान्ततः दुःखं वा (कस्य भवति); दशा चक्रनेमि-क्रमेण नीचैः उपरि च गच्छति ।**

पदार्थः—ननु=सचमुच । बहु विगणयन्=(शाप के अन्त होने पर) बहुत-बहुत बातों की कल्पना करता हुआ (मैं) आत्मानम्=अपने को । आत्मना एव=अपने आप ही । । अवलम्बे=थामे हुए हूँ, धीरज दे रहा हूँ । तत्=तो । हे कल्याणि !=हे सौभाग्यशाली ! त्वमपि=तू भी । नितराम्=अत्यधिक । कातरत्वम्=भय–कायरपन—को । मा गमः=मत प्राप्त होना । कस्य=किस को । अत्यन्तम्=लगातार, बराबर, नियम से । सुखम् उपनतम्=सुख ही सुख प्राप्त हुआ है ? वा=अथवा । एकान्ततः=नियमित रूप से (Exclusively) दुःखम्=दुःख ही दुःख । दशा=अवस्था । चक्रनेमिक्रमेण=पहिये के किनारों के क्रम से । नीचैः उपरि च=नीचे और ऊपर । गच्छति=जाती रहती है ।

भाषानुवादः—सचमुच (शाप की समाप्ति पर) बहुत सी बातों की कल्पना करता हुआ मैं अपने आप ही को धीरज दे रहा हूँ; हे ! सौभाग्यशाली ! तू भी अधिक अधीर मत होना । नियम से सुख ही सुख अथवा दुःख ही दुःख सदा किसको रहा ? दशा पहिए के घेरे के क्रम के अनुसार नीचे और ऊपर जाती रहती है ।

१—न त्वात्मानं-मल्लि; इत्यात्मानं-सारो०, म० सिं०, सु० वि० । २—आत्मना नावलम्बे-वि० । ३—सुतरां-वल्ल० वि०, सु० वि०, सु० वि० सारो०, स० ती०, म० सिं० । ४—कस्यैकान्तं-का० वा० पाठक । ५—उपगतं—वल्ल, व० सारो० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—ननु-मल्लि० के अनुसार यह अव्यय 'आमन्त्रण' सम्बोधन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इसे 'अवधारण' अर्थ में ही लेना अच्छा है, क्योंकि 'कल्याणि'! से आमन्त्रण तो है ही । अमरकोश के अनुसार 'ननु' निम्न अर्थों में प्रयुक्त होता है—प्रश्न, अवधारण, अनुज्ञा, अनुनय और आमन्त्रण । विगणयन्=वि√गण्, चुरा० उभ०+अत् (शतृ) प्र० एक । आत्मना=आत्मन् का० तृ० एक०, यहाँ 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया। अवलम्बे=अव+√लम्ब् भ्वा० आ० (लटकना), लट् उत्तम पु० एक० । कल्याणि=कल्याणी का सम्बो० एक० । कल्याण+ङीप् (ई) । नितराम्= अव्यय । कातरत्वम्=कातरायाः भावः इति कातरा+त्व । मा गमः=√गम्, भ्वा० प० (जाना) लुङ् मा (माङ्) के योग में लुङ् और 'अडागम' का निषेध । अत्यन्तम् (अन्तम् अतिक्रान्तम्)–अव्ययीभा० । उपनतम्=√नम्, भ्वा० प० (झुकना)+त (क्त) । एकान्ततः=एकान्त+तस्, तृतीयायां तसिल् प्रकृत्यादित्वात् तृतीया । चक्रनेमिक्रमेण=चक्रस्य नेमिः (प्रान्तभागः) तस्याः क्रमेण 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया । नीचैः, उपरि=दोनों अव्यय शब्द हैं ।

विशेषः—नन्वात्मानम्–इसके पाठान्तर 'न त्वात्मानं' और 'इत्यात्मानं' हैं । इनमें से पहला पाठ मल्लि० ने दिया है । श्री का० बा० पाठक पहले पाठ के शब्दों का अन्वय इस प्रकार देते है –'न तु आत्मानं बहु विगणयन् न आत्मना एव अवलम्बे' अर्थात्=आत्मानं तु बहु विगणयन्नात्मनैव नावलम्बे इति न । इसका अर्थ—'निश्चय से अपने आपको बहुत समझता हुआ मैं अपने आप धीरज नहीं रखता' ऐसी बात नहीं, अर्थात् धीरज रखता ही हूँ । 'इत्यात्मानं' पाठ वास्तव में अच्छा है, क्योंकि 'इति' शब्द से इससे पहले पद्यों के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । अर्थात् इन पूर्वोक्त पद्यों में बताई गई बातों से मैं धीरज बाँधे हुए हूँ ।

आत्मानम्-आत्मनैवावलम्बे—टीका में 'आत्मना नावलम्बे' यह पाठ है और इसकी निम्न व्याख्या की है–'आत्मना स्वयमेव आत्मानं मनो नावलम्बे । अपि तु धैर्यं प्राप्स्यामि' अर्थात् अपने आप=स्वयं ही अपने मन को धीरज नहीं देता, अपि तु धैर्य प्राप्त कर ही लूंगा । आत्मा से ही आत्मा की सहायता के लिए देखिए–गीता० VI–३–'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥' महाभा० में भी 'आत्मनैवात्मानं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशंसेत्' यह पाठ आया है।

कल्याणि—कल्याण वाली। इसका अर्थ मल्लि० ने 'सुभगे' अर्थात् हे सुहागिन ! किया है, इससे यह भाव निकला कि मैं जो अब तक जीवित हूँ, उसका कारण है तुम्हारा सौभाग्य-योग अर्थात् तुम सौभाग्यवती हो और तुमसे मैं अवश्य मिलूँगा।

कस्यात्यन्तं सुखम्···चक्रनेमिक्रमेण—देखिए मनुः—चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च'। स्वप्न वा०—'चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः' इस सम्बन्ध में यह पद्य भी देखिए—'सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्। सुख-दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तते।'

विल्सन महोदय ने प्लूटार्क—(Plutarch)की ये पंक्तियाँ उद्धृतकी हैं—

The Wheel of Life is ever on the ground.

While one side's up the other's on the ground.

नेमि शब्द के लिए देखिए रघु० I १७ और ३८—'नेमिवृत्तयः' 'रथ-नेमिस्वनोन्मुखैः।' नेमि होती हैं पहिये के चक्र का किनारा, 'देखिए यादव—चक्रधारा प्रधिर्नेमिः' ॥४६॥

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
[1]शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
पश्चादावां [2]विरहगुणितं तं [3]तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥५०॥

अन्वयः—**शार्ङ्गपाणौ भुजगशयनात् उत्थिते (सति) मे शापान्तः (भविष्यति); (अतः) शेषान् चतुरः मासान् लोचने मीलयित्वा गमय। पश्चात् परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु आवां विरहगुणितं तं तम् आत्माभिलाषं निर्वेक्ष्यावः।**

पदार्थः—शार्ङ्गपाणौ=विष्णु भगवान् के। भुजगशयनात्=शेष नाग के शयन से। उत्थिते (सति)=उठते ही। मे शापान्तः (भविष्यति)=मेरे शाप का अवसान (हो जायेगा)। शेषान् चतुरः मासान्=बाकी चार महीनों को। लोचने मीलयित्वा=आँखें मींचकर। गमय=बिताओ। पश्चात्=पीछे, फिर। परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु=शरत्काल की परिपक्व-पूर्णरूप से छिटकी

१—मासानन्यान् का० बा० पाठक। मासानेतान्—वि०। २—विरहगणितं —मल्लि०, स० ती। विरहजनितं। ३—तमेवाभिलाषं—का० वा० पाठक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुई—चाँदनी रातों में । आवाम्=हम दोनों । विरहगुणितम्=वियोग के कारण बढ़ी हुई, मीठी-मीठी बनी । तं तमात्माभिलाषम्=उन उन अभिलाषाओं का । निर्वेक्ष्यावः=आनन्द लूटेंगे, उन्हें पूरा कर लेंगे ।

भाषानुवादः—विष्णु भगवान् के शेष-शय्या से उठते ही मेरे शाप का अन्त (हो जायेगा), (इसलिए) बाकी के चार महीनों को आँखें मीचकर बिताओ। फिर हम दोनों शरत्काल की पूर्णरूप से छिटकी चाँदनी की रातों में, वियोग से बढी हुई उन उन अभिलाषाओं का पूरा स्वाद लेंगे ।

व्याकरणम्—शार्ङ्गपाणौ=पाणौ शार्ङ्गम् (शृङ्गस्य विकारः=शार्ङ्गम्) यस्य सः (ब० व्री०) । भुजगशयनात्=भुजगः भुजः (टेढ़ा) सन् गच्छति इति स एव शयनं (कर्मधा०) तस्मात् । उत्थिते=उत्+√स्था० भ्वा० प० (बैठना) +त(क्त), भावे सप्तमी । उत् के योग में स्था के स् का लोप और आ को इ। शापान्तः=शापस्य अन्तः (ष० तत्पु०) । चतुरः=चतुर् का द्वि० बहु० मासान् का विशेषण है । मीलयित्वा=√मील्, भ्वा० प० (बन्द करना)+ णिच्+त्वा (क्त्वा) । परिणतशरच्चन्द्रिकासु+परिणताः शरदः चन्द्रिकाः यासु तासु (ब० व्री०) । परिणत=परि+√नम्+क्त । विरहगुणितम्=विरहे गुणितम् (सप्त० तत्पु०) अथ वा विरहेण गुणितम् (तृ० तत्पु०) । गुणितम्— गुण् चुरा०+त(क्त)। तं तम्, वीप्सायां द्विरुक्तिः । आत्माभिलाषम्=आत्मनोः (आवयोः) अभिलाषः तम् (ष० तत्पु०) । निर्वेक्ष्यावः=निर्+√विश्, तुदा० प० (प्रवेश करना) लृट्, उत्तम पु० द्वि० ।

विशेषः—शार्ङ्गपाणौ—शार्ङ्गपाणि विष्णु का नाम है, क्योंकि उनके हाथ में शार्ङ्ग+शृङ्ग का बना हुआ धनुष रहता है । ब० व्री० होने से 'पाणिशार्ङ्गः' समास होना चाहिए था क्योंकि इसका विग्रह 'पाणौ शार्ङ्गं यस्य सः' है किन्तु सप्तमी विभक्तिवाले पदों का प्रहरण अर्थवाले शब्दों के साथ समास होने से 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्योः' नियम से पाणि शब्द के पर-निपात होने पर 'शार्ङ्गपाणिः' बना, 'पाणिशार्ङ्गः' नहीं ।

भुजगशयनादुत्थिते—यहाँ भुजग से भुजगों का राजा शेषनाग अभिप्रेत है । इसे अनन्त भी कहते हैं । विष्णु भगवान् अपने भुजग-शयन पर आषाढ़ मास की हरिशायिनी एकादशी से लेकर कार्त्तिक में हरिप्रबोधिनी एकादशी तक सोते रहते हैं । भगवान् के यह शयन-दिन आषाढ़ ११ प्रविष्टा से प्रारम्भ होकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्त्तिक ११ तक होने से चार महीने होते हैं। उनकी यह निद्रा 'योग-निद्रा' कही जाती है जो कि मनुष्यों की सर्वसाधारण निद्रा से सर्वथा भिन्न होती है; देखिए वेणिसं० I ५—'जयति स भगवान् कृष्णः शेते यः शेषभोग-शय्यायाम्,' हितोपदेश—'अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि। नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः।' मनुस्मृति—'सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत् सुप्तं भवेदिदम्। विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम्।'

चतुरो मासान्—आषाढ़ ११ से कार्त्तिक ११ तक चार मास होते हैं, किन्तु मेघ जिस दिन सन्देश दे रहा था, वह आषाढ़ का प्रथम दिवस था (पूर्वमेघ २)। उसके अनुसार चार मास और १० दिन होते हैं, न कि चार ही मास। इस पर मल्लि० लिखते हैं—'चतुरो मासान्=मेघदर्शनप्रभृति हरिबोधनदिनान्तमित्यर्थः। दशदिवसाधिक्यं त्वत्र न विवक्षितमित्युक्तमेव' अर्थात् चार मास का अर्थ लगभग चार मास है, इसलिए कोई आपत्ति नहीं। अधिक के लिए देखिए पूर्वमेघ २ का विशेष भाग। इस पर कुछ लोग यह भी आलोचना करते हैं कि ऋतुएँ छः होती हैं। वर्षा ऋतु श्रावण और भाद्रपद में रहती है और शरद् आश्विन तथा कार्त्तिक में; किन्तु प्रस्तुत पद्य में कवि ने आषाढ़ से लेकर ११ कार्त्तिक तक वर्षा ही बताई और उसके बाद शाप समाप्ति पर शरच्चन्द्रिका वाली सुहावनी रातों में खूब आनन्द लूटने की बात कही है। इससे तो यही होता है कि कार्त्तिक ११ तक—जब तक भगवान् विष्णु शेष-शय्या में सोये रहते हैं—वर्षा ही रहती है और शरद् उसके बाद शुरु होती है जो कि सर्वथा अयुक्त है। कुछ विद्वान् इस का समाधान यह देते हैं कि वर्ष में ऋतुएँ तीन होती हैं, इसलिए एक-एक ऋतु के चार चार मास तक होने से वर्षा ऋतु के चार मास ठीक ही हैं, और इसी कारण से वर्षा ऋतु को आम तौर पर चौमासा कहते ही हैं। यह समाधान हमें अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि भारत में वास्तव में छः ही ऋतुयें होती हैं, तीन नहीं। तब प्रश्न उठता है—'क्या सचमुच शरद् कार्त्तिक ११ से आरम्भ होती है?' इसका उत्तर हम यह देंगे कि कालिदास का यह अभिप्राय ही नहीं कि शरद् ११ कार्त्तिक से प्रारम्भ होती है। उसने तो केवल शाप की अवधि के चार मास शेष बताए हैं। शरद् आश्विन और कार्त्तिक में ही रहती है—यह बात कवि को सर्वथा मान्य ही है, क्योंकि उसने प्रकृत श्लोक में 'परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु' कह ही रखा है। हमारे विचार से 'परिणत' शब्द वस्तुतः शरद् का विशेषण है अर्थात् परिणता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

या शरद्=परिपक्व–"ढलती अवस्था की जो शरद् ।" कार्त्तिक ११ के बाद शरद् का ढलना ठीक ही है, क्योंकि बीस दिन बाद कार्त्तिक की समाप्ति पर शरद् भी समाप्त हो जाती है । इस तरह कवि की उक्ति में कोई गड़बड़ी नहीं है ।

विरहगुणितम्—इसका पाठान्तर 'विरहगणितम्' भी मिलता है जिसका 'अर्थ' विरह में एक-दो-तीन आदि संख्या के क्रम से गिनी हुई अभिलाषाओं को' है । इसका एक और पाठभेद 'विरहजनितम्' है । सारो० में इसकी यह व्याख्या की गई है–विरहे चित्ताभिप्रायेण विषयीकृतम्' । विरह में अभिलाषाओं का होना और बढ़ना स्वाभाविक ही है । विरह के बाद प्राप्त हुए सुख में बड़ा स्वाद रहता है; देखिए विक्रमो० –III २१–'यदेवोपनतं दुःखात् सुखम् तद्रसवत्तरम् । निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ॥' और मृच्छ० I १०–'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।

निर्वेक्ष्यावः—पति-पत्नियों के आमोद-प्रमोद के लिए चाँदनी रात उचित समय माना गया है, देखिए रघु० VI. ३४—तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्' । शरत्काल की रातों में मेघ-रहित होने के कारण आकाश निर्मल रहता है और पूर्णरूप से छिटकती हुई चाँदनी उस पर चार चाँद लगा देती है। देखिए भास—'प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमदो विप्लवयति' । शरद् की चाँदनी रातों में योगी तक को भी आनन्द मिलता है, देखिए भर्तृ० वैरा० ४०—'वयं पुण्यारण्ये परिणत-शरच्चन्द्रकिरणैस्त्रियामां नेष्यामः' ॥५०॥

भूयश्चाह[१] त्वमपि[२] शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती [३]सस्वरं विप्रबुद्धा ।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च[४] त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव ! रमयन्कामपि[५] त्वं मयेति ॥५१॥

अन्वयः—(हे अबले !) भूयः च आह—पुरा शयने मे कण्ठलग्ना अपि त्वं निद्रां गत्वा किमपि सत्वरं रुदती (सती) विप्रबुद्धा। असकृत् पृच्छतः मे

१—०श्चापि–वि; ०श्चासि–व० । २—त्वमसि–का बा० पाठक । ३ सत्वरं–वि०, सु० वि०, सारो०, म० सिं०; सस्वनं । ४–पृच्छतोऽसि–का०बा० पाठक । ५—कामिनीं कामपि त्वम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(सम्बन्धे) 'हे कितव ! त्वं कामपि रमयन् मया स्वप्ने दृष्टः इति त्वया सान्तर्हासं कथितम् च" ।

पदार्थः—भूयः च आह=और उस (तुम्हारे पति) ने फिर कहा है। पुरा=पहले कभी। शयने=बिस्तर पर। मे कण्ठलग्नापि=मेरे गले-छाती-से लगी हुई भी। त्वम्=तू। निद्रां गत्वा=सोकर। किमपि=कुछ,किसी कारण-वश। सस्वरम्=ऊँचे स्वर के साथ। रुदती=रोती हुई। विप्रबुद्धा=जाग उठी। मे असकृत् पृच्छतः=मेरे बार-बार पूछने पर। कितव=धूर्त। मया=मैंने। स्वप्ने=सुपने में। त्वं कामपि=तुझे किसी (रमणी) से। रमयन्=रमण-भोग-करते हुए। दृष्टः=देखा है। इति=इस प्रकार। त्वया=तुमने। सान्तर्हासं कथितं च=मन ही मन हँसते-हँसते कहा था।

भाषानुवादः—(तेरे स्वामी ने) फिर कहा है—"हे प्रिये ! पहले कभी बिस्तर पर मेरे गले-छाती-से लगकर सोती हुई तुम किसी कारण-वश ऊँचे स्वर में रोती हुई जाग उठी थी और मेरे बार-बार पूछने पर तुमने मन ही मन हँसते-हँसते कहा था–धूर्त–महाराज ! मैंने सपने में तुमको किसी रमणी के साथ संभोग करते देखा है" ।

व्याकरणम्—भूयः=अव्यय। आह=ब्रू, अदा० उभ० (कहना), लट् (अनियमित रूप)। पुरा=अव्यय। 'पुराशब्दश्चिरातीते,'। कण्ठलग्ना=कण्ठे लग्ना (स० तत्पु०) सस्वरं=स्वरेण सहितम् (ब० व्री० क्रियावि०)। रुदती=√रुद्, अदा० प० (रोना)+अत् (शतृ०)+ई (स्त्रीप्रत्यय) विप्रबुद्धा=वि+प्र+√बुध्, भ्वा० प० (जानना)+त (क्त) कर्तरि+आ (स्त्रीप्रत्य०)। असकृत्+न सकृत् असकृत् (नञ् तत्पु०)। पृच्छतः =√प्रच्छ तुदा० प०+अत् (शतृ०) ष० एक०। रमयन्=√रम्, भ्वा० आ० (क्रीडा करना)+णिच्+अत् (शतृ०) ष० एक०। दृष्टः=√दृश् भ्वा० प०+त (क्त) कर्मणि। सान्तर्हासं=अन्तर्गतः हासः अन्तर्हासः अन्तर्हासेन सहितं यथा तथा (क्रियावि०)। कथितम्=√कथ्, चुरा० उभ० (कहना)+त (क्त)।

विशेषः—कण्ठलग्ना—अपनी भुजाओं से मुझे जकड़े हुए (जिससे कि तुम्हें जरा भी संदेह न हो कि मैं तुमसे खिसक कर कहीं अन्यत्र चला गया हूँ।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्वमपि—प्रो० ईश्वरचन्द्र इस पाठ को दोष-पूर्ण मानते हैं। उनके विचार से यहाँ 'अपि' में कोई बल ही प्रतीत नहीं होता, अतः वे इसके स्थान पर 'त्वमयि' वाला पाठ अच्छा बतलाते हैं और 'अयि' को यक्षपत्नी के प्रति सम्बोधन-अव्यय कहते हैं। इसके विपरीत प्रो० काले 'अयि' वाले पाठ पर यह आपत्ति उठाते हैं कि यक्ष प्रत्यक्ष-रूप में तो पत्नी को देख ही नहीं रहा है, इसलिए पत्नी के लिए 'अयि' सम्बोधन यहाँ सर्वथा अनुपपन्न है। वास्तव में प्रो० काले भ्रम में है, क्योंकि मेघ द्वारा सन्देश भेजने पर भी यक्ष का पत्नी के प्रति सम्बोधन हो सकता है। पीछे के तथा आगे के पद्यों में भी तो यक्ष ने 'सुभगे' 'गुणवति' 'असितनयने' आदि सम्बोधन-पद दे रखे हैं। मल्लि० 'अपि' वाला पाठ मान कर उसका अन्वय 'कण्ठलग्ना' के साथ करते हैं, किन्तु कवि के इस प्रकार शब्द-योजन में क्रमभंग दोष आता है। प्रो० काले 'त्वमसि' पाठ अच्छा समझते हैं, क्योंकि दूसरे पाद में 'अपि' आया हुआ ही है, इसलिए पहिले पाद में 'अपि' के आ जाने से पुनरुक्ति दोष आता है। वास्तव में यहाँ भी काले भ्रम में हैं, क्योंकि दूसरे पाद का 'किमपि' तो एक नित्य समस्त पद है। वहाँ 'किमपि' का अर्थ—'कुछ या कारण विशेष से' होने से पहिले पाद के 'अपि' में पुनरुक्ति कैसे हुई—यह बात हमारी समझ में नहीं आती, अतः हमें प्रस्तुत पाठ 'त्वमपि' ही युक्त प्रतीत होता है—यद्यपि क्रमभंग इसमें आता है।

किमपि—शारदारञ्जन राय 'किम्' को द्वितीयान्त मानते हैं और अपि जोड़कर इससे अनिर्धारणात्मक अर्थ में रुदती का कर्म कहते हैं। वास्तव में रुद् धातु अकर्मक है, इसलिए उसका कर्म हो ही नहीं सकता। 'किमपि' यहाँ अव्यय ही है; देखिए उत्तरमेघ ५२—'स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनः'।

सान्तर्हासं—मन ही मन हँसती हुई, क्योंकि जिसे उसने स्वप्न में अन्य रमणी के साथ रमण करते देखा, उसे तो वह अपने ही गले लगाए हुए है। वह कुछ लज्जित-सी हुई और अपनी गलती पर उसे मन ही मन हँसी भी आ रही थी। अन्तर्हास की तरह अन्तर्वाष्प के लिए देखिए पूर्वमेघ ३—'अन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ'।

पृच्छतश्च—इसका पाठान्तर 'पृच्छतोऽसि' है, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो 'असि' को 'दृष्टः' से जोड़ना पड़ेगा ; दूसरे, फिर पद्य के दो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भागों में पड़े हुए दो वाक्यों का कोई संयोजक नहीं रहेगा। इस कारण मल्लि० वाला 'पृच्छतश्च' ही पाठ ठीक है।

इस पद्य में अपनी प्रियतमा के प्रति संदेश भेजते हुए यक्ष ने अपने एक ऐसे रहस्य का उद्घाटन किया है जिससे उसकी पत्नी को पक्का विश्वास हो जाय कि मेघ को सचमुच उसके स्वामी ने ही भेजा है और उसका अन्तरंग मित्र है, अन्यथा पति-पत्नी के मध्य हुई इतनी गुप्त बातों का मेघ को कैसे पता चल सकता है। जिस तरह राम ने हनुमान् को दूत बनाकर अभिज्ञान के रूप में सीता को अपनी सच्चाई का प्रमाण देने के लिए अंगूठी दी थी, उसी तरह यक्ष भी अभिज्ञान के रूप में मेघ को यह रहस्य दे रहा है ॥५१॥

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने[1] ! मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहानाहुः किमपि[2] विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे[3] वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥५२॥

अन्वयः—हे असितनयने, एतस्मात् अभिज्ञान-दानात् मां कुशलिनं विदित्वा, कौलीनात् मयि अविश्वासिनी मा भूः। (जनाः) विरहे स्नेहान् किमपि ध्वंसिनः आहुः, ते (स्नेहाः) तु अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचितरसाः (सन्तः) प्रेमराशी-भवन्ति।

पदार्थः—असितनयने=हे काले नयनों वाली ! एतस्मात् अभिज्ञानदानात् =इस प्रकार का अभिज्ञान—पहिचान का चिह्न—देने से। मां कुशलिनं विदित्वा=मुझे सकुशल जान कर। कौलीनात्=लोक-निन्दा के कारण। मयि=मुझमें। अविश्वासिनी=विश्वास न करने वाली। मा भूः=मत होना। विरहे=विरह में। स्नेहान्=प्रीति को। किमपि=किसी कारण से। ध्वंसिनः=नाश होने वाली। आहुः=कहते हैं। ते तु=वे स्नेह तो। अभोगात् =न भोगे जाने से। इष्टे वस्तुनि=अभिलषित पदार्थ के विषय में। उप-

---

१—चकित०। २—विरहे ह्यासिनस्तेऽप्यभोगा० का० बा० पाठक। विरहध्वंसिनस्ते ह्यभोग्याः—ब०; विरहव्यापदस्ते ह्यभोग्याः—वि०; विरहे ध्वंसिनस्ते ह्यभोगात्—सु० वि०, सारो०; विरहध्वंसिनस्ते ह्यभोगात्—म० सि०, स० ती०। ३—दृष्टे—वि०, वा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चितरसाः (सन्तः)=खूब रस बढ़ाए हुए। प्रेमराशीभवन्ति=प्रेम-पुंजरूप हो जाते हैं।

भाषानुवादः—हे काले-काले नयनोंवाली! यह अभिज्ञान—पहिचान का चिह्न—देने से मुझे सकुशल जान कर तुम लोक-निन्दा के कारण (कहीं) मुझ में अपना विश्वास न त्याग बैठना। कहते हैं कि विरह में प्रीति कुछ समाप्त-सी हो जाया करती है, किन्तु (वास्तव में) वह तो भोग न होने के कारण अभीष्ट के विषय में रस बढ़ाए हुए प्रेम-पुञ्ज बन जाती है।

व्याकरणम्—अभिज्ञानदानात्=अभिज्ञायतेऽनेन इति अभिज्ञानम् (चिह्न) अभि+√ज्ञा क्र्या० उ+ल्युट् (करणे) तस्य दानात् 'ल्यब्लोपे कर्मणि उपसंख्यानम्' इससे ल्यप् लोप होने पर कर्म में पञ्चमी (अभिज्ञानदानं प्राप्य इत्यर्थः)। कुशलिनम्=कुशलम् अस्यास्तीति कुशली (कुशल+इनि) तम्। विदित्वा=√विद्, अदा० प० (जानना)=त्वा (क्त्वा)। असितनयने=न सिते (श्वेते) असिते (नञ् तत्पु०) नयने यस्याः सा (ब० व्री०) तत्सम्बुदौ। कौलीनात्=कुले भवः इति (कुल+ख)—कुलीनः तस्य भावः इति (कुलीन +अण् भावे)—कौलीनम्, तस्मात् हेतौ पञ्चमी। अविश्वासिनी=न विश्वासिनी (नञ् तत्पु०)। विश्वासिनी=विश्वासोऽस्त्यस्याः विश्वास+इन् (मतुवर्थ) √ङीप् (स्त्रियाम्) अथवा वि+√श्वस्; अदा० प० (सांस लेना)+इति (णिनि कर्त्रर्थे)+ई (स्त्री प्रत्य०)। मा=निषेध-सूचक अव्यय। भूः+√भू, भ्वा० प० (होना) लुङ् मध्य० पु० एक; 'मा' के योग में 'न माङ्योगे' से अडागम (अ) का निषेध। किमपि=किम् अपि समस्त अव्यय। विरहे=मल्लि० यहाँ सति सप्तमी कहते हैं, परन्तु शारदारंजन राय इसमें कालाधिकरणे सप्तमी मानते हैं। ध्वंसिनः=ध्वसितुं शीलं येषां ते√ध्वंस्, भ्वा० आ० (नाश होना)+इति (णिनि)। आहुः=√ब्रू, अदा० उभ० (कहना) लट् प्र० पु० बहु०। अभोगात्=न भोगः अभोगः (नञ् तत्पु०) तस्मात्। इष्टे=√इष्, तुदा० प० (चाहना)+त (क्त); वस्तुनि का विशे०। उपचितरसाः=उपचितः (उप+√चि, तना० उभ०—इकट्ठा करना+त) रसः येषां ते (ब० व्री०)। प्रेमराशीभवन्ति=प्रेम्णां राशयः (ष० तत्पु०) अप्रेमराशयः प्रेमराशयः भवन्ति प्रेमराशीभवन्ति प्रेमराशि+च्वि+√भू, लट् प्र० पु० बहु०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेषः—अभिज्ञानदानात्—अभिज्ञान का अर्थ चिह्न है। कालिदास के तीनों नाटकों तथा मेघदूत में 'अभिज्ञान' का प्रयोग हुआ। शकुन्तला नाटक में जिसका पूरा नाम 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' है, दुष्यन्त की स्वनामाङ्कित मुद्रिका (अंगूठी), 'विक्रमोर्वशीयम्' में संगम-मणि तथा 'मालविकाग्निमित्रम् में' सर्प से अङ्कित मुद्रिका अभिज्ञान है। मेघदूत में वर्णित अभिज्ञान नाटकों के अभिज्ञानों से भिन्न है। यहां यक्ष और उसकी पत्नी के दाम्पत्य-जीवन की एक विशेष घटना ही अभिज्ञान है, जिसकी याद दिला कर यक्ष अपनी प्रियतमा को विश्वास दिलाता है कि उसका पति जीवित और कुशल-पूर्वक है, साथ ही यह भी सिद्ध करता है कि यह मेघ, जो सन्देश ला रहा है, वह उसका परम अन्तरंग मित्र है, कोई मायावी नहीं। वह विशेष घटना है—'दृष्टः स्वप्ने कितव ! रमयन् कामपि त्वं मयेति'। सम्भवतः कालिदास ने अभिज्ञान देने की कला वाल्मीकि से सीखी हो, क्योंकि रामायण में हनुमान ने अभिज्ञान के रूप में राम-नामाङ्कित मुद्रिका अशोक-वाटिका में वृक्ष के ऊपर से सीता के आगे फेंकी थी।

कौलीनात्—कौलीन लोकापवाद को कहते हैं। मल्लि० ने 'कुले भवात् कौलीनात्' लिखकर जो व्युत्पत्ति दिखाई है, वह व्याकरण के अनुसार ठीक नहीं बैठती, क्योंकि व्याकरण से 'कुले भवः' इस अर्थ में 'कुलीनः' ही होता है 'कौलीनम्' नहीं। कारण कि 'कुलात् खः' इस नियम से यहाँ वृद्धि का निषेध हो जाता है। स० ती० 'कौ=पृथिव्यां लीनं कुलीनं तस्य भावः कौलीनम्' इस प्रकार व्युत्पत्ति दिखाकर आगे अर्थ करता है—'तस्य=यक्षस्य परनारी-सङ्गमः सम्भाव्यः इति लोकापवादात्'। सारो० की भी यही सम्मति है—'तत्र स्थितस्य तस्य स्रक्चन्दनवनितादीनि सम्पत्स्यन्ते, तत् कथं त्वद्विरहेण ग्लानि-मुपयास्यति ?'। मल्लि० कौलीन से अर्थ लेते हैं—'एतावता कालेन परासुः, नो चेदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थः' अर्थात् 'गये हुए इतना समय हो गया है, मर गया होगा, नहीं तो वापस आ जाता'। क्योंकि यक्ष पत्नी एक आदर्श पतिव्रता नारी है, अतः वह अपने पति के सम्बन्ध में अन्यासक्त हो जाने का तो स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकती। इस कारण यक्ष अभिज्ञान देकर यही बताना चाहता है कि लोगों में फैली हुई उसकी मृत्यु का समाचार सर्वथा मिथ्या है। वह जीवित है। वास्तव में कौलीन से मृत्यु-वार्ता न लेकर 'अपनी पत्नी को भूल गया है और किसी अन्य स्त्री से उसने मन लगा लिया है'—यह लोगों में फैली हुई बात लेना ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है, क्योंकि 'अविश्वासिनी'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'विरहे स्नेहान् ध्वंसिन आहुः' इत्यादि शब्द इसी ओर संकेत करते हैं। मल्लि० का अर्थ दूर खींचा हुआ है। जनसामान्य में—विशेषतः स्त्रीजन में यह बात स्वभावतः देखने में आती है कि जब किसी स्त्री का पति परदेश चला जाता है, तब वह प्रायः यही कहती पायी जाती है कि 'वह तुझे भूल गया है और इतने अधिक काल तक दूर रहने के कारण उसने किसी दूसरी से लगाव कर लिया होगा'। देखिए भर्तृहरि—'दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति···स्नेहः प्रवासाश्रयात्'।

अविश्वासिनी मा भूः—इस पर सारो० यह है—"तव वियोगे विषयान्तरमपि मया न सेव्यते किमुत वनितान्तरम्, अतोऽप्यलीकलोकापवादादेवं मय्याशङ्कां मा कार्षीः" अर्थात् तुम्हारे विरह में मैं दूसरी चीज तक को भी नहीं छूता, दूसरी स्त्री का तो कहना ही क्या। लोग झूठमूठ ही बातें उड़ा दिया करते हैं, जिनपर विश्वास नहीं होना चाहिए, अतः मुझ पर किसी प्रकार की शंका न कर बैठना।

किमपि—स० ती० कहता है–'तत् किञ्चिदविचारितरमणीयम्। सारो० में इसे 'आहुः' का क्रिया-विशेषण बनाकर व्याख्या की गई है—'अविचारितरमणीयं यथा भवति तथा' अर्थात् बिना सोचे समझे लोग इसे ठीक कह बैठते हैं। वल्लभ ने 'कुतोऽपि हेतोः' इस प्रकार व्याख्या की है। मल्लि०–'किंचिन्निमित्तं न विद्यते इति शेषः' और गोदबोले 'किमपि' को 'विरहे' के साथ रख कर यह अर्थ करते हैं—'किसी न किसी कारण से वियोग हो जाने पर'।

ध्वंसिनः—स्वभावतः नाश होने वाला (स्नेह)। देखिए रघु० II ५७—'एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।'

उपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति—वियोग में अभिलाषा-रूपी रस के बढ़ जाने पर स्नेह प्रेम-रूप में परिणत हो जाता है। स्नेह और प्रेम में केवल अवस्था का ही भेद है। सबसे पहले 'प्रेक्षा' होती है। प्रेक्षा किसी सुन्दर या रमणीय वस्तु को देखने की अभिलाषा को कहते हैं। तब स्नेह होता है। स्नेह का अर्थ है उस वस्तु पर लगाव दिखलाना। स्नेह जब खूब प्रस्फुटित—विकसित—हो जाता है और उस वस्तु का वियोग—विच्छेद—नहीं सहा जाता, तब उसे प्रेम कहते हैं। इसके लिए देखिए रसाकर में दी हुई संयोग की सात अवस्थायें—'प्रेक्षा दिदृक्षा रम्येषु, तच्चिन्ता त्वभिलाषकः। रागस्तत्सङ्गबुद्धिः स्यात्, स्नेहस्तत्प्रवणक्रिया॥ तद्वियोगासहं प्रेम रतिस्तत्सहवर्तनम्। शृङ्गारस्तत्समं क्रीडा, संयोगः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सप्तधा क्रमात् ।।' वियोग के कारण बढ़े हुए प्रेम-वेग के लिए देखिए विक्रमो० ३ ८—'नद्या इव प्रवाहो विषयशिलासंकटस्खलितवेगः । विघ्नितसमागम-सुखो मनसिशयः शतगुणीभवति ।'

अभोगात्—न भोगः अभोगः तस्मात् (नञ् तत्पु०)। नञ् का तत्पु० यहाँ ग़लत है। नञ् दो प्रकार का हुआ करता है—(१) प्रसज्यप्रतिषेध और (२) पर्युदास। प्रसज्यप्रतिषेध में प्रतिषेध पर बल रहता है और नञ् समस्त न होकर क्रिया के साथ रखा जाता है जैसे—'न करोति' आदि। इसके विपरीत पर्युदास में प्रतिषेध पर बल नहीं रहता, इसलिए नञ् क्रिया के साथ न रहकर प्राति-पदिक के साथ रहता है जैसे—अविद्वान् असुखी आदि। प्रस्तुत पद्य में निषेध पर बल होने से नञ् प्रसज्यप्रतिषेध का है। इसलिए इसका भोग के साथ समास नहीं होना चाहिए था। समास कर देने से नञ् की विधेयता अर्थात् बल नष्ट हो जाता है, अतः साहित्य के नियमानुसार यहाँ अविमृष्टविधेयांश दोष है। कुछ लोग प्रसज्यप्रतिषेध में भी समास होना मान लेते हैं और उदाहरण के लिए पाणिनि का सूत्र (अष्टा० III ३, १९) देते हैं, जिसपर वामन ने लिखा है 'प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि समासोऽस्ति'। देखिए 'अशिति' (शित् परे न रहते) 'अनेकाल्' आदि। यहाँ प्रतिषेध के प्राधान्य में भी समास है।

प्रस्तुत पद्य में कालिदास ने प्रेम के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट किया है कि वास्तविक प्रेम किसे कहते हैं। शारीरिक रूप-सौन्दर्य पर आश्रित प्रेम प्रेम नहीं, वह तो एक भौतिक वस्तु है–वासना है। वह तो सुन्दर वस्तु के सामने आ पड़ने से भड़क उठती है और सामने चले जाने पर शान्त हो जाती है। इसी वासना को प्रेम समझकर लोग 'स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनः' (out of sight out of mind) कहा करते हैं, किन्तु वे गलती करते हैं, क्योंकि वास्तविक प्रेम तो एक आध्यात्मिक वस्तु है जिसकी ज्योति जब हृदय में प्रकाशित होती है तो उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, क्षीण नहीं होती। वियोग की आग प्रेमसुवर्ण को फूंक नहीं देती, प्रत्युत उसे कुन्दन बनाती है। कालिदास ने अपनी सभी कृतियों में इसी शुद्ध प्रेम की व्याख्या की है। हाँ, इसका विकास दिखाने के सम्बन्ध में यदि वासना को कहीं इसकी पृष्ठभूमि बनाकर दिखाया हो तो वह बात दूसरी है। इस विषय मे अधिक जानने के लिए देखिए इस ग्रन्थ की भूमिका में प्रेम स्तम्भ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है, क्योंकि यहाँ विशेष बात का सामान्य बात से समर्थन किया गया है ॥५२॥'

[1]आश्वास्यैवं [2]प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते[3]
[4]शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।
[5]साभिज्ञानप्रहितकुशलैः [6]स्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं [7]धारयेथाः ॥५३॥

अन्वयः—प्रथम-विरहोदग्रशोकां ते सखीम् एवम् आश्वास्य त्रिनयन-वृषोत्खात-कूटात् शैलाद् आशु निवृत्तः (सन्) साभिज्ञान-प्रहितकुशलैः तद्वचोभिः प्रातः कुन्द-प्रसवशिथिलं मम अपि जीवितं धारयेथाः।

पदार्थः—प्रथम-विरहोदग्र-शोकाम्=पहले-पहल वियोग के कारण अत्यधिक दुःखित। ते सखीम्=अपनी सखी (मेरी प्रियतमा) को। एवम् आश्वास्य= इस प्रकार धीरज बंधाकर। त्रिनयन-वृषोत्खातकूटात्=शिवजी के बैल (नन्दी) द्वारा खोदे गए शिखरों वाले। शैलात्=(कैलास) पर्वत से। आशु निवृत्तः= शीघ्र ही वापिस हुआ। साभिज्ञान-प्रहित-कुशलैः=अभिज्ञान (चिह्न, निशानी) के साथ भेजे हुए कुशल-समाचारों वाले। तद्वचोभिः=उस (प्रियतमा) के वचनों से। प्रातः कुन्द-प्रसव-शिथिलम्=प्रातः काल में खिले कुन्द (चमेली) के फूलों के समान ढीले-ढाले (निर्जीव-से) पड़े हुए। मम अपि जीवितं धारयेथाः= मेरे जीवन को भी सहारा देना।

भाषानुवादः—पहले-पहल वियोग के कारण अत्यधिक दुःखित हुई अपनी सखी (मेरी प्रियतमा) को इस प्रकार धैर्य बंधा कर शिवजी के बैल (नन्दी) द्वारा खोदे गए शिखरों वाले कैलास-पर्वत से शीघ्र ही लौटकर, तू अभिज्ञान (निशानी) सहित उसके कुशल-समाचार-भरे वचनों द्वारा, प्रभात में खिले चमेली के फूल के समान ढीले-ढाले पड़े हुए जीवन को भी सहारा देना।

१—आश्वास्यैनां—का० बा० पाठक। २—०विरहे शोकदष्टां-का० बा० पाठक; : ०विरहादुग्रशोकां ब०, वि०: ०विरहेणार्द्रशोकां। ३—मे; स्वां। ४—तस्मादद्रेः—का० बा० पाठक; अस्मादाशु। ५—साभिज्ञानं प्रहितवचनैस्तत्र युक्तैः—का० बा० पाठक। ६—त्वद्वचोभिः। ७—धारयेदम्—का० बा० पाठक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्याकरणम्—प्रथमविरहोदग्रशोकाम्=प्रथमः विरहः (कर्मधा०) तेन, उदग्रः शोकः यस्याः सा ताम् (ब० व्री०)। उदग्रः=उद्गतम् अग्रं यस्य तथाभूतः (ब० व्री०)। आश्वास्य=आ+√श्वस् अदा० प० (साँस लेना)+णिच्+य (ल्यप्)। त्रिनयनवृषोत्खातकूटात्='त्रिनयनः' त्रीणि नयनानि यस्य स त्रिनयनः (ब० व्री०) तस्य यो वृषः तेन उत्खाताः कूटा यस्य तथाभूतात् (ब० व्री०)। यहाँ 'त्रिनयन' में क्षुभ्नादित्वात् से णत्व प्रतिषेध हुआ। आशु=अव्यय। निवृत्तः=नि+√वृत्, भ्वा० आ० (होना)+त (कर्तरि)। साभिज्ञानप्रहितकुशलैः=अभिज्ञानेन सह साभिज्ञानं=अभिज्ञानेन सहितं यथा स्यात् तथा (ब० व्री० क्रिया वि०) प्रहितं [प्र+√हि, भ्वा० प० (भेजना)+त] कुशलं येषु तैः (ब० व्री०) तद्वचोभिः=तस्याः वचोभिः (ष० तत्पु०)। प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलम्=कुन्दस्य प्रसवः (ष० तत्पु०) प्रातर्भवः (मध्यमपदलोपी कर्म०) प्रसवः- प्रसूयते इति प्रसवः प्र+√सू० दिवा० आ०+अच्। शिथिलम्, (उपमानकर्मधा०)। धारयेथाः=√धृ, चु० उभ० (धारण करना) विधिलिङ्, म० पु० एक० प्रार्थनायां लिङ्।

विशेषः—प्रथमविरहोदग्रशोकाम्—पहले-पहल का वियोग वास्तव में बड़ा पीड़ाप्रद होता है। देखिए उत्तरमेघ० ३४–'इत्थम्भूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि' और देखिए उत्तरमेघ० २८–'शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।' पार्श्वा० 'प्रथमविरहे शोकदष्टाम्' यह पाठ देता है। इसका अर्थ 'पहले वियोग में शोक से काटी हुई' है। आश्वास्य–देखिए उत्तरमेघ० ३८–'प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।'

त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् शैलात्—शिवजी का नन्दी बैल कैलास की चोटियों को अपने शृङ्गों से उखाड़ता है, देखिए पूर्वमेघ० ५४–'शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्।'

साभिज्ञानप्रहितकुशलैः—यक्ष अपनी प्रियतमा से यह आशा रखता है कि जिस प्रकार मैंने सन्देश के साथ-साथ अभिज्ञान-पहिचान की निशानी-भेजी है, उसी प्रकार वह भी मेघ द्वारा अपना कुशल-समाचार भेजती हुई कुछ अभिज्ञान देगी। 'अभिज्ञान' के लिए उत्तरमेघ० ५२ का विशेष भाग देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलम्—कुन्द (चमेली) का फूल साँझ को खिलता है और प्रातः ढीला-सा हुआ एकदम हवा के छोटे-से झोंके-से गिर पड़ता है। मल्लि० ने शिथिल शब्द का 'दुर्बल' अर्थ लिया है। प्रभात समय कुन्द पुष्प के वर्णन के लिए देखिए अभि० शा० V १९–'भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं नच खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्।' पूर्वमेघ० ९ में स्त्रियों के हृदय के विषय में कहा है—'आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यः पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥'

धारयेथाः—इसका पाठान्तर 'धारयेदम्' है। मूल में दिए गए पाठ में 'णिचश्च' से आत्मने० हुआ, क्योंकि फल कर्तृगामी अर्थात् मेघगत है, देखिए उत्तरमेघ ४२–'आत्मनश्चोपकर्तुम्'। अतः मूल में दिया हुआ आत्मनेपद वाला पाठ ही अच्छा है ॥५३॥

कच्चित्सौम्य ! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
[1]प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां[2] कल्पयामि[3]।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं [4]याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥५४॥

अन्वयः—(हे) **सौम्य ! इदं मे बन्धुकृत्यं त्वया व्यवसितं कच्चित् ? प्रत्यादेशात् खलु भवतः धीरतां न कल्पयामि। याचितः (सन् त्वम्) निःशब्दः अपि चातकेभ्यः जलं प्रदिशसि। हि सतां प्रणयिषु ईप्सितार्थक्रिया एव प्रत्युक्तम् (भवति)।**

पदार्थः—हे सौम्य=हे भद्र ! मे इदं बन्धुकृत्यम्=मेरे इस मित्रता के कार्य को। त्वया व्यवसितं कच्चित् ?=तुमने (करना) ठान लिया है क्या ? प्रत्यादेशात् खलु=(मेरे कार्य को) ठुकरा देने के कारण ही। भवतः धीरतां न कल्पयामि=तुम्हारी गम्भीरता-मौन-की कल्पना मैं नहीं करता।

१—प्रत्यादेष्टुं—व०, स० ती; प्रत्याख्यातुं—सु० वि०, सारो०, म० सि० प्रत्याख्यानात्; प्रत्यादेशं; प्रत्याख्यानं। २—ऽधीरतां-म० सि०, सु० व०। ३—तर्कयामि-व०, वि०, स० ती०, सारो०। ४—याचितं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

याचितः (सन्) = प्रार्थित किये गए अर्थात् प्रार्थना करने पर। निःशब्दोऽपि = शब्द किए बिना ही। चातकेभ्यः जलं प्रदिशसि = तुम चातकों को जल देते हो। हि = क्योंकि। सतां = सज्जन पुरुषों का। प्रणयिषु = याचकों के प्रति। ईप्सितार्थक्रिया एव = अभिलषित वस्तु का सम्पादन ही। प्रत्युक्तम् (भवति) = उत्तर (हुआ करता) है।

भाषानुवादः—हे भद्र! तुमने अपने मित्र का कार्य (करना) ठान लिया है क्या? (उसके) ठुकरा देने के कारण ही तुम धीर—चुप—हुए खड़े हो ऐसी कल्पना मैं नहीं करता। तुम प्रार्थना करने पर शब्द किए बिना ही चातकों को जल दे दिया करते हो। कारण कि सज्जन लोगों का याचकों के प्रति अभिलषित वस्तु को करके दिखाना ही उत्तर हुआ करता है (शब्द से नहीं)।

व्याकरणम्—मे बन्धुकृत्यम् = बन्धोः कृत्यम् (ष० तत्पु०) यहाँ समास व्याकरण की दृष्टि से गलत है, क्योंकि 'बन्धु' शब्द का 'मे' के साथ सम्बन्ध है, मे = मेरे अर्थात् अपने, बन्धोः = मित्र के, कृत्यम् = कार्य को। जो शब्द किसी अन्य समास-रहित पद से सम्बद्ध हो, उसका दूसरे शब्द के साथ समास नहीं हो सकता। ऐसे नियम-विरुद्ध हुए समास को असमर्थ समास कहते हैं, किन्तु मल्लि० असमर्थ-समास को 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' यह उदाहरण देकर प्रकृत पद्य में व्याकरण-सम्मत ही मान लेते हैं। व्यवसितम् = वि = अव = √सो दि० प० (नाश करना) + त (क्त-कर्मणि)। कच्चित् = 'कच्चित् कामप्रवेदने' इस अमरकोश के अनुसार प्रश्नार्थक अव्यय है और आशा को प्रकट करता है। प्रत्यादेशात् = प्रति + आ + दिश् तुदा० प० (देना, दिखाना) + घञ् (भावे) तौ पञ्चमी अथवा ल्यब्लोपे कर्मणि पञ्चमी—प्रत्यादेशं प्राप्य। याचितः = याच् भ्वा० उभ० + क्त। निःशब्दः = निर्गतः शब्दः यस्मात् तथाभूतः (ब०व्री०) प्रणयिषु = प्रणयः एषामस्तीति प्रणय + इन् (मतुबर्थ) ईप्सितार्थक्रिया = ईप्सितः अर्थः (कर्मधा०) तस्य क्रिया (ष० तत्पु०) ईप्सितः = आप्तुमिष्टः √आप् उ० + सन् + क्त (कर्मणि) सन्नन्त-क्रिया-रूप। प्रत्युक्तम् = प्रति + √वच् + क्त (भावे)।

विशेषः—**बन्धुकृत्यम्**—रघु० II ३८-'सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः' के अनुसार कालिदास ने परस्पर वार्तालाप द्वारा ही मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाना माना है, इसलिए मेघ और यक्ष के बीच भी मित्रता का सम्बन्ध परस्पर वार्तालाप द्वारा सिद्ध ही है। मित्रता के नाते मेघ यक्ष का बन्धु और भ्राता भी बन गया है, देखिए उत्तरमेघ ३४–'वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभावः करोति प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्' तथा पूर्वमेघ ८–'ताञ्चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीम्, अव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।'

कच्चित्—कालिदास ने इस अव्यय का अपनी कृतियों में प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है, देखिए उत्तरमेघ २५–'कच्चित् भर्त्तुः स्मरसि रसिके तस्य त्वं हि प्रियेति।' रघुवंश V ८–'शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्' तथा V ७–'कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः' आदि।

प्रत्यादेशात्—इस शब्द ने कई टीकाकारों को बड़े चक्कर में डाल रखा है। इसी कारण इसके कई पाठान्तर तथा व्याख्यायें भी मिलती हैं। साधारणतः 'प्रत्याख्यानं निरसनं प्रत्यादेशो निराकृतिः' इस अमरकोश के बल पर प्रत्यादेश शब्द का प्रत्याख्यान ही अर्थ होता है। हेतु में पञ्चमी होने में इसका अर्थ यही है–'तुम मेरी प्रार्थना का प्रत्याख्यान कर रहे हो–मेरा कार्य करने का निषेध कर रहे हो, इसी कारण तुम धीर–चुपचाप–हो, ऐसा मैं अनुमान नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि प्रत्येक कार्य करने को मुंह से हाँ बोलना अनिवार्य नहीं। बड़े लोग प्रार्थना सुनकर मुंह से हाँ-ना कुछ भी न कहते हुए क्रिया-रूप में काम करके दिखा देते हैं।' प्रो० ईश्वरचन्द्र 'प्रत्यादेशान्न' के स्थान में 'प्रत्यादेशन्न' पाठ देते हैं। 'प्रत्यादेशं न' को सन्धि करके 'प्रत्यादेशन्न' बन जाता है। इस तरह 'प्रत्यादेशम्' द्वितीया है और शब्दों का अन्वय ऐसा होगा–'भवतो धीरतां प्रत्यादेशं न कल्पयामि' और अर्थ–'तुम्हारी गम्भीरता–चुप्पी–को मैं तुम्हारा निषेध नहीं समझता'। 'प्रत्यादेशात्' पञ्चमी वाले पाठ की अपेक्षा 'प्रत्यादेशन्न' द्वितीयान्त पाठ सुबोध और स्पष्ट है। सम्भव है मूललिपि में 'प्रत्यादेशन्न' ही रहा हो और नकल करने वालों ने गलती से उसे 'प्रत्यादेशान्न' लिख दिया हो। कहीं-कहीं तुमुन्नन्त 'प्रत्यादेष्टुं' पाठ मिलता है। विल्स०, वल्ल० आदि इसे ही लेते हैं। अर्थ में विशेष भेद नहीं है। (मुझे ना करने के लिए तुमने चुप्पी साध रखी है)। मल्लि० ('उक्तिः आभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः' इस शब्दार्णव के आधार पर आदेश का अर्थ वचन करते हैं और प्रति जोड़ देने से प्रत्यादेश का प्रतिवचन अर्थात् उत्तर अर्थ लेते हैं। हेतौ अथवा ल्यप्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लोपे कर्मणि पञ्चमी—मानकर वाक्यार्थ यह हुआ—'तुमसे उत्तर प्राप्त करके ही मैं (अपने कार्य के प्रति) तुम्हारी गम्भीरता का अनुमान नहीं लगाता' अर्थात् मेरी प्रार्थना सुन कर चुप हुए तुम मेरे कार्य के लिए कितने गम्भीर हो—इस बात का अन्दाजा लगाने के लिए मुझे तुमसे 'हाँ' के रूप में उत्तर लेने की कोई आवश्यकता नहीं।' इसमें सन्देह नहीं कि इस तरह भी वाक्यार्थ संगत तो हो जाता है, किन्तु प्रत्यादेश शब्द का 'उत्तर' अर्थ साधारण प्रयोग में नहीं आता है। स्वयं कालिदास ने विक्रमो० में 'प्रत्यादेशो रूपगर्विताया: श्रिय:' कहकर प्रत्यादेश को प्रत्याख्यान का ही पर्याय माना है।

सतामीप्सितार्थक्रियैव प्रत्युक्तम्—महापुरुष गम्भीर स्वभाव के होते हैं, थोथे स्वभाव के नहीं। वे मुंह से तो नहीं बोलते हैं, किन्तु उनकी क्रियात्मकता स्वयं उनके स्थान में बोल देती है। देखिए विक्रमो० VI १५—'स्वार्थात् सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव'। इसी तरह—ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्', 'गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षासु नि:स्वनो मेघ:। नीचो वदति न कुरुते, न वदति सुजन: करोत्येव।'

इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहां सामान्य से विशेष अर्थ का समर्थन किया गया है।

विल्सन महोदय ने इस पद्य के सम्बन्ध में अपना यह विचार प्रकट किया है—"कवि ने अपने काव्य को ऐसी चातुरी से निभाया कि हम उसका उल्लेख किए बिना नहीं रह सकते। वह सुन्दर प्राकृतिक रस बीच में लाकर यक्ष को अपनी इस मूर्खता के लिए क्षमा-पात्र बना देता है कि वह मेघ को इस तरह सम्बोधित कर रहा है जैसे कि वह कोई ज्ञानवान् प्राणी हो। मेघ ने अब अपना कार्य ले लिया है और यक्ष उसके उत्तर में, चाहे वह नकारात्मक हो या अङ्गीकारात्मक, कुछ सुनने की आशा रखे खड़ा है। इस अवसर पर यदि मेघ को (कवि द्वारा) वाक्-शक्ति दे दी जाती, तो विश्व से असम्भव बात की सत्ता ही मिट गई होती। प्रस्तुत पद्य में, हम देखते हैं कि कालिदास ने कैसी चतुराई के साथ अपने को इस अस्वाभाविकता से साफ-साफ बचाया है" ॥५४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतत्कृत्वा [1]प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।
इष्टान्देशाञ्जलद ! [2]विचर प्रावृषा संभृतश्री-
र्मा भूदेवं [3]क्षणमपि [4]च ते विद्युता विप्रयोग. ॥५५॥

अन्वयः—(हे) जलद ! सौहार्दात् वा (अहम्) विधुरः इति वा, मयि अनुक्रोश-बुद्ध्या वा, अनुचितप्रार्थना-वर्त्तिनः मे प्रियम् एतत् (कार्यम्) कृत्वा प्रावृषा संभृतश्रीः (सन्) इष्टान् देशान् विचर । क्षणम् अपि च ते विद्युता एवं विप्रयोगः मा भूत् ।

पदार्थः—जलद ! = हे मेघ ! सौहार्दात् = मित्रता के कारण । विधुरः = (मैं प्रिया से) वियुक्त हूँ । इति वा = अथवा इस कारण से । मयि = मुझपर । अनुक्रोश-बुद्ध्या वा = अथवा दया की दृष्टि से । अनुचितप्रार्थनावर्त्तिनः = अनुचित (अयोग्य) प्रार्थना करने वाले । मे प्रियं = मुझे प्रिय लगने वाला । एतत् (कार्यं) कृत्वा = यह (कार्य) करके । प्रावृषा = वर्षा से । सम्भृतश्रीः = परिवर्धित शोभा वाला । इष्टान् देशान् विचर = मन चाहे देशों में घूमो । ते क्षणमपि च = और तेरा पल भर भी । विद्युता = (प्यारी पत्नी) बिजली से । एवं विप्रयोगः = ऐसा वियोग । मा भूत् = मत हो ।

भाषानुवाद—हे मेघ ! मित्रता के कारण, अथवा मैं (प्रिया से) वियुक्त हूँ, इस कारण अथवा मुझ पर दया के विचार से, अनुचित (अयोग्य) प्रार्थना करने वाले मेरे इस प्रिय (कार्य) को करके, वर्षाकाल से परिवर्धित शोभा वाले तुम मनचाहे देशों में घूमो और तुम्हारा इस प्रकार (मेरे समान) पल भर भी (अपनी प्रियतमा) बिजली से वियोग न हो ।

व्याकरणम्—जलद = जलं ददातीति जलदः, तसम्बुद्धौ (उपपदतत्पु०) जल + √दा + क (कर्तरि) । सौहार्दात् = सुहृदो भावः सौहार्दम् सुहृद् + (अण्) जब समास हृद् भग, सिन्धु से अन्त होता हो, तो ञित्, पित्, कित्

१—प्रियमनुचितं प्रार्थनादात्मनः—का० बा० पाठक; प्रियसमुचितं प्रार्थनादात्मनः, प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसः–वि०; प्रियमनुचितं प्रार्थनावर्त्मनः–व०, स० ती०, सारो०, सु० वि० । २—विचर जलद—का० बा० पाठक । ३—क्वचिदपि—वि० । ४—सखे—का० बा० पाठक; न ते वि० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रत्ययों के पूर्व समास के दोनों पदों के स्वरों को वृद्धि हो जाती है । जैसे सौभाग्यं, साप्तसैन्धवः । सुहृत् शब्द के सम्बन्ध में देखिए—'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति निपातनात् साधुः विधुरः=विगता धूर्यस्य (ब० व्री०) । 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' से अन्त में 'अ' आ जाने तथा बाद में 'ऊ' को ह्रस्व हो जाने से 'विधुर' बना । मल्लि० ने 'विधुरः' का अर्थ 'वियुक्तः' दिया है । अनुक्रोश-बुद्ध्या=अनु+√क्रुश्, भ्वा० प० (चिल्लाना)+अ (भावे)–अनुक्रोशस्य बुद्धिः तया (ष० तत्पु०) । अनुचितप्रार्थनावर्तिनः=अनुचिता (अननुरूपा) या प्रार्थना तत्र वर्तिनः । प्रावृषा=प्रावृष् शब्द का तृ० एक० संभृतश्रीः——संभृता (सम्+√भृ०, भ्वा० प०+त) श्रीः (शोभा) यस्य (ब० व्री०) । इष्टान्=√इष्, तुदा० प०+त तान् । वि+√चर्, भ्वा० प० (खाना), लोट् म० पु० एक० । विद्युता=विद्युत् का तृ० एक० । विप्रयोगः वि+प्र+√युज् रुधा० उ० (जोड़ना)+अ । क्षणमपि='कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से द्वितीया । मा भूत्= मा निषेधसूचक अव्यय+अभूत् भू धातु का लुङ् प्र० पु० एक० । आशिषि लुङ् ।' न माङ् योगे' इससे अडागमनिषेध ।

विशेषः—विधुरः—देखिए विक्र०, IV. २०–'मयि च विधुरे भावः कान्ताप्रवृत्तिपराङ्मुखः ।' और कुमार० IV. ३२–'विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम् ।' वल्लभ ने 'विधुरः' का अर्थ 'दुखित' किया है और इस समास का इस प्रकार विग्रह किया है–'विघटिता धूः कार्यभारोऽस्य' । इस सम्बन्ध में क्षीरस्वामी अमरकोश III. २.२० पर टीका करता हुआ कहता है–'विधुरो विकलेऽन्यवत्' । पूर्वमेघ, ८ 'कः सन्नद्धे विरह-विधुरां त्वय्युपेक्षेत जायाम्' में विरह-विधुरां' का अर्थ विरह से व्याकुल या दुःखित किया गया है ।

विचर—वि+√चर् अकर्मक धातु है । देखिए–नैषध० च० 'हंसं विचरन्तमन्तिके' । परन्तु प्रस्तुत पद्य में 'विचर' सकर्मक है । इसका कर्म 'देश' है । इस विषय में मल्लि० ने इसके सकर्मक होने के विषय में 'देशकालाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' प्रमाण दिया है । विचर् के सकर्मक होने के सम्बन्ध में देखिए रघु० II—'अधिज्यधन्वा विचचार दावम् ।'

इष्टान्देशाञ्जलद विचर···विद्युता विप्रयोगः—यह पद्यार्ध मेघदूत में नाटक में भरत वाक्य के समान आशीर्वादात्मक है । इसमें मेघ के प्रति मंगलकामना की गई है कि वह वर्षाऋतु में क्षण भर भी अपनी प्रियतमा–बिजली–से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वियुक्त न हो। जहाँ भी जाए, बिजली उसके साथ ही रहे। यहाँ मेघ तो निमित्तमात्र है। वास्तव में कवि मेघ के व्याज से मनुष्यमात्र के लिए शुभ कामना करता है कि उनका अपनी प्रियतमाओं से वियोग न हो, क्योंकि वियोग की वेदना बुरी हुआ करती है। कालिदास का मेघदूत इस तरह अन्त के मार्मिक मंगलवाक्य के साथ समाप्त हो जाता है।

उपरोक्त पद्य ५५ के बाद भी कहीं दो या कहीं चार या पाँच पद्य और भी मिलते हैं। कारण कि कुछ लोग यह समझ बैठे हैं कि यक्ष इतने विस्तार से अपनी करुण कहानी कहे एवं अपनी प्रियतमा को इतना महत्त्वपूर्ण सन्देश दे और मेघ उसे सुनकर उत्तर में सहानुभूति तथा स्वीकृति के दो शब्द भी न कहकर मूक बना खड़ा रहे—अनुचित सी बात है, इसलिए वे मेघदूत को यहीं तक समाप्त हुआ नहीं मानते। वास्तव में वे लोग भ्रम में हैं। जैसा कि हम पिछले पद्य के विशेष में विल्सन महोदय के शब्दों में कह आए हैं, कवि यदि मेघ-जैसे जड़ पदार्थ को वागिन्द्रिय दे देता, तो यह कालिदास-जैसे सुनिपुण, कलाकार के सम्बन्ध में कितनी बड़ी उपहास की वस्तु बन जाती कि उसकी कला में मेघ-जैसे जड़ पदार्थ भी बोलते हैं। हाँ, इस विषय में एक प्रश्न अवश्य उठता है और वह यह कि यदि मेघ जड़ वस्तु होने के कारण बोल नहीं सकता, तो फिर यक्ष ने— जो कि एक चेतन व्यक्ति है—क्यों जड़ के आगे अपना दुखड़ा रोया? इस प्रश्न का उत्तर हम वही देंगे, जो स्वयं कालिदास ने पूर्व मेघ पद्य ५ में दे रखा है अर्थात् विरही यक्ष तो वर्षा-ऋतु के मेघ को उमड़ा देखते ही कामोन्मत्त हो गया और कामोन्माद में जब कि चित्त विक्षिप्त हो जाता है, तब यक्ष ही नहीं, प्रत्युत कोई अन्य कामुक भी अपने विवेक को खोकर इस तरह बड़बड़ा जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। कालिदास ने विक्रमोर्वशी में भी पुरूरवा को उर्वशी के वियोग में उन्मत्त बना कर वृक्ष-पर्वतादि से बातें करते दिखाया है। वाल्मीकि ने भी सीता के वियोग में उन्मत्त बने हुए राम का ऐसा ही चित्र खींचा है। इस तरह पद्य ५५ में ही मेघदूत को समाप्त कर देने में कोई अनुपपत्ति नहीं दीखती। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि बाद के पद्यों में कालिदास की सी न तो कला ही दिखाई देती है और न शैली, साथ ही उन पर कोई टीका भी नहीं। यदि वे मौलिक ही होते तो सभी टीकाकार उनकी टीका लिखते, इसलिए हम उन्हें प्रक्षिप्त ही मानेंगे। वे पद्य नीचे दिये जाते हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रक्षिप्त-श्लोकाः)

इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप ।
मत्वाऽगारं कनकरुचिरं लक्षणैः पूर्वमुक्तै-
स्तस्योत्सङ्गे क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श ।।५६।।

अन्वयः—इति आख्याते सति सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु स्थित्वा स्थित्वा कैश्चित् वासरैः धनपतिपुरीम् आप, पूर्वम् उक्तैः लक्षणैः कनकरुचिरम् अगारं मत्वा तस्य उत्सङ्गे क्षितितलगतां तां दीनां च ददर्श ।

पदार्थः—इति आख्याते=इस प्रकार कहे जाने पर । सुरपतिसखः=इन्द्र का मित्र अर्थात् मेघ। शैलकुल्यापुरीषु=पहाड़ों, नदियों, तथा नगरों में । स्थित्वा स्थित्वा=ठहर ठहर कर । कैश्चित् वासरैः=कुछ दिनों में । धनपतिपुरीम्=कुबेर की नगरी अलका में । आप=पहुँच गया । पूर्वम् उक्तैः=पहले कहे गए । लक्षणैः—चिह्नों से । कनकरुचिरम्—सुवर्ण-जैसे चमकीले । अगारं मत्वा—भवन को पहिचान कर । तस्य उत्सङ्गे—उसके अन्दर । क्षितितलगताम्—भूमि पर लेटी हुई । तां ददर्श—उस (यक्ष पत्नी) को देखा ।

भाषानुवादः—इस प्रकार कहे जाने पर मेघ पहाड़ों, नदियों तथा नगरियों में ठहर-ठहर कर अलका पहुँच गया और पहिले बताये हुए चिह्नों से सोने-जैसे चमकीले भवन को पहचान कर उसके भीतर उसने जमीन पर लेटी हुई यक्ष-पत्नी देखी ।

व्याकरणम्—आख्याते—आ+√ख्या+क्त (कर्मणि) । सुरपतिसखः—सुराणां पतिः तस्य सखा (ष० तत्पु०) । सखि शब्द को समास में 'अ' हो जाता है और उसके रूप राम की तरह चलते हैं । शैल-कुल्यापुरीषु—शैलाश्च कुल्याश्च पुर्यश्च इति शैल० (द्वन्द्व) । स्थित्वा+√स्था भ्वा० प०+त्वा अभीक्ष्णे द्वित्वम् । धनपतिपुरीम्—धनस्य पतिः तस्य पुरीम् (ष० तत्पु०) । आप—√आप् स्वा० प०+लिट् प्र० ए० । कनकरुचिरम्—कनकवत् रुचिरम् (कर्मधा०) । क्षितितलगताम्—क्षित्याः तलम् (ष० तत्पु०) तत्र गताम् । ददर्श=√दृश् भ्वा० प०+लिट् प्र० ए० ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1]तस्मादद्रेर्निगदितुमथो[2] शीघ्रमेत्यालकायां
यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टचिह्नैर्विदित्वा ।
यत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्
तद्गेहिन्याः सकलमवदत् कामरूपी पयोदः ॥५७॥

अन्वयः—अथो कामरूपी पयोदः सन्देशं निगदितुं तस्माद् अद्रेः शीघ्रम् एत्य दृष्टचिह्नैः विगलितनिभं यक्षागारं विदित्वा गेहिन्याः प्रणयमधुरं तत् सकलम् अवदत् यद् गुह्यकेन प्रयत्नात् सन्दिष्टम् (आसीत्) ।

पदार्थः—अथो=इसके अनन्तर । कामरूपी=स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाला । पयोदः=मेघ । निगदितुम्=(सन्देश) कहने को । तस्मात् अद्रेः =उस पर्वत से । शीघ्रम् एत्य=शीघ्र ही आकर । दृष्टचिह्नैः=दीखते हुए चिह्नों से । विगलितनिभम्=बिलकुल फीकी पड़ी आभावाले । यक्षागारम्= यक्ष के गृह को । विदित्वा=पहिचानकर । गेहिन्या=उसकी पत्नी को । प्रणयमधुरम्=प्रेम से मीठा, प्रेम-भरा । तत् सकलम् अवदत्=वह सब कह दिया । यत्=जो । गुह्यकेन=यक्ष ने । प्रयत्नात् सन्दिष्टम्=प्रयत्न के साथ सन्देश के रूप में भेजा था ।

भाषानुवादः—इसके बाद स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मेघ ने सन्देश कहने के लिए शीघ्र ही उस पर्वत से आकर दीखते हुए चिह्नों से बिलकुल फीकी पड़ी आभावाले यक्ष के भवन को पहिचानकर उसकी पत्नी को प्रेम-भरा वह सब कुछ कह डाला, जो कि यक्ष ने प्रयत्न के साथ सन्देश के रूप में कहा था ।

व्याकरणम्—अथो=आनन्तर्य अर्थ में अथ और अथो दोनों ही अव्यय होते हैं । कामरूपी=कामकृतानि रूपाणि कामरूपाणि (मध्यमपदलोपी कर्म०) तान्यस्य सन्तीति कामरूप+इन् (मतुबर्थ) । पयोदः=पयः ददातीति पयस्+ √दा+अ ('क' कर्त्तरि) । निगदितुम्=नि+√गद् भ्वा० प०+तुम् । एत्य =आ+√इण् अदा० प०+ल्यप् । दृष्टचिह्नैः=दृष्टानि च तानि चिह्नानि तैः (कर्मधा०)। विगलितनिभम्=विगलिता निःशेषेण भा यस्य तत् (ब०व्री०)। यक्षागारम्=यक्षस्य आगारम् (ष० तत्पु०) । विदित्वा=√विद् अदा० प०

१—निगदित । २—पथः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

+क्त्वा। गेहिन्याः=गेहमस्या अस्तीति तस्याः गेह+इन्(मतुबर्थ)+ङीप् (स्त्रियाम्) कर्मणि षष्ठी। प्रणयमधुरम्=प्रणयेन मधुरम् (तृ० तत्पु०) । सन्दिष्टम्=सम्+√दिश् तुदा० प०+क्त ।

विशेषः—इस पद्य का प्रायः वही अर्थ है, जो प्रक्षिप्त पद्य १ का है ।।५७।।

तं[1] सन्देशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु[2] ।।५८।।

अन्वयः—जनहितरतः जलधरवरः यक्षवध्वाः प्राणान् रक्षितुं दिव्यवाचा तं सन्देशं तस्याः आचचक्षे। सा अपि स्वभर्तुः उदन्तं प्राप्य प्रमुदितमनाः तस्थौ। हि केषाम् उत्तमेषु प्रार्थना अभिमतफला न स्यात् ।

पदार्थः—जनहितरतः मेघः=लोगों की भलाई में लगे हुए मेघ ने। यक्ष-वध्वाः प्राणान् रक्षितुम्=यक्ष पत्नी का जीवन बचाने के लिए। दिव्यवाचा=दिव्यवाणी से। तं सन्देशं तस्याः आचचक्षे=वह सन्देश उसे कह सुनाया। सा अपि=वह (यक्षपत्नी) भी। स्वभर्तुः=अपने पति का। उदन्तं प्राप्य=समाचार पाकर। प्रमुदितमनाः तस्थौ=हृदय में बड़ी प्रसन्न हुई। हि=क्योंकि। केषाम्=किनकी। उत्तमेषु प्रार्थना=महापुरुषों के प्रति प्रार्थना। अभिमत-फला न स्यात्=अभीष्ट फल (देने) वाली नहीं होती।

भाषानुवादः—लोगों की भलाई (करने) में लगे हुए मेघ ने यक्षपत्नी के प्राणों को बचाने के लिये दिव्य वाणी द्वारा वह सन्देश उसको कह सुनाया। वह भी अपने पति का समाचार पाकर हृदय में बड़ी प्रसन्न हुई। उत्तम व्यक्तियों के प्रति की हुई प्रार्थना किसको अभीष्ट फल देने वाली नहीं होती।

व्याकरणम्—जनहितरतः=जनानां हितं तस्मिन् रतः (सप्त० तत्पु०)। जलधरः=धरतीति धरः जलस्य धरः(ष० तत्पु०)। जलधरश्चासौ वरश्च(कर्म०) यक्षवध्वाः=यक्षस्य वधूः तस्याः (ष० तत्पु०) । दिव्यवाचा=दिवि भवा दिव्या सा चासौ वाक् च तया(कर्मधा०)। आचचक्षे=आ+√चक्षिङ् अदा० आ०+लिट् प्र० ए०। स्वभर्तुः=भरतीति भर्ता,स्वस्याः भर्ता तस्य(ष० तत्पु०)। प्राप्य=प्र+√आप् स्वा० प०+ल्यप्। प्रमुदितमनाः=प्रकर्षेण मुदितं प्रमुदितम्,

१—तत्सं, २—ऽभ्युन्नतेषु ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रमुदितं मनः यस्याः तथाभूता (ब० व्री०)। तस्थौ=√स्था भ्वा० प०=लिट् प्र० ए०। अभिमतफला—अभिमतं फलं यस्याः सा (ब० व्री०)।

विशेषः—दिव्यवाचा—इस प्रक्षिप्त पद्य के निर्माता ने जड़ पदार्थ मेघ का बोलना असम्भव देखकर ही उसमें 'दिव्यवाक्' की कल्पना की है, जो लौकिक नहीं है। यदि कालिदास को यह अभीष्ट होता, तो मेघ के साथ हो रही यक्ष की इतनी लम्बी-चौड़ी बातचीत के मध्य कहीं न कहीं मेघ से भी कुछ बुलवाता रहता। जिस तरह मेघ 'दिव्यवाचा' यक्षपत्नी को सन्देश दे सकता है, उसी तरह वह विरह व्यथित यक्ष भी 'दिव्यवाचा' आश्वासन दे सकता था, इसलिए यह पद्य बिलकुल मनगढ़न्त ही है।

इस पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है, क्योंकि यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन किया गया है ॥५८॥

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः।
संयोज्यैनौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं[1] भोजयामास शश्वत् ॥५६॥

अन्वयः—**धनेशः अपि जलकथितां तां वार्तां श्रुत्वा सदयहृदयः अस्तकोपः च (सन्) शापस्य अन्तं विधाय विगलितशुचौ, हृष्टचित्तौ (च) एनौ दम्पती संयोज्य इष्टान् भोगान् अविरतसुखम् (यथा स्यात् तथा) शश्वत् भोजयामास।**

पदार्थः—धनेशः अपि=कुबेर ने भी। जलदकथिताम्=मेघ द्वारा कहे गए। तां वार्ताम् श्रुत्वा=उस समाचार को सुनकर। सदयहृदयः=दयापूर्ण हृदय से। अस्तकोपः च=तथा शांतक्रोध हुए। शापस्य अन्तं विधाय=शाप को समाप्त करके। विगलितशुचौ=शोक-रहित। हृष्टचित्तौ (च)=तथा हृदय से प्रसन्न हुए। एनौ दम्पती=इन दोनों पति-पत्नियों को। संयोज्य=मिला-कर। इष्टान् भोगान्=अभीष्ट आनन्द की वस्तुएं। अविरतसुखम्=जिस तरह कि उन्हें लगातार सुख मिलता रहे। शश्वत्=बार-बार। भोजया-मास=भुगवाईं।

भाषानुवादः—मेघ द्वारा कहे गए उस समाचार को सुनकर हृदय में दया भरे तथा क्रोध को शान्त किए हुए कुबेर ने भी शाप को समाप्त कर शोक-रहित

१—०नभिमत०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा हृदय में प्रसन्न हुए इन दोनों पति-पत्नियों को मिलाकर बार-बार ऐसा आनन्द लुटवाया जिससे कि इन्हें लगातार सुख ही सुख मिलता रहा।

व्याकरणम्—जलदकथिताम्—जलदेन कथिताम् (तृ० तत्पु०)। सदय-हृदयः—दयया सह वर्तमानं सदयम्, तथाभूतं हृदयं यस्य सः (ब० व्री०)। अस्तकोपः—अस्तः कोपः यस्य सः (ब० व्री०) विगलितशुचौ—विगलिता शुक् ययोः तौ (ब० व्री०)। हृष्टचित्तौ—हृष्टं चित्तं ययोः तथाभूतौ (ब० व्री०)। दम्पती—जाया च पतिश्च दम्पती (द्वन्द्व) नित्यद्विवचनान्त। संयोज्य—सम्+√युज् रुधा० उ०+णिच्—ल्यप्। इष्टान्—√इष् भ्वा० प०+क्त। अविरत-सुखम्+न विरतम् अविरतम्, अविरतं सुखं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा (ब० व्री०) क्रियाविशे०। भोजयामास—√भुज् रुधा० उ० +णिच्+लिट् प्र० ए०।

विशेषः—प्रस्तुत पद्य पर केवल कल्याणमल्ल ने ही टीका लिखी है। प्रो० काले के शब्दों में 'पांच प्रक्षिप्त पद्यों में से यही एक सर्वोत्कृष्ट पद्य है जो कालिदास की शैली के बहुत निकट गया हुआ है ॥५९॥

इत्थम्भूतं सुरचितपदं मेघदूताभिधानं
कामक्रीडाविरहितजने विप्रयोगे विनोदः।
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः कवीनां
नत्वाऽऽर्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार ॥६०॥

अन्वयः—कालिदासः आर्यायाः चरणकमलं नत्वा सुरचितपदम् इत्थम्भूतं मेघदूताभिधानं (काव्यम्) चकार। अस्मिन् कामक्रीडाविरहितजने विप्रयोगे विनोदः मेघस्य अतिनिपुणता, कवीनां बुद्धिभावः (च अस्ति)।

पदार्थः—आर्यायाः—पूज्य देवी (काली भगवती) के चरणकमलं नत्वा कमल-जैसे चरण को प्रणाम करके। सुरचितपदम्—अच्छे रचे हुए पदों वाला। इत्थम्भूतम्+इस तरह का। मेघदूताभिधानं (काव्यम्)—मेघदूत नाम का (काव्य)। चकार—बनाया। अस्मिन्—इस मेघदूत में। कामक्रीडाविरहितजने—प्रेम-केलियों से खाली पड़े हुए प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए। विप्रयोगे—वियोग-विरह-में। विनोदः—मनबहलाव। मेघस्य अतिनिपुणता—मेघ की अत्यधिक चतुरता। कवीनां—कवियों का। बुद्धिभावः (च अस्ति)—बुद्धि का सद्भाव (है)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाषानुवादः—कालिदास ने पूज्य देवी (काली) के कमल-जैसे चरणों को प्रणाम करके सुन्दर रचे हुए पदों वाला मेघदूत नाम का इस तरह का काव्य बनाया जिसमें प्रेमकेलियों से खाली पड़े हुए लोगों के लिए वियोग में मनोविनोद भी है, मेघ की अत्यधिक चतुरता भी है, साथ ही कवियों की बुद्धि का भाव–चमत्कार भी है।

व्याकरणम्—चरणकमलं = चरणं कमलमिव (उपमितसमास)। नत्वा = नम् भ्वा० प० + त्वा। सुरचितपदम् = सुष्ठु रचितानि पदानि यस्मिन् तत् (ब० व्री०)। इत्थंभूतम् = इत्थं भूतम्; भूतम् √भू + क्त (कर्तरि)। मेघदूताभिधानम् = मेघदूतः अभिधानं यस्य तत्। (ब० व्री०)। कामक्रीडाविरहितजने = कामस्य क्रीडा, तया विरहितः यः जनः तस्मिन्। बुद्धिभावः = बुद्धेः भावः ॥६०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट—क

पूर्वमेघ में आये हुए भौगोलिक शब्द तथा उनके वर्तमान पर्याय

अवन्ति (पद्य ३०)—पश्चिमी मालवा का भाग; राजधानी उज्जयिनी।

आम्रकूट (पद्य १७)—मध्य प्रदेश में अमरकण्टक (३४९८ फी०)।

उज्जयिनी (पद्य २७)—उज्जैन (मालवा में)।

कनखल (पद्य ५२)—हरिद्वार के पास का तीर्थ (उ० प्र०)।

कुरुक्षेत्र (पद्य ५०, कौरवं क्षेत्रम्)—पंजाब में थानेश्वर के पास।

कैलास (पद्य ११)—तिब्बत में मानसरोवर के पश्चिमोत्तर की ओर हिमालय की २०२२६ फी० ऊँची चोटी।

क्रौञ्चरन्ध्र (पद्य ५९)—नीतिमाणा दर्रा इस पद्य का विशेष भाग देखिए।

गन्धवती (पद्य ३५)—एक छोटी नदी जो वर्तमान गन्धवती-घाट के समीप सिप्रा में मिलती है।

गम्भीरा (पद्य ४२)—उज्जैन जिले की एक नदी जो सिप्रा में जा मिलती है।

चर्मण्वती (पद्य ४७)—मालवा में चम्बल नदी को कहते हैं, जो यमुना की सहायक नदी है।

जाह्नवी (पद्य ५१)—गङ्गा का नाम।

दशपुर (पद्य ४९)—मन्दसौर (मध्य प्रदेश)।

दशार्ण (पद्य २३)—पूर्वी मालवा राजधानी विदिशा।

देवगिरि (पद्य ४४)—देवगढ़ (मन्दसौर और उज्जयिनी के मध्य)।

निर्विन्ध्या (पद्य २८)—विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली संभवतः पार्वती नदी (मालवा में)।

नीचैर्गिरि (पद्य २५)—भिलसा के पास एक पर्वत (संभवतः उदयगिरि)।

ब्रह्मावर्त (पद्य ५०)—दिल्ली के पूर्वोत्तर-वर्ती प्रदेश।

मानस (पद्य २७)—मानसरोवर झील (तिब्बत में)।

माल (पद्य १६)—माल्डा रतनपुर के पास (मध्यप्रदेश)।

यमुना (पद्य ५३)—जमुना नदी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रेवा (पद्य २९)नर्मदा नदी ।

रामगिरि (पद्य १)—रामगढ़ पर्वत (मध्यप्रदेश) ।

वननदी (पद्य २६)—सम्भवतः वेस नदी (मालवा में) जो भिलसा के निकट बेतवा में मिल जाती है ।

विदिशा (पद्य २४)—भिलसा या बिसनगर (पूर्वी मालवा में) ।

विन्ध्य (पद्य १९)—विन्ध्याचल पर्वत ।

वेत्रवती (पद्य २४)—बेतवा नदी (मालवा में) ।

श्रीचरणन्यास (पद्य ५७)—देखिए इसी पद्य का विशेष भाग ।

सिप्रा (पद्य ३१)—उज्जयिनी से होकर मालवा में बहने वाली नदी ।

सिन्धु (पद्य २९)—कालीसिन्धु (चम्बल की सहायक नदी)

सरस्वती (पद्य ५१)—एक नदी जो अब लुप्त है (देखिए इसी पद्य का विशेष भाग)

हिमालय (पद्य ५४)—सुप्रसिद्ध हिमालय पर्वत ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट—ख

मेघदूतस्य सूक्तयः

१—आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (पू० ५५)।
२—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि (पू० ९)।
३—कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (उ० ४९)। → घ
४—कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः (उ० ४०)।
५—कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु (पू० ५)। → क
६—के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः (पू० ५६)।
७—ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः (पू० ४३)।
८—न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किंपुनर्यस्तथोच्चैः (पू० १७)।
९—प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (उ० ५४)।
१०—प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा (उ० ३३)।
११—मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (पू० ४०)।
१२—मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे (पू० ३)।
१३—रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (पू० २०)।
१४—वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति (उ० ४)।
१५—स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (पू० २८)।
१६—सद्भावार्द्रः फलति नचिरेणोपकारो महत्सु (पू० १७ क)।
१७—स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति (उ० ५२)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट—ग

वर्णक्रमानुसारिणी पद्यसूची

अक्षय्यान्तर्भवन०	उ० २०
अङ्गेनाङ्गं प्रतनु	,, ४२
अद्रेः शृङ्गं हरति	पू० १४
अध्वक्लान्तं प्रतिमुख०	पू० १७-क
अन्वेष्टव्यामवनि०	उ० २८-ख
अप्यन्यस्मिञ्जलधर	पू० ३६
अम्भोबिन्दुग्रहण०	पू० २१-क
आद्ये बद्धा विरह०	उ०३२
आधिक्षामां विरह०	,, २९
आनन्दोत्थं नयन०	,, ४
आपृच्छस्व प्रिय०	पू० १२
आराध्यैनं शरवण०	,, ४०
आलोके ते निपतति	उ० २५
आश्वास्यैवं प्रथम०	,, ५३
आसीनानां सुरभित०	पू० ५४
इत्थम्भूतं सुरचितपदं	उ० ६०
इत्याख्याते पवन०	,, ४०
इत्याख्याते सुरपतिसखः	,, ५६
उत्पश्यामि त्वयि०	पू० ६१
उत्पश्यामि द्रुतमपि०	,, २२
उत्सङ्गे वा मलिन०	उ० २६
एतत्कृत्वा प्रियमनु०	,, ५५
एतस्मान्मां कुशलिन०	,, ५२
एभिः साधो हृदय०	उ० २०
कच्चित्सौम्य व्यव०	,, ५४
कर्तुं यच्च प्रभवति	पू० ११
कश्चित्कान्ताविरह०	,, १
गच्छन्तीनां रमण०	,, ३९
गत्युत्कम्पादलक०	उ० ११
गत्वा चोर्ध्वं दशमुख०	पू० ६०
गत्वा सद्यः कलभ०	उ० २१
गम्भीरायाः पयसि	पू० ४२
छन्नोपान्तः परिणत०	,, १८
जातं वंशे भुवन०	,, ६
जाने सख्यास्तव०	उ० ३४
जालोद्गीर्णैरुपचित०	पू० ३४
ज्योतिर्लेखावलयि	,, ४६
तं चेद्वायौ सरति०	,, ५५
तं सन्देशं जलधर०	उ० ५८
तत्र व्यक्तं दृषदि	पू० ५७
तत्र स्कन्दं नियत०	,, ४५
तत्रागारं धनपति०	उ० १५
तत्रावश्यं वलय०	पू० ६६
तन्मध्ये च स्फटिक०	उ० १९
तन्वी श्यामा शिख०	,, २२
तस्माद्द्रेर्निगदित०	,, ५७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्माद्गच्छेरनु०	पू० ५२
तस्मिन्काले जलद	उ० ३७
तस्मिन्काले नयन०	पू० ४१
तस्मिन्नद्रौ कतिचि०	,, २
तस्य स्थित्वा कथमपि	,, ३
तस्याः किञ्चित्कर०	,, ४३
तस्याः पातुं सुरगज	,, ५२
तस्यास्तिक्तैर्वनगज०	,, २०
तस्यास्तीरे रचित०	उ० १७
तस्योत्सङ्गे प्रणयिन	पू० ६५
तां कस्याञ्चिद्भवन०	,, ४०
तां चावश्यं दिवस०	,, ९
तां जानीथाः परि०	उ० २३
तामायुष्मन्मम	,, ४१
तामुत्तीर्य व्रज	पू० ४९
तामुत्थाप्य स्वजल०	उ० ३८
तेषां दिक्षु प्रथित०	पू० २४
त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित०	,, ४४
त्वय्यादातुं जल०	,, ४८
त्वय्यायत्तं कृषि०	,, १६
त्वामारूढं पवन०	,, ८
त्वामालिख्य प्रणय०	उ० १५
त्वामासारप्रशमित०	पू० १७
दीर्घीकुर्वन्पटु	,, ३१
धारासिक्तस्थल०	उ० ४५-क
धूमज्योतिःसलिल०	पू० ५
नन्वात्मानं बहु	उ० ४९
निःश्वासेनाधर०	,, ३१
नीचैराख्यं गिरि०	पू० २५
नीपं दृष्ट्वा हरित०	पू० २१
नीवीबन्धोच्छ्वसित०	उ० ७
नूनं तस्याः प्रबल०	,, २४
नेत्रा नीताः सतत०	,, ८
पत्रश्यामा दिनकर०	पू० ३३-क
पत्रश्यामा दिनकर०	उ० १३
पश्चादुच्चैर्भुज०	पू० ३८
पाण्डुच्छायोपवन०	,, २३
पादन्यासैः क्वणित०	,, ३७
पादानिन्दोरमृत०	उ० ३०
प्रत्यासन्ने नभसि	पू० ४
प्रद्योतस्य प्रिय०	,, ३२
प्राप्यावन्तीनुदयन०	,, ३०
प्रालेयाद्रेरुपतट०	,, ५९
ब्रह्मावर्तं जनपद०	,, ५०
भर्तुः कण्ठच्छवि	,, ३५
भर्तुर्मित्रं प्रिय०	उ० ३९
भित्त्वा सद्यः किसलय०	,, ४७
भूयश्चाह त्वमपि०	,, ५१
मत्वा देवं धनपति०	,, १४
मन्दं मन्दं नुदति	पू० १०
मन्दाकिन्याः सलिल०	उ० ६
मामाकाशप्रणिहित०	,, ४६
मार्गं तावच्छृणु	पू० १३
यत्र स्त्रीणां प्रियतम०	उ० ९
यत्रोन्मत्तभ्रमर०	,, ३
यस्यां यक्षाः सित०	,, ५
ये संरम्भोत्पतन०	पू० ५६
रक्ताशोकश्चल०	उ० १८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रत्नच्छायाव्यतिकर०	पू०	१५
रुद्धापाङ्गप्रसर०	उ०	३५
वक्रः पन्था यदपि	पू०	२७
वापी चास्मिन्मरकत०	उ०	१६
वामश्चास्याः कररुह०	,,	३६
वासश्चित्रं मधु	उ०	१२
विद्युत्वन्तं ललित०	,,	१
विश्रान्तः सन्व्रज	पू०	२६
वीचिक्षोभस्तनित०	,,	२८
वेणीभूतप्रतनु०	पू०	२९
शब्दाख्येयं यदपि	उ०	४३
शब्दायन्ते मधुर०	पू०	५८
शापान्तो मे भुजग०	उ०	५०
शेषान्मासान्विरह०	,,	२७
श्यामास्वङ्गं चकित०	उ०	४४
श्रुत्वा वार्तां जलद०	,,	५९
संक्षिप्येत क्षण०	,,	४८
संतप्तानां त्वमसि	पू०	७
सव्यापारामहनि	उ०	२७
सा संन्यस्ताभरण०	,,	३३
स्थित्वा तस्मिन्वनचर०	पू०	२९
स्निग्धाः सख्यः कथमपि	उ०	२८-क
हस्ते लीलाकमल०	उ०	२
हारांस्तारांस्तरल०	पू०	३३
हित्वा तस्मिन् भुजग०	,,	६२
हित्वा हालामभि०	,,	५१
हेमाम्भोजप्रसवि	,,	६४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट—घ

शब्द-संक्षेप-संकेत:

अभि० शा०—अभिज्ञान-शाकुन्तलम् ।
उत्तर०—उत्तररामचरितम् ।
ऋतु०—ऋतुसंहारम् ।
का० बा०—काशीनाथ बाबू पाठक ।
कुमा०—कुमारसंभवम् ।
पार्श्वा०—पार्श्वाभ्युदयम् ।
भर्तृ०—भर्तृहरि ।
मल्लि०—मल्लिनाथः ।
म० सिंह०—महिमसिंहगणि ।
माल०—मालतीमाधवम् ।
मालवि०—मालविकाग्निमित्रम् ।
मुद्रा०—मुद्राराक्षसम् ।
रघु०—रघुवंशम् ।
व०, वल्ल०—वल्लभ ।
विक्र०, विक्रमो०—विक्रमोर्वशीयम् ।
वि०, विल्स०—विल्सन (Wilson)
शिशु०—शिशुपालवधम् ।
स० ती०—सरस्वतीतीर्थः ।
सारो० सारोद्धा०—सारोद्धारिणी ।
सु० वि०—सुमतिविजयः ।

Bhawan's Sri Sankaracharya ... Bharatiya Vidya ...
533

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

[मूल पाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका, टिप्पणी एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री सहित]

अभिषेक-नाटक (भासकृत) (संस्कृत-हिन्दी टीका) : सं० मोहनदेव पंत
अमरुशतकम्–अमरुक
उत्तररामचरित : आनन्दस्वरूप
कथासरित्सागर : सोमदेव–सं० जगदीशलाल शास्त्री
काव्यप्रकाश : (प्रथम भाग)–रामसागर त्रिपाठी
किरातार्जुनीयम् (१-४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
कुमारसंभव (१-२ सर्ग): जगदीशलाल शास्त्री
चन्द्रालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका)–सुबोधचन्द्र पन्त
चित्रकाव्यकौतुक (संस्कृत) : रामरूप पाठक, सं० प्रेमलता शर्मा
दशकुमारचरित (सम्पूर्ण) : सुबोधचन्द्र पन्त एवं विश्वनाथ झा
दशरूपक (संस्कृत-हिन्दी टीका) : बी० एन० पाण्डेय
ध्वन्यालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका) (तृतीय व चतुर्थ उद्योत) : रामसागर त्रिपाठी
पंचतन्त्र (सम्पूर्ण) : श्यामाचरण पाण्डेय
प्रतिमानाटक (संस्कृत-हिन्दी टीका) : श्रीधरानन्द शास्त्री
प्रसन्नराघव : रमाशंकर त्रिपाठी
मालविकाग्निमित्र : सं० संसारचन्द्र एवं मोहनदेव पन्त
मृच्छकटिकम् (संस्कृत-हिन्दी टीका) : रमाशंकर त्रिपाठी
विक्रमोर्वशीय : रामविलास त्रिपाठी
वेणीसंहार : रमाशंकर त्रिपाठी
शिशुपालवध (१-४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
शुकनासोपदेश : हरिशचन्द्र विद्यालंकार
साहित्यदर्पण : शालिग्राम शास्त्री
सौन्दरनन्द (अश्वघोष कृत) : अनु० सूर्यनारायण चौधरी
स्वप्नवासवदत्त : जयपाल विद्यालंकार
हितोपदेश (मित्रलाभ) : विश्वनाथ शर्मा

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास कलकत्ता

मूल्य : रु० ७४